राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ

★

गो संवर्धन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

★

स्वराज्य की शिक्षा

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] अगस्त, १९७४ [अंक : १

सम्पादक मण्डल।
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष २३
अंक १
मूल्य १ रु प्रति

अनुक्रम

अगस्त, '७४

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अक का मूल्य १ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी सख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

नयी तालीम

शिक्षकों, अभिभावकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

वर्ष : २३

अंक : १

हमारा दृष्टिकोण

भारतीय संविधान की रजत जयती :

लगभग तीन वर्ष पहले देश भर में हमारे स्वराज्य की रजत जयती मनाई गई थी। इससे देश में एक नयी चेतना का उदय हुआ और राष्ट्र में एक नवीन उत्साह और स्फूर्ति जागी।

इस वर्ष की पिछली २६ जनवरी को भारतीय सविधान को लागू हुए २४ वर्ष पूरे हो चुके हैं और पच्चीसवाँ वर्ष प्रारभ हो गया है। इस प्रकार यह वर्ष हमारे सविधान का रजत जयती वर्ष है।

१५ अगस्त, १९४७ को हम स्वतत्र हुए थे, किन्तु हमारी आजादी को एक निश्चित रूप और रग तो २६ जनवरी, १९५० को ही प्राप्त हुआ जब भारत एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक गणतत्र घोषित हुआ और हमारे सविधान की सभी धाराएँ क्रियान्वित हुईं। इसलिये हमारे कॉन्स्टिट्यूशन के इस पच्चीसवें वर्ष में यह बहुत जरूरी है कि सभी नागरिक उसकी विभिन्न धाराओं को एक बार फिर अच्छी तरह पढ़ें, समझें और उनके विभिन्न पहलुओं पर गहराई से चर्चा करें।

पिछले २५ वर्षों में भारत में काफी उतार और चढ़ाव आये। देशपर एक बार चीनी और दो बार पाकिस्तानी हमले भी हुए। पूर्व बगाल से लगभग एक करोड शरणार्थियों का देश पर भारी बोझ पडा, किन्तु बाद में हमें 'सोनार बागला' जैसा एक पडोसी मित्र राष्ट्र प्राप्त हुआ। देश के कई हिस्सों में भयकर बाढ और सूखे का भी अनुभव मिला। कई राजनीति पार्टियाँ गिरीं और नई खडी हुई। कुछ प्रान्तों में गैर कांग्रेसी सरकारें भी बनीं और अब तक पाँच देशव्यापी चुनाव

सपन्न हुए। इन सभी अवस्थाओं में हमारे संविधान के ढांचे और उसके सचकीलेपन ने हमें विविध कठिनाइयों से पार किया और देश की प्रजातांत्रिक अवस्था को साबुत या अक्षुण्ण रखा।

यह एक विचित्र संयोग है कि हमारे संविधान के इस पच्चीसवें वर्ष में कई प्रकार के असंवैधानिक आन्दोलन चल रहे हैं। हिंसात्मक प्रवृत्तियों का जोर बढ़ रहा है और चारों ओर आपसी संघर्ष, विद्वेष और विध्वंस के काले बादल घिरते जा रहे हैं। कई स्थानों से बार-बार आवाज बुलन्द की जा रही है कि भारतीय लोकतंत्र विफल हो गया है और वह अब आगे नहीं चलेगा। कुछ लोग यह भी कहने लगे हैं कि अब हमारा वर्तमान कांस्टिट्यूशन काम नहीं देगा और एक नया संविधान पुन रचना पड़ेगा। क्या यह सच है ? इस प्रश्न का उत्तर भी हमें इसी वर्ष समझ-बूझकर देना चाहिए। जहाँ तक मैं समझा हूँ, हमारा संविधान काफी मजबूत, समग्र और साथ ही साथ लचकीला भी है। हो सकता है कि अब तक के अनुभव के आधार पर, उसमें कुछ और छोटे मोटे संशोधन करने पड़ें। किन्तु कुल मिलाकर यह दुनिया के संविधानों में से एक सफल और सपन्न संविधान माना जाना चाहिए। इसलिए उसके प्रति आम जनता की श्रद्धा और सद्भावना बढ़ाना हमारा परम कर्तव्य हो जाता है।

यह कार्य व्यवस्थित ढंग से इस वर्ष हम सभी को करना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा विशेषकर शिक्षण केन्द्रों में कई तरह की विचार गोष्ठियाँ आयोजित की जा सकती हैं ताकि संविधान के विविध पहलुओं पर खूब खुली किन्तु रचनात्मक चर्चा हो सके। हम आशा करते हैं कि चालू वर्ष का यह सदुपयोग सारे देश में व्यापक ढंग से किया जाएगा ताकि हमारे प्रजातंत्र और गणराज्य की जड़ें और भी मजबूत बन सकें।

को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिये। किन्तु यह एक विचित्र और हास्यास्पद दलील थी। जो कला हमारे जीवन के नैतिक मूल्यों को तेजी से गिराये और विद्यार्थियों के चरित्र का हनन करे वह कला नहीं, किन्तु एक महान् राष्ट्रीय पाप है और उसे पूरी शक्ति से दबाना चाहिए।

हम यह भी देखते है कि एक बार फिल्म बन जाने के बाद बहुत कठिन हो जाता है कि सेंसर द्वारा उसके काफी हिस्से काट दिये जाय। व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं हो पाता। इसलिये यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा चित्र बनने के पहले से ही उसका कथानक और 'स्क्रिप्ट' बारीकी से देख ली जाय ताकि बाद में अनावश्यक कठिनाइयाँ खडी न हो। यदि इस प्रकार की प्री-सेंसरशिप की व्यवस्था दाखिल कर दी जाय तो सेंसर बोर्ड को अपने नियम लागू करना बहुत आसान हो जायगा। हम आशा करते हैं कि भारत सरकार की सबधित मिनिस्टरी इस ओर विशेष ध्यान देगी ताकि हमारी फिल्मों का स्तर ऊँचा उठ सके और वह नवयुवकों के चरित्र को गिराने के बजाय उसे सस्कारपूर्ण बनानेमें सफल हो।

दहेजकी प्रथा :

हमें यह जानकर बहुत सतोष हुआ कि उडीसा की मुख्यमत्री श्रीमती नन्दिनी सतपथी ने हाल ही में एक दहेज विरोधी आन्दोलन शुरू किया है। यह बडे दुःखका विषय है कि इस सम्बन्ध में केन्द्रीय कानून रहते हुए भी दहेज की प्रथा घटने के बजाय धीरे-धीरे बढ ही रही है। इस समय करीब सभी प्रान्तोंमें किसी पिता के लिये हजारों रुपये खर्च किये बिना अपनी पुत्री की शादी करना गैर-मुमकिन -सा बन गया है। इस सामाजिक कुरीति के विरुद्ध बहुत वर्षों से हमारे देश में आन्दोलन चलते रहे है। लेकिन इस वक्त तो यह बुराई सीमाओ को पार कर रही है। अत' यह बहुत जरूरी है कि इसके खिलाफ हमारी आवाज बुलन्द की जाय। इस सिलसिले में शिक्षण-सस्थाओं-की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। सभी स्कूलों और कालिजों में शुरू से ही विद्यार्थियों को समझाना चाहिये कि दहेज की प्रथा किसी भी नवयुवक के लिये शोभाजनक नहीं है। देश के कुछ हिस्सों में तो दहेज की परेशानी की वजह से लडकियों के विवाह नहीं हो पाते और उन्हे आत्महत्या करने पर विवश हो जाना पडता है।

हम उम्मीद करते है कि दहेज-प्रथा के खिलाफ उडीसा के आन्दोलन का अच्छा प्रभाव पडेगा और अन्य राज्यों में भी इसी तरह का प्रचार शुरू किया जायगा।

शिक्षा में सुधार :

पाठकों को स्मरण होगा कि अक्टूबर सन् १९७२ में अखिल भारत नयी तालीम समिति और वर्धा के शिक्षा मडल के सयुक्त तत्वावधान में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन की मुख्य सिफारिश थी कि हर स्तर पर हमारी शिक्षा सामाजिक दृष्टि से उपयोगी और उत्पादक श्रम

द्वारा ग्रामीण और नागरीय क्षेत्रों में दी जाय। इस बात पर भी जोर दिया गया था कि हमारे पाठ्यक्रमों में नीचे लिखे तीन मूल तत्वों पर विशेष बल दिया जाय :—

(१) आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास तथा शैक्षणिक कार्यक्रम के अविभाज्य अंग के रूप में कार्यों द्वारा श्रम-प्रतिष्ठा।

(२) सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमों में छात्रों और शिक्षकों के सहयोग द्वारा राष्ट्रीयता एवं सामाजिक दायित्व की भावना और

(३) नैतिक मूल्यों का सिंचन, तथा सर्व-धर्म-समभाव और उनके मूलभूत सिद्धान्तों की एकता।

इन पाठ्यक्रमों में हमारी समन्वित सांस्कृतिक परम्परा की जानकारी, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, राष्ट्रीय एकता पर बल, अन्तर-राष्ट्रीय सहयोग तथा अहिंसा, लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय और हमारे संविधान में निहित धर्म-समन्वय के मूल तत्वों का समावेश होना चाहिए।

हमें इस बात का संतोष है कि सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों की ओर कई राज्य सरकारों ने काफी ध्यान दिया है और यह निश्चय किया है कि सेवाग्राम के 'वक्तव्य' के अनुसार चालू शिक्षा-प्रणाली में जरूरी परिवर्तन किये जायं। अभी तक कर्नाटक, तामिलनाडु, गुजरात, पश्चिम बंगाल और राजस्थान में राज्य-स्तरीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं। इन शिक्षा सम्मेलनों में राज्य के शिक्षा-मंत्री के अलावा शिक्षा विभाग के सभी उच्च अधिकारी, विभिन्न विश्वविद्यालयों के उपकुलपति और प्रमुख गैर-सरकारी शिक्षा-शास्त्री शामिल होते रहे हैं। कई प्रान्तों में तो वहाँ के राज्यपालों और मुख्य मंत्रियों ने भी इन सम्मेलनों में सक्रिय हिस्सा लिया है। अगस्त के शुरू में इस प्रकार का एक सम्मेलन हरियाणा के शिक्षा-मंत्री ने चण्डीगढ में भी बुलाया है। पंजाब के राज्यपाल श्री महेन्द्र मोहन चौधरी ने पटियाला में एक 'गांधी मार्ग सम्मेलन' आयोजित किया है जिसमें शिक्षा-सुधार सम्बन्धी गम्भीर चर्चा की जायेगी। हम आशा करते हैं कि शेष राज्य भी शीघ्र ही इस दिशा में कदम उठायेंगे और इस प्रकार के शिक्षा सम्मेलनों का आयोजन करेंगे।

हमें इस बात की भी खुशी है कि पचवीं पांचवर्षीय योजना के शिक्षा संबंधी प्रारूप में सेवाग्राम सम्मेलन की सभी मुख्य सिफारिशों का समावेश कर दिया गया है। इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा का सीधा संबंध हमारी राष्ट्रीय विकास योजनाओं से जोड़ा जाय और श्रम व समाज-सेवा को हमारी शिक्षा-प्रणाली का अविभाज्य अंग बनाया जाय। प्रारूप में इसका भी संकेत किया गया है कि विश्वविद्यालय की डिग्रियों का संबंध नौकरियों से तोड़ दिया जाय और माध्यमिक शिक्षा के बाद दो

यर्य के ऐसे पाठ्यक्रम सचालित किये जाय जिनको पूरा करके हमारे विद्यार्थि उपयोगी कामों में लग सकें। हम उम्मीद करते हैं कि पाँचवीं योजना के दौरान इन सभी मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाता रहेगा।

किन्तु हमें दु ख है कि केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय ने अभी तक सेवाग्राम सम्मेलन के वक्तव्य की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया है। हम इस मनोवृत्ति का कारण समझने में असमर्थ हैं। जब शिक्षा मत्रालय से पूछा जाता है कि वे शिक्षा-सुधारों की तरफ अधिक ध्यान क्यों नहीं देते, तो उत्तर मिलता है कि हमारे सविधान में यह विषय राज्यों का है। यह दलील सचमुच बिलकुल थोथी है। जब केन्द्रीय सरकार चाहती है तो राज्य सरकारों पर तरह तरह से दबाव डालती रहती है और रुपयों का भी लालच दिखाती है। लेकिन जब वह किसी काम को नहीं करना चाहती तब इस तरह की थोथी दलीलें पेश कर देती है। इस प्रकार का रुख किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

—श्रीमन्नारायण

राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ :

[श्री अरविंद ने यह लेख सालों पहले लिखा था किन्तु यह हमारे वर्तमान और भविष्य के लिये अब भी मार्ग-दर्शक है। तथाकथित आधुनिकतावाद को, हमारे आज के विश्व विद्यालय जिसके गढ़ है, श्री अरविंद जैसे मनीषी की यह फटकार आशा है शिक्षा प्रेमी शिक्षकों व छात्रों को चिंतन के लिए प्रेरित करेगी। १५ अगस्त को अरविंद की जन्म-जयंती भी पड़ती है। इस अवसरपर हम नयी तालीम परिवार की ओर से उन्हें अपनी नम्र श्रद्धांजली अर्पित करते है।

— सम्पादक]

हमारे देश में और सिर्फ हमारे देश में ही नही, उन सभी देशों में जहाँ विदेशी राज्य रह चुका है, जहाँ स्वदेशी और विदेशी संस्कृति की टक्करें होतीर हती है, एक ओर माँग की जाती है कि शिक्षा राष्ट्रीय हो। लेकिन मजे की बात यह है कि कोई यह नही जानता कि राष्ट्रीय शिक्षा का मतलब क्या है, उससे किस बात की आशा की जाती है। इसकी वजह से सारे वातावरण में एक उलझन पैदा हो जाती है और चारों तरफ से शोर सुनाई देता है कि कुछ होना चाहिये पर कोई यह नही कह सकता कि क्या होना चाहिये ?

आज की शिक्षा ब्रिटिश राज्य की ही शिक्षा है :

किसी विद्यालय, महाविद्यालय या अन्य शिक्षण संस्था के नाम के साथ 'राष्ट्रीय' शब्द लगा देने भर से वहाँ की शिक्षा राष्ट्रीय नही बन जाती, ठीक उसी तरह जैसे गोरे अधिकारियों की जगह काले अधिकारियों को ला बिठाने से सरकार की प्रकृति नही बदल जाती। मजा तो यह है कि इन शिक्षण सस्थाओ की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथ में होती है जो ऐसी शिक्षा-सस्थाओं की उपज है जिन्हें हम पानी

पी-पीकर कोसते हैं। हम बहुत प्रगतिशील बनना चाहते हैं तो साहित्य, कला आदि की गद्दी पर विज्ञान और शिल्प आदि को ला बिठाते हैं और पंडितों या बी ए, एम ए की जगह इंजीनियरों और डाक्टरों की वर्षा करने लगते हैं और इसी में अपने कर्तव्य की इति श्री मान बैठते हैं। हमारे लिये यह कहना मुश्किल है कि हमारी आधुनिक शिक्षण संस्थाएँ अँग्रेजी राज्यकी संस्थाओं से किस तरह अलग हैं?

हमारी समस्या सचमुच बहुत कठिन है और हमारी समझ में नहीं आता कि शुरू कहाँ से करें। प्राचीन शिक्षा-पद्धति बहुत अच्छी थी और अपने समय की माँग को पूरा करती थी परन्तु आज उसे वहाँ से उखाड़कर आधुनिक गमलों में नहीं लगाया जा सकता। ऐसा करना तो मक्खी पर मक्खी मारना होगा और इससे हमारी वर्तमान आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं हो सकती फिर भला भविष्य की तो बात ही क्या है! भविष्य की माँगें तो वर्तमान से बहुत अधिक होंगी। साथ ही यह भी उतना ही सही है कि इंग्लैण्ड, जर्मनी या अमरीका की टहनियाँ लाकर यहाँ रोप देने से भी काम न चलेगा। हिन्दुस्तानी के चेहरे पर गिलट करने से वह यूरोपीय न बन जायगा।

हम सोचने-विचारने और नये परीक्षण करने के कष्ट से बचना चाहते हैं और विदेशी चेहरों पर गिलट करने में ही लगे रहते हैं। चीजें उन्हीं को रखते हैं पर रंग अपना लगा देते हैं। अँग्रेजी, फ्रेंच की जगह हिन्दी, बंगला, लन्दन और न्यूयार्क के भूगोल की जगह दिल्ली और मद्रास के नक्शे रख देते हैं और अपनी बहादुरी पर अपनी पीठ थपथपाने लगते हैं।

हमारी शिक्षा भारतीय आत्मा से मेल खानेवाली हो:

लेकिन इससे हमारी माँग पूरी नहीं होती। अगर हम किसी गलत स्थान से, गलत रास्ते पर चल पड़ें तो भटक जाना बहुत आसान है। हमारी सच्ची माँग तो यह है कि हमारी शिक्षा भारत की आत्मा के साथ मेल-खाने वाली हो, भारत की संस्कृति और भारतीय स्वाभाव के साथ मेल खा सके। इतना ही काफी नहीं है कि वह हमारे अतीत के साथ सम हो और उसकी सभी अच्छी चीजों को अपने अन्दर लिये हो। उसे भारत के उच्चतर, उज्वलतर भविष्य को उसके वर्तमान को मूर्तिमान करने की विद्या आती हो, उसे वहन करने का बल हो

बहुत से विचारकों और शिक्षा-शास्त्रियों का कहना है कि शिक्षा एक सार्वभौम वस्तु है, यह किसी एक देश की बपौती बनकर नहीं रह सकती। उस पर देश और विदेश के नामों के खोचें लगाना उचित नहीं। जो चीज पूर्व के लिये ठीक है वह पश्चिम के लिए बुरी नहीं हो सकती, जो शिक्षा जर्मनी के लिए ठीक है वह जापान के लिए भी अच्छी ही होगी। मनुष्य सब जगह एक ही है, सत्य और ज्ञान पर देशों और राष्ट्रों के नाम के लेबल नहीं लगाये जा सकते। विज्ञान में राष्ट्रीय शिक्षा क्या

होगी ? क्या इसका यह अर्थ होगा कि हमें आधुनिक आविष्कारों को ठुकरा देना चाहिये क्योंकि वे विदेश से आये हैं ? क्या हमें गैलिलियों और न्यूटन का बहिष्कार करके आर्यभट्ट, वराहमिहिर और भास्कराचार्य तक ही सीमित रहना चाहिये ? प्रश्न उठता है कि आज लेटिन और संस्कृत सीखने-सिखाने के तरीके में, फ्रेंच और हिन्दी या तेलुगु सिखाने के तरीके में क्या राष्ट्रीयता हो सकती है ? क्या हमें आधुनिक तरीकों का छोड़कर पुरानी पाठशालाओं की पद्धति अपनानी चाहिये ? और यदि हम किसी तरह से पता लगा सके कि नालन्दा और तक्षशिला में कैसे पढ़ाई होती थी तो क्या आज वह पद्धति हमारे लिये अनुकूल होगी ? अधिक से अधिक यही तो कहा जा सकता है कि हमारे पाठ्यक्रम में अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषाएँ प्रधान हो और अंग्रेजी का स्थान गौण कर दिया लेकिन इसके भी पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है और कहा जाता है क्योंकि आज हम अशोक और अकबर के राज्य में नही हैं। हमें वर्तमान परिस्थितियों का, कठोर तथ्यों का सामना करना है। अतः आधुनिक जीवन पद्धति से पिछड़ जाना भी हितकर न होगा।

ये सब बातें ठीक होती, ये आक्षेप युक्तियुक्त होते यदि हम यह प्रयास करते कि हर नयी चीज को उखाड़ फेंका जाय और उसकी जगह मृत या अर्द्ध मृत प्राचीन वस्तुओं को प्रतिष्ठित किया जाय। हम भास्कर और वराहमिहिर की महानता को स्वीकार करते हैं परन्तु आधुनिक विज्ञान को देश-निकाला देकर उन्हे प्रस्थापित करने के लिये तैयार नही हैं। यह तो ऐसा ही होगा जैसे हवाई जहाज, रेल, मोटर, आदि को हटाकर फिर से बैलगाडी के युग को लाने का प्रयास करना और यह कह कर प्रयास करना कि हमें विदेशी चीजों से कुछ लेना देना नहीं है। हमारे पुरखों के अनुसार तो 'तातस्य कूप' कहकर उसका खारा पानी पीना कापुरुषों का काम है। हमें चीजों के बाहरी रूप को बहुत ज्यादा महत्व नही देना चाहिये। उनके पीछे की भावना ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमारे सामने भूत और वर्तमान का प्रश्न नहीं है बल्कि वर्तमान और भविष्य का प्रश्न है। भारतीय मन और स्वभाव की सभावनाएँ एक ओर हैं और बाहर से आयी हुई अधकचरी संस्कृति दूसरी ओर। हम बीसवी सदी से दूसरी सदी मे नही आजाना चाहते बल्कि अपने आपको आने वाली सदियों के लिए तैयार करना चाहते हैं। भारत की अंतरात्मा, भारत की शक्ति की माँग है कि हम मिथ्या, आडम्बरपूर्ण वर्तमान से पिण्ड छुड़ाकर भावी सभाव्यता और अनन्त शक्ति की ओर नजर डाले।

वर्तमान शिक्षा की मिथ्या धारणा :

हमारी शिक्षण संस्थाएँ इस धारणा से पीड़ित हैं कि अमुक विषयों की अमुक स्तर तक जानकारी प्राप्त करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। ठीक है, इस प्रकार की जानकारी उपयोगी होती है परन्तु वह शिक्षा नही शिक्षा का एक छोटा-सा

अग है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है मनुष्य के मन, प्राण और अन्तरात्मा की क्षमताओं का विकास। शायद यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि शिक्षा के द्वारा अधिक नहीं तो कम से कम ज्ञान, संकल्प, चरित्र और संस्कृति आदि का उपयोग कर सकने की शक्ति का आह्वान हमारा लक्ष्य है। और यहीं बहुत बड़ा फर्क आ जाता है। अगर विज्ञान द्वारा अधिकृत जानकारियों का पिटारा भरना ही हमारा उद्देश्य होता तो आज के पश्चिमी विज्ञान को ऐसे का ऐसा निगल जाने से, चबाए और पचाए बिना लील लेने से ही काम चल जाता।

असल सवाल :

बड़ा प्रश्न यह नहीं है कि हम कौन-सा विज्ञान पढ़ें, प्रश्न यह है कि विज्ञान पढ़कर करेंगे क्या, उसका उपयोग कैसे करेंगे। हम अपने मन को वैज्ञानिक मोड देकर, वैज्ञानिक ढंग से अन्वेषण का मार्ग पकड़कर उनका मन की विभिन्न शक्तियों के साथ कैसे मेल बिठायेंगे। हमारी बुद्धि और हमारी प्रकृति के जो प्रकाश और शक्ति देने वाले महत्वपूर्ण अंग हैं उनके साथ इसका क्या सम्बन्ध होगा? और यह भी सम्भव नहीं है कि भारतीय मानस यदि स्वाधीनता के साथ काम करे तो भौतिक विज्ञान के लिए ही नये साधनों, नये उपायों का अन्वेषण कर ले? भारतीय मानव का विशेष ढांचा, हमारी मनोवैज्ञानिक परम्परा, हमारी पैतृक क्षमता आदि ऐसी चीजें हैं जो बहुत-से नये तत्वों को ले आती हैं। अगर कोई भाषा सीखनी हो, वह चाहे संस्कृत हो या कोई और तो यह जरूरी नहीं है कि उसे पुराने घिसे-पिटे तरीके से ही सीखा जाय। महत्व इस बात का है कि हम संस्कृत भाषा या अन्य भारतीय भाषाओं के द्वारा अपनी संस्कृति के मूल तक कैसे पहुँच सकते हैं और कैसे उसके साथ सच्ची आत्मीयता स्थापित कर सकते हैं। हमें यह भी पता लगाना होगा कि हमारे भूत का जो भाग सजीव है उसके साथ उस नयी सृष्टि का नाता कैसे जोड सकते हैं जो अभी तक भविष्य के गर्भ में है। हमें यह भी देखना होगा कि अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं का प्रयोग कैसे करें ताकि हम अन्य देशों के जीवन, वहां के विचारों और वहाँ की संस्कृति को भली भाँति जानकर उनके साथ ठीक सम्बन्ध स्थापित कर सकें, अपने चारों ओर के जगत् के साथ सम्यक् सम्बन्ध बना सकें। हमारे आधुनिक राष्ट्रीय शिक्षण का उद्देश्य यही होना चाहिये। हमें आधुनिक अन्वेषणों, आधुनिक सत्य को स्वीकार करते हुए अपनी सत्ता, अपने मन और अपनी ही अन्तरात्मा को अपना आधार बनाना चाहिये।

हम ढहने वाली संस्कृति को लेकर क्या करें :

शिक्षाविदों का दूसरा दल प्राचीन की उपेक्षा करते हुए कहता है कि हमें आधुनिक काल में रहना है इसलिये हमें हर आधुनिक अर्थात् यूरोपीय चीज को अपनाना होगा तभी हम फल-फूल सकेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा का विचार इस विचार-धारा से

उल्टा जाता है। यूरोप की प्राचीन संस्कृति का मुख्य आधार क्या था ? पूर्व से लिये गए अर्थात् भारत, मिस्र, केल्डिया, फोनिशिया से लिये गए विचारों को यूनान और रोम के लिये निजी रंगों में रंगकर स्थानीय स्वभाव और मानसिक तथा सामाजिक प्रतिभा से रंजित करके ही तो यूरोपीय संस्कृति बनी थी। अरब लोगों ने इस पर एक नयी रोप लगा दी। इसका सिलसिला यहीं बन्द नहीं हुआ। वे पूर्व से बराबर लेते रहे हैं पर हमेशा उस पर अपना लेटिन, टयूटानिक या स्लाव रंग चढ़ाकर, अपनी स्थानीय संस्कृति और अपनी सामाजिक प्रतिभापा के अनुसार ढालकर। इस तरह बनी हुई संस्कृति काफी समय से यह दावा कर रही है कि वह मानव मन के उच्चतम विकास का परिणाम है और उसे स्वीकारने से ही संसार का निस्तार हो सकता है। लेकिन एशिया इन सब बातों को मानने के लिये बाधित नहीं है। यूरोप जो कुछ दे सकता है उसे लेने से हमें इन्कार नहीं है। उसके पास नयी विद्याएँ हैं, नये विचार हैं। हम उन्हें लेकर अपनी संस्कृति, अपनी भावना और अपने स्वभाव में पूरी तरह मिलाकर भावी संस्कृति गढ़ सकते हैं। हम स्पष्ट देख सकते हैं यूरोप की नकली गणतन्त्रात्मक वैज्ञानिक, औद्योगिक, बौद्धिक संस्कृति ढह रही है। इस ढहती नींव पर अपनी दीवार खड़ा करना पागलपन ही तो होगा। आज यूरोप के सच्चे मनीषी बड़ी आशा से भारत और एशिया की ओर देख रहे हैं। उन्हें आशा है कि यहीं से उन्हें नयी, सच्ची आध्यात्मिक सभ्यता मिलेगी। और ऐसे समय हम अपने अन्तर से आँखें फेर ले, अपनी सभाव्यताओ को भुलाकर यूरोप के भूत की जूठनों पर आँखें गड़ाए रखें तो इसे क्या कहा जा सकता है ? और मजा यह है कि ऐसी बातें करने वाले अपने-आपको उदार, संकुचित राष्ट्रीयता से परे, अन्तरराष्ट्रीय मान बैठते हैं।

अधकचरा विचार :

इसके पीछे यह विचार काम करता है कि मनुष्य का मन सब जगह एक जैसा ही होता है और सब देशों के लिये शिक्षा की एक ही मशीन काफी होगी। युवा मन को एक ही मशीन में से गुजार देने से काम बन जायेगा चाहे वह चीन में हो या चिली में। लेकिन यह विचार पुराना और अधकचरा है। वैसे मन और मानवता की आत्मा एक चीज है परन्तु व्यक्ति का मन भी तो उतनी ही महत्वपूर्ण और विविधता भरी चीज है और इन दोनों के बीच है राष्ट्र का मन, राष्ट्र की आत्मा। शिक्षा में इन तीनों का ख्याल रखना जरूरी है ताकि उसमें मशीन के साँचो मे ढले व्यक्ति न तैयार किये जायें बल्कि ऐसे सच्चे मनुष्य पैदा हों जो मन, प्राण और आत्मा की शक्तियो को प्रकट कर सके और अपने से ऊपर की शक्तियो को धरती पर ला सके।

(पुरोधा से साभार)

लोकमान्य तिलक :

स्वराज्य की शिक्षा :

["स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" इस मंत्र के उद्गाता लोकमान्य तिलक स्वतंत्र भारत के लिये एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली अनिवार्य मानते थे जो भारत को उसके स्वत्व का भान करा सके। बाद को महात्मा गांधी ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये "बुनियादी शिक्षा" का विचार देश के सामने रखा। अब अपने स्वराज्य के २५ साल के बाद भी हम विचार करें कि हमने अपने इन महान् पुरुषों की बात कहाँ तक मानी-समझी है। नयी तालीम के पाठक तिलक महाराज के इन विचारों-पर चिंतन करेंगे यह आशा है।

—सम्पादक]

आधुनिक शिक्षा के प्रभाव के कारण किसी भी शिक्षित व्यक्ति में भारतीय विरासत के लिए कोई सम्मान नहीं है। शिक्षित युवकों में धर्म के लिये भी कोई निष्ठा या विश्वास नहीं है और वे इसके प्रति लगभग उदासीन रहते हैं। उनमें धर्म के प्रति यह विराग इतना अधिक है कि वे धर्म तथा संस्कृति की पूर्ण उपेक्षा करना भी पसन्द करेंगे। मैं कभी कभी सोचता हूँ कि यदि हममें धर्म और अपनी संस्कृति के प्रति कोई समझदारी और लगाव न हो तो फिर हम ब्रिटिश सत्ता के ही मातहत रहें या स्वराज्य प्राप्त कर लें इससे क्या अन्तर पड़ता है। स्वराज्य का लक्ष्य हमारी परम्परा के प्रति हममें एक चेतना जागृत करना और हमें ईश्वर से डरना सिखाना है। आधुनिक शिक्षा हमें केवल एक ऐसे स्वराज्य के लिये ही उत्सुक बनाती है जिसमें हमारी पाशविक प्रवृत्तियों और वासनाओं की ही पूर्ति हो सके।

छात्र और जनान्दोलन :

छात्रों को जनान्दोलनों से रोकने का अर्थ है राष्ट्र की हानि करना। यह एक प्रकार से राष्ट्र का विनाश करने जैसा है। यह तो कोई नहीं कहता कि छात्रों को अपना सारा समय केवल इसी काम में लगा देना चाहिये किन्तु चूंकि जनान्दोलन भी उस व्यापक और भिन्नता युक्त शिक्षा का ही एक भाग है जो कि छात्रों को लेनी चाहिये इसलिये उन्हें इनमें भाग लेना चाहिये। आजकल तो लोग किसी उद्देश्य की पूजा करने के बजाय व्यक्ति की ही पूजा अधिक करते हैं। किन्तु मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं होगा यदि लोगों में व्यक्ति-भक्ति का ह्रास और उद्देश्य-भक्ति की वृद्धि हो। लोगों में अपने राष्ट्रीय झंडे के प्रति भी सम्मान और उत्साह का भाव होना चाहिए। गुरु की पूजा या किसी मूर्ति की पूजा वे उपाय हैं जिससे मनुष्य में उस निराकार और अमूर्त की पूजा का भाव जागृत होता है। हिन्दू संस्कृति के इस पहलू का उपयोग लोगों में अपने राष्ट्र की सेवा करने की भावना को प्रोत्साहित करने के लिये होना चाहिये।

राष्ट्रीय एकता और स्वराज्य :

अंग्रेज हमारे शासक बनकर हमारे बीच इसी कारण से रह सके हैं कि हम जातीय रूप से विभाजित थे। अगर स्वराज्य के बाद भी हमारा इस प्रकार का विभाजन जारी रहा तो फिर स्वराज्य प्राप्त कर लेने के बावजूद पतन अवश्यभावी है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में किसी भी व्यक्ति को या किसी समूह को अस्पृश्य मानने के किसी भी विचार को कोई समर्थन प्राप्त नहीं है।

गाय ग्रहण की और फिर उनकी भाषाओं में उसके लिए शब्दों की भी व्यवस्था की। गाय भारत से ही बाहर गयी है और यहीं से उसके सम्बन्ध में पारिभाषिक शब्द भी बाहर गये हैं। इसलिये भारत को गाय पर उचित ही गर्व है और उसने हमारे दिल में माता का स्थान बनाया है।

वैज्ञानिक दृष्टि से सोचें :

किन्तु आज तो गाय के बारे में वैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार करने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करेंगे तो ध्यान में आयेगा कि जीवन के लिये अत्यन्त ही उपयोगी और सुपचनीय प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और फैट इत्यादि सभी तत्व गोरस में विद्यमान रहते हैं। इतना ही नहीं गोमूत्र में भी अनेक वैज्ञानिक गुण मौजूद हैं। उसमें रोग निवारण को भी शक्ति निहित है और इसलिए प्राचीन भारत में लोग गोमूत्र का सेवन करना भी एक धार्मिक कार्य मानते थे। कभी कभी लोग आज भी यह करते हैं। गोबर से आप सब जानते हैं कि गोबर के अलावा अब तो गोबर-गैस से हमें गैस यानी जलाने के लिये इंधन भी मिल रहा है। इस प्रकार वह हमारी आध्यात्मिक आवश्यकता के साथ ही वैज्ञानिक आवश्यकता भी पूरी कर रही है।

बाइबल और कुरान मे गो-हत्या निषिद्ध है.

समाज शास्त्रीय दृष्टि से देखेंगे तो पता लगेगा कि उसमें भी गाय का महत्व का स्थान रहा है। सब लोग समान भाव से रहे, सबके हृदय समान हों यह तो यहाँ पर आरम्भ से ही विचार रहा है। भारतीय समाजवाद में सबसे प्रधान बात यह है कि उसमें अन्त्य वस्तु को पहला महत्व दिया गया है उसका प्रतीक गाय को माना गया है। इसलिये गाय की रक्षा का अर्थ है भारतीय समाज को रक्षा। इस मामले में बाबा आपको मुसलमानों और ईसाइयों की तरफ से भी आश्वासन दे सकता है कि वे भी गाय की सुरक्षा के पक्ष में हैं। बाइबिल और कुरान में अनेक ऐसे वाक्य हैं जिनमें गोहत्या का स्पष्ट निषेध किया गया है। यदि उन लोगों को वह सब समझाया जाय तो वे समझ जायेंगे और तब यह काम आसान हो जायेगा। गाय हिन्दू या मुसलमान की नहीं वह तो भारतीय समाज की है और भारतीय समाज की समस्यायें तो समान हैं। अतः उनका हल भी समान ही होना चाहिये। गाय इसकी एक मिसाल है।

एक और दृष्टि :

एक और दृष्टि से भी विचार करें तो समझ में आयेगा कि गाय का सवाल हमारे लिये क्या अर्थ रखता है। आज संसार की आबादी तेजी से बढ रही है और एक समय यह आयेगा कि ऐसी परिस्थिति बनेगी कि मांस खाना सम्भव ही नहीं रहेगा। यह भी सभव है कि आगे से हमें दूध की आवश्यकता कम हो जाय और

वैज्ञानिक लोग तो अब घास से भी दूध लेने का सोचने लग गये हैं। जमीन आदमी के लिये इतनी कम पड़ने वाली है कि तब शायद गाय को भी शेर की ही तरह जंगल में रहना पड़े। या यह भी संभव है कि यदि हमें दूध के लिये वह रखनी ही पड़े तो फिर गो-प्रदेश नाम से एक अलग प्रदेश ही उसके लिए रखना होगा तभी उसे हम चारा दे सकेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि गाय के सुधार और सुरक्षा के लिए हर तरह के प्रयास किये जाने चाहिये। उसके लिये यह सवाल व्यर्थ है कि हम विदेशी सांडों से उसकी नस्ल सुधार का काम लें या नहीं। जहाँ तक बाबा का सवाल है बाबा तो जय जगत वाला है और मैं इसमें कोई भी बुराई नहीं देखता। गाय से खेती का काम लेने का भी कभी कभी सवाल किया जाता है और उस पर तीव्र मतभेद दिखाई देता है। मेरे विचार में यह सावल भी विवाद का नहीं है। गाय से खेती का काम लिया जा सकता है पर शर्त यह है कि उसे खिलाया भी अच्छी तरह जाय।

हमारी आध्यात्मिक कसौटी :

गाय तो हमारी आध्यात्मिक कसौटी भी लेती है। उसके हम पर इतने उपकार हैं कि हम उनसे उऋण हो ही नहीं सकते। इसलिये भी यह हमारे मानवपन की परीक्षा है कि हम उसके उपकारों का बदला क्या उसकी हत्या करके देंगे? यों भी आध्यात्मिकता प्राणीमात्र की हिंसा का विरोध करती है। इसलिये बाबा गो-हत्या का पूर्ण विरोधी है और यह तत्काल बंद होनी चाहिये। यह भारत के लिये तो और भी आवश्यक है जहाँ पर बैल का इतना महत्व है खेती के कारण।

के. एस. आचार्लू :

कार्य-परक शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग :

[आज शिक्षा को समाज जीवन के साथ एकात्म करने का विचार शिक्षा का नया विचार कहा जा रहा है यद्यपि गांधी जी जैसे विचारकों ने यह बात आज से कई साल पहले कही थी। पश्चिमी देशों में भी यह विचार काफी पुराना है और इस आधार पर वहाँ खासकर अमरीका में तो अनेक सालों से सफल प्रयोग भी हो रहे हैं। इस लेख में अमरीका के एक प्रख्यात् शिक्षा तज्ञ श्री बूकर टी वाशिंग्टन के सफल प्रयोग की एक झाँकी मिलती है।

—सम्पादक।]

आत्म निर्भरता के लिये शिक्षा के क्षेत्र में अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री श्री बूकर टी वाशिंग्टन (Booker T Washington) के शैक्षिक प्रयोगों का बहुत महत्व है। उनके उस प्रयोग से पता चलता है कि इस प्रकार की शैक्षिक प्रणाली कितनी अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। वाशिंग्टन ने टस्कीगी में एक प्रशिक्षण विद्यालय कायम करने का विचार किया। पर जब वे काम का आरम्भ करने लगे तो उनके पास वहाँ एक टूटे हुए गिरजे के पास महज एक ऐसी ही टूटी झोपडी के सिवाय और कुछ भी नहीं था। वे आसपास के देहातों में घूमे तो उन्हें पता लगा कि देहात के अश्वेत लोग, जो कि श्वेतों के खेतों पर काम करते थे, कितनी बुरी और तंग हालत में रहते थे और उनको देखकर वे अत्यन्त ही निराश हो गये कि इस तरह के लोगों के लिए वे शिक्षा का क्या प्रबंध कर सकते हैं। फिर भी उन्हें एक बात का पक्का भरोसा था कि इन लोगों की शिक्षा का ढंग न्यू इंग्लैण्ड (एक अन्य अमरीकी शहरी भाग) की शिक्षा से तो नितान्त ही भिन्न होगा और इन लोगों के बालकों को किताबी शिक्षा देने का अर्थ समय और साधन दोनों की ही बरबादी होगी। उन्होंने भिन्न भिन्न योग्यता के ५० बालकों को लेकर अपना काम आरम्भ कर दिया और उसी टूटी झोपडी में स्कूल चालू हो गया। उन्हें

और उनके साथियों को शीघ्र ही यह बात साफ हो गई कि इन छात्रों पर यदि कोई स्थाई छाप डालनी हो तो फिर उनके लिये किताबी शिक्षा से अलग किसी और चीज की ही आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने उन बालकों को यह सिखाना आरम्भ किया कि वे कैसे नहायें, अपने कपड़ों और कमरों को कैसे पहनने और रहने लायक बनायें, कैसे और क्या खायें और अपने दांत आदि अंगों की देखभाल कैसे करें। इसके साथ ही वे उन्हें यह भी सिखाते थे कि वे कम खर्च में कैसे रह सकते हैं तथा उद्योग की भावना उनमें कैसे पैदा हो सकती है। वाशिंग्टन का सारा ध्यान इस पर केन्द्रित हो गया कि ये बालक इस स्कूल से निकलने के बाद अपने उद्योग के बल पर कैसे ईमान का जीवन जी सकते हैं।

जीवन के लिये शिक्षा की ओर

वाशिंग्टन ने देखा कि उनके अधिकांश छात्र खेतों पर काम करने वाले परिवारों से ही आये थे। इसलिये आरम्भ से ही वे इस बात के प्रति बहुत सावधान रहे कि इन "बालकों को ऐसी कोई बात न सिखाई जाय जिससे उनमें कृषक-जीवन के लिए वितृष्णा का भाव पनपे और वे फिर बजाय देहात के शहर के चालाकी से भरे जीवन के लालचों की ओर खिंच जाय।" इसलिये उन्होंने तय किया कि इन छात्रों को कृषक-शिक्षक के रूपमें ही शिक्षित किया जाय ताकि बाद को वे फिर देहात में वापस जाकर लोगों को यह बता सकें कि वे अपनी खेती को आज से अधिक जीवन्त कैसे बना सकते हैं।

उन्होंने अपने कुछ मित्रों से कुछ धन उधार लेकर नजदीक का एक बागान खरीद लिया और स्कूल को वे वहाँ ले गये। अब उनके सामने सबसे पहला सवाल यह था कि इस जगह को रहने के लायक कैसे बनाया जाय। उन्होंने वहाँ की भूमि और कुछ टूटे सामान की मरम्मत करने का काम आरम्भ कर दिया और उस जगह को काफी श्रम के बाद रहने योग्य बना दिया। यह सारा काम छात्र ही दोपहर को पढ़ाई समाप्त हो जाने के बाद करते थे। फिर जमीन की ओर ध्यान दिया गया कि वह उपज देने योग्य कैसे बने। वाशिंग्टन ने इन छात्रों और अध्यापकों को किसी भी प्रकार के संकोच से मुक्त करने के लिये पहले स्वयं ही अपने हाथ में कुल्हाड़ी पकड़ी और जंगल काटने निकल पड़े। इससे उनके दूसरे साथियों में भी अत्यन्त उत्साह उमड़ आया और कुछ ही दिनों में लगभग २०एकड़ भूमि उन सबने मिलकर साफ कर डाली। वाशिंग्टन ने कहा कि "हमने खेती पर पहले ध्यान इसलिये दिया, क्योंकि हमें खाने को कुछ चाहिये था।" फिर तो कई स्रोतों से मदद आने लगी और स्कूल को इस क्रम में जो पहला दान मिला वह एक अंधा बूढ़ा घोड़ा था। पास की एक छोटी सी आरा मशीन ने उनके लिये सारी लकड़ी तैयार कर दी। वाशिंग्टन ने शीघ्र ही आसपास के लोगों की पूरी सहानुभूति अर्जित कर ली और मदद की धारा फूट निकली।

अब स्कूल के लिए नयी नया योजनायें बनने लगी। अब छात्र नियमित कक्षा के बाद मकानों की बुनियाद के लिये जमीन खोदने में लग गये। इस काम के लिए पहले तो उनके पास एक फावड़ा तक नहीं था पर शीघ्र ही लोग मदद में आगे आये। वाशिंग्टन का विचार आरम्भ से ही छात्रों को न केवल घरेलू काम के ही साथ अपितु उन्हें मकान बनाने के काम में भी जोड़ने का था। वाशिंग्टन के ही शब्दों में मेरा विचार उनको श्रम की उत्तम और आधुनिकतम पद्धति सिखाने का था ताकि न केवल स्कूल को ही उनके श्रम का लाभ मिले बल्कि वे स्वयं भी अपने श्रम के सौंदर्य और गरिमा से शिक्षण ले सकें। मैं वास्तव में उन्हें श्रम को महज एक नीरस और नीच मान जाने वाली चीज से ऊपर उठाने और काम के लिए काम से प्रेम करने का शिक्षण देना चाहता था। मेरा उद्देश्य उनको पुराने ढंग पर काम करना सिखाना नहीं था वरन् यह दिखाने और सिखाने का था कि हम कुदरत की शक्तियां जैसे हवा, पानी भाप बिजली और अश्व शक्ति (भारत के संदर्भ में बैल शक्ति–संपादक) को अपना मददगार कैसे कर सकते हैं।

सभ्यता का प्रशिक्षण

शुरू शुरू में इमारतें बनाने के काम में छात्रों की मदद लेने के विचार पर मित्रों ने बहुत नाक भौं सिकोड़ी। किन्तु शुरू में यद्यपि छात्रों की बनाई इमारतें तज्ञों की जैसी बनाई सुन्दर और पूर्ण तो नहीं होती थी फिर भी जैसा कि स्वयं वाशिंग्टन ने कहा है कि हमने सभ्यता, आत्म सहयोग और स्वावलम्बन के इस शिक्षण में तज्ञों के द्वारा बनाई गई सुंदर व पूर्ण इमारतों की कमी पूरी कर ली। हमने इससे कहीं अधिक शैक्षणिक लाभ प्राप्त किया है। इस लिये छात्रों के द्वारा इमारतें बनाने की यह नीति जारी रखी गई और १९ साल के अंदर अन्दर छात्रों ने ही मिलकर कुल ४० इमारतों का निर्माण कार्य पूरा किया। इस स्कूल को सबसे कठिन अनुभव तो इंट बनाने के काम में हुआ। उन्हें बिना किसी धन और अनुभव के ही यह काम भी आरम्भ करना पड़ा और यह बहुत ही कठिन सिद्ध हुआ। इसमें तो छात्रों से मदद लेना और भी कठिन सिद्ध हुआ। जब इंट बनाने का काम सामने आया तो शारीरिक श्रम करने के लिये उनकी सहज वितृष्णा खुलकर सामने आई और कई तो इसी पर स्कूल छोड़कर भी चले गये। घुटने घुटने तक के कीचड़ में खड़े रहकर घंटों और दिनों तक काम करना सचमुच कोई आसान काम नहीं था। फिर भी छात्रों और अध्यापकों ने मिलकर लगभग २५००० इंट तैयार कर लीं और उन्हें भट्टों में पकने के लिये रख दिया गया। पर यह काम असफल हो गया क्योंकि वे इस कला में अभी तक अनभिज्ञ थे। तब उनके कुछ मित्र फिर मदद में आये और वह काम

शीतल प्रसाद :

शिक्षा ही सामाजिक समस्याओं को हल कर सकती है :

[आगरा विश्व विद्यालय के भूतपूर्व उप-कुलपति श्री शीतलप्रसाद जी का यह विचारोत्तेजक लेख आशा है शिक्षकों तथा छात्रों को चिंतन के लिये प्रेरित करेगा। — सम्पादक]

आज हमारे देश में हर जगह समाज समस्याओं से जूझ रहा है। ये समस्यायें भी कई प्रकार की हैं। आज आजादी के २६ साल बाद भी हमारे लोगों को जीवन की अति सामान्य चीज खाना, दवाई, आवास, शिक्षा और कपड़ा जैसी चीजें भी पूरी उपलब्ध नहीं हो रही हैं। यह सबसे बड़ी समस्या है। कहा जाता है कि देश में हर तरह की चीजों का उत्पादन बहुत बढ़ गया है और यह बात कुछ हद तक सही भी है किन्तु यह बात भी सही है कि चीजों का उत्पादन बढ़ने के साथ ही चीजों का अभाव भी कई गुना बढ़ा है। उस पर फिर कीमतें इतनी अधिक होती जा रही हैं कि अब सामान्य आदमी के लिये जो कि ईमानदारी से अपनी रोजी कमाना चाहता है जीवन की अत्यन्त आवश्यक चीजें भी खरीदना कठिन तर होता जा रहा है। इसलिये सामाजिक जीवन का भ्रष्टाचार भी अब एक आम नियम सा बन गया है और इसलिये विनोबा जी ने एक बार कहा ही था कि अब उसे भ्रष्टाचार न कह कर शिष्टाचार ही कहना चाहिये। आज भारत शायद दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में गिना जाता होगा।

शिक्षा : जीवन का तात्पर्य :

जब जीवन ही इतनी गहराई से भ्रष्ट हो जाय तो फिर मानव जीवन का और तात्पर्य ही क्या रह जाता है। शिक्षा का काम यही होता था कि वह मनुष्य को एक अच्छा नैतिक और सुखी जीवन बिताने में मदद करे। पर आज तो शिक्षा भी भ्रष्टाचार का माध्यम हो गई है। शिक्षा के तीन प्रकार होते हैं। अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन। अब अध्ययन न तो आज का कोई शिक्षक ही करना चाहता है न कोई छात्र ही। पहले किसी समय में माता अध्ययन करती थी और वही बालक की पहली शाला भी होती थी किन्तु आज तो बालक का जीवन भी माँ के हाथ से निकल गया है। अब उसका स्थान वेतन पाने वाले शिक्षकों, सिनेमा और बाजारके गंदे पोस्टरों ने ले लिया है। शिक्षकों का काम भी अब पढ़ाने के बजाय राजनैतिक गुटबाजी करना और जिस किसी प्रकार से पैसे कमाना हो गया है। इससे उनके छात्र भी उन्हें अब शिक्षक के बजाय व्यापारी और भी भ्रष्ट व्यापारी ही मान कर उनसे व्यवहार करते हैं। छात्र भी जान गये हैं कि अब अध्ययन करने से कोई लाभ नहीं।

क्योंकि एक तो वे आज जो कुछ पढते हैं वह कल व्यर्थ हो जाता है। दूसरी बात यह है कि वे चाहे जितना भी अध्ययन क्यों न करें परीक्षा में तो वे ही आगे रहते हैं जो कि शिक्षकों या परीक्षकों को अनेक प्रकार से प्रसन्न रख सकते हैं। या जिनकी तगड़ी सिफारिसें हैं। आज तो परीक्षा या मूल्यांकन का अर्थ ही छात्र से जिस किसी प्रकार में उसके रक्त की अंतिम बूंद तक चूसना हो गया है। इससे आज का छात्र हमारे इतिहास में सबसे अधिक गुस्सैल और चिडचिडा हो गया है और हिंसा पर उतारू हैं। वह इसलिए हर सभव और उचित-अनुचित तरीके से परीक्षा पास करना चाहता है और उसकी इस प्रवृत्ति को सभी प्रकार की शिक्षण संस्थायें भी खूब प्रोत्साहन दे रही है क्योंकि वे तो दूकान मात्र हैं जिनका उद्देश्य अधिक से अधिक ग्राहक पटाकर धन कमाना है। वे यह धन शिक्षकों को दबा कर, उनसे दान के नाम पर कम रकम के बदले अधिक रकम पर हस्ताक्षर करा कर और कई अन्य तरीकों से उन्हे डरा धमका कर तथा छात्रों से प्रवेश के समय, परीक्षा के समय आदि तरीकों से ऐंठ लेती है। उन्हें शिक्षा से आज कोई सरोकार नहीं रह गया है बस उन्हे तो ऊँची अट्टालिकायें, पालिस किया कीमती फर्नीचर, और विलास का जीवन जीने वाली साधन सामग्री चाहिये। इस देश के भाग्य में यह सब कब तक लिखा है भगवान ही जाने।

सरकार बनाम लोक :

क्या किसी को अपने प्यारे देश की इस हालत पर अफसोस है? क्या कोई इस स्थिति से चिंतित है? आजादी के बाद हमने जानबूझ कर देश में यह धारणा फैलाई, गांधी जी इसके विरुद्ध थे तो भी फैलाई, कि सरकार ही देश की भाग्य विधाता है। तब आज अगर यह हालत हो कि लोग हर बात के लिये सरकार को ही यश या अपयश दें तो क्या आश्चर्य है। पर शासकों को भी इस स्थिति की कहाँ चिंता है। वे तो जिस किसी प्रकार से अपनी कुर्सी बनाये रखने और उसके माध्यम से पैसे बटोरने के ही फेर में रहते है। लगता है देश में न कोई शासन है न कोई व्यवस्था। घोर अंधकार है।

डा. जाकिरहुसेन की बेचैनी

इस अंधकार में एक था जो सयोग से देश के सर्वोच्च पद पर भी था, शिक्षक भी था और जिसे अपने प्यारे देश के प्रति दर्द भी था। जो कि आज के शासकों की तरह से खुदगर्ज भी नहीं था। वह थे स्व डा जाकिर हुसैन। उन्होंने देश की इस स्थिति पर अनेक बार गहरी चिंता व्यक्त की थी और विश्वस्त थे कि केवल उचित शिक्षा व्यवस्था से ही हम इस अंधकार से बाहर निकल सकते हैं। वे विनोबा जी के पास दौडे गये और उनसे सलाह मशविरा किया। उस परामर्श से ही 'आचार्यकुल' जैसी भव्य कल्पना का जन्म हुआ। विनोबा जी ने ठीक ही कहा कि 'अब ये दो ही मार्ग हैं। या तो हम इस सबको नियति मान कर भेडिये के सामने बंदर की भांति

चुपचाप आंख बंद कर बैठ जाय और जो होता है वह होने दें, उसे भुगतते रहें। या फिर स्थिति के सुधार के लिये दृढ़ निश्चय करके कुछ सक्रिय कदम उठायें।' विनोबा जी को अब भी शिक्षक वर्ग पर विश्वास है और भरोसा है। उन्हें आशा है कि वे समय पर जागेंगे और स्वयं के साथ ही देश को भी इस अंधकार में से बाहर निकालेंगे।

स्वायत्त शिक्षण समय की माँग :

क्या शिक्षक इसके लिये तैयार हैं? क्या उन्हें इतना आत्म विश्वास है कि वे हमारे देश के आज के महान् संत विनोबा जी के विश्वास के योग्य साबित हों सकें? फिर क्या वे सचमुच शिक्षा में रुचि और विश्वास रखते हैं? यदि ये बातें सही हों तो फिर विनोबा ने स्वायत्त-शिक्षा का जो विचार दिया है उसपर शिक्षकों को गहराई से विचार करना होगा। आज शिक्षा पर सरकार का कब्जा इस कदर मजबूत हो गया है कि सारे देश को वह एक 'अनुगामी समूह' में बदलने के लिये कटिबद्ध है। आज स्वतंत्रता आदि का सामयिक उद्घोष अवश्य किया जा रहा है किन्तु यह बात जरा-सा विचार करने पर ही साफ हो जाती है कि आज हमारे देश की सरकार ही स्वतंत्रता से सबसे अधिक घबराती है। और यह बात इतिहास में हर सरकार के साथ भी रही है। कोई भी सत्ताधारी सबसे पहले और सबसे अधिक यदि किसी चीज से घबराता है तो वह शिक्षा है और यही कारण है कि सारे मानव इतिहास में सभी प्रकार की सत्ताओं ने हमेशा ही शिक्षा और शिक्षकों को अपने कब्जे में रखने का पूरा प्रयास किया है। हमारे प्राचीन ऋषि इसमें उत्पन्न खतरे को समझते थे इसलिये ही उन्होंने शिक्षा को हमेशा ही सरकार से अलग और उससे ऊपर रखा।

गांधीजी की दृष्टि : हमें क्या हो गया :

आज का विश्व-विचार भी धीरे धीरे इस खतरे को समझ रहा है और इसलिए अब विश्व के वैज्ञानिकों ने भी आवाज उठाई है कि विज्ञान सरकार से मुक्त रहना चाहिये। यह प्राचीन भारतीय विचार की ही नवीन उद्घोषणा है। हम भारत के शिक्षक क्या इसमें कुछ गौरव और आगे के लिये सबक ग्रहण कर सकते हैं? गांधी जी ने भी अपनी बुनियादी शिक्षा का जो विचार दिया था उसमें उन्होंने साफ साफ कहा था कि 'शिक्षा को स्वावलम्बी होना ही है' क्योंकि स्वायत्तता बिना स्वावलम्बन के संभव ही नहीं सकती है। यह गांधी जी की ही दूर दृष्टि थी कि वे शिक्षा पर सरकार के इस कदर बढ़ते कब्जे के खतरे को काफी पहले भांप गये थे और उन्होंने अपने ढंग से हमें इस खतरे से आगाह भी कर दिया था। पर क्या उनकी बात पर कोई ध्यान दिया गया? सरकार तथा सत्ताधारियों ने तो उनकी बात का मर्म समझकर ही उनकी बात का उपहास उड़ाना आरम्भ कर दिया और कहा जाने लगा कि यह संभव ही नहीं है। कभी कहा गया कि गांधी जी तो बहुत पुराने

जमाने की बात कह रहे हैं। यह सब कहने का उनका उद्देश्य एक ही था कि गांधी जी की बात कभी भी साफ न हो सके और जनता में वह जागृति कभी न आवे कि वह उनकी बात का मर्म भी समझ सके। तो यह बात समझ में आती है कि सरकारी क्षेत्रों ने ऐसा क्यों किया। पर जो बात समझ में नहीं आती वह यह है कि आखिर हम शिक्षकों को क्या हो गया कि हम भी गांधी जी की इस बात को, जो कि असल में हमारे हित की थी, हम नहीं समझ पाये।

अब भी समय है :

अब भी समय है जब कि हमें इस पहलू पर विचार करना चाहिये। यदि शिक्षा कर्म-परक बना दी जाय तो स्वावलम्बन जरा भी असम्भव नहीं है। तब स्वायत्तता भी सध सकती है। आज तो सरकार ही शिक्षा के विकास में सबसे बड़ी बाधक है। उसकी स्वीकृति के बिना कोई भी शैक्षिक प्रयोग कक्षा में चला हो नहीं सकता है और उसने मान्यता के ऐसे नियम बनाये हैं ताकि कोई उसके हितों के विपरीत शैक्षिक काम हो ही न सके। तो क्या शिक्षक इस पहेली को समझकर इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिये आगे नहीं आवेंगे? हम तो अब छात्रों से भी कहते हैं कि वे भी इस दुरभि सधि का समझें और इस 'दासता की शिक्षा' को नकार कर नयी शिक्षा के लिये कमर कस कर आगे आवें। यह शिक्षा तो मात्र सत्ता में गये १० प्र श लोगों का ही हित साधन करने वाला है।

युवक आगे आवें :

आज श्री जयप्रकाश नारायण जी ने जो अभियान शिक्षा में क्रान्ति का आरम्भ किया है उसका भी उद्देश्य यही है कि हम सब शिक्षक छात्र मिलकर अब शिक्षा में क्रान्ति के लिये आगे आवें। यदि शिक्षा उचित ढंग की हो तो फिर देश की कोई भी समस्या ऐसी नहीं जो हम हल न कर सकें। आज तो हमारे समस्या हल करने की तो दूर उसे समझने की भी क्षमता समाप्त कर दी गई है। हमें क्षमता भी प्राप्त करना होगा। वह इस शिक्षा से तो नहीं आयेगी। आचार्यकुल का जन्म ही देश की बिगड़ती स्थिति के सन्दर्भ में से हुआ था। तो आज आचार्यकुल भी सोचे, विचारे और देश के सामने उस नयी शिक्षा का नमूना रखे जो आज विश्व चिंतन का भी आधार है और जिसे गांधी जी ने भी हमारे जैसे कृषि और ग्राम-संस्कृति प्रधान देश के लिये सुझाया था। यदि हम यह नहीं करते तो फिर भारतीय और ग्राम संस्कृति के सर्वथा लोप होने का पूरा डर है और यह याद रखना चाहिये कि स्वतन्त्रता केवल ग्राम-संस्कृति में ही कायम रखी जा सकती है। पश्चिमी शहरी-सभ्यता से स्वतन्त्रता का नकारात्मक सम्बन्ध है, यह बात हम याद रखनी होगी और इस दृष्टि से काम करना होगा। शिक्षक और शिक्षा ही यह काम कर सकता है।

मदालसा नारायण :

हमारे संविधान का रजत जयंती वर्ष :

[आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की स्थापना हुये २५ साल पूरे हो गये हैं। अब हम प्रौढ़ता प्राप्त कर गये हैं। इस अवसर पर हम खास कर युवजन, जरा गहन चिंतन करें कि हम देश में कैसा लोकतंत्र चाहते हैं। मुझे मदालसा बहन का यह लेख आशा है युवजनों को इस तरह के चिंतन की ओर अभिमुख करेगा।

— सम्पादक]

'सत्यमेव जयते' एवं 'अहिंसा परमोधर्म' के शाश्वत तत्वों पर भारतीय जनतन्त्र आधारित है।

भारतीय जनतंत्र का संचालन केन्द्र में और प्रदेश में विशिष्ट विभागाधिकारी मंत्रीगणों द्वारा होता है। अतः यह सारा व्यवस्थातंत्र है। उसके संयोजन के लिये योजना आयोग है।

जनता जनार्दन की बहुमूल्य बहुमति से निर्वाचित जन प्रतिनिधियों द्वारा इसका नियमन होता है। वह विधि-तंत्र कहलाता है। ऐसे हमारे भारतीय जनतंत्र का यह पच्चीसवाँ रजत जयंती वर्ष चल रहा है। २६ जनवरी, १९७४ से इसका प्रारम्भ हो चुका है। भारत का यह संवैधानिक प्रजातंत्र है। इसमें जन्म प्राप्त एक नयी पीढ़ी भारत माता के आंगन में जगमगाने लगी है और अपने देश के विभिन्न विभागों का कारोबार भी सम्भालने लग गई है। राष्ट्र के गगन मंडल में उदीयमान इस नवोदित 'वशिरा' (पीढ़ी) को निरखकर मन उल्लासित हो उठता है। उनका राष्ट्रीय रूप से अभिनन्दन करने का सुअवसर हमारे सामने उपस्थित है।

अगस्त माह का आगमन हो रहा है। इसका पूर्वार्द्ध राष्ट्रीय स्वरूप पुण्य पर्वों से भरापूरा है। यह वर्ष मंगलमय से हरा भरा भी है।

१ अगस्त	—	मंगलाचरण स्वरूप लोकमान्य तिलक-पुण्यतिथि।
७ अगस्त	—	गुरुदेव ठाकुर पुण्य स्मरण दिवस।
९ अगस्त	—	राष्ट्रीय शांति दिवस।
१३ अगस्त	—	स्वतंत्र भारत में जन्म प्राप्त वयस्क मताधिकारी तरुणों का सार्वभौम रूप से अभिनन्दनीय तरुणाभिनन्दन दिवस।
१५ अगस्त	—	पुण्य भूमि भारत का स्वातंत्र्य दिवस एवं राष्ट्रपिता के भक्तिमान अनन्य सेवक महादेवभाई देसाई का समर्पण दिवस है।

राजाराम मोहनराय ने राष्ट्रीय चेतना भारत में जगाई। तब से आज तक भारत के नवयुवकों द्वारा राष्ट्रीय उत्क्रांति का पथ आलोकित होता रहा है। 'वन्दे-मातरम्' के निनाद के साथ बलिदान का पथ प्रज्वलित हुआ है। स्वराज्य की कल्पना, स्वराज्य का संकल्प, स्वराज्य का मंत्र, स्वराज्य की साधना के द्वारा स्वराज्य की सिद्धि हमने पाई है। हमलों का मुकाबला, बंगला देश की मुक्ति आदि घटनाओं की भट्टी में तपकर सच्चे सुवर्ण के समान हमारा तरुण पीढ़ी आज दीप्तिमान हो रही है। उसकी आशा और अभिलाषाओं के अनुसार प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने में उन्हें भरपूर प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए।

राष्ट्रपिता ने कहा था — "नवयुवक राष्ट्र का सलोना सत्व है।" अब वे ही हमारे राष्ट्र निर्माता हैं। इस रूप में उनका हार्दिक अभिनन्दन हमें करना है। इस दृष्टि से १ अगस्त से १५ अगस्त तक के राष्ट्रीय समारोहों का संयोजन खूब उत्साह और नित नये हर्षोल्लास के साथ किया जाना आवश्यक है।

भारतीय जनतंत्र की रजत जयंती के साथ-साथ हमारे भारतीय नवयुवकों की भी तो यह रजत जयंती है। यह हमारे लिये परम सौभाग्य की और बड़े गौरव की बात है। इस उपलक्ष्य में अखिल भारत में, समाज में, हर घर में, विद्यालय महाविद्यालयों में, सार्वजनिक संस्थाओं में धार्मिक संस्थानों में, गाँव में और नगरों में सर्वत्र, भक्ति भावना के साथ भारतीय प्रजातंत्र का यह महामहोत्सव मनाने के सुअवसर हमारे सामने उपस्थित है।

इस अवसरपर जन जीवन में सर्वत्र राष्ट्रीय उत्थान की चर्चा, चिन्तन और पारस्परिक अभिनन्दन हो एवं राष्ट्र के गुण गौरव के गीतों और गाथाओं का दसों दिशाओं में गुंजन हो।

"उत्सवों से उत्साह, उत्साह से उत्कर्ष और उत्कर्ष से उत्थान अवश्यभावी है।"

शिक्षा में संगणकों का प्रयोग :

[आज विज्ञान का बोलबाला है। विज्ञान कोई विषयवस्तु न होकर विवेचन और विश्लेषण की एक पद्धति है किन्तु आज विज्ञान से सामान्यता तकनीकी या यांत्रिकी का ही अर्थ लगाया जाता है। इसी दृष्टिकोण से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विज्ञान का उपयोग करने का प्रयास हो रहा है। *शिक्षा भी इससे अछूती नहीं। शिक्षा में संगणकों* का प्रयोग इसी वृत्ति का एक उदाहरण है। हर प्रयोग की तरह इसके भी भले बुरे पहलू हैं। *यहाँ हम शिक्षा-तज्ञों के विचार तथा चिंतन के लिये* यह लेख दे रहे हैं। हम नयी तालीम के पाठकों से इस विषय पर लेख आमंत्रित करते हैं।

— सम्पादक]

१२ वीं शताब्दी में, भारत के नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालय जगतप्रसिद्ध थे। विद्यार्थी सभी सांसारिक सुख-वैभव का परित्याग कर, प्राय जीवन-पर्यन्त विश्वविद्यालयों के प्रांगणों में रहते और गुरु के पावन चरणों में बैठ विद्याध्ययन करते थे। गुरु से सानिध्य रहने के कारण, उनमें गुरु शिष्य-सम्बन्ध की श्रेष्ठ भावना का उदय होता था। युग परिवर्तन के साथ-साथ, शिक्षा के स्वरूप में भी भिन्नता आती गयी और आज तो संसार भर में विश्वविद्यालय के परिसर (प्रांगण) में आमूल परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं।

आज की शिक्षा दिन प्रतिदिन तीव्रतम प्रगति और समुन्नति के पथ पर अग्रसर है। शिक्षा की नवीनतम विधियों और ऐसी श्रेष्ठ तकनीकों का निरन्तर विकास हो रहा है, जिनसे ज्ञान और शिक्षा के प्रति लोगों की जिज्ञासा, प्रोत्साहन और आकर्षण में वृद्धि हो सके। इसका उद्देश्य ऐसे सरलतम उपायों और विधियों की खोज करना है जिससे विद्यार्थी को विज्ञान की चमत्कारी उपलब्धियों, नवीनतम अनुसन्धानों और ज्ञान-विज्ञान के अन्य स्वरूपों को सहज ही समझ पाना सम्भव हो सके।

डा. राबर्ट विशप का प्रयोग :

मिशिगन विश्वविद्यालय में, अब पत्रकारिता विषय की शिक्षा में सगणको (कम्प्यूटरों) का प्रयोग किया जा रहा है। प्रोफेसर एव शिक्षाशास्त्री डा राबर्ट विशप, वह पहले विशेषज्ञ है, जिन्होंने शिक्षा का नवीन प्रणाली— सगणकीय शिक्षा— का श्रीगणेश किया। उनका स्पष्ट विचार है कि सगणक-प्रणाली के माध्यम से विद्यार्थी तेजी से ज्ञानार्जन कर पाने में सक्षम होते है। हाल ही में उन्होंने यह बात जानने की आवश्यकता पर बल दिया कि विद्यार्थियों को परम्परागत विधि द्वारा जो कुछ सिखाया जाता है, क्या वे वास्तव में उस सबको आत्मसात कर पाने में समर्थ भी हैं या नही। उन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया कि एक मनोविज्ञान-शास्त्री ने पूरे शिक्षा-सत्र में एक परीक्षण किया। उसने अकस्मात ही छात्रो से वे जो कुछ सोच रहे हैं लिखने को कहा। उसने पाया कि केवल २० प्रतिशत छात्र ही कक्षा में होने वाले व्याख्यान के विषय में सोच रहे थे।

डा. विशप श्रमसाध्य पाठ्यपुस्तको और कक्षागत व्याख्यानों के विरुद्ध हैं। इसकी अपेक्षा, उनके विचार में, विद्यार्थी को सगणक, टेप और फिल्मों से संयुक्त शिक्षा प्रणाली के प्रति मानसिक रूप से अधिक सतर्कता और रुचि दिखाई देती है। जब एक शिक्षा-कार्यक्रम समाप्त होता है, तब सगणक के माध्यम से उसकी विस्तार के साथ जाँच की जाती है।

नवीन शिक्षा-विधि ,

पत्रकारिता विषय में सगणकीय शिक्षा प्रणाली की विधि पर प्रकाश डालते हुए डा. विशप ने बताया कि "सगणकीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लेखन-सामग्री की शब्दश जाँच की जाती है और ऐसे सांकेतिक शब्दो पर ध्यान दिया जाता है, जो वाक्यो की सुगठता और गत्यात्मकता का आभास देते हैं। इस पाठ्यक्रम के द्वितीय चरण में सगणक द्वारा अकर्मक क्रिया (पैसिव वर्ब), विशेषण, क्रिया-विशेषण और इसी प्रकार की अन्य व्याकरणीय विशेषताओं की जाँच की जाती है तथा उन पर टिप्पणियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। और, अन्त में १७ सहस्र शब्दो वाले एक शब्दकोष की सहायता से शब्द-विन्यास की त्रुटियो का पता लगाया जाता है।

"इस विधि द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी की परीक्षा-पुस्तिका की शीघ्र एव विस्तृत जाँच की जाती है और उसमें सुधार सम्बन्धी ५० तक टिप्पणियाँ एव निर्देश निर्दिष्ट रहते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी कक्षा में व्यतीत होने वाला सामान्य अवधि से आधे समय में ही ५० प्रतिशत अधिक पाठ्यक्रम समाप्त कर लेता है। इसके विपरीत, जैसा कि प्राय समझा जाता है कि सगणक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में गुरु शिष्य सम्बन्धों का विकास नही हो पाता, यह प्रणाली इन सम्बन्धो के विकास में अति सहायक है।'

शिक्षकों की श्रम से मुक्ति :

डा. विशप के अनुसार, यद्यपि सगणक द्वारा, निश्चितत एक सीमा तक ही ज्ञानार्जन कर पाना सम्भव है, तथापि यह शिक्षक को कठोर श्रम से ५० प्रतिशत मुक्त कर देता है और उसे छात्र के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा विचार-विनिमय के लिये समय उपलब्ध करता है। हमारे विचार में, एक शिक्षा-सत्र में, प्रत्येक विद्यार्थी के साथ, अलग-अलग इस प्रकार के तीन व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है। हमारा प्रयास है कि इन व्यक्तिगत सम्पर्कों के अवसर पर विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों ही, विचार विनिमय द्वारा उन कठिनाइयों और समस्याओं को हल करने में अपने अतिरिक्त समय का उपयोग करें, जो सगणक द्वारा सम्भव नहीं हैं।

सगणक द्वारा शिक्षा, सर्वप्रथम, मिशिगन विश्वविद्यालय में प्रारम्भ की गई थी, परन्तु अब इसका अमेरिका के अनेक कालेजों में परीक्षण किया जा रहा है। सगणक द्वारा सिखाये जाने वाले विषयों में सामाजिक विज्ञान, पत्रकारिता, अंग्रेजी भाषा, विज्ञान और अंकगणित विषय सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक यूरोपीय भाषाओं और चीनी तथा हिन्दी भाषाओं को भी सगणक के माध्यम से पढ़ाने की योजना विचाराधीन है।

डा विशप का कहना है कि सगणक शिक्षा श्रेष्ठ शिक्षितों और सतर्क युवा पीढ़ी के निर्माण में अवश्य ही लाभकारी सिद्ध हो सकेगी। उनके अनुसार, इससे विकासोन्मुख विश्व को व्यावहारिक रूप में अवश्य ही लाभ पहुँचेगा। ऐसे देशों में, जहाँ प्रशिक्षित शिक्षकों की अत्यधिक कमी है और जहाँ विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है तथा विद्यार्थी कम-से-कम समय में अधिकाधिक ज्ञानोपार्जन के इच्छुक हैं, सगणक शिक्षा अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

(यू एस आई एस के सौजन्य से)

* *

यदि श्रम में से शोषण के तत्व को समाप्त कर दें तो बालकों के श्रम को उनकी शिक्षा का अनिवार्य भाग होना चाहिये। बच्चों की शिक्षा में किताबी और शारीरिक शिक्षा के साथ साथ उत्पादक श्रम भी शामिल रहना चाहिये क्योंकि इससे वे न केवल सामाजिक उत्पादन में ही योगदान कर सकेंगे अपितु उनके मनुष्य के रूप में सही विकास का भी यही एकमात्र मार्ग है।

—कार्ल मार्क्स

* *

राजस्थान शिक्षा सम्मेलन : संक्षिप्त विवरण :[1]

गत १९ से २४ जून तक आबू पहाड़ पर राजस्थान प्रदेश का नौवां शिक्षा सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता राज्य के शिक्षा मंत्री श्री खेतसिंह जी ने की और मुख्य अतिथि के रूप में सम्मेलन को अखिल भारत नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमननारायण जी ने सम्बोधित किया। सम्मेलन को राज्य के मुख्यमंत्री श्री हरदेव जी जोशी ने भी सम्बोधित किया। सम्मेलन में राज्य सरकार के शिक्षा विभाग के सभी उच्चाधिकारियों के अलावा राज्य में गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं के लगभग ५० प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। इस गोष्ठी का उद्देश्य राज्य में शिक्षा की प्रगति, समस्या और आगे के कार्यक्रम पर विचार करना था। सम्मेलन में इस बात पर भी विचार किया गया कि सन् १९७२ में अक्तूबर में सेवाग्राम में हुये राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों को राज्य में शीघ्रता से किस प्रकार से लागू किया जाय।

सम्मेलन में शिक्षा में तकनीकी का उपयोग, शैक्षिक अनुसंधान, शिक्षा में व्यवसायीकरण १०+२+३ की योजना का क्रियान्वयन, शिक्षक संघों को रचनात्मक दिशा देने के प्रयास, और प्राथमिक शिक्षा की प्रगति जैसे कुल १४ विषयों पर विचार किया गया। हर विषय के लिए पहले से ही सन्दर्भ पत्र तैयार करके वितरित कर दिये गये थे और सम्मेलन ने अपने को कुल ६ कार्यकारी दलों में विभक्त करके इन पर विस्तार से चर्चा की और कुछ निर्णय लिये। कुछ दलों की सिफारिशें काफी महत्व की रहीं।

शिक्षक का विकल्प नहीं :

कार्यकारी दल न. एक ने, 'जिसे शिक्षा में तकनीकी का उपयोग' और 'शैक्षिक अनुसंधान' के विषय दिये गये थे, अपने प्रतिवेदन में कहा है कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिये किन्तु इसमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि हम यह समझ लें कि वह शिक्षक का विकल्प नहीं हो सकती है। दल की राय में शिक्षा के काम में रेडियो, फिल्म, टेप रिकार्डर, लिंग्वाफोन, कम्प्यूटर, स्लाइड्स और अभी हाल ही में विकसित उपग्रहीय संचार प्रणाली जैसी चीजों से मदद मिल सकती है और इसके लिये न केवल शिक्षकों को ही नवीन तरह के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी अपितु प्रधानाध्यापक और निरीक्षी अधिकारियों को भी नये नये उत्तरदायित्व निभाने और उनको कार्य सम्भालने के लिये आवश्यक प्रशिक्षण और साधन प्रदान करने की आवश्यकता है।

प्रतिकूल शिक्षा बदलो :

दूसरे दल ने, जिसे 'शिक्षा के व्यावसायीकरण' और १०+२+३ की योजना का क्रियान्वयन के विषय दिये गये थे अपने प्रतिवेदन में कहा है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली हर प्रकार से हमारे देश की आज की आवश्यकताओं के प्रतिकूल है और इसका अमूल परिवर्तन आवश्यक हो गया है। दल ने कहा है कि विभिन्न देशों की शिक्षण प्रणालियों का अध्ययन करने से एक बात साफ होती है कि सभी अविकसित देशों में शिक्षा और काम का परस्पर विरोध जैसा रखा गया है किन्तु विकसित देशों में काम शिक्षा का अनिवार्य और अंतरंग भाग है। शिक्षा का नवीन चिंतन अब इस बात पर जोर दे रहा है कि काम और शिक्षा को अलग नहीं किया जा सकता है और सभी बालकों के लिये हर स्तर पर एक नयी शिक्षा योजना में काम और शिक्षा की समन्वित योजना होनी चाहिये। १९६४-६६ के शिक्षा आयोग ने भी यही कहा था कि शिक्षा के भावी स्वरूप में अब सामान्य शिक्षा और तकनीकी शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा समग्र शिक्षा योजना का अंतरंग भाग होगा। इस सन्दर्भ में दल ने सिफारिश की है कि राजस्थान में भी हमें यथाशीघ्र १०+२+३ की योजना को क्रियान्वित करने के लिये कदम उठाने चाहिये। उसके लिये यद्यपि काफी धन की आवश्यकता होगी, फिर भी इसके लिये आवश्यक वित्तीय व्यवस्था की जानी चाहिये।

शिक्षक संघ रचनात्मक बनें

तीसरे दल ने भी इस महत्वपूर्ण सवाल पर विचार किया कि शिक्षक संघों के रचनात्मक दायित्व क्या हों और उन्हें उनकी ओर कैसे प्रवृत्त किया जाय। इसके साथ ही यह सवाल भी है कि शिक्षक संघों में और विभाग में सहयोग की भूमिका कैसे बने और पनपे। शिक्षक संघ और विभाग में सहयोग बहुत आवश्यक है और इसके लिये दल ने सिफारिश की है कि विभाग और शिक्षक संघों के प्रतिनिधियों को लेकर पंचायत समिति स्तर से लेकर राज्य स्तर तक शिक्षा सलाहकार समितियों का गठन किया जाना चाहिये जिनका काम शिक्षकों की समस्याओं पर विचार करने के साथ ही शैक्षिक मानदंडों की प्राप्ति के लिये प्रयास करना भी हो। शिक्षक संघों की रचनात्मक भूमिका पर दल कोई मौलिक विचार नहीं दे सका है और शिक्षक कल्याण कोष, शिक्षक भवन योजना, शिक्षक बीमा योजना जैसी बातें ही सुझा कर रह गया है। ये बातें निस्संदेह ही महत्व की हैं किन्तु यह विषय इससे भी गहन है ? दल इस विषय की गहराई तक नहीं उतर सका।

पांचवें दल ने भी इस सवाल पर विचार किया कि देश की बढ़ती आबादी के हिसाब से हम सबको समय पर कैसे शिक्षित करें। दल ने इसके लिये सार्वत्रिक शिक्षा के साथ ही साथ कि अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली का सुझाव दिया है। इसके

बिना हम अपने उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दलकी राय में इसके लिये आज की एक बिन्दु प्रवेश (सिंगल एन्ट्री सिस्टम) के स्थान पर बहु बिन्दु प्रवेश (मल्टी एन्ट्री सिस्टम) की प्रणाली का विकास करना होगा और आज को कक्षा दो तक ही चलने वाली अविभक्त इकाई योजना को कक्षा चार तक लागू करना होगा। साथ ही दो दो साल की एक कक्षा तीसरी तक और दूसरी कक्षा पाचवी तक के लिये अविभक्त इकाई के रूप में अंशकालीन शिक्षा का भी प्रबन्ध रखना होगा ताकि जो बालक अपना प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोडने पर विवश हो जाते हैं और फिर काम के साथ पढाई पूरी करना चाहते हैं वे अपनी पढाई जारी रख सके और पूरा कर सकें। यही बात फिर १४ साल से ऊपर के एसे ही बालकों के लिये भी हो जो कि पुन अपनी आठवीं की पढाई पूरी कर सके। इसके लिये निश्चय ही नये पाठ्यक्रम और व्यवस्था की आवश्यकता होगी जो कि हम करना चाहिये।

शिक्षक का सतत आतरिक मूल्याकन

वर्तमान परीक्षा प्रणाली में सुधार के सवाल पर भी दल ने विचार किया है और कहा है कि आज कक्षा दो तक की अविभक्त प्रणाली को कक्षा चार तक तुरन्त लागू करना चाहिये और उसके लिये अध्यापकों का आवश्यक प्रशिक्षण किया जाय। कक्षा आठ तक वर्तमान परीक्षा क्रम को ही जारी रखने की दल की राय है किन्तु आगे के छात्रों को दल ने विषयों में पुन परीक्षा देने और अपने ग्रुप के अलावा भी अन्य ग्रुप के विषयों में परीक्षा देने की सिफारिश करता है। दल आन्तरिक मूल्य पर भी सहमति देता है किन्तु कहता है कि यह बात न केवल छात्र के लिये ही हो अस्त अध्यापकों के लिये भी हो। नहीं तो इससे छात्र के साथ काफी अन्याय होने की सम्भावना है। स्वायत्तशासी विद्यालय जो अब देश में काम करने लग गये हैं और विशेष ध्यान दें और उनके अनुभवों पर से आगे का कार्यक्रम बनाया जाय। परीक्षाओं में नकल करने की प्रवृत्ति को रोकने के लिये दल का सुझाव है कि उडन दस्ता की व्यवस्था और भी विस्तृत और मजबूत की जाय। इस प्रकार यह दल भी विषय की गहराई पर नहीं जा सका और ऊपर ऊपर ही विचार करके चुप हो गया।

हमारी प्राथमिक शिक्षा सर्वाधिक असफल

छटे अध्ययन दल ने प्राथमिक शिक्षा की प्रगति पर विचार किया और कहा है कि इस क्षेत्र में हम अभी तक बुरी तरह से असफल रहे हैं। आज भी हमारे देश में औपनिवेशिक ढंग की ही शिक्षा प्रणाली चल रही है। किन्तु यह देश के लिये अमान्य कारी है। यह प्रणाली पहले तो बालक को समाज और परिवार से पृथक कर देती है और फिर उससे अपेक्षा करता है कि बालक को शिक्षा पूरी करने पर वह समाज में पुन स्थापित हो सकेगा। किन्तु यह बात असम्भव और गलत है। इसलिये

यह आवश्यक है कि प्राथमिक शिक्षा के स्तर से ही हम इस तरह की शिक्षा व्यवहार करें ताकि बालक आरम्भ से ही माता और पिता समाज के अंतरग भाग के रूप में काम कर सके और उसकी शिक्षा उसे इसमें मदद करे। इस सन्दर्भ में दल ने सन् १९७२ में सेवाग्राम में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का स्वागत किया और कहा है कि देशको कभी न कभी इसी पद्धति पर आना ही होगा। गांधी जी ने जो विचार देश को दिये थे उनकी उपेक्षा करके हमने अपना भारी नुक्सान किया है और अब भी समय है जब हम इस भूल को सुधार सकते है। यद्यपि दल ने १०+२+३ की योजना पर कुछ शकायें भी व्यक्त की हैं जैसे कि यह बहुत ही खर्चीली है, बीच के दो सालों को छोड कर फिर यह भी चालू पद्धति का ही पिष्टपेषण है और इसके बाद भी जो बालक निकलेंगे वे आज से कोई भिन्न नही होंगे और अन्त में यह कि बीच के दो सालो के शिक्षण के बाद भी बालकों के लिये कोई समुचित व्यवस्था का इसमें कोई सकेत नही है। फिर भी दल ने साफ साफ कहा है कि कुल मिलाकर यह अच्छा योजना है और इसे देश में शीघ्रता से लागू किया जाना चाहिये। दल को भारत जैसे देश में एक आम शिक्षण पद्धति के चलाये जाने पर भी सदेह है। आतरिक मूल्याकन के बारे में इस दल ने भी छात्र के साथ ही अध्यापक का भी आतरिक मूल्याकन करने पर जोर दिया है।

सेवाग्राम-सम्मेलन मार्ग-दर्शक :

विभिन्न दलो की सिफारिशो पर फिर आम सम्मेलन में विचार किया गया है और अन्त में निश्चय किया गया है, कि सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने देश को एक मार्ग बताया है और उसका क्रियान्वयन शीघ्र किया जाना चाहिये। राजस्थान सरकार ने इस पर शीघ्र अमल करने का निश्चय प्रकट किया है। इस काम को गति देने के लिये शिक्षा मत्री की अध्यक्षता में एक ४५ सदस्यीय समिति का गठन किया गया है, जिसमें सरकारी और गैर सरकारी शिक्षाशास्त्री मिलकर काम करेंगे और यह सिफारिश करेंगे कि प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था को उद्योग प्रधान कैसे बनाया जाय।

सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्रीमन्जी ने आशा व्यक्त की है कि राजस्थान प्रदेश शिक्षा सुधार के काम में देश के अन्य राज्यो का मार्ग प्रशस्त करेगा और आज तक हमने गाधी जी की बात न मानकर जो भूल की है उसका सुधार करेगा। मुख्यमत्री श्री हरदेव जी जोशी ने भी कहा है कि राजस्थान अब शिक्षा सुधार के काम में पाछे नही रहेगा। शिक्षा मत्री ने भी इस काम को शीघ्र पूरा करने का आश्वासन दिया है।

(नयी तालीम प्रतिनिधि द्वारा सकलित)

अखिल भारत गोसंवर्धन संगोष्ठी

वर्धा : तारीख १३ और १४ जुलाई, १९७४

एक अखिल भारतीय गोसवर्धन सगोष्ठी, विशेषकर गाय के सदर्भ में, तारीख १३ और १४ जुलाई, १९७४ को वर्धा में सपन्न हुई। उसे अखिल भारत कृषि गोसेवा सघ की ओर से आयोजित किया गया था और उसका उद्घाटन पवनार आश्रम में आचार्य विनोबा भावे ने किया। इस सगोष्ठी में करीब ६० सरकारी और गैर-सरकारी तज्ञ शामिल हुए, जिनमें भारत सरकार, कई राज्य सरकारों और समाज सेवा सस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। महाराष्ट्र और राजस्थान के सम्बन्धित मत्री भी शरीक हुए।

इस सगोष्ठी में मुख्यत तीन विषयों पर गहरी चर्चा हुई — (१) नस्ल-सकरण (क्राम ब्रीडिग) नीति द्वि प्रयोजन नस्लो का विकास, (२) गाय तथा भैंस दूध सम्बन्धी मूल्य-नीति, (३) पशु-खाद्य व चारे की समस्याएँ। दो दिन की विस्तृत चर्चा के बाद नीचे लिखी सिफारिशें सर्वानुमति से की गयी —

(१) भारत के आर्थिक सयोजन की रीढ कृषि है, और कृषि-विकास की रीढ की हड्डी गोसवर्धन है। इस दृष्टि से भारत की राष्ट्रीय योजनाओं में गाय को प्रमुख स्थान देना आवश्यक है।

(२) भारत की प्रजनन-नीति का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार की सर्वांगी (ड्यूएल परपज) नस्ल का विकास होना चाहिये जिसके द्वारा दूध का विपुल मात्रा में उत्पादन हो उसके और हमारी कृषि के लिये अच्छे बैल भी तैयार हो। साथ ही साथ, हमें छोटे किसानों की आवश्यकताओं पर निरन्तर ध्यान देना चाहिये जो भारतीय ग्रामीण समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(३) इस प्रकार की प्रजनन-नीति के अन्तर्गत विदेशी नस्लो से सकरण (क्राम ब्रीडिग) के कार्यक्रम, ऐसे इलाकों में ही सचालित करने चाहिये जहाँ दुधारु गायों के पालन पोषण और देखरेख की समुचित व्यवस्था हो सके। यह भी जरूरी है कि नस्ल-सकरण की योजनाएँ नियत्रित हो और निश्चित मर्यादाओं के अन्तर्गत चलाई जाय।

(४) कृत्रिम गर्भाधान को बडे पैमाने पर चलाने की यानना की बारीकी से छान-बीन करना जरूरी है। इस दिशा में अब तक के अनुभव का सावधानी से मूल्यांकन करना वांछनीय होगा।

(५) यह भी जरूरी है कि दूध की कीमत घृतांश (फैट) और फॅट के अलावा अन्य तत्वों (एस एन एफ) के आधार पर निर्धारित करनी चाहिये। गाय के दूध के विशेष गुणों का अध्ययन और अन्वेषण करना उपयोगी होगा ताकि उसी प्रकार जनमत को शिक्षित किया जा सके।

(६) गोसंवर्धन के लिए देश में दाना और चारे की पर्याप्त व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है। इस सन्दर्भ में पशु-खाद्य का निर्यात तुरन्त बन्द होना चाहिये। इसके अलावा मिश्रित-खेती का व्यापक ढंग से योजना बनाई जाय। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में काफी संख्या में चारे के दाना के फार्म, चारा के बैंक और चारा-संरक्षण के कार्यक्रमों को प्राथमिकता देना जरूरी है।

(७) यह भी आवश्यक है कि देश में पशु-खाद्य की शुद्धता के लिये शीघ्र कानून बनाया जाय।

(८) संगोष्ठी के अध्यक्ष डा. श्रीमन्नारायण को अधिकार दिया जाता है कि वे २१ सदस्यों का एक कार्यान्वियन समिति नामजद करें जो सगोष्ठी की सिफारिशों को आगे बढाने के लिये उचित कदम उठायें। इस समिति को अपने में कुछ और सदस्य शामिल करने का अधिकार होगा।

"शिक्षा का काम विद्या से नहीं चलता, मुहब्बत से चलता है। उसके लिये मुहब्बत की जरूरत है। अच्छे शिक्षक के माथे पर मुहब्बत लिखी होनी है उसके विज्ञान के पहले सफे पर लिखा होना है मुहब्बत। जिस आदमी का झुकाव बच्चे की तरफ होता है, वही अच्छा उस्ताद या शिक्षक बन सकता है।"

— डा. जाकिर हुसैन

Dr Malcolm S, Adiseshiah

Productive Work In Education

(The following article is an address by Dr Adiseshiah, an eminent educationist and formerl Deputy Director General of The UNESCO and Professor Madras and Calcutta University and now the Director, Madras Institute of Developmental Studies The address was given to the Tamilnadu Basic Education conference and we hope this thoughtful article will inspire a new thinking in those who aspire for a revolutionary change in this world s most un-productive and anti-education educational system,' as the author has put it, prevalant in our counrry to day —Editor)

OUR IDEOLOGICAL HERITAGE AND ACTION FAILURE

Gandhiji charted the idea of educationally productive work making hand-work an integral part of our education, as the medium of instruction for boys and girls upo the age of 14 We listened and nodded our heads in enthusiastic agreement and then proceeded to forget about it Dr Zakir Hussain followed him and declared that educationally productive work as the principle means of education will run through our future educational system from the basic school to the university Again we nodded our heads and started up thousands of basic schools and even colleges which he described before *his* death as placeas of mechanical work Maulana Abul Kalam Azad our first Union minister of Education, said back in 1953 that we have accepted basic education the main idea of which is that learning should be not merely through book but through some form of manual work This principle should be applied, he affirmed throughout the secondary education stage and should in fact become the principle of our national education We agreed with him but then have successfully developed the world s most unproductive educational system n boys and girls who drop out of school and college who repeat their classes, who are nearly totally unemployable, and who have become productive in strikes, gheraoes, mass copying in exams,

stoning buses and burning cars and destroying public property And so I could go on recalling to your painful memory the identical blueprints on productive work in education in the Abbott–Wood report of 1937, the Sargent Report of 1944 the University Education (Radhakrishnan) Commission Report of 1949, the Secondary Education (A L Mudaliar) Commission Report of 1953 the Technical Education and Vocational Training (Thacker) working group Report of 1960, the Kothari Commission Report of 1966 and our own blueprint in Tamil Nadu–Towards a learning Society–published in 1972, which has charted the path to link the right to Education with the right to Employment This conference is itself a Tamil Nadu avatar of the National Conference on Education held in Sevagram in October 1972 All these programmes, reports, advice and guidance have resulted in a situation where we know what should be done We seem however to be gripped by a mental and moral paralysis about acting on this vast amount of knowledge and expertise that we have built up on Productive work in Education In our case, knowledge seems to cause paralysis And I can only repeat the warning of the Christian Bible, which reads the men who knows and does (the wrong) will be beaten by many sticks

AN INTERNATIONAL SAMPLING

Meanwhile I want to tell you that without a Gandhiji without a Zakir Husain, without all the theories we mouth about work centred education, the other countries are actively plunged in and developing productive work in education I was last month in Ceylon and saw for myself its school children engaged in various pre vocational work at the end of the primary cycle and *branching off into agrarian, rural and industrial training* skills at the secondary level In the middle of last year I was in Ethiopia, where I found that 4 years ago the Haile Selassie University students met and voluntarily decided that all B A and B Sc students will spend their third year working on a farm or factory at the wages given to the worker in the unit, so that now their degree course there is of 5 years In China we know that all universities were closed for 3 years, when the students and professors lived and worked under the production brigade of each commune, who then certified who should go to college And each college has a farm cooperative or a couple of factories in the

campus, so that work in them is part of the curriculum In the Soviet Union, work training is part of the 8 year incomplete secondary general educational labour poly{technical school, where the manipulation of tools and materials begins in the first year, carpentry and allied skills in the fourth class and the various mechanical skills later The training is not vocational but poly-technical I will end this world sampling of productive work in education by quoting an extract from the December 3 1973, issue of 'Time ' It was typical evening in Triton College Chicago U S A where in one class room 010 basic instruments in basic refrigeration and airconditioning were being explained, in another class 030 machines whined and motors roared as a squad of grease smeared men laboured over disassembled cars, while in class 102 Philosophy students were discussing linguistic fallacies Triton College is a new type of college redefining the concept of education for America The colleges are regarded as educational supermarkets offering their varying shelves of learning to the neighbourhood students, workers policemen, civil servants, bankers etc who number over 2 6 million today in these colleges, all over America More than half the students attend these collegs part time and many combine their studies with full time jobs There is a course to suit every student s need and ability and students get associate degrees in 104 career areas, from advertising to political science diesel or welding technology The teachers call themselves instructors not Professors or Lecturers because they instruct and do not Profess or Lecture But these Colleges do suffer discrimination Though these courses enrol 50 per cent of all students they receive only 13 per cent of the higher education budget ' Yet " concludes the article for many students who aspire to be something between a ditchdigger and a nuclear physicist this education for productive work is the wave of the future

THE FIFTH PLAN OBLIGATIONS

I now return home to us in Tamil Nadu and India and contemplating the Fifth plan, where we have set ourselves two objectives—Removal of poverty and attainment of economic self reliance—I lose my weariness and boredom for I feel that education is being given a last chance to help our people attain these two grand goals during the next five years And that is where—Productive work in Education—assumes a kind of life and death

character. For here is our last chance—either to be part of fighting and flowering society-fighting against poverty, flowering to self reliance-or we educators will be cast aside as is everything that is irrelevent, and left to go our way, to wither away and die

PRODUCTIVE WORK IN EDUCATION.

Let us begin with recalling some simple home truths What is productive work ? **It is any activity which produces physical, intellectual and spiritual goods which can be marketed** Productive work in education is then **any learning activity where the skills of production so defined are acquired through actual productve activity** The best way to learn to ride a bicyle is by riding it, not by calculating the wind velocity, the body weight, the number of times the chain must turn to revolve the rear wheel once around, the rate of resistance it encounters in pushing forward the front wheel etc That is the simple truth in our theme, productive work in education, which I equate with, educationally productive work, a term that I used earlier in this address **Educationally productive work is a mental process usually accompanied by manual activity.** But not all mental activity or manual work is educationally productive Some of the abstruse mathematical theorising in my field of economic forecasting is very hard mental work but is completely unproductive for meeting our country's production stagnation, inflation ills or unemployment malaise Similarly one can go on turning a Charkha or digging a hole in the ground and filling its up without acquiring any marketable learning skills **The decisive characteristics of educationally productive work are the learning process involving (a) the formation of new ideas or new combinations of existing ideas (b) purposeful activity leading from one overriding purpose to another and (c) socialisation of the ideas and the purposes. Productive work in education is first and foremost an individual learning process To counter it becoming self centred self serving it must be harnessed to social ends. it will then be individually purposeful and socially meaningful.**

IN THE DIRECTION OF SARVODAYA·

Educationally productive work so defined is part of our Fifth plan war against poverty and a base for our goal of self-

reliance If every child and adult is equipped with this skill forming and learning proceses, the twin weapons of wage employment and self employment will be effectively used by him or her to earn a living wage, and so make a success of the employment generating programmes built into the Fifth Plan Collectively they will get rid of their poverty, they will rise above the poverty line and not wait for doles, subsidies and charities to lift them up And that is the basis for our necessary goal of self-reliance Self reliance, starts with each citizen being able to depend on his learning and learned skills to earn his living In turn our production structure and property relations will have to be turned around in the direction of Sarvodayn—which to me means ensuring the flow and d stribut on of the essential goods ard services that the poo man-the Daridra Naravanan—needs and a cut back on the non—essential goods that a few of us so conspicuously consume In such an economic st ucture we can rely on our own capital and consumption resources and gradually become beneficiaries to other countries Bangla Desh, Sri Lanka, Nepal, Africa, it stead of being continuing beneficiar es of foreign aid But this process of selfreliance which starts with the individual learning system must also pervade the entire educational system, which contrary to Gandh ji s vi ion of a self-supporting system has become a vast drain down which over Rs 130 crores of government money in this State is being lost every year To me the Gandhian principle of self—suppo t today means that our educational system must pay back to society what is invested in it

ANTI-EDUCATION SYSTEM

How can this doctrine of educationally productive work be appl ed to the educational system? We must begin by acknowledging that our educational system at present is not built on this essential p inciple, that it is as I have said unproductive, unworkmanlike, poverty promoting and non self—reliant-that it is, in other words, anti-edcation that is growing and flourishing in our State and Country Against this factual situation, I wish to place before you six educational action pr grammes in which we must engage now, if we are to redeem our pledges in the Fifth Plan which starts in a couple of months I shall begin with simple d rect educational programmes and go on to more radical action suggestions

१ The functionalised school

First within the existing curricula of our schools and colleges, we can introduce this revolutionary yeast of productive activity We must recognise first that our curriculum is anti-productive The curriculum is a range of subjects covering reading and writing in one's mother tongue and one or more foreign languages, arithmetic, history, geography, the natural, physical, social and human sciences, mathematics, agricultural, engineering and health sciences, the fine arts, religion, philosophy and sports The first problem that we face in making the curriculum functional to our life and living is that in life we are required to know how to grow paddy, how to breed and rear our cattle, how to produce milk and milk products, how to catch and market fish, how to weave cloth, how to fabricate machines or repair a non-functioning pumpset **Unfortunately life does not present itself as physics or chemistry economics or sociology, literature or logic but that is all that we learn at school and college** This irrelevance super imposed on our grinding poverty, accounts for our massive dropouts **Again even these subjects that form our curriculum have an anti-people bias** They are usually borrowed from foreign affluent countries which are highly industrialised and urbanised or are developed in the small industrialised and urban sectors of our own society To the mass of our rural agricultural people, the curriculum is a foreign esoteric plant which dies almost at the moment of its planting This accounts for the alarming repetition rates in our schools and colleges. What I would suggest is (a) functional grouping by subjects around themes arising in our rural and urban sectors such as the paddy we grow, the milk we drink, the fish we catch, the baby we rear, (this is a plea for inter or trans disciplinarity), (b) lightening our curriculum by shedding some subjects and parts of some subjects which serve no purpose except that of useless and cumberous baggage, and replacing it by work revolving around the themes, (c) making it learning centred–learning how and where to seek information, so that it is continually renewed and (d) breaking up our centralized structure so that each school can make its own syllabus in relation to its neighbourhood needs This has two consequences First the functiona lising of the curriculum around

the live, work on day to day problems that the students face or will face, will end the present chaos that he faces when he is put through a foreign, abstract and unreal study prognamme and then invited to join some social-service-programme, such as the 'youth against famine' project or the 'National Service scheme' which has no relation to his curriculum Such a dichotomy confuses the student who sees no relation between his studees and the work project and routinises and kills the latter

TO END THE WRONGFUL MONOPOLY

This was my own experience as a student in Vellore and Madras and later as a teacher in Calcutta University and Madras University What is needed is a functional curriculum based on practical work experience Second this work based curriculum will also mean the end of the wrongful monopoly of the teaching tasks by the professional teaching community For the systematic study around the principal occupations of the locality by the students will mean that the teaching profession must be thrown wide open, on a part time or full time basis, to farmers, engineers, businessmen, government officers, cooperative leaders, agricultural polytechnicians so that some parts of the work based education is given by qualified teachers The professional teacher should not be made or should not make himself a jack of all trades, if he does, he will become master of none, not even of his generalised teaching trade

2. Out-of-School-College Education

A second programme is the development of out-of school and out-of college education Here let us remember, that despite all our padded misleading statistics, there are more children out-of-school than in school, starting at 52 per cent drop outs by class 5 upto 80 per cent who drop out by the SSLC level and 96 per cent of the college age group which is not in college Now unlike the problem of what we have come to call our educated unemployed, which I call our educated unemployables, this group of boys and girls who are out of school or college are employed the drop out boys, working alongside of their fathers in farms or at sea fishing or weaving or tending the cattle or in factories, and the drop out girls, who have to look after the baby and/or cook the meal at home, while their mothers are out earning a living to supplement the inadequate wages of the husband The urban

drop outs or push outs are engaged similarly in a wide variety of occupations in towns and cities And so here we start with a *premium* The *productive work is* there and all that we have to do is build a curriculum literacy, numeracy, the cognitive skills of social, human and physical sciences around it In this sense out of school or college education has an advantage over school and college education, including the basic school where an artificial work situation such as spinning or gardening or carpentry has to be created In out of school education, the work being done by the drop outs or push outs the paddy we transplant the fish we catch, the baby we rear, or in the case of students of college age the machine he tend , the office files he organises can be used to build the curriculum which is the work based or productive work in education we are talking about In fact what we have proposed in the Tamil Nadu Perspective Plan is that this curriculum which we are now building should after 1 or 2 years of trial in the out of school system be fed into the school and replace the school curriculum so that we would then have a single system consisting of those who go to school full time to study a work based learning system and those who because of poverty, work and acquire further learning based on their avocation Such out of school and out-of college provision then made for the same number of young persons as those enrolled in schools and colleges **In this sense, out of school education, non-formal education is for me the educational wave of the future**

3 Functional Adult Education

A third productive work in the education programme that I suggest and that we have planned for this State is functional literacy for our illiterate adults We have 70 per cent illiterate adults in the Country and 60 per cent in the State, but all of them are engaged in some productive work farming fishing, dairy husbandrying working in plantations, forests or factories, farm or office So here too we start with half the cake baked What we are planning to do is to get each of our unemployed or under-employed teacher training schools *to compile a basic list of* 500-600 words employed by the men and women in their locality, and educate them around that list, so that each of them can use these tools to farm better, fish more, improve their homes, and in the case of office and factory workers enter the out of school stream

the market demands This is in reality part of the out-of school programme that I have referred to earlier, the educationally productive part of our system, which is now called upon to remedy and rehabilitate our unproductive formal educational system This rehabilitative de-schooling programme will have to be continued during the Fifth Plan to help the already existing graduates and those who will be coming out of the mill this year

6 An educational pause

A final portrayal of productive work in education takes me further afield We have moved so far away from the objectives of education, its methodology, its egalitarian, democratic, and character building nature, that I wonder whether to see our theme turned into reality, for education to be reformed and restructured to become productive physically, intellectually and morally, there should not be simultaneously two preconditions One is for our society to become truly democratic, which means that the unorganised disinherited rural masses should be organised to play their role in decision making and the present monopoly of power and property by us, of the upper and middle classes, ended, The corruption, black money the craze for power will also end and we will have a social system with which education can be proudly and productively linked A second precondition is to close our high schools and universities and colleges for 2 years and induct our students in the army-like National Service Schemes, Youth Corps and other Rural Development programmes where they would have the privilege and opportunity of working productively in the farm or factory Looking around the Country today I wonder if the students and their parents are not themselves leading to something like this through prolonged closing of schools, colleges and universities which follow strikes and violence in our educational institutions During this two year period the various schemes from productive educational activity from the first class to the top university class can be introduced We can try out our own educational models suited to our conditions, our children and our people If it is true for instance that at early adolescence we can learn twice as fast the same material as at age 5 plus or 6 plus, and that at age 11-12, vocabulary and reading comprehension can be acquired twice as fast as at age 6, then why not start schooling at age 11 or 12,

working and learning at home and at play before that age, allowing students to enter any class they are fitted for, as tested by their educationally productive work and proceed to educationally productive units in accordance with their learning paths. Into such an educational system which will be functional to a socially and economically just social order and to political power widely dispersed and equitably shared, the learning disciplines of charity, compassion, industry, honesty and integrity can be meaningfully introduced

TO GENERATE THE WILL TO ACT :

Such are the vistas which an educationally productive system opens up Our task as a people in this State and Country is no longer to draw up plans for such a system, of which we have more than plenty, nor to hold conferences and seminars to discuss these prospects and plans but to use this and every opportunity to generate the will to act, to compel us to take the first small or large steps to develop the society and educational system, where all learning will be work and all work will be learning. And it is to affirm that will to act that I call all of you.

तामिलनाडु बेसिक शिक्षा सम्मेलन मे दिये गये उक्त भाषण मे प्रख्यात् शिक्षाविद् डा मालकम आदिशेषैय्या ने वर्तमान शिक्षा-पद्धति की व्यर्थता सिद्ध करते हुए कर्म-परक शिक्षा की सिफारिश की है। डा आदिशेषैय्या ने आज की हमारी शिक्षा को विश्वमे सबसे अधिक अनुत्पादक और गैर-शैक्षिक शिक्षा बताते हुए कहा है कि हमे इसकी जन-विरोधी दिशा को कर्म परकता की ओर उन्मुख करना होगा। हमारा पाठ्यक्रम कार्यकारी (फन्कसनल) होना चाहिए जो कि छात्रो मे वास्तविक जीवन और शिक्षा के वर्तमान विरोधाभास से उत्पन्न मति-भ्रम को ता दूर करेगा ही साथ ही यह शिक्षा पर आज के एक अत्यन्त छोटे व्यावसायिक शिक्षक समुदाय के एकाधिकार को भी समाप्त करेगा। शिक्षा को कर्म परक बनानेके लिए वक्ता ने हमारी उत्पादन और सापतिक सबधो को भी सर्वोदय की दिशा मे–याने आवश्यक वस्तुओ और सेवाओं को सामान्य गरीब जन की ओर–मोडने का भी आवश्यकता बताई है। देश की अर्थ व्यवस्था मे परिवर्तन शिक्षा में परिवर्तन के लिये आवश्यक है।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद राष्ट्र उत्थान के बढ़ते चरण :

१९४७ स्वराज्य का सर्वोदय 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।' यह राष्ट्र मंत्र सिद्ध हुआ।

१९४८ महात्मा परिनिर्वाण, देशी रियासत-विलीनी करण, सर्वोदय-समाज का निर्माण।

१९४९ विश्व-शान्ति परिषद — सेवाग्राम।

१९५० भारतीय संविधान की घोषणा एवं भारतीय गणतंत्र की स्थापना।

१९५१ धर्म चक्र-प्रवर्तन रूप भूदान-यज्ञ आन्दोलन का प्रादुर्भाव।

१९५२ प्रथम प्रजातन्त्रीय आम चुनावों के द्वारा संसद का संगठन। पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत।

१९५३ आत्मज्ञान और विज्ञान के संगम से गांधी-ज्ञान का प्रकाशन।

१९५४ बान्डुंग परिषद में पंचशील की घोषणा।

१९५५ अखिल भारतीय काँग्रेस की 'हीरक जयंती आवडा, मद्रास।

१९५६ भाषावार प्रान्त रचना का पुनर्गठन।

१९५७ स्वातन्त्र्य-संग्राम की शताब्दी।

१९५८ भूदान यज्ञ से आगे ग्रामदान आन्दोलन के बढ़ते चरण।

१९५९ 'मोहब्बत का पैगाम — विनोबा का काश्मीर भूदान पदयात्रा।

१९६० गुजरात राज्य की स्थापना — पूज्य रविशंकर दादा के वरद हस्त से।

१९६१ देश की रक्षा, देश की उन्नति, देश की एकता, यह हमारा राष्ट्रीय धर्म है। — जवाहरलाल नेहरू

१९६२ चीन का आक्रमण और सुदृढ़ मुकाबला, वेडछी में सर्वोदय सम्मेलन, शांति सेना की महत्ता।

१९६३ विश्व-शांति की नयी संभावनायें, अणुशस्त्र-परीक्षण-निषेध।

१९६४ भारत रत्न पंडित जवाहरलाल नेहरू का निर्वाण एवं विश्व-शांति के महान कार्य के लिये शास्त्रीजी का विदेश गमन।

१९६५ पाकिस्तान का आक्रमण, 'जय जवान! जय किसान' का जयनाद।

१९६६ भारत विजय, श्री लालबहादुर शास्त्री का जीवन समर्पण।

१९६७ सन १९४२ के जन-आंदोलन की रजत-जयंती।

१९६८ चन्द्रमा पर मानव का अवतरण।

१९६९ गांधी जन्म शताब्दी वर्षाभिनन्दन के साथ स्वतंत्र भारत में जन्म प्राप्त वयस्क मताधिकारी तरुणों का अभिनन्दनीय 'तरुणा-भिनन्दन' स्वरूप भारतीय संविधान के अनुसार प्रजातंत्र के अनुरूप मौलिक अधिकार प्राप्ति समारोह।

१९७० पूर्व बंगाल में लोकतांत्रिक प्रथम आम चुनाव में शेख मुजीब रहमान की प्रचंड विजय एवं नरासुर याह्याखाँ द्वारा नृशंस नरसंहार।

१९७१ स्वराज्य रजत-जयंती वर्ष मुबारक।

१ मानव संरक्षण की महत्ता।

२ भारतीय प्रण-पूर्णता।

३ भारत की अपूर्व विजय।

४ प्रजातंत्र की प्राण प्रतिष्ठा।

१९७२ राष्ट्र देवो भव।

१९७३ राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, सेवाग्राम।

१९७४ प्रथम भारतीय भूमिगत आणविक विस्फोट। स्वतंत्र भारत में संस्थापित 'सार्वभौम प्रभुत्व संपन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का यह रजत जयंती वर्ष राष्ट्र के जन जन को मुबारक!

* *

आनेवाले समय में उत्पादक श्रम से जुडी हुई शिक्षा-व्यवस्था के बिना किसी आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बिना उत्पादक श्रम के कोई शिक्षा शिक्षा नहीं और बिना शिक्षा के कोई भी श्रम उत्पादक श्रम नहीं।

—लेनिन

* *

प्रार्थना

जहाँ मन भय-रहित है और
मस्तक ऊँचा उठा है,
जहाँ ज्ञान मुक्त है,
जहाँ जगत संकीर्ण निजी दीवारोंके कारण
छोटे टुकड़ों में बँटा नहीं है,
जहाँ शब्द आते हैं,
सत्य की गहराइयों से,
जहाँ अथक परिश्रम बढ़ता है बाँहें
सम्पूर्णता की ओर,
जहाँ विचारों के शुद्ध प्रवाह ने
अपना मार्ग नहीं खोया है
मृत परम्पराओं की भयानक बालुका में,
जहाँ मन तुम्हारे द्वारा निर्देशित होता है
सतत विस्तृत विचारों और क्रियाओं में—
स्वतन्त्रता के ऐसे स्वर्ग में, हे पिता,
मेरे देश को जागृत करो!

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नयी तालीम : अगस्त, '७४

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

शिक्षा का मुख्य उद्देश

शिक्षा का एक दूसरा सिद्धान्त यह है कि मन को उसकी स्वाभाविक गति से ही अपना विकास करने देना चाहिये। माँ-बाप या शिक्षक जैसा चाहते हैं वैसे आकार में बच्चे को ठोक पीट कर ढालना एक क्रूर और अज्ञान मूलक प्रथा है। बच्चे को अपने स्वभाव के अनुसार खुद विकास करने को प्रोत्साहित करना चाहिये। इससे बड़ी कोई गलती नहीं हो सकती कि बाप पहले से तय करे कि उसके लड़के में अमुक गुण, अमुक योग्यतायें और अमुक विचार होंगे, और वह कोई खास काम ही करेगा। बच्चे की प्रकृति को अपने धर्म छोड़ने के लिये बाध्य करना उसको स्थाई हानि पहुँचाना है, उसके विकास को रोकना और उसकी श्रेष्ठता को बिगाड़ना है। यह मानव की आत्मा पर स्वार्थपूर्ण अत्याचार है। यह राष्ट्र को क्षति पहुँचाना है, क्योंकि तब राष्ट्र उस व्यक्ति के अन्दर की सर्वोत्तम वस्तु जो देश की सेवा में मिल सकती थी, उससे खो बैठता है। उसके बदले में कोई अपूर्ण, अस्वाभाविक और साधारण-सी चीज ही लेनी पड़ती है।

सबके अन्दर एक दैवी सम्पद् है अपनी ही कोई चीज है, छोटे परिमाण में ही क्यों न हो, परिपूर्णता और शक्ति की सम्भावना, जो ईश्वर ने सबको दी है, लेने या छोड़ने के लिये। शिक्षक का काम है उसको ढूंढना, उसका विकास करना और उसका उपयोग करना। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मा को अपने अन्दर से वह सबसे अच्छी चीज निकाल बाहर लाने में मदद करना है और उसको पूर्ण बनाना है।

—श्री अरविन्द

मुद्रक बजरंगलाल लोढ़े, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

राष्ट्रीय एकता का नागरी लिपि के अलावा दूसरा साधन नहीं

★

साध्य और साधन की एकता आवश्यक

★

गांधीजी का छात्र जीवन

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] सितम्बर, १९७४ [अंक : २

बट जाय। ऐसा होने पर हम सन् १९७५ में भूदान यज्ञ की रजत जयन्ती मना सकेंगे और यह निश्चित रूप से कह सकेंगे कि पच्चीस लाख एकड़ जमीन इस आन्दोलन द्वारा अहिंसक ढंग से बेजमीन लोगों में बांटी जा चुकी है। रजत जयन्ती मनाने का यही रचनात्मक ढंग अच्छा रहेगा। यदि देश के सभी सर्वोदय कार्यकर्ता इस काम में लगें तो सब दृष्टि से हितकर होगा। ऋषि विनोबा ने इन दिनों कई बार कहा है कि उनका भूदान आन्दोलन जितना सफल रहा है उतना ग्रामदान का नहीं। इसलिये नये ग्रामदान यदि प्राप्त न होते हों तो कम से कम भूदान ही प्राप्त किये जायें।

कुछ महीनों से पूज्य विनोबाजी बार-बार कह रहे हैं कि इन दिनों उनका विशेष ध्यान दो विषयों की ओर लगा है। एक तो सामूहिक ब्रह्म-विद्या की साधना और दूसरे, देवनागरी का सभी भारतीय भाषाओं के लिये एक अतिरिक्त लिपि के रूप में प्रचार। हमारे देश में व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना की परम्परा तो हजारों वर्षों से चली आ रही है, किन्तु अब यह जरूरी है कि यह साधना और तप सामूहिक हो। पवनार के ब्रह्म विद्या मंदिर में इसी प्रकार की सामूहिक साधना पूज्य विनोबा जी के मार्गदर्शन में निरन्तर चल रही है। देवनागरी के लिए भी कुछ महीने पहले गांधी स्मारक निधि द्वारा एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी जिसमें राष्ट्र के विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक और विद्वज्जन शामिल हुए थे। यह संतोष का विषय है कि इस कार्य में सभी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं का अच्छा सहयोग प्राप्त हो रहा है। हमें उम्मीद है कि इस ओर भी हमारे रचनात्मक कार्यकर्ता पूरी दिलचस्पी दिखायेंगे।

आजकल विनोबाजी मद्य-निषेध के बारे में भी बहुत बल देते हैं। उन्हें इस बात का बहुत दुःख है कि हमारी राज्य सरकारें दिन-प्रतिदिन शराब का पीना अधिक ढीला बनाती जा रही हैं। उन्होंने गत मार्च में पवनार में हुए स्त्री-जागृति सम्मेलन में भी प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की उपस्थिति में अपना गहरा दुःख व्यक्त किया और कहा कि जब तक देश में शराब बन्दी नहीं होगी तब तक स्त्री-जागृति भी नहीं हो सकेगी। कुछ दिन पहले जब राजस्थान के कर्मठ सेवक श्री गोकुल-भाई भट्ट उनसे मिले थे तब भी विनोबाजी ने उनसे कहा कि यदि राजस्थान सरकार अगले आम चुनाव के पहले पूर्ण नशाबन्दी लागू न करे तो फिर हमें शासन के विरुद्ध सत्याग्रह करना ही पड़ेगा और उसमें मैं भी शामिल हो सकता हूँ। इस उद्गार से पूज्य बाबा के दिल की व्यथा साफ जाहिर हो जाती है।

विनोबाजी को देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के बारे में भी बहुत फिक्र है। वे कहते हैं कि अगर भारत की आबादी इसी तरह बढ़ती गई तो भूदान आन्दोलन और जमीन के बटवारे की सभी योजनाएं बेकार साबित होंगी। जिन जमीन के टुकड़ों को हम बांट देंगे उनके और भी छोटे टुकड़े कुछ वर्ष बाद हो जायेंगे क्योंकि

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २३
अंक : २
मूल्य : १ रु. प्रति

अनुक्रम

सितम्बर, '७४

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य १ रु. है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

गांधी जयन्ती

अगले दो अक्टूबर को महात्मा गांधी की एक सौ पाँचवीं जन्म-जयंती सारे देश में सदा की तरह मनाई जायगी। किन्तु इस वर्ष इस पवित्र दिन पर हमें राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं के बारे में जरा गहराई से चिन्तन करना चाहिये ताकि उन्हें सुलझाने में पूज्य बापूजी के विचारों से कुछ सहायता मिल सके। आजकल अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या वर्तमान युग में गांधीजी के विचार सुसंगत हैं? हमारी दृष्टि से तो इस प्रकार के प्रश्न पूछना ही बिलकुल असंगत है। गांधी जी ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें सनातन सत्य निहित है। वे उनके जीवन-काल में भी उपयोगी थे, इस वक्त भी उपयोगी हैं और भविष्य में भी उपयोगी रहेंगे। यदि हम उन्हें दरगुजर करेंगे तो गांधीजी का तो कोई नुकसान नहीं होगा, किन्तु हमें ही पछताना पड़ेगा।

वर्ष : २३
अंक : २

आखिर, महात्मा जी के बुनियादी विचार क्या थे? उनका सबसे पहला और अत्यंत महत्व का विचार तो यह था कि पवित्र साध्यों के लिये हमें सदा पवित्र साधन ही उपयोग में लाने चाहिये। यदि अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिये हम गलत साधनों का इस्तेमाल करेंगे तो हमारे लक्ष्य भी अपवित्र हो जायेंगे। गांधीजी हमेशा कहा करते थे — "जैसा बीज वैसा पेड़, इसी प्रकार जैसा साधन वैसा साध्य।" यह विचार कोई ऊँची फिलोसफी नहीं है, यह एक व्यवहारिक ज्ञान और समझदारी है। अगर हम अपने तरीकों की ओर ध्यान नहीं देंगे और असत्य व हिंसा का प्रयोग करते जायेंगे तो हमें अपने कार्यों में कभी सफलता प्राप्त न हो सकेगी। अगर कुछ कामयाबी हुई भी तो वह क्षणिक होगी और अन्त में हमें पश्चाताप का अनुभव होगा।

दूसरे, गांधीजी हमें समझाते रहते थे कि हमारा जीवन सरल और स्वावलम्बी होना चाहिये। यदि हम दूसरों की सहायता का आश्रय लेंगे तो हमारा शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास कुंठित हो जाएगा। इसलिये वे श्रम के महत्व पर हमेशा जोर देते थे और चाहते थे कि हम सब सादा और सरल जीवन बितायें। किन्तु इस समय तो धन का महत्व दिन दिन बढ़ता ही जा रहा है और हिंसा, झूठ और काले बाजार से सारा वातावरण दूषित हो रहा है।

तीसरे, बापूजी की हार्दिक इच्छा थी कि हमारे सभी आयोजन इस प्रकार से कार्यान्वित किये जायें कि सबसे गरीब जनता को सीधा लाभ पहुँच सके। उनकी दृष्टि में सर्वोदय का असली अर्थ 'अंत्योदय' था। इस वक्त हमारी जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा गरीबी की रेखा से काफी नीचे है और बढ़ती हुई महगाई के कारण उनकी हालत दिन दिन बिगड़ती ही जा रही है। आये दिन हम हरिजनों के प्रति अत्याचार की खबरें समाचार पत्रों में पढ़ते हैं। यह सचमुच बहुत ही शर्मनाक स्थिति है।

चौथे, महात्मा जी का यही उद्देश्य था कि हम दूसरों की टीका टिप्पणी करने के बजाय अपनी ओर ही देखें और निजी दोषों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करें। केवल दूसरों के दोष देखते रहने से तो वर्तमान वातावरण और भी गन्दा तथा निराशाजनक बनता जायगा। लेकिन अगर हम सभी अपनी कमियों को दूर करते रहें तो फिर सारे राष्ट्र का आबोहवा अधिक साफ और आशाजनक बनती जाएगी।

हम उम्मीद करते हैं कि महात्मा गांधी जी की इन बुनियादी बातों की ओर सभी का एक बार फिर ध्यान जायगा। विशेषकर बुनियादी तालीम के शिक्षकों और विद्यार्थियों से तो हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वे आगामी गांधी जयन्ती के दिन ऐसे कार्यक्रम आयोजित करेंगे जिनसे कि बापू के आदर्शों की ओर झुकने का अवसर मिले।

ऋषि विनोबा की अस्सीवीं वर्षगांठ :

ग्यारह सितम्बर को ऋषि विनोबा ने अपने जीवन के अस्सीवें वर्ष में पदार्पण किया है। इस पवित्र दिन पर हम पूज्य विनोबा जी को सादर सविनय प्रणाम करते हैं।

पूज्य विनोबाजी में कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी का अद्भुत सगम है। कर्म की दृष्टि से वे भूदान पदयात्रा में लगभग चालीस हजार मील देश के कोने-कोने के गावों में चले हैं। 'भूदान' आन्दोलन में उन्हें करीब चवालीस लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई जिसमें पन्द्रह लाख एकड़ जमीन का बटवारा भी हो चुका है। अगले वर्ष अठारह अप्रैल को भूदान आन्दोलन का पच्चीसवां वर्ष प्रारम्भ होगा। बहुत अच्छा हो यदि तब तक भूदान में प्राप्त जमीन में से कम से कम पाँच लाख एकड़ जमीन और बट जाय तथा पाँच लाख एकड़ और नयी जमीन प्राप्त हो और वह भी

बट जाय। ऐसा होने पर हम सन् १९७५ में भूदान यज्ञ की रजत जयन्ती मना सकेंगे और यह निश्चित रूप से कह सकेंगे कि पच्चीस लाख एकड़ जमीन इस आन्दोलन द्वारा अहिंसक ढंग से बेजमीन लोगों में बाटी जा चुकी है। रजत जयन्ती मनाने का यही रचनात्मक ढंग अच्छा रहेगा। यदि देश के सभी सर्वोदय कार्यकर्ता इस काम में लगें तो सब दृष्टि से हितकर होगा। ऋषि विनोबा ने इन दिनों कई बार कहा है कि उनका भूदान आन्दोलन जितना सफल रहा है उतना ग्रामदान का नहीं। इसलिये नये ग्रामदान यदि प्राप्त न होते हों तो कम से कम भूदान ही प्राप्त किये जायें।

कुछ महीनों से पूज्य विनोबाजी बार-बार कह रहे हैं कि इन दिनों उनका विशेष ध्यान दो विषयों की ओर लगा है। एक तो सामूहिक ब्रह्म-विद्या की साधना और दूसरे, देवनागरी का सभी भारतीय भाषाओं के लिये एक अतिरिक्त लिपि के रूप में प्रचार। हमारे देश में व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना की परम्परा तो हजारों वर्षों से चली आ रही है, किन्तु अब यह जरूरी है कि यह साधना और तप सामूहिक हो। पवनार के ब्रह्म-विद्या मन्दिर में इसी प्रकार की सामूहिक साधना पूज्य विनोबा जी के मार्गदर्शन में निरन्तर चल रही है। देवनागरी के लिए भी कुछ महीने पहले गांधी स्मारक निधि द्वारा एक गोष्ठी आयोजित की गई थी जिसमें राष्ट्र के विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक और विद्वत्जन शामिल हुए थे। यह संतोष का विषय है कि इस कार्य में सभी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं का अच्छा सहयोग प्राप्त हो रहा है। हमें उम्मीद है कि इस ओर भी हमारे रचनात्मक कार्यकर्ता पूरी दिलचस्पी दिखायेंगे।

आजकल विनोबाजी मद्य-निषेध के बारे में भी बहुत बल देते हैं। उन्हें इस बात का बहुत दुःख है कि हमारी राज्य सरकारें दिन-प्रतिदिन शराब का पीना अधिक ढीला बनाती जा रही हैं। उन्होंने गत मार्च में पवनार में हुए स्त्री-जागृति सम्मेलन में भी प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की उपस्थिति में अपना गहरा दुःख व्यक्त किया और कहा कि जब तक देश में शराब बन्दी नहीं होती तब तक स्त्री-जागृति भी नहीं हो सकेगी। कुछ वक्त पहले जब राजस्थान के कर्मठ सेवक श्री गोकुलभाई भट्ट उनसे मिले थे तब भी विनोबाजी ने उनसे कहा कि यदि राजस्थान सरकार अगले आम चुनाव के पहले पूर्ण नशाबन्दी लागू न करे तो फिर हमें शासन के विरुद्ध सत्याग्रह करना ही पड़ेगा और उसमें मैं भी शामिल हो सकता हूँ। इस उद्गार से पूज्य बाबा के दिल की व्यथा साफ जाहिर हो जाती है।

विनोबाजी को देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के बारे में भी बहुत फिक्र है। वे कहते हैं कि अगर भारत की आबादी इसी तरह बढ़ती गई तो भूदान आन्दोलन और जमीन के बटवारे की सभी योजनाएँ बेकार साबित होंगी। जिन जमीन के टुकड़ों को हम बांट देंगे उनके और भी छोटे टुकड़े कुछ वर्ष बाद हो जायेंगे क्योंकि

इस बीच परिवारों की संख्या भी बढ़ जायेगी। अतः ऋषि विनोबा की हार्दिक इच्छा है कि कृत्रिम साधनों के स्थान पर देश में ब्रह्मचर्य का वातावरण पैदा किया जाय। उनका सुझाव है कि पच्चीस वर्ष के पहले विवाह न हों और चालीस वर्ष के बाद अधिक से अधिक लोग वानप्रस्थ आश्रम की विधिवत दीक्षा लें। इस प्रकार गृहस्थ आश्रम की सीमा केवल १५ वर्ष की रखी जाय ताकि परिवार की संख्या कम करने में मदद मिले। उनका यह भी सुझाव है कि यदि किसी परिवार में तीन भाई हैं तो उनमें एक भाई शादी न करे और अपना समय देश के विभिन्न रचनात्मक कार्यों में ही लगावे। दो भाई जो शादी करेंगे उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इस तीसरे अविवाहित भाई के भरण-पोषण की योग्य व्यवस्था कर दें। इस तरह विनोबा जी की दिली इच्छा है कि हम सभी का ध्यान संततिनियमन की ओर आकर्षित हो और भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों की आबादी पर प्राकृतिक ढंग से नियंत्रण किया जाय। ब्रह्मचर्य का वातावरण बनाने के लिये गन्दी फिल्मों और पोस्टरों के प्रचार पर सख्ती से पाबन्दी लगाई जानी चाहिये।

२१ अगस्त को ऋषि विनोबा ने अपने जीवन का एक नया क्रम प्रारम्भ किया है और वह है 'अति-सूक्ष्म' में प्रवेश। उस दिन उन्होंने मुझसे अचानक कहा कि आज से मैंने कुछ नये निश्चय किये हैं :—

एक तो अब मैं दैनिक समाचार-पत्र नहीं पढ़ूंगा। केवल रेडियो की खबरें मुझे लिखकर बतायी जाया करेंगी। हां, मैं साप्ताहिक और मासिक पत्र पढ़ूंगा। लेकिन वह भी नागरी लिपि में। दूसरे, अब मैं इण्डियन इगलिश का साहित्य नहीं पढ़ूंगा। विदेशी इंगलिश की किताबें और साप्ताहिक व मासिक पत्रिकाएँ पढ़ सकूंगा। इन्हीं दिनों मैंने भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा हाल में ही छपी श्रद्धेय जमनालाल बजाज सम्बन्धी अपनी अंग्रेजी की पुस्तक उन्हें पढ़ने को दी थी। विनोबाजी ने मुस्करा कर कहा, 'अंग्रेजी में लिखी आपकी यह पुस्तक मैंने आखिर-तौर पर पढ़ी है। अब भविष्य में भारतीयों द्वारा लिखित अंग्रेजी की कोई पुस्तक नहीं पढ़ूंगा।' जब मैंने उनसे पूछा कि आपने सूक्ष्म प्रवेश के लिये ये निश्चय क्यों किये हैं तो उन्होंने फौरन उत्तर दिया— 'दैनिक समाचार-पत्रों को पढकर अपना समय क्यों बर्बाद करूं? उनमें दिन-प्रतिदिन यही खबरें पढ़ने को मिलती है कि कहीं बाढ आई, कहीं सूखा पडा, कहीं कोई दगा हो गया और कहीं कोई आकस्मिक घटना में कुछ लोग मर गये। इस तरह के समाचारों को पढने से क्या लाभ? मैं तो उस दिन की राह देखता हूँ जिस दिन अखबारों में पढ़ने को मिलेगा कि अब दुनिया की एक सरकार बन गई और वर्तमान राष्ट्र उसके प्रान्तों के रूप में काम करेंगे। तभी तो सच्ची और स्थायी विश्व-शान्ति हो सकेगी न? जब अखबारों में इस तरह की खबरें प्रकाशित होने लगेंगी तो शायद मैं फिर अखबारों को पढने की सोचूं। दूसरे, मेरी हार्दिक इच्छा है कि

भारतीय व एशिया की विभिन्न भाषाओं के लिये देवनागरी का एक अतिरिक्त लिपि के रूप में तेजी से प्रचार हो। इसलिये मैं भारतीय विद्वानों का वही साहित्य पढ़ना चाहूँगा जो नागरी लिपि में प्रकाशित हो। भारतीय लेखक यदि अंग्रेजी भाषा किन्तु नागरी लिपि में अपनी पुस्तकें छापें तो मैं उन्हें भी पढ़ने को तैयार हूँ।'

ऋषि विनोबा इन दिनों यह भी कहने लगे हैं कि 'मैंने पूज्य बापू की उम्र भी पा ली है और अब अस्सीवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूँ। भगवान बुद्ध भी इसी उम्र में चले गये थे। इसलिये यदि मैं भी अस्सीवें वर्ष में चला जाऊं तो भगवान बुद्ध का सत्संग सहज प्राप्त होगा। अतः मेरा जिसको जो उपयोग लेना हो शीघ्र ले लें। भविष्य का कोई ठिकाना नहीं है।'

एक बार श्रद्धेय जमनालालजी ने पवनार में ही मुझसे कहा था— मैं विनोबा को भारत के बड़े से बड़े ऋषियों के समान मानता हूँ। आज भले ही हम उन्हें पूरी तरह से न समझें, किन्तु भविष्य में वे हमारे देश के बहुत उच्च कोटि के ऋषि के रूप में सम्मानित होंगे। मेरा भी पक्का विश्वास है कि पूज्य जमनालालजी के ऊपर दिये गये उद्गार बिलकुल सच है। ऋषि विनोबा का उपयोग केवल हमारे राष्ट्र के लिये ही नहीं, सारे संसार के लिये होना चाहिये।

तामिलनाडु में फिर नशाबन्दी :

हमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि एक सितम्बर से तामिलनाडु शासन ने अपने क्षेत्र में फिर नशाबन्दी लागू कर दी है। इस कदम के लिये हम वहाँ की सरकार को हार्दिक बधाई देना चाहते हैं।

हम जानते हैं कि मद्रास प्रान्त में सन् १९३८ से ही नशाबन्दी लागू की गई थी। इसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय राजाजी को था। किन्तु दो वर्ष पहले तामिलनाडु सरकार ने मद्य-निषेध को रद्द कर दिया था और वहां शराब खुले तौर पर पीने की सुविधा दे दी गई थी। लेकिन हमें खुशी है कि तामिलनाडु शासन ने जल्द ही अपनी गलती समझ ली और वहां फिर मद्य-निषेध का कार्यक्रम गम्भीरता से शुरू कर दिया गया है। हमें इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इस अच्छे कदम से वहाँ की गरीब जनता का बहुत फायदा होगा। हमने बार बार कहा है कि मद्य-निषेध को 'गरीबी हटाओ' आन्दोलन का अविभाज्य अंग मानना चाहिये।

हम आशा करते हैं कि भारत की अन्य राज्य सरकारें भी तामिलनाडु सरकार के इस सराहनीय कार्य का महत्व समझेंगी और अपने यहाँ भी पूरी नशाबन्दी सचालित करनेका सकल्प करेंगी। इसके बिना देश की गरीबी स्थायी ढ़ग से हटाना नामुकिन है।

—श्रीमन्नारायण

हम इसी अकमें अन्यत्र नयी तालीम के यूरोप स्थित प्रतिनिधि की एक रिपोर्ट दे रहे हैं। उससे पता लगेगा कि आज पश्चिम में युवकों में पिछले अनेक युगो के गहन भौतिक सुखभोग और उससे उत्पन्न हिंसात्मक वितृष्णा के बाद यथास्थितिवाद के विरुद्ध एक नये अहिंसक विकल्प की खोज के लिये बेचैनी है। अपनी इस खोज के क्रम में वे पहले सालों तक चेग्वारा, कॅस्ट्रो, मार्क्स और माओ की गोद का सुख-भ्रम देखने के बाद अब गाधी की ओर मुड रहे हैं और अहिंसात्मक मार्ग से समाज परिवर्तन की अहिंसात्मक तकनीक की खोज व प्रयोग करने के लिये प्रयास कर रहे हैं। क्या भारताय युवक इससे कुछ सीखेंगे ?

हमारे देश में भी युवकों में प्रचलित समाज व्यवस्था के विरुद्ध तथाकथित असन्तोष बताया जाता है। तथाकथित इसलिये कि यदि हम गहराई से देखें तो हमारे देश के युवक अभी जिस ढग से काम करते हैं उससे यह नहीं लगता कि वे सचमुच समाज परिवर्तन में कोई गभीर रुचि रखते हैं। बल्कि उनमें आज जो कुछ असन्तोष दिखाई देता है वह प्रचलित समाज के ही दायरे में बस जनता रूपी 'घोडे पर सवारी करने की हापाधापी' में अपनी जगह न मिल सकने की चिढन मात्र है। इसके उदाहरण कई तरह से दिये जा सकते हैं। आये दिन जरा जरा सी बातों पर उनका बिगड पडना और फिर हिंसा, आगजनी और यहाँ तक कि लूट भी कर बैठना इसी प्रवृत्तिका द्योतक है। अभी अभी युवक कांग्रेस की दिल्लीमें राष्ट्रीय रैली हुई जो, कहा जाता है कि, यह जताने के लिये आयोजित की गयी कि देश जान सके कि प्रधानमत्री के साथ ही देश का युवक है। कहते है इसमें कोई ३ लाख युवक आए थे और इस पर १ करोड से भी अधिक रुपया व्यय किया गया। किन्तु इस सगठन के सदस्यो ने मार्ग में आते जाते जिस तरह की हरकतें की हैं वे तो अत्यन्त ही घृणास्पद और निंदनीय थीं और हम मानते हैं कि इससे प्रधानमत्री की शक्ति बढाने में उन्होंने जरा भी योगदान नहीं किया। फिर इसी क्रम में दिल्ली विश्व विद्यालय में अभी सम्पन्न हुए विद्यार्थी सगठन के चुनाव भी लिये जा सकते हैं। यह चुनाव मद्रास के 'हिन्दू' दैनिक के दिल्ली स्थित सम्वाददाता के अनुसार तो 'एक लघु आम चुनाव' ही था। जनसघ (विद्यार्थी परिषद) और कांग्रेस (युवक कांग्रेस) दल दोनो ने ही इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर काम किया और इसमें बाजी जनसघ के हाथ रही। इसमें शिक्षकों ने भी अपनी आदत के अनुसार ही दलो में बंटकर खुलकर काम किया और छात्रों से पैसे, डडे और अन्य गैर जनतान्त्रिक तरीकों से मत लेने की सारी प्रक्रिया में दोनो दलो की ओर से की गई। अब हमारे युवक यह सब करें और वह भी क्रान्ति के नाम पर तो इस देश का क्या भविष्य हो सकता है।

एक असभ्य और जंगली प्रथा :

आज कल कालेजों में नये प्रवेश हो रहे हैं और नये छात्रों को 'रैगिंग' के नाम पर जिस ढंग से तंग और अपमानित किया जाता है वह भी हमारे ये ही युवक करते हैं। नये छात्रों से पुरानों को सलाम बजवाना, नाक रगड़वाना, नंगे होकर तरह तरह की गंदी हरकतें कराना, मूछें मुड़वाकर उन्हें सरे आम हंसी मजाक का साधन बनाना आदि बातें इस नितान्त 'असभ्य और जंगली प्रथा' के नामपर होती हैं। आश्चर्य और दुख तो इस बात का है कि शिक्षक भी इस तरह की हरकतों में कई बार शामिल रहते हैं और जानकर भी अनजान तो वे हमेशा ही रहते है। मेडीकल और इंजीनियरिंग कालेजों में ये हरकतें किस कदर बढ़ गई हैं यह इसी से प्रकट है कि अभी अभी दिल्ली और नागपुर से खबरें प्रकाशित हुई हैं कि कई छात्र इस पर तंग आकर कालेज छोड़ने के लिये ही विवश हुए हैं। यहाँ तक कि अब जब किसी एम पी. के लड़के पर तक नौबत आई तो बात प्रधानमन्त्री तक पहुँची और प्रधानमन्त्री ने इस पर सख्त नाराजी भी प्रकट की। पता नहीं यह कमीनी प्रथा हमारे देश में कब और कहाँ से आई किन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि हमारे युवक और इनके ये संगठन जो अन्य समयों पर भारी हो हल्ला मचाते हैं, बेचारे नये अनजान छात्रों पर इस तरह का अपमान लादे जाने के समय पर कहाँ रहते हैं। कालेज और विश्व विद्यालयों में आज चुनाव के नाम पर बेहद धन खर्च करके जो भ्रष्टाचार पनपाया जाता है उसके, विरुद्ध ये युवक संगठन क्या करते हैं। कालेजों में माँ-बाप की गाढ़ी कमाई को चाय, पकौड़ी तथा रात को सिनेमाओं पर बिना दर्द खर्च करनेवाले ये युवक क्या समाज परिवर्तन करेंगे ? युवक संगठन और युवक भी इस पर विचार करें। हमारा तो यह कहना है कि यदि समाज से भ्रष्टाचार समाप्त करना है तो शिक्षकों और युवकों को भ्रष्टाचार का प्रशिक्षण देने वाली इन तथ कथित शिक्षण संस्थाओं और संगठनों को समाप्त करना आवश्यक है और रैगिंग जैसी असभ्य प्रथा जिस भी कालेज में होती है उसकी सारी मान्यता व ग्रान्ट तत्काल बंद की जानी चाहिये। देश को रेवड़ बनकर हो हल्ला मचाने वाले 'यूथ' नहीं, 'तारने' वाले 'तरुण' चाहिये।

जे पी का आवाहन.

अभी अभी इलाहाबाद में भाषण करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण जी ने पुनः कहा है कि देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन आवश्यक है और उस क्रम में पहला काम यह हो कि डिग्री से नौकरी का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाय। हम जे पी के इस आवाहन का हार्दिक स्वागत करते हैं। नयी तालीम के पाठकों को स्मरण होगा कि नयी तालीम के मंच से हम यह बात कब से कह रहे हैं और सन् १९७२ की अक्टूबर में हुए सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने भी यह बात कही थी। यहाँ तक कि कोठारी कमीशन ने भी प्रकारान्तर से यही बात कही है। और इस

पर यों भी कई खासकर व्यापारी और इंजीनियरिंग शिक्षण संस्थायें तो अमल करती ही रही हैं और वे अपने काम के लिए अपनी टेस्ट परीक्षाएँ लेते ही हैं। जैसे मेडीकल में इंटर या एम. ए. की डिग्री का नहीं अपितु उसकी टेस्ट परीक्षा का महत्व है वैसे ही सर्वत्र क्यों नहीं कर दिया जाता। अभी पिछले दिनों संसद में बोलते हुए केन्द्रीय शिक्षामंत्री ने कहा कि प्रचलित परीक्षा पद्धति सर्वांगत दूषित है किन्तु हम इसे बदलने में असमर्थ हैं। तब फिर शिक्षा में परिवर्तन का सरकारी ढोंग करने की क्या आवश्यकता है? इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अब यह काम असल में सरकार से होगा ही नहीं। शायद सरकार करना भी नहीं चाहती। यह काम तो समाज को ही करना होगा और इसकी शुरुआत यों की जा सकती है कि लोग डिग्री लेना ही बंद कर दें। व्यापारी और अन्य काम दिलाऊ संस्थान कह दें कि हम अपने लिये स्वयं ही आदमी छांट लेंगे और हमारी परीक्षा ही उसके लिए एकमात्र योग्यता होगी। सरकार के द्वारा मान्य डिग्री को हम मान्य नहीं करेंगे। जब तक इस तरह के कोई साहसी कदम नहीं उठते तब तक शिक्षा में परिवर्तन की बात स्वप्न ही रहेगी।

शिक्षा की स्वायत्तता पर एक नया हमला :

अभी हाल ही में केन्द्र सरकार ने एक पत्र भेजकर केन्द्र से सहायता पाने वाली सभी शिक्षण संस्थाओं को कहा है कि वे अपने यहां से भाषण देने या अध्ययनार्थ कहीं बाहरी देशों को भेजने या बाहर से अपने यहाँ बुलाये जाने वाले विद्वानों के नामों पर पहले केन्द्र सरकार की सहमति प्राप्त कर लें। बिना सरकार की इस प्रकार की अनुमति पहले से प्राप्त किये वे अब यह काम न करें।

अब सरकार के इस निश्चय के पीछे उसकी क्या मंशा है यह तो अभी साफ नहीं है किन्तु शायद इसका अर्थ यह हो कि सरकार इस बहाने अपने विद्वानोंके बाहर भागे जाने और अपने देश की शैक्षणिक और सांस्कृतिक गतिविधि में बाहरी हस्तक्षेप पर रोक लगाना चाहती है। यह बात एक नजर से तो उचित है कि इस तरह की कोई व्यवस्था हो कि जिससे अपने विद्वान् देश के खर्चे पर पढ़ लिखने के बाद फिर केवल अपने स्वार्थ के लिये बाहर न चले जांय। यह भी उचित नहीं है कि कोई बाहरी देश इस तरह के सांस्कृतिक आदान प्रदान की आड में हमारे बौद्धिक जीवन पर असर डाले। आज इस तरह का असर काफी दूर तक डाला जा रहा है और खासकर रूस तथा अमरीका तो इस मामले में बहुत दूर तक काम कर रहे हैं। आज हमारे देश की शायद ही कोई बड़ी शिक्षण संस्था ऐसी हो जिसमें कोई रूसी या अमरीकी मदद के बहाने इस प्रकार के विदेशी प्रभाव काम न कर रहे हों। देश के लिये यह दोनों बातें हानिकर हैं और इसपर रोक लगाना उचित है।

किन्तु सरकार ने यह काम जिस ढंग से किया है यह उचित नहीं है। इससे तो अब विश्व विद्यालयों और सरकारी दोनों ही जगह के नौकरशाहों की बन आयेगी।

वे तो कोई बहाना खोजते रहते हैं कि जिससे वे अपनी पकड सार्वजनिक जीवन पर और मजबूत कर सकें। अब आखिर यह फैसला कौन करेगा कि कौन बाहर भेजा जाय या बाहर से बुलाया जाय। विद्वानों पर सरकार या नौकरशाहों का इस तरह का नियन्त्रण किसी भी लोकतान्त्रिक देश के हितमें नहीं है। यह ठीक है कि आज हमारे विश्व विद्यालय इस विश्वास के योग्य नहीं रह गये हैं कि उन पर ही यह काम छोड दिया जाय। किन्तु सरकार यह काम अन्य तरह से भी कर सकती थी। यदि शिक्षा और विज्ञान सरकार और बाजार इन दो में से किसी के भी हाथ में रहे तो मानवजाति का अनिष्ट अवश्यभावी है। पूंजीवादी देशों में भी इन पर बाजार का व तथा-कथित समाजवादी देशों में सरकार का कब्जा है। किन्तु मानव जाति के लिये वे दोनों ही संकट हैं। क्योंकि इस तरह से तो सरकार अपनी पसंद या नापसन्द के विचारों की छटनी करके विचार-स्वातंत्र्य पर पूरा काबू कर सकती है और उसकी पूरी कोशिशें भी इसके लिए हैं। इसलिए हमारा तो यह भी कहना है कि शिक्षा पर से सरकार का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप एकदम समाप्त हो जाना चाहिये। अत यह काम सरकार के बजाय किसी उच्चाधिकार प्राप्त विद्वान समिति को सौंपना चाहिये जिसमें सरकार के भी प्रतिनिधि हों। उसकी सिफारिस पर ही विद्वानों का आदान प्रदान हो। शिक्षा की स्वायत्तता के लिये यह आवश्यक है।

—–कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

विनोबा

राष्ट्रीय एकता का नागरी लिपि के अलावा दूसरा साधन नहीं

(दिनांक ६ जुलाई ७४ को ब्रह्म विद्या मंदिर, पवनार (वर्धा) में केन्द्रीय कृषि राज्यमंत्री प्रो. शेरसिंह और विनोबाजी का उदबोधक वार्तालाप।)

शेरसिंह —छात्रों का आदान प्रदान देश में बड़ी संख्या में होगा। एक दूसरे की भाषा सीखें इस दृष्टि से यह होगा। सब भाषाओं को जानने के लिए हिन्दी माध्यम बनेगा उसका मार्ग प्रशस्त है।

हिन्दी वालों का मुफ्त का राष्ट्राभिमान

विनोबा —हिन्दी भाषा वाले मुफ्त में राष्ट्राभिमानी बन गये हैं। बचपन से हिन्दी सीखे हैं और हिन्दी राष्ट्रभाषा है। तो राष्ट्राभिमान बन जाते हैं। दक्षिण भारत वालों से कहते हैं हिन्दी सीखो। हिन्दी का खूब प्रचार होगा। बाबा वेलोर जेल में था तो ५-६ महीने में चार भाषाएं सीखी। एकदम चारों भाषाएं सीखी। मुझे किसी ने पूछा आप चारों भाषाएं एकदम क्यों सीख रहे हैं? मैंने कहा पाँच नहीं है इसलिए। पाँच भाषाएं होतीं तो पाँचों एकदम सीखता। वे (दक्षिण की) चारों भाषाएं नजदीक हैं।

शेरसिंह —हिन्दी भाषा?

विनोबा —ठीक है। बाबा ने कई बार कहा है। लेकिन बाबा की अपनी राय है हिन्दुस्तान में संस्कृत राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। प्रो. रमन साइंटिस्ट थे। उनकी भी यही राय थी। संस्कृत भाषा में साइंस उत्तम प्रकाशित होगा। कई पारिभाषिक शब्द संस्कृत होंगे। इस वास्ते राष्ट्रभाषा संस्कृत होगी तो सबको समान रूप से कठिन होगी। वेद उपनिषद गीता इत्यादि ग्रंथ हैं। संस्कृत सीखने के लिए ऐसे ग्रंथों का आधार लेना चाहिए। संस्कृत भाषा बहुत मधुर है और समान रूप से कठिन है। सबको सीखने में लगभग समान तकलीफ होगी।

शेरसिंह —सभी भारतीय भाषाओं के साथ साथ लोग संस्कृत सीखें।

विनोबा —यह ठीक है। आप देखिए संस्कृत में दो हजार धातु हैं और २० उपसर्ग हैं। उपसर्ग जोड़ने से संस्कृत के लगभग ५ लाख शब्द बनते हैं। Attention Detention, Tension इनमें Tend धातु है वह संस्कृत तन से बनी है। उपसर्ग द्वारा शब्द बनाने की यह प्रक्रिया इंग्लिश में भी है। के नाम पर से भी

धातु बनाते हैं। Boat से Boating, Mother से Mothering धातु बनता है। वैसे संस्कृत में भी तरुण, तरुणायते, वृद्ध, वृद्धायते। प्रहार, आहार, उपसहार, सहार, विहार, इसी तरह अनुसधान सधान, विधान, आदि उपसर्ग लगाकर असख्य शब्द बनते हैं।

यूरोप का शब्द भडार संस्कृत का चौथाई भी नहीं :

शेरसिंह —संस्कृत के अलावा कौन-सी भाषा है जिसमें इतनी शब्दावली है ?

विनोबा —संस्कृत की जितनी शब्द सपत्ति है उसका एक चौथाई भी योरप की किसी भाषा मे नही है। सप्त दश, अष्ट, यही सब सप्टबर (सप्त), अक्टूबर (अष्ट), दिसम्बर (दश) लिया है। मार्च मे वर्ष का आरम्भ पहले माना जाता था—मार्च से दिसम्बर। लेकिन ज्योतिषियों ने कहा १२ महीने होंगे तो अच्छा होगा। Unick March यानी आरम्भ। सस्कृत मे सप्त है September मे 'P' Silent है वही सप्त है। फ्रेंच मे सात के लिए Sept है। लेकिन 'P' का उच्चारण उसमे नही है। मत कहेंगे। वह सदा मे है है। P उसमे है। वैसे ही अंग्रेजी मे Two है। वह द्वि' मे है W' जो है वह व है। फ्रेंच के हजारो शब्द सस्कृत से बने हैं।

शेरसिंह —रूसी भाषामे भी संस्कृत शब्द हैं। आदिनाथ, पष्ठ श्रीसेन, प्रियवाचिक, ऐसे शब्द उस भाषाम है।

बाबा —रूस मे सस्कृत है ही। उनका 'रशिया' शब्द है वह 'ऋक्ष' धातु से बना है। ऋक्ष यानी रीछ Great Bear

शेरसिंह —उनका National Animal (राष्ट्रीय-पशु) भी वही है।

बाबा —अपनी सरकार ने रशियन भाषाका कोश बनाया परन्तु उसमे हर शब्द का उच्चारण दिया नही है।

शेरसिंह —रशियन भाषा का उच्चारण सुनकर लगता है कि वह नागरी मे ज्यादा अच्छी लिखी जा सकती है— उनकी लिपि की अपेक्षा।

बाबा — न' का स्पेलिंग No होता है। Know का उच्चारण भी 'नो'। लेकिन वह आता है K' में। ऐसे ही न' अलग जगह चला जाता है। मेरी इच्छा है कि अंग्रेजी कोश में सारे शब्द नागरी में लिखे जायें और उन्हें अल्फाबेटिक अरेंज करें। मैंने मेरे कोश में १२००० शब्द मार्क किये हैं। वह डिक्शनरी लंदन में भी चलेगी Put 'पुट' और But बट' यह रामल भाषा की अराजकता है। इस सम्बन्ध मे आप सब मिलकर तय कर सकते हैं। मैंने गोवडे जी (नागपुर टाइम्स अंग्रेजी दैनिक के सम्पादक, जो चर्चा में उपस्थित थे।) को सुझाया कि ३२ पृष्ठ की मासिक पत्रिका अंग्रेजी भाषा और नागरी-लिपि में चलायी जाये।

विनोबा

मेरे अपने बारेमें :

(इसी ११ सितम्बर को पूज्य विनोबा जी अपने जीवन के ८० वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। आज से ठीक ५८ साल पहले, अपनी युवावस्था के प्रवेश पर ही, वे आत्मज्ञान की खोज में घर त्यागकर हिमालय जाने के लिये निकले किन्तु पहुँच गये बापू के पास। सचमुच कैसा अद्भुत सयोग था यह। आज तक लोग आत्मज्ञान की खोज के लिये हिमालय ही जाते रहे हैं किन्तु गाधी जी के पास भी विनोबा को वही चीज मिल गई और आज आत्मज्ञान का खोज के खोजी विनोबा 'समाधान कारक आत्म-दर्शन' के सुखद अनुभव में जी रहे हैं। इसी में उन्हें भारत के भविष्य का भी चित्र मिल गया है। गाधी विनोबा का यह सगम हृदय और बुद्धि का ही सगम है और इसे ही हम लोग चेतना कहते हैं। विनोबा आज भारत की चेतना के प्रतीक बन गये हैं। गाधी विनोबा का सगम भारतीय इतिहास की अत्यन्त मार्मिक घटना है और इसका प्रभाव जानने में अभी ससार को काफी समय लगेगा। इस ऐतिहासिक प्रसगकी कहानी स्वय विनोबा की जबानी हम यहाँ 'नयी तालीम' के पाठकों के लिये दे रहे हैं। आशा है यह पावन प्रसग पाठकों को प्रेरणादायी बनेगा। इस अवसर पर हम 'नयी तालीम परिवार' की ओर से ऋषि विनोबा को शतश प्रणाम करते हुये ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वह इस प्यारे भारत देश में ऐसे पावन प्रसग बार बार उपस्थित करे।)

सन् १९१६ की बात है। मैं बडौदा के कालेज में इण्टर में पढता था। मुझे उस समय आत्मज्ञान की इच्छा हुई, इसलिए कालेज का जीवन फाका मालूम पडने लगा।* आखिर कालेज छोडने और घर-त्यागने का निश्चय किया। गृह-त्याग कर मैं सोचना था कि हिमालय चला जाऊँ। लेकिन कुछ दिन काशी में रहकर बाद में वहाँ जाऊँगा,यह तय किया। जब मैं काशी गया तो वहाँ बापू के एक व्याख्यान की चर्चा चल पडी थी। वहाँ की हिन्दू युनिवर्सिटी में गाधीजी का यह व्याख्यान

---

* इस समय विनोबा की उम्र केवल २१ साल की थी। —सपादक

हुआ था। उस व्याख्यान में उन्होंने अहिंसा के बारे में बहुत-सी बातें बतायी। मुख्य बात यह थी कि निर्भयता के बिना अहिंसा चल ही नहीं सकती। मन ही-मन हिंसा का भाव रखने की अपेक्षा खुलकर हिंसा की जाय तो भी वह कम ही हिंसा मानी जायेगी। यानी मानसिक अहिंसा ही मुख्य अहिंसा है और वह बिना निर्भयता के आ नहीं सकती। उस भाषण में उन्होंने उन राजा महाराजाओं की भी कसकर आलोचना की जो तरह-तरह के आभूषणों से सज हुए आये थे। वह व्याख्यान बहुत ही प्रसिद्ध व्याख्यान हुआ। इस लिये उसकी बड़ी विशेष चर्चा रही। मैं वहाँ पहुँचा तो उस ऐतिहासिक व्याख्यान को एक महीना हो चुका था, फिर भी नगर में उसकी शोहरत रहा। जब मैंने वह व्याख्यान पढ़ा तो कितनी ही शंकाएँ और जिज्ञासाएँ उठ खड़ी हुईं। इसलिये मैंने बापू के नाम पत्र लिखा जिसमें अपनी जिज्ञासाएँ उनके समक्ष प्रस्तुत की थी। उन्होंने उस पत्र का मुझे बहुत ही अच्छा जवाब दिया।

जीवन ही समाधान है :

आप सबको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने अपना सारा पत्र-व्यवहार अग्नि नारायण को अर्पण कर दिया। बचपन में भी मैं इसी तरह अच्छे-से-अच्छा कविता बनाकर उस अग्नि नारायण को सौंप देता था। मेरी यह विध्वंसक वृत्ति बचपन से चली आ रही है और आज भी कायम ही है। इसीलिए मेरे पास आज एक भी पत्र नहीं है। हाँ तो बापू ने पहले पत्र में कुछ विस्तार के साथ मेरी शंकाओं का उत्तर दिया था। उसके जवाब में १०–१५ दिन बाद मैंने पुनः उनसे कुछ शंकाएँ पूछी। तब उनका एक कार्ड आया कि "आपने अहिंसा के बारे में जो जिज्ञासाएँ की हैं उनका समाधान पत्र-व्यवहार द्वारा नहीं हो सकता। उसके लिये जीवन से ही स्पर्श होना चाहिये। इसलिये कुछ दिन के लिये मेरे पास आश्रम में आइए और रहिए तो धीरे धीरे बातचीत हो सकती है। उनका यह जवाब कि 'समाधान बातों से नहीं, जीवन से होगा' मुझे जँच गया। मुझे जाना था हिमालय की ओर। हिमालय काशी से उत्तर की ओर था जब कि यह आश्रम अहमदाबाद के नजदीक कोचरब में। अब हिमालय जाने के बदले बापू के पास जाने की ही इच्छा जाग उठी।

सत्य की खोज में गांधी के पास :

फिर, उस जवाब के साथ बापू ने आश्रम का एक नियम-पत्रक भी भेजा था, जो मेरे लिये और भी आकर्षक हुआ। उस समय तक किसी भी संस्था का वैसा पत्रक मेरे पढ़ने में नहीं आया था। उसमें लिखा था कि 'इस आश्रम का ध्येय विश्वहित—अविरोधी देश सेवा है और उसके लिए हम निम्नलिखित व्रत आवश्यक मानते हैं।" नीचे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय अपरिग्रह, शरीरश्रम आदि एकादश व्रतों के नाम लिखे थे। मुझे यह बहुत ही अजीब मालूम पड़ा। कौन ऐसा देश होगा, जहाँ देश के उद्धार के लिये सत्य और अहिंसा से नाता जोड़ा गया हो? मैंने बहुत-से इतिहास

होती थी पर अधिक नहा। मैं अपने काम में ही मग्न रहता जब कि काम करने का मुझ कोई खास शौक नही था। फिर भ। पारमार्थिक दीक्षा के तौर पर मैं यह कर रहा था। बापू जब भा बातें करते तो उनमें सत्यनिष्ठा अहिंसा शक्ति ब्रह्मचर्य आदि विषयों पर काफी विवेचन हुआ करता था। उसके साथ साथ शाक बनाने का बातें भी चला करती थी। कौन सा शाक ले आये और वह किस भाव स मिला आदि रसोई व्यवस्था राज्य न ति देशहित और परमार्थ— सभी बातों की खिचड़ी रहा करती थी। सब विचार मिलाकर देख जाय तो परस्पर विरोधी भी दीखते थ। लेकिन शरीर में नख स शिखा तक विभिन्न विरुद्ध अवयव होत हुए भी जैसे वे शरीर ही हैं वैसे ही य सभी विचार भिन्न भिन्न होते हुए भा एक हा जावन के अंग थ। पारमार्थिक जीवन का जो मूल्य है वही साधारण कामों का भी मूल्य है। इसी तरह सारा काम चलता रहा।

आत्म विद्या का साक्षात्कार

फिर तो मेरा यह आकर्षण दिन पर दिन बढता ही गया। उसके बाद मेरी मूल कल्पना कुछ संस्कृत पढन की थी। इसलिये एक वर्ष का छुट्टी लेकर मैं आश्रम छोड़कर चला गया। लेकिन काम पूरा न होने से दो महीने और छुट्टी मांगी और जिस क्षण आश्रम छोड़ा उस दिन से ठीक १ वर्ष २ मास पूरे कर पुन आश्रम में आ पहुंचा। बापू तो यह भूल ही गये थे पर मैं समय पर आ पहुँचा इसकी उन पर गहरी छाप पडी। वे समझ गये कि यह आदमी जो वचन देता है उसका पूरी तरह पालन करता है इसलिये इसमें कुछ तो सत्यनिष्ठा है ही। इसीलिये उन्होंने बडे प्रेम स मेरे दोष सहन किये। आखिर वे दोष मुझे छोड निराश होकर भाग गये। जिस तरह गरीबों को उनके सगे-सम्बन्धी छोड जाते हैं उसी तरह मुझसे काफी प्यार करने वाले मेरे दोष भी मुझे छोडकर चले गये। सन १९१६ की बात हुई। उसके बाद मैं चार बरस तक साबरमती आश्रम में रहा। मुझे वहाँ आत्म विद्या की शिक्षा प्राप्त हुई। पुस्तकी विद्या नहीं उसे पाने के लिये तो मैं खुद समर्थ था। लेकिन यहाँ तो प्रत्यक्ष अनुभव की शिक्षा प्राप्त हुई।

समाधानकारक आत्मदर्शन हो गया

वर्धा-आश्रम में रहते हुए अध्ययन अध्यापन चिंतन मनन आदि भंगी काम से लेकर रसोई तक के काम और विचारों की सुश्रूषा एवं खादी-काम आदि जो भी विचार सूझ पड़े उन पर मैं अपनी शक्ति भर अमल करता रहा। किन्तु उन सबमें मेरी एक ही दृष्टि था और वह थी आत्म-दर्शन की। मुझे यह कहते हुए आनन्द होता है कि मेरा समाधान होने भर का आत्म-दर्शन मुझे हो गया है। मैं मानता हू कि परिपूर्ण दर्शन तो सदैव दूर ही रहता है और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों वह दूर भागता जाता है। उसके और हमारे बीच सदैव खेल (आँख मिचौनी) चलती

रहती है और उस खेल में ही मजा है। आत्म-दर्शन का स्पर्श होने पर तो यह खेल ही खत्म हो जाता है। फिर तो आनन्द ही रफू हो जाता है। इसलिये आत्म-दर्शन और हमारे बीच थोड़ा अन्तर रहता है, अच्छा है। यह सब है कि मानव-जीवन में आत्मदर्शन की प्रेरणा रहती है, लेकिन क्षणभर का आत्म-दर्शन हो जाय तो मानव निश्चित, निर्भय और निःशंक हो जाता है। यही अनुभव में आता है। घर और कालेज छोड़ने में मेरी यही मुख्य प्रेरणा थी।

सतत बोलने का मेरा स्वभाव है और बचपन से अभी तक रहा है। आज एक बड़े और विशाल क्षेत्र में बोलना होता है। बचपन में भी विद्यार्थियों के सामने, आश्रमवासियों के सामने, मित्र-मंडलों के सामने निरन्तर बोलने का और चर्चा करने का मेरा काम रहा है। बचपन में बोलने पर मैं बहुत अंकुश नहीं रखता था। मन में सहज जो आ जाता था, वही बोल लेता था। मेरे सब मित्र जानते थे कि इस मनुष्य के अन्दर और बाहर, ऐसे दो प्रकार नहीं हैं। जो अन्दर है, वही बाहर आता है और बाहर दीखता है, वही अन्दर है। इसलिये मैंने चाहे जितने प्रहार किये हों, तो भी कभी किसी का मन दुःखी नहीं हुआ, किसी का दिल नहीं टूटा। फिर गांधीजी के साथ सम्बन्ध आया तो मैं ऐसा मानता गया कि धीरे धीरे वाणी पर अंकुश रखना चाहिए। खास करके विषम प्रसंग पर। बापू ने रोज प्रार्थना में गीता के बारे में या जो सूझे, वह कहने के लिये कहा। बहुत बार तो उनकी हाजिरी में भी मैंने कहा है। वे कभी आश्रम में गैर-हाजिर होते थे, तब तो मैं बोलता ही था, पर हाजिर हों, तो भी बोलना पड़ता था। बीच में पाँच-सात दिन के लिये वे आये हों, तो एकाध दिन वे बोलते थे और फिर मुझसे कहते थे कि आप ही बोलें। बापू स्वयं श्रोताओं में बैठे हों, तो विशिष्ट मिनिटों में ही विषय खतम करना पड़ता था। इसलिये उन दिनों संयम का मुझे बहुत ही सुन्दर अभ्यास हुआ। कभी-कभी कुछ ज्यादा शब्द भी मैं कह देता था, तो आश्रम में मेरे बारे में कुछ व्यक्ति शिकायत करते थे। परन्तु बापू ने मुझे कुछ नहीं कहा। दूसरों के सामने तो वे मेरा बचाव ही करते थे। बाद में मालूम होता था कि बापू को मेरा बचाव करना पड़ा। तब मुझे लगता था कि बापू को भी बचाव करना पड़ा, यह अच्छा नहीं है। इस तरह मुझे संयम का बहुत शिक्षण मिला और संयमपूर्वक बोलने में मैं उस्ताद हो गया। फिर तो पन्द्रह-बीस साल तक सारे समाज की दृष्टि से मेरा एक मौन जैसा ही चला। जब मैं वर्धा गया, तब लोगों के साथ बोलना ही नहीं रहता था। पर आश्रम में अध्यापन, गीता वगैरह सिखाना चलता था। सार्वजनिक व्याख्यान के प्रसंग नहीं आते थे, परन्तु जब कभी मौका आता था, तो वाणी पर किसी प्रकार का संकोच या अंकुश नहीं रखना चाहिए, ऐसा नियम करके ही मैं निकला। इसलिये अब मेरे मुँह में जो आता है, वह कहता हूँ। यह परमेश्वर की प्रेरणा है, ऐसा मानकर ही बोलता हूँ।

बापू ने भारत में आकर क्या किया ?

आज की दुनिया में जो चलता है वह भगवान स्वयं सहन करता है। इसलिये मैं सहन न करूं तो नहीं चलेगा यह मैं जानता हूँ। तिस पर भी मेरे लिए यह असह्य हो जाता है। आज समाज में जिस तरह का व्यवहार होता है और राजनीति में जो व्यवहार चलता है राजनीति और धार्मिक क्षेत्र में जो दंभ दीखता है वह सब देखकर मुझे वेदना होती है और मैं अपनी वेदना बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता हूँ। मैं समझता हूँ कि बापू के जाने के बाद भारत में जिस तरह राजनीति चलती है उसी तरह अगर आगे चलानी हो तो बापू ने आकर क्या किया ? उनके अवतार का कुछ लाभ हमें मिला या नहीं ? उन्होंने गोखले जी के पास से राजनीति शुद्ध करने का एक शब्द लिया था। गोखलेजी ने सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसाइटी की स्थापना की थी। उसके उद्देश्य में स्पष्ट कहा था कि राजनीति को उदात्त बनाना और उसको अध्यात्म की योग्यता देना है। इसमें उन्होंने राजनीति का शुद्धीकरण ऐसे स्पष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया था। बापू जी ने ये शब्द उठा लिये और उसका शुद्धीकरण करने के लिये जितना प्रयास किया उतना दूसरे किसी ने किया हो यह मैं नहीं जानता हूँ। राजनीति में रहने पर भी सत्य पर सतत नजर रखकर काम करने की बात जनक महाराज की हम सुनते हैं। परंतु ऐसा देखा नहीं था। बापू को तो नजर के सामने ही देखा है। सत्य पर जो दृष्टि थी उससे वे जरा भी विचलित नहीं होते थे और काम करते थे। उसका कुछ असर देश पर और देश की राजनीति पर हुआ है क्या ? यह जब मैं पूछता हूं और थोड़ा नजर इधर देखता हूं तो ऐसा भास नहीं होता है कि उसका कोई बहुत असर हुआ है। दूर दृष्टि से सिद्ध होगा कि असर हुआ है या होनेवाला है। मगर दूसरे देशों में क्या चलता है यह मैं नहीं जानता हूँ। परंतु अपने देश में पुराने जमाने में जिस तरह की राजनीति चलती थी उससे बहुत ही भिन्न राजनीति आज चलती है ऐसा भास नहीं होता है।

मैं कठोर हूं इसका मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। कारण यह कठोरता मेरी ढाल है। बापू ने अपने बारे में लिखा है कि शर्मीलापन मेरी ढाल था। मैं शर्मीला नहीं हूँ। आक्रमणकारी सामनेवाले का मुझे कभी डर नहीं लगा। पर मैं बड़ा ही कठोर हूँ। यह कठोरपन मेरी ढाल है वैसे ही जैसे नारियल। वह ऊपर से बहुत कड़ा होता है पर भीतर से उसमें रस भरा रहता है। आज मेरी आँखों से जिस प्रकार आँसू झरते हैं उसी प्रकार जब मैं उस (गांधी जी के) आश्रम में था तब भी मेरी आँखों से आँसू बरसते थे। आज सबके सामने मेरे आँसू बहते हैं पर उस समय एकांत में बहते थे। मैं तो परमेश्वर के सिवाय और किसी उद्देश्य से घर छोड़कर बाहर नहीं निकला था। मेरा वह उद्देश्य आज भी चालू है पर मैंने अपना जीवन बहुत कठोर बना लिया था। और मैं मानता हूँ कि उसीके कारण मैं बच गया हूँ नहीं तो

मैं नहीं बचना। व्यवहार में यह कठोरता दोप मानी जाती है, पर कहीं पर वह गुण भी बन सकती है। जो जहर, जो विष सबके लिए मारक होता है, वह विष खाकर भगवान के लिए नाम-स्मरण कराने का साधन बन जाता है। इस प्रकार सामान्य रीति से व्यवहार में जो दोष गिना जाता है, वह भी साधक की दृष्टि से कितनी ही बार गुण बन जाता है।

ग्राम-स्वराज्य के बिना भारत टिकेगा नहीं :

मैं भी यदि परमात्मा में श्रद्धा खो बैठूं तो मुझे यह नहीं लगता कि यह (भूदान-ग्रामदान का) काम मुझसे हो सकता है। अब आप हिसाब लगायें कि पाँच हजार ग्रामदान में दो साल लगे तो पाँच लाख ग्रामदान पाने में कितने साल लग जायेंगे? क्या इस हिसाब से दिददाम रखने योग्य जवाब मिल सकता है? फिर भी बाबा इस पर इसलिये विश्वास रखता है कि यह काम परमात्मा की प्रेरणा से ही हो रहा है। उसकी यह प्रेरणा है कि ग्रामदान के बिना हिन्दुस्तान टिक नहीं सकता। आज के विज्ञान-युग में तो जब ग्रामस्वराज्य स्थापित होंगे और लोग सकल्पपूर्वक यह काम करेंगे, तभी गाँव टिक सकेंगे। इससे अलग बात आज तक कोई भी मुझे नहीं समझा सका। नेताओं के साथ मेरी बातें हुई हैं। अर्थशास्त्रियों से भी मैं विचार विमर्श कर चुका हूँ। कोई भी मुझे यह समझा नहीं पाया कि बिना ग्रामदान के ग्रामस्वराज्य का दूसरा रास्ता हो सकता है।

नई तालीम के अगस्त तमिळ नागरी कार्य सेवाग्राम में चल रहा है। तीन पुस्तकाएँ परंधाम प्रकाशन पवनार के सहयोग प्रकाशित हुई हैं।

सुब्रह्मण्य भारती—'पुदिय आत्तिशुडी'	२५ पैसे
तिरुक्कुरळ पहला भाग	५० पैसे
तिरुप्पावै (आंडाळ)	७५ पैसे

इस प्रकाशन का **दोहरा उद्देश्य** है एक तो तमिळ भाषा भाषी अपनी भाषा को नागरी में लिखने पढ़ने का अभ्यास कर सकें। दूसरे, हिन्दी जानने वाले तमिळ भाषा का थोड़ा परिचय प्राप्त कर सकें।

बड़े शहरों में इन पुस्तकों के प्रचार में मदद करने के लिए राष्ट्र सेवकों की जरूरत है। इस कार्य में नुकसान नहीं होगा। इस बारे में, व्यवस्थापक परंधाम प्रकाशन पवनार, पो० पवनार, जि० वर्धा से या श्री रा. शंकरन् तमिल नागरी प्रचारक, आश्रम सेवाग्राम से पत्र-व्यवहार करें। उचित कमीशन दिया जायगा।

श्रीमन्नारायण

साध्य और साधन की एकता आवश्यक

महात्मा गांधी जी ने बार बार हमसे कहा था कि हमारे विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन भी हमारे साध्य के जैसे ही पवित्र होने चाहिए। उन्होंने जोर देकर यह बात कहा था कि साध्य और साधन के बीच भी वैसा ही अलघ्य एकता है जैसे कि एक बीज और वृक्ष में है। महात्मा गांधी ने इस सिद्धान्त को कभी भी स्वीकार नहीं किया कि साध्य ही साधन के औचित्य को तय करता है। भारत की आजादी के लिए होनेवाले संग्राम के दिनों में भी उन्होंने कहा था मैं अपने देश की स्वतंत्रता के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार हूँ किन्तु मैं इसके लिए भी सत्य और अहिंसा का बलिदान नहीं कर सकता।

मेरे विचार में इधर हाल के वर्षों में हमारा सबसे बड़ा संकट यही है कि हम अपने राष्ट्रीय जीवन साधनों की शुद्धता पर जोर नहीं देते हैं। यह सही है कि आज हमारे सामने मुद्रास्फीति गरीबी बेकारी भ्रष्टाचार और समयातीत शिक्षण व्यवस्था की जैसी अनेक कठिनाइयाँ हैं। इस पर भी अपने निहित संकीर्ण स्वार्थों के लिए व्यक्तियों समूहों और राजनैतिक दलों के द्वारा वाञ्छित झूठ और पाखण्डपूर्ण तरीकों का उपयोग करने की प्रवृत्ति ही सबसे अधिक चिंता की बात है। चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए असीम काला धन बटोरा और बांटा जा रहा है। राजनैतिक आन्दोलनों को तेज करने के लिए हिंसा लूट और आगजनी की जैसी बातों का खुलकर उपयोग किया जाता है और सर्वोदय आन्दोलन तक में घेराव जैसी दबावयुक्त पद्धतियों का उपयोग हो रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है। यह सचमुच ही रुलाने वाली स्थिति है।

ऊँचा दर्शन मात्र नहीं

कभी कभी लोग यह समझते हैं कि साधनों की पवित्रता पर गांधी जी का इतना जोर उनका ऊँचा दर्शन मात्र है। किन्तु मेरे विचार में यह तो उनकी अत्यन्त व्यावहारिक बुद्धिमत्ता थी। अशुद्ध साधन कभी कभी कुछ समय के लिए भले ही सफल होते लगते हों किन्तु यह दिन के बाद रात्रि की ही तरह निश्चित है कि इस प्रकार के गलत साधन अंत में असफलता और विनाश ही लाते हैं। मानव जीवन के इस अटूट नियम का सबसे अच्छा ज्वलंत उदाहरण अभी अमरीका में घटित वाटरगेट की जैसा कलंकित घटना है। भू. पू. राष्ट्रपति रिचार्ड निक्सन एक निर्लज्ज झूठ में

फमा और उसने एक झूठ को ढकने के लिये हजार झूठों का सहारा लिया। आखिरकार उसको अत्यन्त ही अपमान जनक ढग से पद त्याग करना पड़ा। नये राष्ट्रपति श्री जेराल्ड फोर्ड ने अपने उद्घाटन भाषण में यह महत्व की बात कही कि "मेरा विश्वास है कि सत्य ही एकमात्र वस्तु है जो कि सरकार को और सरकार को ही नहीं बल्कि सभ्यता को भी, टिकाये रखती है। मैं आपके राष्ट्रपति के रूप में अपने सारे निजी और सार्वजनिक जीवन में मुझे आशा है कि अपनी सचाई और मुक्तता का इस पूर्ण विश्वास के साथ पालन करता रहूँगा कि अंत में ईमानदारी हमेशा ही सही नीति होती है।"

गांधीजी की उपेक्षा ही मूल कारण

हमारे अपने देश में ऐसे बहुत सारे वाटरगेट हैं जिनका पता लगना अभी बाकी है। शायद हमारे कुछ युवा और निर्भीक पत्रकार कभी किसी स्वतंत्र न्यायपालिका के सहारे भविष्य में उन्हें देश के सामने लाने में समर्थ हो सकें। कंपनी कानून में इस तरह के परिवर्तन न कि व्यापारी किसी राजनैतिक दल को खुले रूप में कोई धन दान नहीं कर सकते हैं काले धन और तद्जनित भ्रष्टाचार के लिये नीचे से ऊपर तक द्वार खोल दिये हैं। हमारे चुनाव में तो अब बढ़ता जा रहा जातिवाद, सम्प्रदायवाद और धार्मिक अंध विश्वास के बल पर अबूझ जनता के वोट करने की प्रवृत्तियाँ सर्वनाश की अवस्था तक पहुँच गई हैं। हिंसा के अलावा, यद्यपि हमारा राष्ट्रीय उद्घोषवाक्य अभी भी 'सत्यमेव जयते' है, फिर भी अब सचाई कोई गर्व और गुण की बात नहीं रह गई है। इन दुखदायी उदाहरणों में अभी दिल्ली में हुई युवक कांग्रेस की रैली एक और दुखदायी उदाहरण है। उसके बारे में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है। मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है कि गांधी जी की इस सलाह को कि तथाकथित ऊंचे उद्देश्यों के लिये अशुद्ध साधनों का उपयोग कभी भी नहीं करना चाहिये, न मानने के ही कारण भारत और विश्व को भी अत्यन्त दुख उठाना होगा। कभी कभी यह समझा जाता है कि इस प्रकार के गलत साधन मृत्यु के बाद उस दूसरी दुनिया में ही फल देंगे। किन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि इस प्रकार के असभ्य तरीके इसी जिन्दगी में दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम लाते हैं। यहाँ मैं बंगला देश का उदाहरण देना चाहता हूँ। उस देश में लाखों गरीब लोगों की राजनैतिक आकांक्षाओं को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल याह्या खाँ ने अवर्णनीय यातनायें देकर दबाने का प्रयास किया। किन्तु अन्त में शेख मुजीबुर्रहमान विजयी हुये और याह्या खाँ को अपनी सही जगह जेल मिली। रूस सहित साम्यवादी देशों का अनुभव भी इससे कोई भिन्न नहीं है। वहाँ भी छोटी इच्छाओं ने बड़े बड़े दबडरों को जन्म दिया है। रूस का नोबुल पुरस्कार प्राप्त देश से निर्वासित लेखक अलेक्जेंडर सोलोत्सिन ने अपने देशवासियों को हिंसा, युद्ध और खासतौर पर चीन के विरुद्ध युद्ध, और वह भी एक मृत विचार (साम्यवाद-संपादक)

के लिये विरुद्ध चेतावनी दी है। उनका कहना है कि एक तानाशाही व्यवस्था को भी एक दृढ नैतिक आधार पर टिकना चाहिये। वे कहते है कि "एक बार यह नैतिक नियम कमजोर पडा या विद्रूप किया गया कि राज्य की बाहरी सफलता के बावजूद एक तानाशाही व्यवस्था भी धीरे धीरे पतित होकर अत मे समाप्त हो जायगी "।

भारत के युवकों से अपील

मैं भारत के युवको से एक विशेष अपील करना चाहता हूँ। हम सबको आपकी कठिनाइ और दुखो का अनुभव है और हम स्वीकार करते है कि इनका वर्तमान शक्षणिक ढाचा उनमे एक अवर्णनीय मतभ्रम पैदा करता है। एक उत्तम सामाजिक व्यवस्था कायम करने की हमारे युवको की आकाक्षा निश्चय ही प्रशसनीय है। किंतु अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के अति उत्साह में या अति चिंता में उन्हे विनाशकारी और हिंसात्मक आन्दोलन के मार्ग पर नही जाना चाहिये क्योंकि इनमे निस्सदेह ही विनाशकारी परिणाम होते हैं। उन्हे महात्मा गाधी के इस सलाह का हमेशा ही ध्यान मे रखना चाहिये कि दो गलतियो को मिलाकर एक सही नही बन सकता'। मैं यहाँ पर अपने युवक मित्रो के लाभ के लिये प्रख्यात इतिहासज्ञ डा आर्नाल्ड टायनवी की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक सर्वाइविंग दि फ्यूचर से यह उद्धरण देना चाहता हूँ। हिंसा निश्चित तौर पर प्रतिहिंसा को जन्म देती है। यदि आप जवान लोग हिंसा का सहारा लेगे तो सत्ताधारी लोग और भी अधिक प्रतिहिंसा का उपयोग करेंगे जो कि आपसे कही अधिक अच्छे ढग से सगठित और सशस्त्र होते है। तब एक गृह-युद्ध होगा जिसमें तब फिर प्रतिक्रियावादी शक्तिया ही विजयी होगी और हमें केवल एक फासिस्टवादी विश्व व्यवस्था ही हाथ आयगी। इसलिये सबसे पहले आप धैर्य रखने का प्रयास करे और हिंसा से बचने की कोशिश करें। आप महान् दर्शनो और धर्मो के नेताओ जैसे बुद्ध ईसा या गाधी जी जैसी महान आत्मा से जो कि हमारे ही बीच और हमारे ही समय मे ही चुकी है के सज्जनता धैर्य और नम्र दुखो का अनुकरण करे।

अत मे मैं पुन कहना चाहूँगा कि साधन भी यदि अधिक नही तो उतने ही महत्वपूर्ण है जितने स्वय साध्य। यह मानव जीवन और मानव सम्बन्धो का एक शाश्वत नियम है। भारत में हम इस सीधी सच्चाई की उपेक्षा केवल अपनी कठिनाई से प्राप्त स्वतत्रता और लोकतत्र की गहरी कीमत पर ही कर सकते है।

---o---

मुझे प्रत्येक मनुष्य के हृदय में राम जगाने का काम करना है, स्वरूपरूपी राम पहचानने की शिक्षा देनी है। परमेश्वर ने आपको आनद-रूप बनाया है। आपको निरतर आनदी, समाधानी, सतुष्ट रहना सीखना चाहिये।

— स्वामी रामतीर्थ

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

गांधी जी का छात्र जीवन

अभी गत १५ अगस्त को सारे भारत और विश्व के अनेक भागों में भारतीय स्वतन्त्रता की २७ वीं वर्षगांठ बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाई गई। हमारे देश में कई स्थानों पर आजाद भारत में पैदा हुए नयी पीढ़ी के युवाओं का भी अभिनन्दन किया गया और कामना की गई कि ये युवक आने वाले भारत की नैया पार लगाने में सफल हों। ये युवक भले या बुरे जैसे होंगे वैसा ही हमारा यह देश भारत बनने वाला है, इसमें सदेह नहीं। इस दिन पर पुनः करोड़ों कंठों से एक ही नारा गूंजता है, 'महात्मा गांधी की जय।' 'भारत माता की जय।' आज हमारे लिये भारत और गांधी पर्यायवाची हैं और यह सही ही है। वे दोनों हैं भी एक। महात्मा गांधी ही वर्तमान भारत का परिचय हैं। महात्मा गांधी की ही कृपा और त्याग-तपस्या के बल पर हमने आजादी हासिल की है और जिस बात के लिये संसार के अन्य भागों में करोड़ों को अपने खून की कीमत देनी पड़ी हमें वह एक तरह से मुफ्त में ही मिल गई। यह केवल गांधी जी के ही कारण सम्भव हो सका यह बात आज की नई पीढ़ी को जाननी बहुत आवश्यक है। इसलिये यह जानना भी जरूरी है कि आखिर यह आदमी जो आज भारत का 'राष्ट्रपिता' और विश्व का 'महात्मा गांधी' हो गया अपने *बचपन में छात्र के रूप में कैसे रहता था, कैसे पढ़ता और काम करता था।*

यों तो गांधी जी ने अपनी 'आत्मकथा' में भी कुछ लिखा है, किन्तु उनके जीवन की खासकर छात्र जीवन की अनेक बातें उसमें नहीं हैं और वे अभी तक प्रकाश में भी लगभग नहीं आई हैं। गांधी जी ने एक तो बहुत अर्सा बीत जाने पर और कुछ संकोच वश भी कई बातें नहीं लिखी या वे भूल गये। यह भी होता है कि असल में कोई भी महान् पुरुष अपनी प्रशंसा खुद नहीं करता। किन्तु आज हमारे और हमारे बालकों के लिये तो ये बातें बहुत महत्व की हैं। इसलिये हम यहां कुछ ऐसी बातें दे रहे हैं जो कि हमें आशा है बहुत कम लोगों को अभी तक मालूम होंगी।

रटाई से परेशान मोहन

गांधी जी का बचपन का नाम मोहनदास करमचन्द गांधी था यह सब जानते ही हैं। गांधी उनका पारिवारिक नाम था और करमचन्द उनके पिताजी का नाम था। पहले यह रिवाज था कि अपने नाम के साथ पिता का नाम भी लगाना होता था। दक्षिण भारत में कहीं कहीं अब भी यह रिवाज है। इस प्रकार से मोहनदास के साथ करमचन्द गांधी भी जुड़ गया। २ अक्टूबर १८६९ को पोरबन्दर नामक

गाव म ‿नका जन्म हुआ। ५ साल की उम्र तक तो मोहन घर पर ही माँ-बाप की साया म ही रहा। ६ साल की उम्र म मोहन को गाँव की एक प्रायवेट शाला में भर्ती किया गया। वह शाला वृजिया गुरु जी की नाना कही जाती थी क्योंकि उसके चलान वाले गुरु जी नगड थ। यह मोहन के मकान क पास ही थी इसलिए उनके परिवार के सभी बच्चे उसी शाला म पढने जाते थ। वहाँ पर उन्ह आज की ही ग्रामीण शालाओं की तरह खड होकर बाराखडी और पहाड कण्ठस्थ कराय जात थ। रटाने की इस प्रथा स बालक मोहन बस ही तग होते थ जस आज हमारे बालक होते हैं। पहाड या बाराखडी अक्सर ही भूल जाया करती थी यह बात बाद का गाधी जी न अपनी आत्मकथा म भी कह ह। साथ ही एक गुरु जी घर पर भी उन्ह पढान आत थ जिन्हान मोहन को रामरक्षा स्तोत्र भी सिखाया। यह गाधी जी का रामनाम का पहला नाक्षा थ जो बाद का उनके जीवन भर साथ रही।

इसके बाद मोहन दास को राजकोट भज दिया गया जहाँ उनके पिता मुख्य कारबारी का काम करते थ। फिर दो साल वहाँ रहने के बाद मोहन का राजकोट के बड तालुका स्कूल म रख दिया गया जहाँ उसके बड भाई लक्ष्मीदास भी पढते थ। मोहन की पढाई उसकी अपनी मातभाषा गुजराती में होती थी। पहले तो मोहनदास दूसरी तक फल होते गय क्योंकि एक तो वे बीमार रहते थ और दूसरे परीक्षा भी नहीं दे सके। पर फिर भी मोहन को तीसरी म रख लिया गया। किन्तु मोहनदास रोज स्कूल जान म आलस करता था और तीसरी म २३८ म कुल उसकी हाजरी ११० दिन की ह थी। यद्यपि यहाँ वह दो माह बाद भर्ती हुआ था किन्तु फिर भी वह लगभग ७० दिन गरहाजिर रहा। इसी प्रकार स चौथी म भी वह साल में ४० दिन गर हाजिर रहा था। किन्तु एक बात थी जिसस मोहन को अपन गुरुओं का प्यार मिलता था और वह यह कि वह जब स्कूल जाता तो खूब ध्यान स पढता था। गुरु जी कुछ कहते उस ध्यान स सुनता पुस्तका के पढाये गय और पढाय जानवाले दोनों ही पाठोंको खूब मन लगाकर पढता था। इससे वह कक्षाओं म पास हो जाते गय। चौथ म उसे २०० म स कुल दरा अक मिले यानि ४१२५ प्रतिशत और चौथी में उस ४०० म स २१४ यानि ५३५० प्रतिशत अक मिले। तीसरी म कुल ४८ लडके पास हुए थ और इनम मोहनदास का नम्बर सबके नीचे यानि ४७ व नम्बर पर था। इसी प्रकार म चौथी म भी ३२ पास लडको म स वह २१ वाँ था। मोहन गणित और भाषा म कमजोर था किन्तु व्याकरण म अच्छा था। इतिहास और भूगोल में भी वह कमजोर ही था। किन्तु यह सब होते हुए भी जसा पहले कहा गया है मोहनदास कक्षा म बहुत ध्यान स सुनता और पढता था और अपन गुरुओं का बडा आदर करता था। बाद में महात्मा गाधी न अपनी आत्म कथा में लिखा कि मुझ अपन गुरुओ के नाम और उनके बारे म बात अब तक याद है।

मोहनदास बचपन में कुछ दब्बू स्वभाव का था और अपने समान उम्र के बालकों तक से भी वह बहुत अधिक नहीं घुल मिल पाता था। बस किताबें ही उसकी एकमात्र मित्र थीं। वह घर से सीधे ही स्कूल जाता और छुट्टी मिलते ही सीधे घर आ जाता। वह मार्ग में किसी अन्य लड़के या आदमी से बात करने से घबराता था कि कहीं वे उसकी मजाक न करें। फिर भी एक आध उसके घनिष्ट मित्र बन गये और एक ने तो जब वह बड़ा होने पर पढ़ने के लिये इग्लैण्ड गया तो उसने मोहन को एक चांदी की माला भी भेंट की।

इस प्रकार मोहन ने चौथी पास कर ली और तब वह राजकोट के काठिया-वाड़ हाईस्कूल में भर्ती हुआ। उन दिनों पांचवीं कक्षा से ही अंग्रेजी पढ़नी होती थी और फिर बाद को हाईस्कूल परीक्षा के लिये भी। एक प्रवेश परीक्षा अलग से देनी पड़ती थी। केवल चौथी पास करना ही काफी नहीं था। इस प्रवेश परीक्षा में पास होनेवाले को ही पांचवीं में प्रवेश मिल सकता था। चूंकि मोहनदास ने चौथी में अच्छे, ५३.५० प्रतिशत, अंक पाये थे इसलिये हेडमास्टर ने उसे प्रवेश परीक्षा में बैठने की अनुमति भी दे दी। इसमें मोहन ने ४०० में से कुल २५७, यानी ६४.२५ प्रतिशत अंक पाये और ३८ पास लड़कों में से उसका स्थान ९ वां हुआ। इस परीक्षा में सबसे अधिक अंक केवल ७४ प्रतिशत थे। इसमें गणित में मोहन ने सबसे अधिक, यानी ८५ प्रतिशत अंक प्राप्त किये और इस प्रकार से अपनी गणित की पहले की कमजोरी पर बहुत काबू कर लिया। इस परीक्षा में मोहन को और भी अधिक अंक मिलते यदि उसकी लिखावट खराब न होती। पर वह लिखने में जरा भी गलती नहीं करता था। इस प्रवेश परीक्षा में बैठने वाले ३८ पास छात्रों में मोहन समेत केवल दो ही लड़के ऐसे थे जो कि मैट्रिक परीक्षा में आगे चलकर केवल एक बार में पास हो सके थे।

इस तरह से मोहनदास १८८० की १ दिसम्बर को, जब वह १० साल का था, राजकोट हाईस्कूल के 'वर्नाक्यूलर' विभाग की पहली कक्षा में भर्ती हो गया। इस स्कूल में वह पूरे ७ साल तक रहा। यहाँ भी वह घंटा बजने से पहले ही स्कूल पहुँच जाता और छुट्टी होते ही सीधे घर पहुँच जाता। यहाँ पर वह पहली में ही फेल हो गया क्योंकि यद्यपि गणित और गुजराती में तो वह पास हो गया पर इतिहास और भूगोल में फेल हो गया। किन्तु मोहनका आचरण इतना अच्छा था कि उसके गुरुओं ने उसके प्रमाणपत्र पर 'उत्तमाचरण' लिखकर दिया। मोहन कभी भी झूठ नहीं बोलता था और किसी को धोखा देने की तो वह सोचता भी न था। वह कहानी तो सभी पाठकों को मालूम होगी कि जब एक बार उसके स्कूल में इन्स्पेक्टर आये और उन्होंने 'केटली' शब्द के हिज्जे लिखने को दिये थे। मोहन ने वे गलत लिखे। इस पर उसके शिक्षक ने पैर के अंगूठे के इशारे से उसे सही हिज्जे लिखने को कहा

और हिज्जे बता भी दिये किन्तु इस पर भी मोहन ने गलत ही हिज्जे लिखे। इस पर वे शिक्षक बहुत नाराज हुये। किन्तु बाद को उन्हे मोहन की ईमानदारी पर प्रसन्नता हुई और उन्होंने भी उसे उत्तम आचरण का प्रमाणपत्र दिया। किन्तु गैरहाजिर रहनेकी उसकी वह आदत यहाँ भी बनी रही। इस कक्षा मे पहले सत्र के कुल ७८ दिन मे से मोहन केवल २२ ही दिन हाजिर रहा। यहाँ पर अक हाजिरी के आधार पर भी गिने जाते थे इसलिये मोहन को बहुत ही कम अक मिल सके। ३४ लडकों मे से उसे ३२ वां ही स्थान मिल सका। इसका उसके मन पर बहुत गहरा असर हुआ और उसने कठिन मेहनत करने का निश्चय कर लिया। नतीजा यह हुआ कि सालाना परीक्षा मे उसे ६३ प्रतिशत अक मिले जब कि सबसे अधिक अक केवल ६४ ही प्रतिशत थे। यहाँ तक कि उसने भूगोल और इतिहास की अपनी कमजोरी भी दूर कर ली और सालाना परीक्षा मे उसने इन विषयो मे ५० में से ३० अक पाये।

गलती से भी सीख :

अब वह दूसरी मे गया। पर इस साल कई बाधाये आ गई। एक तो मोहन का विवाह कर दिया गया। अभी उसकी उम्र मात्र १३ साल की थी। फिर उसकी दोस्ती एक शेख मेहताब नामक लडके से हो गई जो कि बहुत ही गदी सोहबत का लडका था। उसके साथ ही मोहन ने घर से पैसे चुराने, सिगरेट पीने और माम खाने की बातें सीख ली। मोहन को झूठ बोलने से स्वाभाविक ही चिढ थी इसलिये चूँकि इस तरह के कामों में तो केवल झूठ से ही काम होता था मोहन के मन पर इसका भारी बोझ रहने लगा। पढने मे भी मन नहीं लगता था। नतीजा यह हुआ कि वह और भी अधिक गैरहाजिर रहने लगा और इस कक्षा में वह कुल २२२ दिन में से मात्र ७४ दिन हाजिर रहा। अत वह सालाना परीक्षा भी न दे सका और साल ही बरबाद हो गया। इससे मोहन को बहुत दुख हुआ और उसने फिर से निश्चय किया कि आगे से वह ऐसा नही करेगा। अगले साल फिर वह २ री में ही ६८ प्रतिशत अको से पास हो गया। फिर तो ३ री मे उसने इतनी कठिन मेहनत की कि छमाही परीक्षा मे ही उसे ५८ प्रतिशत अक मिले और २७ पास छात्रो मे से उसका स्थान ५ वां रहा। साथ ही वह ४ थी में भी प्रवेश की तैयारी करने लगा। क्योंकि ४ थी पास करने पर ही हाईस्कूल में प्रवेश की अनुमति मिलती थी। छमाही परीक्षा के बाद ही उसके शिक्षकों ने यह देखकर कि मोहन ने अब मेहनत करनी आरम्भ कर दी है उसे अगली कक्षा में प्रमोशन दे दिया। इस प्रकार से उसे तीसरी और चौथी की परीक्षा साथ देने की अनुमति मिल गई। तीसरी में वह पास हुआ और अँग्रेजी में अब उसे सबसे अधिक अक ५७ प्रतिशत मिले। चौथी में वह यद्यपि गणित में फेल हो गया किन्तु कुल मिलाकर वह उसमे भी ५० प्रतिशत अक लाया। जब कि वह दो कक्षाओ की पढाई साथ कर रहा था और चौथी

में आये उसे अभी ६ माह ही हुये थे। किन्तु उसकी मेहनत से प्रसन्न होकर उसके गुरु जी ने उसे चौथी कक्षा दे दी। अभी तक उसका दोस्त शेख केवल दूसरी में ही था। और बाद को तो उसने स्कूल से भी नाम कटवा दिया। इस बात से मोहन को इतनी घनिष्ट मित्रता हो गई थी कि मोहन ने उसे सुधारने का जिम्मा ही ले लिया। मित्र मित्र की अवनति कैसे देख सकता था? मोहन ने सोचा कि ऐसी गलत बातों की नकल करने के, भले ही वह घनिष्ट मित्र ही क्यों न हो, उसे ही गलत बातों से छुड़ाना चाहिये। किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी मोहन सफल नहीं हुआ।

गुरु जी की प्रतिष्ठा शिष्य की प्रतिष्ठा है:

१५ साल की उम्र में मोहन को हाईस्कूल में प्रवेश मिल गया। किन्तु यहाँ आते ही फिर नयी कठिनाई आ गई। एक तो यहाँ पर सारी पढ़ाई अँग्रेजी में होती थी जो कि मोहन की अपनी भाषा नहीं थी। फिर इसमें ज्यामिती जैसे कुछ नये ही विषय भी आ गये। मोहन बहुत घबराया किन्तु एक तो अपनी इज्जत और दूसरे अपने उन गुरु जी की इज्जत से डर कर, जिन्होंने उसे चौथी कक्षा में आगे बढ़ाया था, उसने सख्त मेहनत करनी आरम्भ कर दी। पहले तो उसने स्कूल छोड़ने की सोची किन्तु इन दो कारणों से नहीं छोड़ा। अँग्रेजी भाषा के कारण से गुरु जी विद्वान् होते हुये भी उनके पढ़ाये विषय समझ में ही नहीं आते थे। फिर भी उसने मेहनत के बल पर वह चौथी कक्षा भी पास कर ली। मोहन अब प्रातः ६ बजे ही उठता और प्रातःकालीन क्रिया करने के बाद स्कूल के काम को पूरा करने पर लग जाता। अब उसके पिताजी ने भी नौकरी छोड़ दी थी और वे घर पर बीमार रहने लगे। मोहन को उनकी सेवा भी करनी होती थी। इस प्रकार से रात को १० बजे ही सोता था। ५ वीं कक्षा में तो उसने और भी कठिन मेहनत करनी आरम्भ कर दी और जब इन्स्पेक्टर की परीक्षा हुई तो वह १४ पास हुये लड़कों में से ६३.४ अंकों से पास हो गया। इसी प्रकार से फिर छमाही और सालाना में भी वह क्रमशः ५५.७५% और ७५.४% अंकों से पास हुआ। अब मोहन ने गणित और भी अच्छा कर ली। इस कक्षा की सालाना परीक्षा तो इतनी कठिन होती थी कि उसमें ३४ में से केवल ६ ही लड़के पास हुये और मोहन को इसमें छठा स्थान मिला। पिताजी की सेवा के साथ साथ इतनी भारी कठिन परीक्षा में छठे स्थान पर आना उसके लिये बहुत बड़ी बात थी, इसलिये इस पर उसके पिता ने प्रसन्न होकर कहा था कि 'हमारा 'मनु' किसी दिन इस वंश का नाम उजागर करेगा' छात्रों को याद होगा कि इन्हीं दिनों मोहन को चोरी की आदत भी पड़ गई थी किन्तु उसके सच्चे मन ने यह स्थिति कबूल नहीं की और लिखकर सब कुछ पिताजी को कह दिया। पिताजी इस पर इतने प्रसन्न हुये कि उनकी भी आँखों में आँसू आ गये। इसलिये ऐसे स्नेहशील पिता का यह आशीर्वाद तब क्यों न मोहन को बाद को विश्व का 'महात्मा गाँधी' बनाता?

इस दौरान, जब मोहन केवल १५ साल का ही था तो, उसके पिताजी की मृत्यु हो गई। मोहन इस साल याने १८८५ मे पास तो हो गया पर पिता जी की मृत्यु ने उसके मन पर गहरा असर किया। इसी वर्ष मोहन को पहली संतान भी पैदा हुई किन्तु वह कुछ ही दिन के बाद मर गई। इसका भी उसके मन पर असर हुआ। छात्र स्मरण करेंगे कि इसी साल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी स्थापना हुई थी, किन्तु क्या भारत के भावी राष्ट्रपिता इस मोहन को यह मालूम रहा होगा कि जिस साल उस पर इस तरह से गुजर रही है वह साल उसके भावी नेतृत्व के लिये ही आरम्भ हुआ है। पिता की मृत्यु के बाद मोहन के बडे भाई लक्ष्मीदास जी ने उसकी सभाल की और उसकी पढाई जारी रखी। इस साल मोहन की अच्छी पढाई के कारण से उसे ४ रु २ आने २ पैसे की छात्रवृत्ति भी मिल गई। यह रकम वह सबकी सब अपने बडे भाई को दे देता था। पाँचवी पास करने के बाद अब वह मैट्रिक की प्रवेश परीक्षा याने छठी कक्षा मे भर्ती हुआ। इसमें और भी कठिन विषय आते थे और खासकर अँग्रेजी और सस्कृत उसे काफी कठिन मालूम पडे किन्तु उसने कठिन मेहनत के बल पर यह कक्षा भी पास की और सातवी मे भर्ती हुआ। छठी कक्षा पास करने पर उसे न केवल १० रु की छात्रवृत्ति ही मिली अपितु छमाही के बाद ही उसे सातवी कक्षा भी दे दी गई। इसके बाद ही छात्रों को बम्बई विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा मे बैठने की अनुमति मिलती थी। अत इसमे तो अत्यन्त ही कडाई बरती जाती थी। मोहन ने इसमे भी कठोर मेहनत की और ३२ में से केवल १५ परीक्षा मे बैठे छात्रो मे मोहन का नम्बर दसवाँ आया। पर इसमें वह गणित, अँग्रेजी और सामान्य ज्ञान में फेल हो गया, फिर भी उसे उत्तीर्ण कर दिया गया याने मैट्रिक परीक्षा के लिये बैठने की 'अनुमति' उसे मिल गई। इस पर मोहन को भी आश्चर्य हुआ कि यह कैसे हो गया क्या कि अपने बारे मे मोहन हमेशा यह मानता था कि वह बहुत बुद्धू लडका है। किन्तु वह अपने गुरुओ के स्नेह का हमेशा पात्र रहा और इस गुरु कृपा ने ही उसे आगे बढाया। बाद को गांधी जी ने लिखा कि वे 'कोई अपनी प्रतिभा के बल पर नही अपितु भाग्य से ही आगे बढते गये है'। किन्तु भाग्य भी तो मेहनत का ही फल होता है न।

चरित्र व आत्म-विश्वास का धनी :

मोहन का स्कूल के खेलकूद में कोई रुचि नही थी। वह कभी किसी भी खेल मे न जाता था। हाँ उसके कुछ साथियो का कहना है कि यह क्रिकेट का शौकीन था और अच्छी बैटिंग करता था। मोहन की यह बैटिंग आगे चलकर गांधी जी के राजनीतिक खेल में तो हम सबके भी काम आ गई न। असल मे मोहन का विचार था कि खेल का पढाई से कोई सम्बन्ध नही है हालांकि बाद को गांधी जी ने अनुभव किया कि यह गलत विचार था। शिक्षा में मन और शरीर दोनो की ही शिक्षा आवश्यक है। किन्तु मोहन को पैदल घूमने की खूब आदत थी और वह रोज कई मील

पैदल जाना था। यह आदत गांधी जी के साथ जीवन भर रही है। मोहन को अपने चरित्र का हमेशा बड़ा ख्याल रहता था और यदि कोई उस पर जरा भी अविश्वास करे तो उसे बहुत बुरा लगता था। एक बार पिताजी की सेवा करने के कारण वह स्कूल के अनिवार्य व्यायाम में नहीं जा सका और यही कारण बता दिया। किन्तु उनके शिक्षक ने उसका विश्वास न कर उसे सजा दे दी। इस पर वह अकेले में आकर बहुत रोया। रोया इसलिये नहीं कि सजा मिली बल्कि इसलिये कि उसका अविश्वास किया गया। चरित्र की यही दृढ़ता तो मोहन का महात्मा गांधी बना सकी है।

इस प्रकार से मोहन राजकोट हाईस्कूल से सातवीं पास करने के बाद मैट्रिक परीक्षा में बैठा। यह परीक्षा बहुत ही कड़ी होती थी और सारे पर्चे अंग्रेजी में ही लिखने होते थे। इसके लिये मोहन को अहमदाबाद जाना पड़ा। अभी मोहन की उम्र १८ साल की थी और राजकोट से बाहर जाने का यह उसका पहला ही अवसर था और वह भी अकेले। इस परीक्षा में कुल ३०६७ परीक्षार्थी बैठे थे जिनमें से केवल ७९९ ही पास हो सके। मोहनदास को इसमें ४०४ वां स्थान मिला और अपने स्कूल में ५ वां। इसमें मोहन ने कुल ६२५ में से २४७॥ यानि ४० प्रतिशत अंक पाये और दिसम्बर १८८८ को मोहनदास ने मैट्रिक परीक्षा भी पास कर ली।

अब मोहनदास आगे पढ़ाई के लिये भावनगर के सामलदास कालेज में भर्ती किया गया। किन्तु कालेज की पढ़ाई उसे बहुत ही कठिन मालूम पड़ी और उसकी समझ में कोई भी विषय नहीं आया। अध्यापक कक्षा में क्या कह रहा है, यह उसे कुछ भी नहीं समझता था और वह तो बस चुपचाप कक्षा में बैठ सुनता रहता था। वहां पर साप्ताहिक परीक्षायें होती थीं और मोहन कभी उनमें पास नहीं हो सका। यहां तक कि पहले उसकी अंग्रेजी अच्छी होती थी पर अब यहां वह उसमें भी १०० में से केवल १६ ही अंक ला सका। वह कालेज की छात्रवृत्ति परीक्षा में भी बैठा किन्तु सारे विषयों को मिलाकर केवल ८७ अंक ही पा सका और उसे छात्रवृत्ति नहीं मिली। वह कालेज में भी अपने को नितान्त अजनबी अनुभव करता और किसी से बातचीत या खेल आदि में भी कोई भाग नहीं लेता। अन्त में उसने अप्रैल की तिमाही परीक्षा के बाद कालेज ही छोड़ना उचित माना और छोड़ दिया।

(क्रमशः)

दुनियादी शिक्षा की पद्धति सर्वांगीण की ओर यह प्रयास किया कि बहने यहाँ से कुछ सीखकर और सस्कार लेकर फिर स्वतंत्र रूप से अपने अपने क्षेत्र में जाकर नारी जागरण के क्षेत्र में काम करेंगी। आज यह छोटा-सा आश्रम इस बात पर सतोष व्यक्त कर सकता है कि उसका यह उद्देश्य काफी हद तक पूरा हुआ है और आज हिमालय के इस भाग मे कई बहने अपने स्वतंत्र अभिक्रम से समाज सेवा का अच्छा काम कर रही है। सर्वोदय आन्दोलन में भी इन बहनों का महत्व का भाग है।

जीवन में नया तत्व दाखिल करना ही उद्देश्य :

हमने आरम्भ से ही यह मान लिया था कि हम जिस वातावरण और क्षेत्र में काम आरम्भ कर रहे हैं उसमे हम किसी प्रकार का व्यापक प्रभाव तो नहीं पैदा कर सकेंगे किन्तु जो बहने यहाँ आयेंगी उनके जीवन म अवश्य ही हम एक नया ही तत्व दाखिल कर सकेंगे। श्रम की प्रतिष्ठा का आज शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत नाम लिया जाता है किन्तु पहाड की बहने तो श्रम की ही प्रतिमूर्ति होती हैं। पर वह श्रम उन्हें जीवन देने वाला न होकर उन्हे पशु के स्तर तक ले जाने वाला ही होता है। इसमे वे मुक्त होकर मानव श्रम का ज्ञान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके यह हमारा एक उद्देश्य रहा है। इसलिये हमने प्रयास किया कि हम यहाँ विद्यालय मे ऐसा वातावरण ही रखें जो कि उनके घरों पर है। यानि खेती और पशु पालन का काम ही हमारी शिक्षा का आधार बना। छात्राएँ वैसे ही घर की ही तरह से घास काटने गोबर निकालने, खेती करने, पानी भरने और खाना पकाने आदि के काम करते करते ही शिक्षा भी पाये यह परिपाटी विकसित करनी पड़ी। पहाड के लिये यह बात एक दम नई थी किन्तु शीघ्र ही लोगो को इसकी सुगंध मालूम होने लगी और पहाड के सभी जिलो से बालिकाये हमारे पास आने लगीं।

शाला प्रत्यक्ष काम पर.

प्रात कालीन प्रकाश किरण के फूटते ही सभी बहन और आश्रम परिवार में रहने वाले भाई भी सब एक लाइन में सफेद पत्थर की प्लेटो से पटे आगनमें अपनी अपनी दरातियाँ लेकर खडे हो जाते हैं और पास ही प्रातःकाल की मन्द समीर से धीरे धीरे हिलते हुये मानो हमे बुलाते हुये चीड के वृक्षों की ओर मुखातिब होकर गाते चल पडते हैं।

"मनसे अपना काम करें हम, थक कर ही आराम करें हम, ना पल भर भी आराम करें हम।

प्रभु के हाथ बडे शक्तिशाली, कटती है सब मुश्किल रे, कटती है सब मुश्किल।
मेहनत कर इन्सान बने हम, नव युग का आवाहन करें हम।"

यह आश्रम की प्रार्थना के बाद का सामूहिक गीत होता है और छात्रायें इसको गाती जगल की ओर चल पडती हैं। शीघ्र ही हम सब सामने के पहाडी ढलान

पर पहुँच जाती हैं जो अभी बाल रविकी किरणा की खादी से नदी हरी घास से भरा हैं और एक तरह की अद्भुत मुक्तता का वातावरण पैदा करता है। घास कटना आरम्भ होता है और साथ साथ कई बहन अपनी खादी की नन्ही-सी चुनरी का मायेपर कुमायुनी ढग से बाध कर कुमायुनी गीता के। इबार भी आरम्भ कर देती है। नास्ता, जो कि आश्रम की उन नन्ही बहनों ने तैयार किया है जो कि अभी घास काटने के जैसे कठोर काम के लायक नही हैं तब तक आ जाता है और फिर श्रम से थकी किन्तु आनन्दित सभी बहने नास्ते पर बैठ जाती हैं। किसी का हाथ ही घास काटते समय किसी तेज घास से जिसकी हिमालय मे कमी नही होती कट जाती है तो खाना खाने से पहले हाथ के खून को धोकर पास ही ज्यादर एव विशिष्ट घास पीस कर हाथ पर लगा देती हैं ताकि खून भी बद हो और घाव भी ठीक हो जाय। पहाड का जीवन ऐसे ही तो चलता है। वहा कहा है अस्पताल और डाक्टर जो कि लोग झट से उनके पास दौड चले जाय। हाथ कैसे कट गया इस पर चर्चा चलते ही फिर घास की प्रकारो की बहस छिड जाती है और कितने प्रकार की घास अपने पहाड पर है, कौन सी दूध के लिये पशु के स्वास्थ्य के लिये ठीक है इसकी छानबीन आरम्भ हो जाती है। यह वनस्पति विज्ञान का शिक्षण होता है। इसी सदर्भ मे चारे की बात आ जाती है कि मवेशी के लिये कौन-सा चारा कब कैसे तैयार करें और उसे किस तरह से सहज कर रखा जाय ताकि वह सड भी नही और उसकी ताजगी भी बनी रहे। बडी कक्षाओ में पढनेवाली बहनें तब अपना वैज्ञानिक ज्ञान उडेल लेती हैं कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि क्या चीज हैं और किस किस के क्या गुण होते हैं।

शिक्षण शास्त्रका महत्वपूर्ण प्रश्न :

अचानक कोई बहन एक ऐसा सवाल पूछ बैठती है जिसका ज्वाब आज तक कम से कम भारत में तो कोई नही दे सका है। सवाल यह रहता है कि क्या कोई ऐसा यत्र नही हो सकता जो कि पहाड मे घास कटाई के काम आ सके। मैदानी यत्र तो यहाँ किसी काम के नही हैं। पर पहाड के लिये तो कोई ऐसा यत्र चाहिये जो कि दराती की धीमी गति तो तेज करे ही यानि जो तेज काम करे किन्तु साथ ही जिससे कमर न झुकानी पड। नही तो दिन भर कमर नीची किये टूट जाती है। हाथो की उगुलियाँ भी चटकने लगती हैं। उसपर फिर घास का गटठर सिरपर लिये तीन तीन चार चार माल कभी खडी चढाई और कभी सीधी उतराई पर चलना होता है। इस प्रकार से मनुष्य को मनुष्य और पशु दोनो का ही काम करना होता है। पहाड की शिक्षा मे क्या कोई इस तरह की खोज नही की जा सकती कि जिससे कम से कम बहनो को इस कमर तोड श्रम से मुक्ति तो मिले किन्तु उनके समाजादिक और पारिवारिक जीवन मे व्यवधान न पैदा हो। अब इस तरह के सवालो का उत्तर कौन दे। हमारे देश के शिक्षाशास्त्री तो बस किस विषय को कैसे पढाया जाय इस पर चर्चा को ही

शिक्षा मानकर बैठे हैं। जीवन के इन जीवित सवालों पर कौन सोचे। अब तब नाश्ता भी समाप्त हो जाता है और बहनें और घास काटने चल पड़ती हैं।

कुदरतसे भी समवाय :

यों तो घास काटने का यह काम साल भर चलता ही रहता है किन्तु सितम्बर अक्टूबर का एक माह का समय तो हमारे लिये 'घास काटो अभियान' ही होता है क्योंकि इस समय मैदान या खेत की घास काट कर फिर आने वाली बर्फ के लिये घर में रखकर नहीं रखेंगे तो फिर हम भी मरे और हमारे पशु भी मरे। इस सारे जोखिम और श्रम भरे जीवन में से उन्हें सहज ही जिम्मेदार गृहणी का प्रशिक्षण तो मिलता ही है साथ ही वे सहयोग की भी कीमत मालूम कर लेती हैं। क्योंकि पहाड़ का कोई भी काम बिना सहयोग के चल ही नहीं सकता। और फिर इस तरह का काम तो हो ही नहीं सकता। इस सारे अभियान में शिक्षिकाओं का भी हर साल एक तरह से पुनः शिक्षण ही होता है। हमारी मैदानी बहनें तो इस स्थिति की कल्पना तक नहीं कर सकती हैं। मैदानी कन्या विद्यालयों की बहनें क्या कभी इस तरह की शिक्षा की कल्पना करती होंगी? घास काटने का यह काम दोपहर को भी, जब कि तपती धूप से सबके चेहरे मुर्झा गए हैं, पसीने से सभी तर हो रही हैं और अब गीत गाने की हिम्मत भी समाप्त हो चुकी होती है तब भी, दरातियाँ चलती रहती हैं। नन्ही बहनें घास की लूठिया (पूलियाँ) नहीं बाधना जानतीं तो भाई लोग उस काम को कर लेते हैं।

यह सारा काम हम यों ही नहीं कर लेती हैं। इसके समय का बराबर हिसाब, काम की की गई मात्रा तथा अन्य सम्बन्धित बातों का आकलन किया जाता है। यह एक कक्षा ही भी है जिस क्रम में ही बहनें गणित आदि का भी ज्ञान प्राप्त करती हैं। दिन को अन्य समयों में फिर दो घंटे के लिये वर्ग भी चलते हैं। किन्तु कामकी बहुलता तो हमारे लिये पूरे साल भर रहती है और दो घंटे की किताबी पढ़ाई और औसतन चार घंटे का काम यह हमारा क्रम रहता है। पर हमने देखा है कि हमारी बहनें पढ़ाई में आस पास की किसी भी कन्याशाला की छात्राओं से आगे ही रहती हैं।

नेतृत्व का प्रशिक्षण ·

शाला में समय समय पर सामाजिक और अन्य अवसरों पर सामूहिक नाटक नृत्य आदि तो चलता ही रहता है। पर हमारी शाला की विशेषता यह है कि हम आसपास के गाँवों में भी त्यौहार आदि के अवसर पर जाती है और बालकों के खेल, महिलाओं की गोष्ठियाँ आदि कार्यक्रम करके ग्रामीण महिलाओं को सफाई, स्वास्थ्य और बालकों की देखरेख का शिक्षण देती हैं। रात्रि को अवसर ही 'कैम्प फायरों' के द्वारा ग्रामीणों का मनोरंजन करने के साथ ही अनेक शिक्षाप्रद बातें भी उन्हें बताई जाती हैं। ग्रामदान-भूदान के काम में तो हमारी छात्राओं ने लगभग समूचे पहाड़ की यात्रायें की हैं और कई बार तो वे कम दो की ही टोली बनाकर गाँवों में गई हैं।

शाला में भी हर दिन सोने से पहले दिन भर के काम की रिपोर्ट हर बहन को देनी होती है और इसके लिये 'छात्र सभा' लगती है। सोने से पहले यह दैनिक कार्यक्रम है और इसमें ही फिर आगे के लिये दिन की भी योजना बन जाती है। इस प्रकार से लोकतांत्रिक और सामूहिक निर्णय तथा सामूहिक काम करने की आदत का विकास सहज ही होता है। इसी सभा में देश दुनिया के समाचारों का श्रवण और वाचन भी होता है। हफ्ते में एक दिन किरन बहन घास कार्ड पर 'जगलवाणी' से रात सुनाया जाता है। बालिकायें, जब इजरायल का युद्ध चालू था तो, इस बात के लिए रोज उत्सुक रहती थी कि आखिर यह इतना सा छोटा देश इतने बड़े और कई देशों का सामना किस बहादुरी से करता है। पिछले दिनों जब अचानक तेल की कमी की हवा बही या बढ़ाई गई तो भी छात्राओं को इसमें मजा आता था कि आखिर ये नेता और अफसर अब क्या करेंगे जो रोज कभी पैदल चलते ही नहीं।

हम नहीं कह सकते कि हमने कोई उल्लेखनीय सफलता पाई है किन्तु इतना तो हम भी आत्म विश्वास और गर्व से कह सकते हैं कि आज जब शिक्षा पर करोड़ों रुपया खर्च किया जा रहा है और स्कूलों के लिये आलीशान मकानों पर ही करोड़ों का खर्च हो जाता है और फिर भी न तो लोग शिक्षित ही हो रहे हैं और न किसी को सूझ ही रहा है कि अब क्या करें उस हालत में हमने शिक्षा का एक संतोषजनक हल निकाला है और यह हमारी परिस्थिति के बिलकुल अनुकूल है और हमारे समाज को भी उससे संतोष है, लाभ है। हमारी बहनें अच्छी शिक्षित नारियाँ ही नहीं देश की जिम्मेदार नागरिक भी हैं यह हम कह सकते हैं।

> "राज्य-व्यवस्था बनाना अपने आप में कोई कठिन काम नहीं है। सत्ता का केन्द्र निश्चित कर दिया जाये, प्रजा को आज्ञाकारी होना सिखा दिया जाये, और बस काम पूरा हो गया। स्वतंत्रता देना और भी आसान है। मार्ग-दर्शन देने की आवश्यकता नहीं है— बस लगाम छोड़ देना ही काफी है। किन्तु स्वतंत्र लोकतंत्र बनाना, जिसमें अधिकार और अनुशासन का संतुलित सुसंगत समन्वय हो, बहुत विचार और गहरे चिंतन की अपेक्षा रखता है।"
>
> —एडमंड बर्क

देवीभाई :

पश्चिमी युवक विकल्प की खोज में : लैटिन अमरीका की चिट्ठी :

(नयी तालीम के भू. पू. सम्पादक श्री देवीप्रसाद भाई पिछले कई सालो से एक अतरराष्ट्रीय सस्था युद्ध विरोधी आन्दोलन (W R I) के अध्यक्ष के रूप में लदन में रह रहे हैं। इस नाते वे विश्व के अनेक देशो में जाकर शिक्षकों, छात्रों और शिक्षाविदों तथा अन्य सजग नागरिकों से मिलते रहते हैं। उन्होंने इधर हाल ही में लैटिन अमरीका और अमरीका में किये गये अपने प्रवास की रिपोर्ट हमें भेजी है। नयी तालीम के पाठकों को इसमें रुचि होगी इससे हम उनकी रिपोर्ट का साराश यहाँ दे रहे हैं।)

वे नही जानते कि यह किस तरह होगा। लैटिन अमरीकी देशों मे मैंने पाया कि लोग विभिन्न प्रकार के अन्याय और सैन्यवाद, जो आज लैटिन अमरीका का एक शायद स्थाई तत्व बनता जा रहा है, के विरुद्ध संघर्ष मे रत है। विभिन्न प्रकार के समूहों में वे विवाद और कार्यकारी समूहो के सगठन की किसी ऐसी पद्धति की खोज में हैं जो कि उनके आज तक के हिंसात्मक तरीके से तो भिन्न हो है साथ ही प्रभावकारी भी हो। इस प्रकार के समूह खासकर ब्राजील में डान हल्दर कमारा (Dan Helder Camara) ब्लिन स्माइली हिल्दगार्ड (Hildagard) और जीन गास मायर्स (Jean Goss Mayrs) तथा कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में अच्छा काम कर रहे है।

गुरिल्ला पद्धति की निष्फलता :

इन सबने तथा कई अन्य लोगों ने मुझे कहा कि लैटिन अमरीका में पहले गुरिल्ला कार्य पद्धति का बहुत जोर था और एक समय युवकों को यह विश्वास हो चला था कि इससे वे परिवर्तन लाने में सफल हो सकेगे। किन्तु अनुभव ने बता दिया कि ऐसा नही हो सका है और उल्टे सर्वत्र ही सैनिक तानाशाही आ गई है और वह हिंसा या अहिंसा किसी भी प्रकार से काम करने के सारे प्रयासो को निर्ममता से दबा देती है। इसके अलावा पूँजीवाद से छुटकारा पाने के जो गुरिल्लावादी तरीके वे अपनाते थे वे भी सफल नही हुये और इससे तो गुरिल्ला लोग समाज का सामान्य सहयोग भी खो बैठे और वे जनता से एकदम अलग पड गये। इसलिये वे अब अहिंसा की ओर मुड़े है और उसकी किसी जानी मानी तकनीकी के अभाव में अभी खोज कर रहे है। वहाँ आज स्थान स्थान पर विवादों, गोष्ठियों और चर्चाओं की भरमार है कि अहिंसा से सामाजिक परिवर्तन की पद्धति क्या हो। अभी इस प्रकार के साहित्य की वहाँ काफी कमी है इसलिये साहित्य निर्माण के भी गंभीर प्रयास किये जा रहे है। इससे भी अधिक वे लोग इस बात के प्रति सजग है कि उन्हे अहिंसात्मक प्रतिकार की कोई प्रत्यक्ष क्रिया करके बतानी होगी नही तो लोग सिद्धान्तवादी अहिंसा पर कोई भरोसा नही करेंगे।

मेक्सिको : केवल विचार पर्याप्त नहीं :

मैक्सिको का अनुभव कहता है कि केवल कही कोई नया विचार देना ही काफी नही है उसके अनुसार चलने वाला एक 'सक्रिय समूह' भी बहुत आवश्यक है। मैक्सिको मे, जो आज अमरीकी विश्व मे एकमात्र लोकतान्त्रिक देश है, १९१० से ही, जब कि देश पर पॉरफिरो दियाज (Porfiro Diaz) जैसे तानाशाह का शासन था तो, फ्रैन्सिसको मादेरो (Francisco madero) ने लोकतन्त्र के लिये एक आन्दोलन आरम्भ किया था। केवल वैचारिक तरीके से सफल न होने पर और युवकों के आग्रह पर उसने सशस्त्र कार्यवाही भी की और वह स्वयं राष्ट्रपति बनने में भी सफल

हो गया। किन्तु यह अमरीका को पसन्द न था और उसे, कहा जाता है कि अमरीका की मदद से, पदच्युत कर दिया गया। तब से वहाँ पर राष्ट्रपति के द्वारा नामजद राष्ट्रपति की पद्धति का शासन चल रहा है। किन्तु १९६८ में वहाँ के युवकों और छात्रों ने देश के जनजीवन से अलग पड जाने के कारण एक बडा आन्दोलन किया और यद्यपि राष्ट्रपति ने परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार की किन्तु यह आन्दोलन दबा दिया गया। प्रशासन का विचार था कि देश में पहले से ही 'क्रान्तिकारी शासन' है और अब किसी प्रकार के सुधार की गुंजाइश नहीं। किन्तु छात्र मानते थे कि देश की एकमात्र पार्टी 'पार्टिदो' के तथाकथित क्रान्तिकारी नारों का समय अब बीत चुका है और समय आ गया है कि जब देश की समस्याओं पर 'सार्वजनिक रूप से चर्चा और निर्णय' होने चाहिये यह नहीं कि केवल ऊपर बैठे हुए कुछ लोग सबके लिये निर्णय कर लें।

प्रचलित व्यवस्था से असहकार अनिवार्य :

फिर अहिंसा पर एक राष्ट्रीय सम्मेलन किया गया जिसे वहाँ के नेता हेबर्टो सिन (Heberto Sein) ने 'अहिंसात्मक तरीके से सामाजिक परिवर्तन का आरम्भ' बताया। बाद को तो फिर कालेजों और विश्व विद्यालयों में इस विषय पर गोष्ठियों की भरमार हो गई। हेबर्टो का विचार है कि इस तरह के कार्य के लिये यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे युवक और समूह आगे आवें जो कि प्रचलित भ्रष्ट व्यवस्था में किसी भी प्रकार से भाग लेने से इन्कार कर दें और नतीजों का खुशी से सामना करने को तैयार हों। वे लोग अब इस बात का प्रयास कर रहे हैं कि कोई आधारयुक्त (Grass-root) कार्यक्रम बने। यह बात सबसे अधिक आश्चर्य जनक है कि आज मैक्सिको के किसी भी कालेज या विश्व विद्यालय का युवक यह नहीं जानता कि विश्व के अनेक भागों के लोगों ने सफल अहिंसात्मक आन्दोलन भी किए हैं। यहाँ और अन्यत्र भी यही देखा गया कि लोग तो अहिंसा का अर्थ इतना ही मानते हैं कि कुछ भी काम न किया जाय और अन्याय को चुपचाप सहन कर लिया जाय। अब जने शार्प (Gene Sharp) के साहित्य ने इस धारणा को बदलने में कुछ काम किया है।

अर्जेन्टाइना तथा युरुग्वे :

इसी प्रकार से अर्जेन्टाइना में भी 'अर्का' (Arca) नाम का एक ऐसा समूह काम कर रहा है जो कि अहिंसात्मक प्रतिकार के लिए पद्धति की खोज और उसके लिए प्रायोगिक कार्यक्रम बनाता और क्रियान्वित करता है। इस देश में भी गुरिल्ला और ट्राटस्कीवादी समूह काफी सक्रिय और सगठित रहे हैं और उनका युवक समाज पर बहुत गहरा असर रहा है। किन्तु अब यह असर मिट रहा है और अब वे किसी और विकल्प की खोज में हैं। ऐसे युवकों ने अर्जेन्टाइना की राजधानी ब्यूनसआयर्स में अपना एक केन्द्र स्थापित किया है और उसके मार्फत वे

अहिंसात्मक प्रतिकार के लिये अध्ययन समूह, सूचना केन्द्र और एक पूरे समय का कार्यकर्ता की व्यवस्था करने की सोच रहे हैं।

यही बात युरुग्वे म देखन को मिलती हैं। यह देश खासकर मजदूर कल्याण की दृष्टि से लैटिन अमरीका का सबसे अधिक प्रगतिश ल देश माना जाता है और यहाँ तक कि इस देश म शिक्षा का भी बहुत भाग म स्वायत्तता प्राप्त ह। विश्व-विद्यालयों को काफी हद तक स्वायत्तता प्राप्त है। किन्तु हाल ही में यहाँ भी सैनिक शासन आ गया और उसन विश्व विद्यालयो सहित सारी स्थिति बदल दी है और अब देश म पुन गुरिल्ला पद्धत से आन्दोलन के लिय सभी परिस्थितियाँ पैदा हो रही हैं। पहले भी ६० के दशक म यहाँ पर इस तरह का आन्दोलन हो चुका है। १९६८ म जब जाज पशक आर्को (Jorge Pocheco Areco) ने सत्ता हथियाइ थी तब उसन देश के सामप्रधियों स छुटकारा' पान का भरपूर कोशिश की। इसका खासकर मजदूर वग न विरोध किया और तुपामारु राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' (Tupamaru National Liberation Front) नामक एक गुरिल्ला सगठन देश म खडा हो गया जिसका नारा यद्यपि 'मारना नही' था किन्तु पुलिस की ज्यादतियों न उसे अपनी पद्धति बदलन पर विवश किया और फिर वह भी अपहरण और कत्लो के धंध म लग गया। इस पर सेना न दमन का मार्ग और भी मजबूत कर लिया और फिर तो गुरिल्लाओ क साथ निरपराध नागरिक भी उसकी चोट से बच नही सके। जन जीवन पर सैनिक शासन की पकड स्थगन मजबूत हो गई है और आज देश दृढ सैनिक शासन की पकड में है। इस देश म भी हमारे देश की ही तरह बड बड भूमिपतियों के द्वारा, जिन्हें यहाँ इस्टेंसिया (Estancias) कहते हैं, जमीन का हडपा जाना और ग्रामीण क्षेत्रो से बडी संख्या मे लोगो का शहरो की ओर भागन की समस्या प्रबल है।

कास्टारिका बहस का वक्त नही, कार्य

१९७१ म लैटिन अमरीकी देशो म अहिंसक काय-पद्धति के। काई समन्वित तकनीक विकसित करन के बारे म एलजुयला (Alajuela) कास्टारिका, में सम्मलन किया गया जिसमें एक अमरीकी शान्तिवादी श्री अल स्मिथ क प्रयास से अब युरुग्वे की भांति भाईचार का एक संस्था कायम हो गई है जो कि गरीबो के बीच कुछ काम करन का प्रयास कर रही है। अभी इन लोगो न मेडेलिन, (कोलम्बिया,) म एक अन्त लैटिन अमरीकी सम्मेलन किया जिसमें उन्होंने अल स्मिथ के ही शब्दो म इस तरह के व्यक्तियों को नही बुलाया जो अब अहिंसा के बारे में कोई शका करते हो। हम काय की प्रत्यक्ष योजना चाहते हैं जो कि हम लैटिन अमरीका का मुक्त करान मे मदद कर सके। अब हमारे पास इस बहस के लिये समय नही है कि अहिंसा उचित है या नही।' इससे इन लोगो की तीव्रता का पता चलता है।

ब्राजील : छोटे स्वायत्त समूहों का निर्माण आवश्यक :

ब्राजील में, जो कि लैटिन अमरीका का सबसे बडा देश है, भी स्थिति भयंकर है। वहाँ जोआ गुलार्ट (Joao Goulart) के शासनकाल में देश की अर्थ व्यवस्था चौपट हो गई थी और सारा देश भयानक महंगाई और खासकर छात्रों के दंगों से ग्रस्त था। तब सेना ने शासन छीन लिया और जनरल कैस्टेलो ब्रान्को (Gen. Castelo Branco) तानाशाह बन गया। यह सब 'क्रांति' के नाम पर हुआ और इस सैनिक शासन ने सबसे पहले काम तो यही किया कि 'क्रान्ति के दुश्मनों' को जेल में डाल दिया। पहले तो ब्रान्को ने कहा कि ६७ के बाद वह सत्ता में नहीं रहेगा और जनता को शासन सौंप देगा। किन्तु तब तक उसने अपनी ही एक राजनीतिक पार्टी बना ली और जब चुनाव हुये तो यद्यपि नाम के लिये विरोधी दल भी थे किन्तु उन्हें चुनाव की वे सुविधायें नहीं थीं, जो कि शासक दल को थीं, अतः उन्होंने चुनाव का बहिष्कार किया। सब पदों पर शासक दल के ही लोग चुन लिये गये और कास्टा इ सिल्वा (Costa e Silva) अध्यक्ष बनाया गया। उसने फिर 'सामाजिक मानववाद' (Social Humanism) और 'प्रचुरता की कूटनीति (A Diplomacy of Prosperity) की नीति की घोषणा करके काम आरम्भ किया। किन्तु जल्दी ही देश की स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड गई और फिर छात्रों और मजदूरों की हडतालें आरम्भ हो गईं। इस पर तंग आकर उसने भी संसद भंग कर दी और देश में सैनिक शासन की घोषणा कर दी। फिर तो देश में कई गुरिल्ला गतिविधियाँ बढती गईं और अपहरण होने लगे। ब्राजील भी भारत की ही तरह से कृषक व ग्राम-प्रधान देश है और वहाँ भी विकास के नतीजे मात्र कुछ ऊँचे लोगों के हित में हुए हैं। डोम हेल्डर कमारा, जो कि ब्राजील का अत्यन्त प्रभावशाली जननेता है, के शब्दों में, "ब्राजील व असल में समस्त लैटिन अमरीका की समस्या यह है कि बजाय अमरीका, रूस, चीन या अन्य बड़े बड़े देशों का पक्ष या सहानुभूति प्राप्त करने के लैटिन अमरीकी देशों में भाई चारे को कैसे विकसित किया जाय। हमारी समस्या यह भी नहीं है कि हम शस्त्रों के बल पर परिवर्तन कैसे करें, क्योंकि एक तो शस्त्र हमारे पास हैं नहीं, वे तो उनके ही पास हैं जो कि शोषकों के पक्षधर हैं और दूसरे हमारे लोग जो कि अभी तो 'जीने की समस्या' से ही पीडित हैं उन्हें हम 'मरने के लिये प्रेरित' नहीं कर सकते। हमारे लिये किसी एक लैटिन अमरीकी छाते के नीचे कोई एक संगठन खडा करना भी संभव नहीं है। अतः हमें तो ऐसे 'छोटे छोटे समूहों' का निर्माण करना होगा जो कि 'अपने ही नाम से' 'अपने ही नेताओं के नेतृत्व में' काम कर सकें। ब्रिटेन में हमने एक औद्योगिक क्रान्ति की बात सुनी है और वह गरीब लोगों के कंधों के बल पर ही सम्पन्न हुई थी। किन्तु आज लैटिन अमरीका में तो अनेकों औद्योगिक क्रान्तियाँ हो रही हैं और वे सब भी गरीबों की कीमत पर ही हो रही हैं। हम आपसे, भारतीयों से, यही जानना चाहते हैं कि तानाशाही तंत्रों में हम कैसे काम करें। यह नहीं कि अमरीका में किंग या भारत में गांधी के सिद्धान्त कैसे

काम म लायें। हम तो एसे क्षत्र म काम कर रहे हैं जहाँ पर जनता के पास प्रस रेडियो या टलीविजन जसी बातें भी नही ह। यह बात सीध प्रयक्ष जन-सगठनो और क्रियाओ स सम्बन्धित ह जिस सवाल पर आज भारत का सर्वोदय आन्दोलन भी जूझ रहा ह

वनजुयला अहिंसा ही एक मात्र तकनीक

वेनजुयला नटिन अमरीका का एक एसा देश ह जहाँ पर ५४ प्रतिशत से अधिक आबादी १५ साल के कम युवको की ह। कुल जनसख्या का ८२ प्रतिशत ३० साल से नीचे ह। इस तरह यह युवानो का देश ह। यहाँ भी राजनीतिक दृष्टि से वही अस्थिरता और दमन का बोलबाला ह जो अन्य लटिन अमरीकी देशो में ह। यद्यपि देश म गरीब भयानक ह और अमीर और गरीब के बीच की खाई भी दिन प दिन चौडी होती जा रह ह फिर भी आज का वहा का शासन वहाँ के स्वयं से कहता ह कि वे अधिक सतान पदा कर। पहल यह देश भी कई प्रकार का तानाशाहियो का शिकार रहा ह किन्तु अभी वहाँ जनतान्त्रिक सरकार काम कर रही ह। यहाँ पर बनान (कन्फडरेशन आव लटिन अमरीकन वर्कस) नामक एक सगठन है जो मुख्यत मजदूरो का ह किन्तु जिसम कुछ किसान और छात्र तथा शिक्षक भी शामिल ह। यह सगठन अपन सदस्यो का मजदूरी म बहतरी के साथ साथ इस बात पर भी जोर देता ह कि वह फक्ट्री या खत के मजदूर चाहे वे काम पर हो या बकार हो। किस प्रकार व एक नये समाज की रचना के लिए अहिंसक तरीके से काम करन के लिए प्रशिक्षत कर सकत ह। इसक नता डामलियो मास्पेरो (Emilio Maspero) न मुझ कहा कि लटिन अमरीकी देशो में हम देख चुके हैं कि गुरिल्ला पद्धति बुरी तरह से असफल हो चुकी ह और इसन असल म प्रतिक्रियात्मक हिंसा को ह पनपाया ह। इसी प्रकार स कोलम्बिया के निवासी किन्तु अब वनजुयला के ही निवासी बन गए फादर इस्टबेन (Father Esteban) न जो कि आज वनजयला के इन शातिवादी आन्दोलन का एक प्रभावशाली नता ह भ मुझसे कहा कि हिंसा और अहिंसा के बारे म लोगो का बहुत सा भ्रम इस बीच समाप्त हुइ ह और अब अहिंसा पर लोगो का विश्वास बहुत मजबूत हुआ ह। लटिन अमरीकी देशो की स्थिति म तो अहिंसा ही सामाजिक परिवर्तन की एक मात्र तकनीक हो सकती ह।

विकसित ' दुनिया की नकल क फर में

लाटन अमरीकी देशो म लगभग समान सा स्हातिक विशषताय हैं जिसस कि इस सार प्राय द्वीप क समस्याय ज से स मलिन म आ जाती हैं। लाग ९० प्रतिशत से भी अधिक इसाई हैं और आमतौर पर सवत्र ही स्पन भाषी पाकजाती है। इन सब ही देशो का समान रूप स औपनिवेशिक दासता का शिकार होना पडा ह और

अब द्वितीय महायुद्ध के बाद याल्टा सम्मेलन में रूस और अमरीका तथा ब्रिटेन ने तय करके यह क्षेत्र अमरीका के 'प्रभाव क्षेत्र' के अन्तर्गत दे दिया है। आज अमरीका की पकड़ इन देशों पर इतनी मजबूत है कि आम तौर पर इन में से कोई भी देश अपने लिए कोई निर्णय ले सकने में असमर्थ ही है। एक बात और है कि लैटिन अमरीका में एशिया या आफ्रिका के मुकाबिले में शहरी अर्थ व्यवस्था बहुत तजी से बढ़ रही है फलतः आर्थिक विकास का लाभ केवल उच्च तथा मध्यम वर्ग को एक अत्यल्प संख्या के हाथ ही लगता है और आज वहाँ सामाजिक तनाव हद तक आ गया है। लैटिन अमरीका लगभग आज भी उपनिवेश ही है और वहाँ के मूल निवासी जो कि उस प्रायद्वीप के इतिहास के निर्माता रहे हैं इस औपनिवेशिक दासता के बुरी तरह से शिकार हैं। वे भी आज विकसित दुनिया की नकल कर रहे हैं और ग्रामीण आबादी तेजी से शहरों की ओर भाग रही है। यह अब या आज विश्वव्यापी है किन्तु इस क्षेत्र में इसकी गति अत्यधिक तेज है। इस हालत में वहाँ के युवकों में आज तीव्र असन्तोष है और वे अपने देशों को इस औपनिवेशिक दासता, चाहे वे पूंजीवादी हों यह फिर साम्यवादी तानाशाही की हो, से मुक्त करने के लिए बेचैन हैं। महत्व की बात यह भी है कि यहाँ इस प्रस्फार (Upsurge) का नेतृत्व वहाँ का शिक्षाशाली वर्ग कर रहा है।

लैटिन अमरीका के लोग कुल मिलाकर आज इस प्रकार के शोषण और अन्याय के मुकाबिले के लिये किसी अहिंसक विकल्प की खोज में हैं। हिंसात्मक आन्दोलनों ने उन्हें बुरी तरह से निराश किया है। और यह भी महत्व की बात है कि आज वहाँ के ये छिटपुट अहिंसात्मक प्रयास भी उसी प्रकार और उतनी ही क्रूरता से दबा दिए जाते हैं जैसे कि हिंसात्मक आन्दोलन दबाये जाते हैं। इससे अहिंसात्मक आन्दोलनों की ताकत का पता भी चलता है।

अमरीका जनता व सरकार के बीच खाई :

मैं इसी क्रम में अमरीका, खासकर दक्षिण पश्चिम अमरीका और न्यू मैक्सिको भी गया। और प्रसंगवश उनके कुछ अनुभव भी यहाँ देने लायक हैं। मैं जहाँ भी गया, चाहे वह विश्वविद्यालय हो या नागरिक सभा सर्वत्र ही लोग दो तीन बातों में रुचि लेते दिखाई दिये। एक तो यह कि आश्रम जीवन कैसा होता है, उनकी दैनिक समस्याओं को हल में क्या रोल है, अहिंसात्मक ढंग पर यदि कहीं पर कुछ सफल कार्य हुए हों तो उनकी विस्तृत जानकारी और अभी प्रचलित प्रसंग में चिनी के प्रश्न पर अहिंसात्मक प्रक्रिया क्या हो। वे लोग यह भी जानना चाहते थे कि गांधी जी के सत्याग्रह के बारे में उन्हें विस्तार से बताया जाय। निजी जीवन में अहिंसा की शक्ति कैसे प्रकट हो यह भी उनकी रुचि का विषय था। इस प्रकार की रुचि के कारण ही लोगों ने जगह जगह पर अहिंसात्मक प्रक्रिया पर चर्चा करने, प्रयोग करने और जन संगठन

करने के लिए कई प्रकार के संगठन खड़ कर दिये हैं जिनमें विश्व विद्यालयों के प्रोफेसर, विद्यार्थी और अन्य नागरिक साथ मिलकर काम करते हैं। आज अमरीकी सरकार और अमरीकी जनता म एक बड़ी खाई पैदा हो गई है और यह दिन व दिन चौडी होती जा रही है। सरकार तो, विश्व की किसी भी सरकार की ही तरह से, पुराने तरीका यानं जनता पर बस शासन करन ' की ही फिक्र से काम करती है किन्तु जनता म आज युद्ध शोषण और अन्याय के विरुद्ध तीव्र इच्छा है और अब वहाँ की जनता को, लगता है कि पूँजीवादी जीवन पद्धति स भी उक्ताहट हो गई है।

तीन मुख्य पर प्रवृत्तियो की दिशा :

यहाँ भी मैंने तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ काम करते देखी हैं —

पुराने तरीको से ऊब :

१ एक तो यह कि लोग, खासकर युवक, अब 'सडकों पर नारे लगाने' और 'जुलूस निकालने के पुराने तरीको से' ऊब गये हैं अत उनका झुकाव अब एक प्रकार के आध्यात्मिक तोषण की ओर गया है और इसको सबसे अच्छा उदाहरण यही कहा जायेगा कि आज वहाँ एक १५ वर्षीय भारतीय बालक 'गुरु महाराज' के शिष्यों की भरमार हो रही है। १९६० में राष्ट्रीय संयुक्त सरकार के एक प्रमुख व्यक्ति रेने डेविस (Rene Devies) जैसे बुजुर्ग इन गुरजी के उत्साही शिष्यों में से हैं।

प्रचलित सत्ता-मार्ग से समाजवाद

२ दूसरी प्रवृत्ति यह है कि उन लोगों को, जो पहले वामपथ के उत्साही कार्यकर्ता रह चुके हैं किन्तु वामपथ के बुरी तरह से असफल होने पर, अब लगता है कि प्रचलित राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास यदि किया जाय तो वे समाजवादी समाज की रचना कर सकते है। (यह ठीक वैसे ही जैसे कि आज भारत में अनेक कांग्रेस और समाजवादी लोगों को लगता है— सम्पादक)। बर्कले के मेयर पद के लिये एक उम्मीदवार श्री बची स लम ने यही नारा दिया था कि 'वे वहाँ जाना चाहते हैं जहाँ पैसा है ताकि वे अपने लोगों का हालत सुधार सके।"

तीसरा रास्ता . केन्द्रबिन्दु गाधी .

३ इन दो प्रवृत्तियों से भिन्न किन्तु अधिक महत्वपूर्ण लगनेवाली एक और ही प्रवृत्ति है। ये लोग वे हैं जिन्होंने युद्ध विरोधी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। ये अब एक दीर्घ काल के परिप्रेक्ष में सोच रहे हैं कि अन्याय सैन्यवाद और अन्य प्रकार की बुराइयों से लड़ने की पद्धति जारी रखी जाय किन्तु इसकी सफलता के लिये केवल प्रदर्शनात्मक प्रतिरोध ही काफी नहीं है। इसके लिये कुछ आधारीय (Grass root) कार्य होना आवश्यक है। कुछ 'विकल्प प्रस्तुत करनेवाली प्रत्यक्ष सत्यात्मक प्रक्रियायें' अपनाई जाय ताकि लोग प्रचलित

समाज व्यवस्था मे तंग आ गये हों यह इसे बदलने के लिये आतुर हों वे कुछ कर सकें। वे लोग अब यह तीव्रता से अनुभव करने लग गये है कि यदि हम 'अपना काम स्वय करने' की कोई सामाजिक पद्धति विकसित कर सकें और अन्याय, सत्ता की राजनीति आदि के विरुद्ध 'अपनी शक्ति' बना सके तो ये बुराइयां स्वत हो निरस्त हो जायेगीं। वर्तमान केन्द्रित उपभोक्ता अर्थ व्यवस्था केवल 'बढोतरी' (Growth) पर निर्भर करती है सतत उत्पादन पर नहीं। यदि इस बढ़ोतरी को हम ऐसे लोगों के सगठन के द्वारा, जो कि अपना उत्पादन और वितरण स्वय करने में समर्थ हे कमजोर कर सके तो यह स्वत ही समाप्त हो जायेगी। वे लोग आज इस तरह की गम्भीर खोजों में लगे है। कुल मिलाकर पश्चिम में आज एक तीव्र किन्तु धीमा और दूरगामी परिणामयुक्त पुन चिंतन आरम्भ हुआ है और यह खासकर भारत जैसे देश के लिये ध्यान देने की बात होना चाहिये कि इस सारे चिंतन का केन्द्र बिन्दु गांधी बनता जा रहा है।

जो भी हो, भारतवर्ष की अन जनता आज स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी अत्यन्त दयनीय दशामें है। वह किसी तरह उससे छुटकारा पाना चाहती है। भिन्न भिन्न वादो का विचार करने की उसमें शक्ति नहीं और न उसे इतनी फुरसत ही है। न उसका मतलब पूरा करे, वहीं उसका दव ऐसी स्थिति है। यह न भूलना चाहिये कि साम्यवाद का विरोध करने, उसका तात्विक उत्तर देने या सत्ता के बलपर उसका दमन करने से काम नही चलेगा। जिस तरह बरसात मे नदी-नाले सब तरफ से उमड कर समुद्र की तरफ दौडते है, उसी तरह स्वराज्य तन्त्र में सभी सेवको का सदा ग्रामीण और आपद्ग्रस्त जनता की तरफ दौड जाना चाहिये।

—विनोबा

सन् दो हजार साल के बाद :

इस सदी के अन्त तक भयानक खनिज दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की जा रही है। फिर भी यह अगर अतिशयोक्ति भी हो तो भी यदि विकासशील देश अपने दुर्लभ खनिजों का संरक्षण करने और उनके लिए अन्य विकल्प खोजने का काम नहीं करते तो उनको भविष्य में अपने विकास की भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। मई १९७० में मार्गरेट कूपर फ्रीमन और केलीफोर्निया में स्टेनफार्ड विश्व विद्यालय के इंजीनियरिंग प्रोफेसर चार्ल्स एफ पार्क जूनियर ने फ्रान्स और ब्राजील के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला है कि आनेवाले समय में खनिजों की कीमत बहुत बढ़नेवाली है और इससे आज के धनी देश और धनी और गरीब देश और गरीब होते जायेंगे। तांबा, शीशा, जस्ता आदि नये न बनाये जा सकने वाले खनिज अत्यन्त ही सीमित मात्रा में पाये जाते हैं और आज ही इनका अधिकांश भाग केवल कुछ ही विकसित देश हड़प लेते हैं। उदाहरण के लिये अमरीका में प्रति व्यक्ति १३ किलो, फ्रान्स ६ किलो भारत २ किलो, और ब्राजील में ०.४५ किलो तांबा प्रयोग में लाया जाता है। किन्तु विकासशील देशों की तेजी से विकास करने की इच्छा और कार्य पद्धति से उनकी खनिज प्रयोग की गति भी तेजी से बढ़ती जा रही है। फिर इसके अलावा उनकी जनसंख्या भी विकसित देशों के मुकाबिले तेजी से बढ़ रही है। फिर विश्वव्यापी कमी के कारण से खनिजों की कीमतें भी तेजी से बढ़ रही है। पार्क और फ्रीमन ने तांबा, शीशा, जस्ता, गंधक, मैगनीज और पेट्रोलियम पदार्थ इन ६ चीजों के ही आधार पर कहा है कि सन् २००० तक अकेले ब्राजील और फ्रान्स ही क्रमशः १३६००० और ३६००० टन तांबा, ९५००० और २१०००० टन शीशा, १३४००० और २४५००० टन जस्ते का उपयोग करेंगे। यह हिसाब इनकी आज की जनसंख्या पर से है। अभी ब्राजील फ्रान्स के मुकाबिले केवल १।६ तांबा और शीशा तथा १।४ जस्ते का ही उपयोग करता है। अब अगर ब्राजील फ्रान्स के आज के स्तर तक आना चाहे तो फिर उसे अपना आज का उपभोग तांबे में ११ गुना, शीशे में भी ११ गुना और जस्ते में ८ गुना करना होगा। किन्तु ब्राजील की जनसंख्या को ध्यान में रखकर सोचें तो फिर उसे सन् २००० तक १५२०००० टन तांबा, ९ लाख टन शीशा और १०२०००० टन जस्ते की आवश्यकता होगी। अन्य विकासवान देशों से भी यही नतीजे निकलते हैं। खनिजों के इस भयानक दुर्भिक्ष को टालने के लिये पार्क और फ्रीमन ने जनसंख्या पर प्रभावी नियंत्रण और कच्चे खनिज की पूर्ति में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग पर बल दिया है। किन्तु सवाल तो यह है कि क्या तीस साल बाद भी लोगों को कच्चे खनिज इतनी मात्रा में मिलेंगे जो हमारे जीवन का आज आधार बन गये हैं।

Richard B Gregg

Education for a Live Democracy

WHEN a human embryo is being formed, very early in the process the brain and spinal cord are created Then from that central nervous system separate nerves grow out like branches from a tree The first nerve thus to branch out comes to the mouth and face That is because the first act of the newborn baby is to feel for its mother's breast to get food And all through its life its lips and mouth and face will be important not only to get food but to communicate words and meanings to other people

The second nerve to grow out from the central nervous system shoots out along the arms without delay straight to the fingers This is because from very early on and/all through its life the human being must use its hands for all sorts of purposes So nature reveals the importance of the hands

HANDS DEVELOP THE MIND

Again, if mankind evolved from early animal stages, as the Darwinian theory maintains at a stage about level with that of the monkeys the early men began to grasp with their hands and use stones and sticks They used them as tools and weapons With such crude implements they ceased to be merely passive in the lap of Nature and began to deal actively and purposefully with their environment Thus they began to realize problems and deal with them By means of these extensions of their limbs they got more control over their environment By such use of their hands their minds began to develop Ever since then the hand has played a very important part in the development of man s mind Without hands he could never have developed into an intelligent creature

MONTESSORI METHODS

We know that Maria Montessori worked out valuable methods for the education of normal children by means of her study of mentally deficient children Similarly it is interesting and significant to see how the psychiatrists and physicians in mental hospitals treat the patients who are profoundly gloomy, despairing and shut in with their own troubles They give such patients what is called "occupational therapy" By that term they mean work with the hands The patient chooses whatever kind of manual work he likes It may be weaving, carpentry, pottery painting etc He is provided with the necessary tools and materials and given instruction and guidance It has been found that such making with the hands of something that is simple but useful or pretty gets the patient out of himself and his troubles It stimulates his interest challenges his ability to deal with a problem stimulates his creative faculty stirs his pride, arouses by little step his self reliance self confidence, self respect, his initiative his courage and his hope In short, it cures him Again we see the importance of the hands for a healthy and normal intellectual and emotional life

SPORTS

Another instance of the same emphasis is seen when we observe the activities of the ruling classes of almost all countries. They are very shrewd people They teach their children to ride horseback early They encourage them to engage in such games as tennis and golf They as adults, also frequently ride horseback, attend horse shows engage in jumping or hunting on horseback They have done this for many centuries Their young men often play polo As adults they play tennis, golf and other sports

Do they do all this just out of high spirits or to have sports that are expensive and thus set themselves apart from most people? Not mainly They do this as one of them told me, to develop and maintain self confidence self reliance, initiative, vigour courage, self respect the habit of command and masery, and often team work They see to it that such qualities are developed early in the formative ages of their children, and that they are maintained all through life That is to say, they know that early, habitual and prolonged use of the body, especially the hands produces in the user these immensely important qualities

of self reliance, self-confidence, initiative, vigour, courage, and self respect These are qualities important to every persons. Only if these qualities are strong and practically universal in its people can a nation be strong, democratic and free For example, think of the love of sports among the British people Note in this larger aspect how important is the use of the hand

Let me now quote from an essay I wrote ten years ago for a volume called "Art and Thought" in honour of Dr A K Coomaraswamy

WORK THE BASIS OF A GREAT METAPHYSICSS

"It has been noted that all the great religions of the world originated among pastoral or agricultural cultures That also means that all great metaphysics developed [illegible] a cultural matrix of hand work

'Was this chance? I think' (As we have seen above) the mind of the race and of the individual developed and continues to develop out of the combined use of eye and hand Hence intellectuals must respect manual work Hand craft develops great delicacy, keenness of discrimination and subtlity of all the senses—of sight, hearing, smell, touch, articular *sense, kinesthetic* sense, balance, and in some of the crafts the senses of taste and *temperature It is no by accident that the deepest and most* important part of the life of man—his religion his metaphysics his absolute assumptions, his culturd axioms—are made vivid and understandable in the analogies of sense experience

RELIGIOUS RITUALS

In various religious rituals we use specific forms of architecture, images, picture, symbols, recitals, chants, music fire, incense, gesture, posture Processions dance, food drink, laying on of hands—thus appealing to all the bodily senses Even the spiritual experience of Samadhi, of Fana and Baqa the soul s loss of itself and its union with God, are described to us by the mystics by analogies and symbols of light, fire, sexual union, voices walking—all of them sensory experiences Since the manual workers have done so much to enhance the delicacy, meaning and power of sensory perception, we may say without exaggeration that the Brahman, the Pir, the seer, the saint, and the metaphysician in the very heart and essence of their special functions are dependent

upon the manual workers for their subtlety, richness and depth of understanding Kabir was a weaver, Dadu a cotton carder, Jesus a carpenter, St. Paul a tentmaker, Boehme a shoe maker, Spinoza a lens grinder

"No culture or civilization can develop or maintain keen discrimination, subtlety, richness and profundity of thought, imagination and consciousness without a broad, secure and constant element of handwork There can be no great culture unless it has profound and clear metaphysics This, I believe, requires a long and continuing experience of handwork by most of the people of that culture Handcrafts are essential for the survival and development of any culture or civilization"

FOOD & HUMAN HANDS

Food is grown gathered and prepared by human hands Clothing cannot be made or kept clean without human hands Houses are made by hand All art and man made beauty is made by hand All writing, typewriting and printing cannot be done without the hands Machinery, airplanes and radio apparatus are tended and controlled by hand Skilled handwork is part of the basic training of all scientists and technologists All that sustains human life and gives it meaning is possible only through the hands

GANDHI S BASIC EDUCATION

In view of all this, doesn't it seem absurd foolish and reactionary for any people to think that manual work is degrading and beneath their dignity? To despise the hands and handwork is like despising our mothers We should think of the hands and handwork with admiration, wonder and gratitude Handwork is not something to avoid, but something to cherish

It is common knowledge that Lord Macaulay, acting for the British Government, devised the Indian education system so that it would produce a large number of subservient clerks, men without initiative or desire or power to think for themselves How can Indians who care for their nation or for freedom and self respect want to perpetuate or submit their children to such a system? Unless such a system is ended and replaced by something better immediately, its evil results will last another forty years at least

Gandhi's system of basic education restores handwork to the position of honour it ought to have When put in to effect all over the land, it will develop citizens who are self confident, self-reliant, vigorous, courageous, able and willing to think for themselves Responsible, hopeful and free This will be the basis for a strong and great democracy Surely this basic education calls for your active and understanding support

—o—

अमरीका के प्रख्यात् शिक्षाशास्त्री और विचारक श्री रिचर्ड बी ग्रेग ने म जेजमें बताया है कि किस प्रकार हाथ से काम करने से ही महान् मानव सभ्यतायें पनप सकी हैं और मनुष्य का विकास सम्भव हो सका है। यदि किसी राष्ट्र को पगु और दास बनाना हो तो उसे हाथ के काम से अलग रखो और यही मैकाले की शिक्षा पद्धतिने, जो आज के स्वतन्त्र भारत में भी चलाई जा रही है, किया। किंतु भारत को यदि मजबूत और महान् लोकतंत्र के रूप में विकसित होना हो तो हाथ के काम पर आधारित गांधीजी की बुनियादी शिक्षा के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है।

नयी तालीम : सितम्बर, '७४

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

नैतिक प्रेरणा का स्रोत

"तात्विक दृष्टि से भौतिकवाद में न तो नैतिक व्यवहार के लिये कोई आधार है न अच्छा बनने के लिये कोई प्रेरणा या अभिक्रम ही।

"मनुष्य, उसकी चेतना-शक्ति, समाज और संस्कृति— जिसका उसने निर्माण किया है— यदि ये सब भूत द्रव्य की, फिर वह द्वन्द्वात्मक दृष्टि से चाहे कितना सक्रिय क्यों न हो, अभिव्यक्ति मात्र है, तो मैं नहीं समझता कि क्यों किसी व्यक्ति को अच्छा बनने की कोशिश करनी चाहिये? तब किसी दुबले, दीन, दुखी के प्रति किसी को सहानुभूति क्यों होनी चाहिये? मृत्यु के उपरान्त जो द्रव्य भूत है, वह भूत द्रव्य में विलीन हो जायेगा। अतएव नैतिक व्यवहार के लिये उससे क्या प्रेरणा मिल सकती है?"

—जयप्रकाश नारायण

मुद्रक : अमरराम सोंडे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

हम गांधीजी को क्या जवाब देंगे ?

★

शिक्षा में गांधीवादी दृष्टि और कार्यरचना

★

वित्तीय ऐश्वर्य के बाद

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] अक्टूबर, १९७४ [अंक : ३

सके और पार्टियों का हिसाब भी चुनाव आयोग द्वारा जांचा जा सके। जब तक इस विषय की ओर शीघ्र ध्यान नहीं दिया जायेगा तब तक भारत में भ्रष्टाचार का वातावरण दूर न हो सकेगा। आजकल अखबारों में आये दिन समाचार प्रकाशित होते हैं कि काफी तस्करों ने कांग्रेस व अन्य दलों के नेताओं को चुनाव के समय बड़ी-बड़ी रकमें दी थीं और इसी वजह से उन्हें शासन की ओर से कई प्रकार के संरक्षण भी मिलते रहे हैं। यही हाल उन लोगों का है जो चोर बाजारी, मुनाफाखोरी और मिलावट के शर्मनाक धन्धों में दिन-रात व्यस्त हैं। अतः जब तक कांग्रेस व अन्य पार्टियों के नेता यह संकल्प नहीं कर लेते कि वे भविष्य में काले धन को हाथ नहीं लगायेंगे तब तक तस्करी व अन्य जुर्मों को जड़ से नाश करना सम्भव नहीं होगा।

दूसरे, यह भी बिलकुल जरूरी है कि जिन केन्द्रीय व प्रान्तीय मिनिस्टरों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप लगाये गये हैं उनकी पूरी जांच की योग्य व्यवस्था जल्द ही कर दी जाय। अब वह जमाना गया जब कांग्रेस के हाईकमान की ओर से ही इस प्रकार की जांच पर्याप्त मानी जाती थी और आम जनता को सन्तोष हो जाता था। इस समय तो यह बिलकुल आवश्यक है कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध इस प्रकार की जांच सुप्रीम कोर्ट के चालू या अवकाश-प्राप्त न्यायाधीशों द्वारा कराई जाय। यह बड़े दुःख का विषय है कि सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों के सुपरसेशन के बाद न्यायाधीशों के प्रति भी जनता की आस्था में काफी कमी आ गई है। फिर भी हम यह उम्मीद रखते हैं कि सुप्रीम कोर्ट के जज अपने पद की जिम्मेदारी ठीक तौर से सम्भालते रहेंगे। हम जानते हैं कि कुछ राज्यों में इस प्रकार के आरोपों की जांच के लिये लोक-आयुक्तों की नियुक्ति की गई है। लेकिन हमें यह साफ कहना होगा कि जिस ढंग से ये लोक-आयुक्त नामजद किये गए हैं उससे लोगों में उनके प्रति श्रद्धा पैदा नहीं हो सकी है। अतः सुप्रीम कोर्ट के जजों द्वारा ही जांच का प्रबन्ध कराना नितान्त आवश्यक है।

हम यह भी जानते हैं कि इस तरह के बहुत से आरोप असत्य भी होते हैं और दुश्मनी या द्वेष के आधार पर लगा दिये जाते हैं। इसलिये यदि वे गलत साबित हों तो आरोप लगाने वालों के खिलाफ भी कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिये। हाँ, अगर वे सही साबित हों तो फिर सम्बन्धित मंत्रियों को अविलम्ब त्याग-पत्र देना चाहिए और जहाँ जरूरी लगे वहाँ उनके खिलाफ कानूनी कदम भी उठाने में संकोच नहीं होना चाहिये। यह तो बिलकुल स्पष्ट ही है कि जब तक ऊपर के नेताओं के स्तर पर भ्रष्टाचार खत्म नहीं किया जायेगा तब तक नीचे के स्तरों पर इस बुराई को दूर करना बिलकुल नामुमकिन होगा। यदि भारत सरकार चाहती है कि देश में तस्करी जैसे बड़े जुर्म सचमुच समाप्त हों तो फिर उसे अपनी ओर भी देखना ही चाहिये और वर्तमान बुराइयों को कड़ाई से दूर करने में लग जाना चाहिए। तभी शासन का

नैतिक प्रभाव सर्वसाधारण जनता पर गहराई से पड़ सकेगा और भारत का सार्वजनिक जीवन एक बार फिर शुद्ध व पवित्र बन सकेगा।

भारत की बढ़ती जनसंख्या :

गत मास बुखारेस्ट में विश्व जनसंख्या सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें संसार के करीब सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। भारत के केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डा. कर्णसिंह ने सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि संतति नियमन के साथ-साथ विकास के कार्यों को भी तेजी से बढ़ाना जरूरी है। उन्होंने जोर दिया कि विकासशील देशों की गरीब जनता को परिवार-नियोजन के तरीके बतलाने के बजाय उसकी गरीबी को दूर करने का सामूहिक प्रयास होना चाहिये।

हमारी दृष्टि से उक्त विचार का एक अंश ही सत्य है। यह सही है कि जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के साथ अर्ध-विकसित राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों द्वारा अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त होनी चाहिये। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिये कि विकासशील देश संतति-नियोजन की तरफ पूरा ध्यान न दें और सिर्फ विकास के कार्यों को अधिक व्यापक बनाने में व्यस्त रहें। यदि विशेष प्रयत्न न किया गया तो वर्तमान आंकड़ों के अनुसार हर तीस वर्ष में भारत की जनसंख्या दुगुनी होती जायगी। इस हिसाब से अगले सौ वर्षों में भारत की जनसंख्या लगभग सौ करोड़ हो सकती है। यह विचार ही बहुत भयंकर प्रतीत होता है। लेकिन सिर्फ डरने या घबराने से काम नहीं चलेगा। हमें जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिये ठोस कदम उठाने ही होंगे।

आजकल ऋषि विनोबा भी इस समस्या की ओर हमारा ध्यान बार बार खींच रहे हैं। वे कहते हैं कि अगर हमारी आबादी इसी तरह बढ़ती रही तो 'भूदान' और 'ग्रामदान' आन्दोलन बिलकुल निष्फल साबित होंगे। जिस जमीन को आज बेजमीन परिवारों में बांटा जा रहा है उनके कुछ वर्ष बाद और भी टुकड़े हो जायेंगे और किसी के लिये भी आर्थिक दृष्टि से कृषि के काम में लगना व्यर्थ ही होगा। अतः आबादी का नियमन करना बहुत जरूरी है। जैसा कि महात्मा गांधी कहते थे और आज पूज्य विनोबाजी समझा रहे हैं, जनसंख्या की वृद्धि को रोकने का सबसे सही और उचित उपाय तो संयम और ब्रह्मचर्य ही है। विनोबाजी ने सुझाव दिया है कि पच्चीस वर्ष के पहले शादियाँ न हों और ४०—४५ वर्ष की उम्र में ही अधिक से अधिक लोग वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करें। इसके अलावा यदि किसी परिवार में तीन भाई हैं तो उनमें से एक अविवाहित रहे और सार्वजनिक सेवा-कार्यों में लगे। अन्य दो भाईयों का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे अपने इस अविवाहित भाई के भरण-पोषण की योग्य व्यवस्था करें। हम इस सुझाव को अव्यवहारिक नहीं मानते और समझते

अनुक्रम

अक्टूबर, '७४
* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रका
राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २३
अंक : ३

तस्करी के विरुद्ध सरकारी आन्दोलन :

हमें खुशी है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने इन दिनों तस्करी के विरुद्ध सारे देश में जोरदार आंदोलन चलाया है जिसके फलस्वरूप बहुत से प्रमुख तस्कर आंतरिक सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किये जा रहे हैं। हम आशा करते हैं कि यह कार्रवाई भविष्य में भी व्यवस्थित ढग से चालू रहेगी ताकि यह आर्थिक जुर्म जड से उखाडकर फेंका जा सके। साथ ही साथ हम यह भी चाहेंगे कि मुनाफाखोरी, काला बाजार, कर चोरी, मिलावट और जमाखोरी की बुराइयों के खिलाफ भी देशभर में जोरदार आन्दोलन सचालित किया जायगा।

किन्तु हम शासन का दो बातों की ओर विशेष ध्यान दिलाना चाहते हैं। एक तो यह कि काँग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों की ओर से काले धन के रूपमें चुनाव-फड एकत्र करने का रिवाज अब बिलकुल समाप्त हो जाना चाहिए। कुछ वर्ष पहले कम्पनी कानून में एक सशोधन किया गया जिसकी वजह से कोई भी उद्योगपति या व्यापारी किसी राजनीतिक पार्टी को चेक द्वारा खुले ढग से दान नहीं दे सकता। यदि इस प्रकार के आमूलाग्र परिवर्तन किये जा सके कि चुनाव में अधिक खर्च करने की जरूरत ही न पडे तो सब दृष्टि से अच्छा ही है। चुनाव के लिये देश के धनिकों के सामने हाथ न फैलाने पडें तो भारत की लोकशाही के भविष्य के लिये यह एक शुभ चिन्ह होगा। लेकिन अगर यह सम्भव न हो तो कोई सकोच अनुभव किये बिना कम्पनी कानून में किये गये सशोधन को रद्द कर देना चाहिये ताकि कम्पनियाँ फिर चेक द्वारा विभिन्न पार्टियों को दान दे

है कि उनके कार्यान्वयन द्वारा ही जनसंख्या की समस्या को स्थायी ढंग से सुलझाया जा सकता है।

लेकिन हम यह भी कहना चाहेंगे कि यदि किसी परिवार को उक्त सुझाव व्यवहारिक प्रतीत न हो तो वह परिवार-नियोजन के अन्य वर्तमान साधनों का इस्तेमाल करे और किसी भी हालत में अपने परिवारकी संख्या सीमित रखे; हाँ, इतना ध्यान अवश्य रखा जाय कि हमारी युवा पीढ़ी वर्तमान साधनों का किसी प्रकार दुरुपयोग न कर सके और ये सुविधायें उन्हीं विवाहित व्यक्तियों को उपलब्ध की जायं जो समझ-बूझ कर और बिना किसी सरकारी दबाव या प्रलोभन के स्वेच्छा से उनकी मांग करते हैं।

सर्वोदय प्रकाशन का एक केन्द्रीय संगठन :

पूज्य विनोबाजी के सान्निध्य में तारीख २७ और २८ सितम्बर को पवनार आश्रम में सर्वोदय की पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों व प्रकाशकों का एक सम्मेलन सर्व सेवा संघ, गांधी स्मारक निधि और गांधी शांति प्रतिष्ठान के संयुक्त तत्वावधानमें आयोजित किया गया था। विनोबाजी काफी समय से कहते रहे हैं कि सर्वोदय आन्दोलन को अलग अलग शंखो के बजाय अब एक 'महा-शंख' बजाना चाहिये। उनका सुझाव था कि 'भूदान-यज्ञ' (सर्वोदय) साप्ताहिकको अधिक व्यापक बनाया जाय ताकि उसमें विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों की जानकारी एक साथ प्राप्त हो सके। देश के शहरों और देहातों में उसकी कम से कम एक लाख प्रतियां छपनी चाहिये। इसी प्रकार सर्वोदय सम्बन्धी जो किताबें छापी जायं वे एक अखिल भारतीय संस्था द्वारा सम्पादित और प्रकाशित की जायं। इन पुस्तकों की हजार-दो हजार प्रतियों के स्थान पर कम से कम १०-१५ हजार प्रतियां छपनी चाहिये।

इन सभी विषयों पर उक्त सम्मेलन में दो दिन तक गम्भीर चर्चा हुई। अन्त में निश्चय हुआ कि देश में सर्वोदय साहित्य का अधिक व्यापक प्रसार करने की दृष्टि से सर्व सेवा संघ, गांधी स्मारक निधि, गाधी शांति प्रतिष्ठान, खादी-ग्रामोद्योग की संस्थायें और अन्य अखिल भारतीय व प्रादेशिक संस्थायें मिलाकर एक केन्द्रीय (फेडरल) संगठन स्थापित करें जो प्रारम्भ में मुख्यतः विभिन्न संस्थाओं की प्रकाशन योजनाओं का समन्वय करे। साथ ही साथ यह संगठन देश के शहरों और गांवों में सर्वोदय साहित्य की व्यापक बिक्री की भी व्यवस्था करे।

यह भी तय किया गया कि सर्व सेवा संघ द्वारा प्रकाशित 'भूदान-यज्ञ' (सर्वोदय) को अधिक व्यापक बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाय। इस साप्ताहिक के लिए एक केन्द्रीय संचालन समिति नियुक्त की जाय जिसमें विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल रहें। इस समय विभिन्न प्रान्तों में जो साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं उनका 'भूदान-यज्ञ' (सर्वोदय) से

अधिक नजदीक का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। इस दृष्टि से सर्वोदय प्रेस सर्विस को ज्यादा मजबूत बनाया जाय ताकि अखिल भारतीय महत्व की सामग्री प्रादेशिक पत्रिकाओं को जल्द उपलब्ध हो सके।

हम इन निर्णयों का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि पूज्य विनोबाजी की इच्छा के अनुसार सर्वोदय साहित्य को देश भर में अधिक फैलाने के लिये शीघ्र ही कुछ ठोस कदम उठाये जायेंगे।

प्रादेशिक शिक्षा सम्मेलन :

यह सन्तोष का विषय है कि सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से कई राज्यों ने शिक्षा सम्मेलनों का आयोजन किया है। कर्नाटक, तमिलनाडु और राजस्थान में तो इस प्रकार के सम्मेलन पिछले कुछ महीनों में हो चुके हैं। यह सन्तोष का विषय है कि पांच अगस्त को हरियाणा में इसी प्रकार का एक राज्य स्तरीय शिक्षा सम्मेलन चण्डीगढ़ में हुआ था जिसकी अध्यक्षता वहाँ के शिक्षा मंत्री श्री मारुसिंह मलिक ने स्वयं की थी। उस सम्मेलन में राज्य के वित्त और राजस्व मंत्री भी उपस्थित थे। हरियाणा के शिक्षा विभाग के सभी उच्च-अधिकारियों ने इस सम्मेलन में सक्रिय हिस्सा लिया। राज्यके गैर-सरकारी प्रमुख शिक्षा शास्त्री भी शरीक हुए। अपने उद्घाटन भाषण में हमने इसी बात पर जोर दिया कि अब शिक्षा का सीधा सम्बन्ध विकास योजनाओं और उत्पादन कार्यों से स्थापित होना चाहिये। तभी शिक्षा प्रणाली समाज-उपयोगी बन सकेगी और शिक्षित बेकारों की समस्या भी हल हो पायेगी। हमें खुशी है कि हरियाणा राज्य ने सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की करीब सभी सिफारिशों को मान्य किया है।

तारीख तीन और चार अक्टूबर को हैदराबाद में आन्ध्रप्रदेश बुनियादी शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। शिक्षा-मंत्री श्री कृष्णराव ने उसकी अध्यक्षता की। उद्घाटन भाषण में हमने आशा प्रकट की कि आन्ध्र प्रदेश सेवाग्राम सम्मेलन की सिफारिशों को लागू करनेमें पहल करेगा और देश के सामने एक आदर्श नमूना पेश कर सकेगा। हमें इस बात का सन्तोष है कि आन्ध्र प्रदेश शासन बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों को तेजी से आगे बढ़ाने का संकल्प कर रहा है।

हमें उम्मीद है कि इस प्रकार का सम्मेलन जल्द ही मध्यप्रदेश व अन्य राज्यों में भी बुलाये जायेंगे ताकि वहाँ भी शिक्षा-प्रणाली में कुछ बुनियादी सुधार दाखिल किये जा सके।

—श्रीमन्नारायण

आगामी नवम्बर में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की बैठक होनेवाली है जिसमें वह देश की आर्थिक कठिनाई के परिपेक्ष में शिक्षा में प्राथमिकताओं का चयन और निर्धारण करने पर विचार करने वाली है। केन्द्रीय शिक्षामन्त्री ने मद्रास में सूचना देते हुए इस बात पर परशानी व्यक्त की है कि आज शिक्षा को 'जाब ओरियेन्टेड' बनाने की "नारेबाजी" बहुत होती है पर सरकार ने इजीनियरिंग और टेक्नालाजी के जितने कालेज खोले है और उनमें जितने छात्रों को भर्ती करने की क्षमता है उसका बहुत कम भाग ही भर्ती हो पाता है। देश के इजीनियरिंग कालेजो में २५००० छात्रो को भर्ती करने की क्षमता है पर भर्ती होते है केवल १८००० ही। वैसे ही टेक्नालाजी में देश में कुल ४७५०० को भर्ती करने की क्षमता है पर ३६००० भी भर्ती नही होते। इस पर भी बेकारो की सूची में रोजगार दफ्तरो में ऐसे कुछ ७३००० स्नातको और डिप्लोमाधारी छात्रो के नाम दर्ज हैं। तो शिक्षामत्री की यह परेशानी भी सही है कि आखिर सरकार शिक्षा को जाब-ओरियेन्ट बनाने के लिये इससे अधिक क्या कर सकता है ? शिक्षामत्री ने यह सही ही कहा है कि आखिर रोजगार तो शिक्षा व्यवस्था से नही देश की कुल अर्थ व्यवस्था से ही पैदा होते है। इसलिए सरकार अब शिक्षा को देश के विकास और उत्पादन के साथ जोडने का प्रयास कर रही है।

गाधीजी ने तो यह बात बहुत पहले कही थी कि देश का विकास असल में उसकी शिक्षा का प्रतिफल होता है और वह अपने आप में कोई अलग काम नहीं है। देश में इजीनिरिंग और टेक्नालाजी कालेज खोलने से जो सरकार अब तक यह मानती रही है कि इससे शिक्षा को जाब-ओरियेन्टेड बनाने का लक्ष पूरा हो रहा है,वही सरकार की भारी भूल है। उसे समझना चाहिए था कि देश की समूची अर्थ व्यवस्था से अलग शिक्षा का कोई अर्थ नही होता है। शिक्षा का काम नौकरी पैदा करना नही काम पैदा कर उसके लिये लोगो को तैयार करना है। ये सारे टेक्नालाजी और इजानियरिंग कालेज काम नही नौकरी ही पैदा करते हैं और जो भी इजीनियर या टेक्नालिजिस्ट बेकार है वे असल में नौकरी न मिलने से बेकार है। वैसे उनके काम की समाज में गुंजाइश ही नही है, यह बात नही है। किन्तु वे तो सफेदी काम चाहते हैं। जब यह कहा जाता है कि शिक्षा को जाब-ओरियन्टेड करो तो उसका अर्थ यह नहीं है कि देश में इजीनियर और टेक्नालाजिस्ट ही पैदा करो जो हाथ से कोई काम नही कर सकते है। उसका अर्थ तो यह होता है कि देश में खेती, पशुपालन और गाँव गाँव में चलनेवाले छोटे छोटे धधो के लिये प्रशिक्षित कारीगर और किसान तैयार करने की शिक्षा दी जाय ताकि लोग अपने घर में, खेत में काम करें। अपना खेती और धधे को

विकसित कर सके और उनकी आज की आय बढ़े। दुर्भाग्य से इस सचाई को सरकार आज भी पूरी तरह से नहीं समझ सकी है। किंतु उसे यह तो जानना ही चाहिये कि हम जाब-ओरियेन्टेड शिक्षा से कोई 'टक्नोक्राटिक' समाज नहीं अपितु विकसित स्वावलम्बी 'कृषौद्योगिक समाज' की ही रचना करना चाहते हैं। यदि सरकार की समझ में यह बात आ जाय तो फिर उसे यह परेशानी नहीं होगी। (जो उसे आज होती है कि लोग उसे श्रेय भी नहीं देते हैं और उसके इतने भारी भारी प्रयासों के बाद भी शिक्षा को जाब-ओरियन्टेड करने के लिए नारेबाजी करते हैं।) शिक्षामंत्री ने शिक्षा और देश की अर्थ व्यवस्था का जो अनिवार्य सम्बन्ध बताया है आशा है अब शिक्षा मंत्रालय और अर्थ तथा उद्योग मंत्रालय मिलकर ही आगे से शिक्षा की किसी भी योजना पर मिलकर विचार करेंगे।

--कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

"मुझे अनेक पुत्र हैं कुछ 'गांधी' नाम वाले हैं तो कुछ अन्य नाम वाले। उन्होंने अपनी जातियाँ छोड़ दी हैं बिरादरी छोड़ दी है। मैं तो हिन्दू, मुसलमान पारसी, यहूदी आदि सबको एक मानता हूँ। अपनेको 'भंगी' कहलानेमें आनन्द अनुभव करता हूँ ऐसे व्यक्तिके कितने करोड़ पुत्र होंगे और कई करोड़ पुत्र वधुएँ होंगी--यह हिसाब लगा सको, तो लगा लेना।"

— गांधीजो

(ता' २३–६–४७ को दिल्लीके 'भंगी निवास' से पोरबन्दर निवासी अपने परिवार के एक व्यक्तिको लिखे गए पत्रसे।)

हम गांधीजी को क्या जवाब देंगे ?

(इस २ अक्टूबर को पूज्य बापू की १०५ वीं जयंती है। उन्होंने हमें दासता से मुक्ति दिलाई, हमारी अस्मिता हमें प्राप्त कराई। गांधी जी के सिवाय आधुनिक भारत का आज और कोई परिचय भी नहीं है। काश ! यह नादान राष्ट्र अपने राष्ट्रपिता का योग्य वारिस बन सकता। ईश्वर से इसके लिये हम प्रार्थना करें। इस अवसर पर 'नयी तालीम' की ओर से पूज्य बापू को शतशः प्रणाम)

महात्मा गांधी के जन्म-दिन पर एक दिन सभा में हमने लोगों से यह सवाल पूछा कि क्या आप महात्मा गांधी को जानते हैं ? एक ने उत्तर दिया कि हम नहीं जानते। दूसरे ने कहा कि हम जानते हैं। हमने पूछा कि वे कहाँ होंगे ? उसने नजदीक के शहर का नाम लेकर कहा कि वहाँ होंगे। लेकिन महात्मा गांधी की मृत्यु को अब इतने साल हो गये तो एक मनुष्य तो जानता ही नहीं था, कि महात्मा गांधी नाम के मनुष्य हो गये और दूसरा जानता था कि वे जिन्दा हैं और नजदीक के शहर में रहते हैं। हिन्दुस्तान में कितना घोर अज्ञान है ?

गांधी आज भी देख रहे हैं :

महात्मा गांधी की मृत्यु तो हो गयी। फिर भी महात्माओं की मृत्यु नहीं होती। मरण के बाद ही वे ज्यादा जीवित रहते हैं। जीवित रहते हुए वे जितना काम करते हैं, उससे बहुत ज्यादा काम मरने के बाद करते हैं। अव्यक्त रूप में वे रहते हैं और सब दूर घूमकर हरेक के हृदय को छूते हैं। गांधी जी जब जीवित थे तब भी वे काफी घूमते थे। आज वे जीवित नहीं हैं, हमसे दूर गये हैं। फिर भी वे ज्यादा घूमकर यह देखना चाहते हैं कि कौन सज्जन है और उससे मिलकर अपना सन्देश उसको सुनाते हैं। अव्यक्त में रहकर प्रेरणा देते हैं। भगवान भी अव्यक्त रूप में है। भगवान का व्यक्त रूप है सृष्टि। ऐसे महापुरुष जब मरते हैं तब अव्यक्त में लीन होते हैं लेकिन उनका व्यक्त रूप दुनिया में रहता है। किसी का ग्रन्थ के रूप में रहता है, किसी का शिष्य के रूप में रहता है। किसी का काम के रूप में रहता है और किसी का एक विचार के रूप में रहता है। वह उनका स्वरूप कायम रहता है।

भारत के खून और हड्डी में व्याप्त गांधी :

एक न्यूयार्क वाला भाई मुझसे कहता था कि "क्या आज दिल्ली की सेना, कोर्ट-कचहरी कहीं भी गांधीजी का असर दीखता है ?" मैंने उससे कहा कि "गांधी जी का असर चर्म-चक्षु नहीं देख सकते। वह इतना सूक्ष्म है कि भारत के खून और

महापुरुष याने वत्सला गाय :

एक व्यक्ति ने कहा कि जो लोग बडे लोगो के साथ में रहते है,उनका विकास नही होता। जैसे एक पेड की छाया में दूसरा पेड होने पर वह बडा नही हो पाता, वैसे ही बापू के पास रहे हुये लोगो का अधिक विकास नही हो सका है।" मैने उनसे कहा कि " बडे पुरुषोमे और महापुरुषोमे फर्क है। बडे मनुष्य याने बडा स्वार्थी मनुष्य। बडा वृक्ष सब पोषण स्वय ही खा लेता है भले ही उसकी छाया म उगे वृक्ष को कुछ भी पोषण न मिले। इसलिए बडे वृक्ष के नीचे कुछ बोने से वह नही बढता, यह ठीक ही है। लेकिन महापुरुष तो वत्सला गाय जैसे होते है। गाय स्वय कडुवा और घास खाकर सुन्दर दूध बनाकर अपने बच्चो को खिलाती और सर्वोत्तम पोषण देती है। महापुरुष भी इसी तरह के हुआ करते है। फिर बापू की सगत मे जो लोग रहे, वे जैसे के-तैसे नही रहे। जैसे थे, उससे बिलकुल भिन्न हो गये। यही उनकी कला है।

जन जन गाधी जन है :

मै कहना यह चाहता था कि दूसरे के दु ख से दु खी होना महात्मा के लक्षण नही। अगर एसे लोग विरले हो, तो उसका अर्थ यही होगा कि मानवता मर गयी। यह मानवता का लक्षण नही है। गाधीजी ने हम जैसे लोगो में भक्ति की स्थापना की। यद्यपि हम इसमें कुछ कर नही सके, परन्तु फिर भी लोग हमें गाधीजन मानते है और हमारी तरफ ही देखते है। पर फुटबाल के खेल मे फुटबाल एक हाथ में दूसरे हाथ में जाता है। उसे अपने ही हाथ में पकड रखे, तो खेल बन्द हो जायेगा। इसी तरह जब लोग मुझसे कहते है कि " यह गाधीजी का मनुष्य आया है" तो तुरन्त ही मै यह पदवी आपकी ओर रवाना करता हूँ। मुझे आप गाधी-जन मानें और खुद 'दूसरे जन' बन रहे, तो काम नही होगा। इसके बदले मे यह कहिये कि यह भी 'गाधी जन है' और हम भी गाधी जन है।' लेकिन आप यह कहकर कि 'विनोबा गाधीजी का काम करते हो है, हमें कुछ करना नही है हमारा काम तो स्वागत करने मात्र से ही पूरा हो जाता है स्वय गाधी-जनत्व से हटकर मुझे गाधी जन बनाये, तो वह भी नही चलेगा। गाधी जन की पदवी मै आपकी तरफ फेंकता हूँ। इस तरह अगर आपको यह खेल चालू रखना है, तो आप उसे मेरी ओर वापस मत भेजिये, दूसरे की ओर रवाना कीजिए। इस तरह करेंगे, तो गाधी-जनो की जमीत बढेगी और एक दूसरे पर गाधी-जन का आरोप कर खेल चालू रख सकेगे।

हम गाधीजी को क्या उत्तर देंगे ?

हम समझते है कि आज महात्मा गाधी हमारे बीच है और हमसे पूछ रहे है कि बच्चो तुम्हारे सबके लिए हमने चालीस पचास साल तक मेहनत की और बहुत परिश्रम के अन्तमें स्वराज्य प्राप्त किया तो अब तुम कैसे हो ? क्या सब मिलकर प्रेम से रहते हो, तुम्हारा झगडा-झगडा मिट गया है, जाति भेद, ऊच-नीच भेद सब खतम

कर दिये हैं, छूत-अछूत भेद मिटा दिये हैं, भाषा और धर्म के झगडे छोड दिये हैं और सबसे बडी बात यह कि तुम लोगो ने आलस्य छोड दिया हैं। मैंने सिखाया था कि बच्चा-बच्चा सूत काते, एक मनुष्य भी आलसी न रहे, सब काम में लग जाय। ऐसा तुम करते हो ? एक दूसरे को सहयोग करते हो ? भगवान का नाम हमेशा लेते हो ? हमने सबको प्रार्थना सिखायी थी, प्रार्थना के स्थान से ही हम परमात्मा के पास गये। तुम लोग भी भगवान का स्मरण करते हो ? शराबखोरी आदि व्यसन छोड दिये ? घर-घर में चरखा रखा होगा और सूत कातते होंगे। उस सूत का कपडा पहनते होंगे। कोर्ट में कभी नहीं जाते होंगे। यह सब काम हमने सबको सिखाया था। आपस-आपस मे न्याय करो और एक दूसरे का समाधान करो। बहनो को पूरी आजादी है कि उन्हे जल में बन्द कर रखा है ? हमने कहा था कि बहनो को भाइयों के बराबर काम करना चाहिये। ऐसे कई सवाल वे हमसे पूछते हैं। इसका उत्तर हम क्या दे ? वे भारत से बहुत आशा रखते थे। लोग उनको यौरप, अमेरिका मे बुलाते थ, जापान म बुलाते थे, तो वे कहते थे कि भारत का काम पूरा किये बिना मैं वहाँ कैसे जाऊ ? जो गुण मैं अपने देशवासियो को नही समझा सकूंगा, वह मैं बाहर वालों को कैसे समझाऊँगा। इस तरह वे आपके लिए बहुत आशा रखते थे। गीता और रामायण के वे भक्त थे। निरन्तर गीता का पारायण करते थे और हमेशा राम-नाम लेते थे। आखिर मे भी वे राम नाम लेते हुए ही गय। वे सबको समान प्यार करते थे। चाहे हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो। उनके साथ भेद नहीं था। सबको मानव की दृष्टि से देखते थे और आशा करते थे कि भारत सारी दुनिया को रास्ता दिखायगा।

गाधी विचार फैल रहा है :

कुल दुनिया मे आज अहिंसा के लिए चाह है। बडे-बडे शस्त्रधारी राष्ट्र भी सोच रहे हैं कि शस्त्र से काम नही बनेगा। इसलिए प्रेम और शाति का तरीका सोचना चाहिए। इस प्रकार के विचार दुनिया भर में चल रहे है और दुनिया में इस प्रकार का जहाँ थोडा-सा काम होता है वहाँ कुल के कुल दुनिया के लोग उस काम को समझना चाहते हैं। अहिंसा या प्रेम का काम कहीं भी चलता हो तो कुल दुनिया के अच्छे लोगो को उसे जानने की इच्छा होती है। दुनिया मे कहीं भी गलत काम होने पर सब दुनिया के लोग दुखी होते हैं। गाधीजी का विचार दुनिया मे फैल रहा हैं। भारत में भी फैल रहा हैं। बीज बोया गया है। धीरे धीरे वह उग रहा है।

गाधीजी का विचार ग्रामदान (ग्राम-स्वराज्य) पर बहुत जोर देता है। गाँव की शिक्षा, गाँव की रक्षा, उत्पादन, उद्योग, गाँव की स्वच्छता, गाँव के उत्सव आदि का तरीका, गाँव की शादी वगैरह का रिवाज, गाँव की योजना सब काम गाँव वालों को करना चाहिए। यही गाधीजी का विचार है।

डॉ जाकिर हुसैन

शिक्षा में गांधीवादी दृष्टि और कार्यरचना :

(आज सर्वत्र शिक्षा को सामाजिक जीवन से संयुक्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया जा रहा है और अनेक राज्य स्कूलों के दैनिक क्रम में काम या उद्योग के लिए भी एक या दो 'पीरियड' की व्यवस्था करके मान रहे हैं कि वे 'शिक्षा को [illegible] दिशा में नई जान [illegible]' कर रहे हैं। भारत के भू. पू. राष्ट्रपति और बुनियादी शिक्षा के आचार्य डा. जाकिर हुसैन ने इस लेख में इस खतरे की ओर बहुत पहले ही संकेत किया था। नई दिल्ली की एक गोष्ठी में सन ६३ में दिये गये उनके भाषण का यह सारांश आशा है 'नयी तालीम' के पाठकों को इस बारे में सजग करेगा।)

सांस्कृतिक उपादानों में निहित नवीनतम मूल्यों को पुनर्जागृत करने की एक अनिवार्य प्रक्रिया ही मस्तिष्क को शिक्षित करना है। यह मस्तिष्क और सांस्कृतिक उपादान भी कई तरह के होते हैं। शिक्षित किये जानेवाले दिमाग में और सांस्कृतिक उपादान जो कि शिक्षा का माध्यम है, बनाने वाले दिमाग में एक प्रकार का सादृश्य और तालमेल होना आवश्यक है। इस तरह के परिपाक को सही ढंग से सम्पन्न करने के लिये यह याद रखना आवश्यक है कि ये सांस्कृतिक उपादान दिमाग को सही भोजन केवल उस तरह के काम के द्वारा ही दे सकते हैं जिसे उत्पादक [illegible] कार्य कहा जाता है। यही गांधीवादी सिद्धान्त है।

शिक्षा यानि व्यक्ति के अंतर का विकास

शिक्षा केवल समाजोपयोगी उत्पादक कार्य से ही संभव है और इस तरह के उत्पादक कार्य में कुछ मौलिक सामाजिक मूल्य निहित होते हैं। शिक्षा दिमाग के परिपोषण का नाम है। शिक्षा का अर्थ ज्ञान या कौशल नहीं है। ये तो वास्तव में शिक्षा के विश्वसनीय साधन भी नहीं हैं। ज्ञान दो प्रकार का हो सकता है। या तो हम किसी दूसरे के द्वारा किये गये श्रम से प्राप्त ज्ञान को सूचना के तौर पर जान सकते हैं या फिर स्वयं श्रम करके ही अपने लिये ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार से कौशल भी दो प्रकार का हो सकता है। यह किसी प्रचलित या प्राप्त परिस्थिति तथा मूल्यों को दुहराने मात्र या नकल करने से प्राप्त किया गया यांत्रिक कौशल भी हो

सकता है या फिर यह नये मूल्य निर्माण करने की प्रक्रिया में किये गये स्वयं के श्रमसे प्राप्त कौशल भी हो सकता है। पहले प्रकार का ज्ञान और कौशल 'बाहर से जोडे गये' ज्ञान और कौशल हैं जब कि दूसरे प्रकार का ज्ञान और कौशल स्वयं हमारे 'अंतर का ही विस्तार' हैं। इसलिये पहले को हम मात्र 'निर्देश' या सूचना कहते हैं और दूसरे को 'शिक्षा' कहते हैं। पहला मात्र एक बाहरी पालिस मात्र है जब कि दूसरा अनिवार्य संस्कृति है। जहाँ तक शिक्षा जीवन के साथ गूँथी हुई है और केवल तज्ञ ऐजेन्सियों के द्वारा अपनाई गई एक अनिरिक्त क्रिया मात्र नहीं है वहाँ तक ही शिक्षा का विकास होता है। किन्तु आज तो शिक्षा की इन विशेषज्ञ संस्थाओं ने पहले प्रकार की शिक्षा याने सूचना मात्र को ही अधिकतर बढावा दिया है और अब तो वे इसमें ही लगी हुई हैं। यही उनका एकमात्र काम हो गया है।

बुनियादी शिक्षा विश्व की एकमात्र महत्वपूर्ण पद्धति :

पिछले कई सालो से इस परिस्थिति के प्रति तीव्र असन्तोष प्रकट किया गया है और विद्यालयों में खोज और अनुभव पर आधारित ज्ञान, सृजनात्मक कार्य या उत्पादक शिक्षा, लागू करने के लिये अनेक प्रयास किये गये हैं। इस दृष्टिसे हमारा बुनियादी शिक्षा की पद्धति विश्व की सबसे महत्वपूर्ण पद्धति है।

उत्पादक शिक्षा याने उद्देश्य से उद्देश्य की ओर.

शैक्षिक दृष्टि से उत्पादक कार्य क्या है? शैक्षिक दृष्टि से उत्पादक कार्य शारिरिक श्रम कार्य भी हो सकता है और यह दिमागी कार्य भी हो सकता है। ऐसा बहुत सारा शारीरिक श्रम कार्य और दिमागी कार्य है जो कि शैक्षिक दृष्टि से उत्पादक कार्य नहीं है। वह सारी शारीरिक और दिमागी क्रिया, जो कि नये विचारों को उत्तेजन दे या पहले से प्राप्त विचारो का समन्वय करने में मदद करे ताकि हम एक अधिक ऊँचे मानसिक स्तर पर या क्षमता तक पहुँच सके या उन्हें व्यक्त या अनुभव कर सके, शैक्षिक उत्पादक क्रिया कही जायेगी। यही वह उद्देश्य है जो कि इसे बालकों के खेल-कार्य से पृथक करती है। एक सोद्देश्य कार्य की मानसिक क्रिया हमें उद्देश्य से उद्देश्य की ओर उन्मुख करती है। उद्देश्यों की यह सतत विकासशील परिधि हमारे उद्देश्यो और क्षमताओं, उद्योग और अध्यवसाय के गुणों और हमारी आनरिक भावनाओं को स्वत स्फूर्त दिशा देकर हममें निष्टा और चेतना का विकास करती है।

शिक्षा के लिए खतरे :

किसी भी मनुष्य को समग्रता से आच्छादित करनेवाले इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये परम्परागत कौशल और ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। अत्यन्त प्रतिभाशाली या अनुभवी भी इससे कम नहीं करता। इसलिये शिक्षा में इस परम्परागत

ज्ञान और यान्त्रिक कौशल का भी अपना स्थान है किन्तु इतना ही जितना वे इस तरह की क्रियात्मक शिक्षा में निहित कुछ कमियों को पूरा करने के लिये आवश्यक हैं। इसलिये परम्परागत ज्ञान और यान्त्रिक कौशल के द्वारा इस तरह की उत्पादक शिक्षा को मजबूत किया जाना चाहिये किन्तु इस अन्य तरीकों से भी मजबूत और उन्नत किया जाना चाहिये। केवल दिमागी ज्ञान को नया करने या बढ़ाते जाने की प्रवृत्ति निश्चित ही अहंकारी प्रवृत्ति है और यह केवल अपने निजी स्वार्थ के लिये ही किया जाने वाला काम है। इस प्रकार यह एक सामाजिक शक्ति के रूप में, शिक्षा के लिये एक बड़ा खतरा है। केवल इस प्रकार के मानसिक उत्पादक कार्य में लगे लोग समाज के लिये अनुपयोगी और बेअसरकारी बन सकते हैं। इस प्रकार का बौद्धिक काम भी विद्वानों को सौंदर्यात्मक रूप से 'अशिक्षित' और नैतिक रूप से 'नादान' बना सकता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि कला विज्ञान या तकनीकी में हर प्रकार का मानसिक उत्पादक कार्य समाज की सेवा के लिये ही काम में लगाया जाय।

इस प्रकार का उत्पादक कार्य दूसरों की सेवा में लगाया जाना चाहिये। यह मनुष्य के नैतिक और सामाजिक विकास के लिये अत्यावश्यक है। उत्पादक मानसिक कार्य व्यक्ति को एक उद्देश्य प्रदान करता है इसे सामाजिक सेवा में लगाने से यह मनुष्य को एक अर्थ और महत्व प्रदान करता है। इसलिये हमारे शिक्षण संस्थाएँ काम के इस प्रकार के लघु समुदायों में बदल दी जानी चाहिये। न केवल बुनियादी स्कूलों के लिये ही अपितु विश्व विद्यालयों कालेजों तथा हायर सेकेंडरी स्कूलों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे सच्ची शिक्षा के इस एक मात्र प्राप्त साधन का सदुपयोग करने में शीघ्रता करें।

❀

(मैं जानता हूँ कि मनुष्य उद्योग-धंधेके बिना जी नहीं सकता। इसलिये मैं उद्योगीकरण का विरोध नहीं कर सकता। लेकिन यंत्रोद्योग दाखिल करने के बारे में मैं बहुत चिंतित हूँ। यंत्र अत्यधिक तेज गति से माल उत्पन्न करता है और अपने साथ ऐसी अर्थ व्यवस्था लाता है, जिसे मैं नहीं समझ पाता। मैं यह मानता हूँ कि अगर हिंदुस्तान को सच्ची आजादी पानी है और हिंदुस्तान के माध्यम से दुनिया को भी, तब आज नहीं तो कल देहातों में ही रहना होगा, झोपड़ियोंमें, महलों में नहीं। कई अरब आदमी शहरों में और महलों में सुख और शांति से कभी नहीं रह सकते, न एक दूसरे का खून करके यानी— हिंसा से, झूठ से— यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी के (यानी सत्य और अहिंसा) मनुष्य जाति का नाश ही है, उसमें मुझे जरा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं।
— गांधीजी)

काका कालेलकर :

नयी तालिम को आशीष :

[अभी गत २७–२८ सितम्बर को पवनार में हुये सर्वोदय साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर 'नयी तालीम' का प्रतिनिधि पूज्य काका साहेब कालेलकर जी से मिला। पूज्य काका साहब ने, जिनके कुलपतित्व में बापू ने राष्ट्रीय शिक्षा की पहली संस्था गुजरात विद्यापीठ आरम्भ की थी और जो फिर कई कई साल तक हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के अध्यक्ष भी रहे, 'नयी तालीम' के पिछले तीन-चार माह के अंक देखकर हर्ष और सन्तोष प्रकट किया। हमारे प्रतिनिधि को दी गई पूज्य काका साहब की इस भेंट के अवसर पर उन्होंने जो विचार प्रकट किये वे 'नयी तालीम' के पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ दे रहे हैं।]

गांधी-आदर्श जनता तक पहुंचाना ही नयी तालीम का काम है। गांधीजी ने नयी तालीम का जो काम आरम्भ किया था उसमें मेरी आस्था चलता है। नयी तालीम गांधीजी की चलाई हुई प्रवृत्ति है और हम सब लोगों का संस्कार इसमें उन्हें रहा है। इसलिये सेवाग्राम से निकलने वाली नयी तालीम को मैं अपने ही घर का मासिक मानता हूँ। मैं देखता हूँ कि इसके सम्पादक मण्डल में हमारे श्रीमन्नारायण जी हैं तो फिर इस और क्या चाहिये।

राष्ट्र-नेताओं का चिंतन शहरों तक सीमित :

हम देखते हैं कि हमारे राष्ट्र नेताओं का चिंतन शहरों में ही फैलता है और ग्रामीण जनता के दिमाग तक उनके जीवन तक वह पहुँचता नहीं। फिर हमारे प्रकाशन हिन्दी में हों या अंग्रेजी में हों वे भी ग्रामीण जनता को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते हैं। इसलिये इस नयी तालीम को ग्रामीण जनता की प्रादेशिक भाषाओं की मदद लेनी चाहिये और जो भी जीवनशुद्धि, जीवन प्राण और जीवन समृद्धि का काम हम करना चाहते हैं उसके लिये हम ग्रामीण जनता के दिमाग तक पहुँचना आवश्यक है। अन्त में जीवन परिवर्तन ही हमारा लक्ष्य है। मुझे विश्वास है कि नयी तालीम इस जमाने में गांधी आदर्शों को जनता के जीवन तक पहुँचाने के लिये प्रयत्न की पराकाष्ठा करेगी। यही है आदर्श और यही है गांधी विचार धारा।

गांधीजी का संदेश याने भारतमाता का मिशन :

बापू जी के सन्देश को गांवों तक पहुँचाने के लिये, याने भारत माता का मिशन राष्ट्र के हृदय तक पहुँचाने के लिये, मिशनरी भावना अपनानी होगी। इसके लिये स्त्री तथा पुरुष दोनों का ही संघ होना चाहिये और ये दोनों संघ गाँवों में जाकर वहाँ की भाषा में लोगों को गांधी जी का सन्देश सुनावे। फिर गाँवों के जीवन में परिवर्तन कराने के लिये ये नये मिशनरी लोग सेवा में निरत हो जाय।

लोकसेवक का जीवन ही उदाहरण :

इन लोक सेवकों का जीवन स्वच्छ हो, लोगों के लिये अनुकरणीय हो। ये लोग संयम व सादगी से जीवन बिताये और लोगों को भी साथ सेवा के क्षेत्र में खींच ले ऐसी शक्ति वाले हो। तभी यह गांधी मिशन या भारत माता का मिशन सफल होगा। जब तक सेवकों की यह जमात मिशन की भावना से जनता की ही भाषा में नहीं बोलेगी और जब तक इस जमात का जीवन शुद्ध और समृद्ध नहीं होगा तब तक हम गांधी-आदर्श की प्राप्त नहीं कर सकते।

परिवर्तन कहकर नहीं करके दिखाना होगा :

हम लोग शिक्षा तथा समाज में परिवर्तन की बात आज सारे संसार में सुन रहे हैं। इसके लिये आज की दुनिया मे बडी चाह है। यही चाह गांधी जी और उनके सभी साथियों मे भी थी। पर इन्होंने केवल चाह करके ही बस नहीं किया बल्कि उसे करके भी दिखाया। अब मेरी उम्र ९० साल की है तो भी मैं चाहता हूँ कि कुछ करके दिखाऊं। इसलिये परिवर्तन चाहनेवालों को करके दिखाना होगा तभी वे परिवर्तन कर सकेंगे अन्यथा नहीं।

---o---

सूचना

[सर्वोदय समाज के मंत्री सूचित करते हैं कि आगामी नवम्बर में कलकत्ते में होने वाला सर्वोदय सम्मेलन बंगाल में विकट अकाल की स्थिति के कारण स्थगित कर दिया गया है। सम्मेलन की तारीखों की सूचना फिर दी जायेगी।]

डा. आरनोल्ड टायन्बी :

वित्तीय-ऐश्वर्य के बाद :

(१२ विशाल खंडोंमें 'इतिहास का अध्ययन' नामक विश्व विख्यात ग्रंथ लिखनेवाले प्रख्यात समाज-दार्शनिक डा आरनाल्ड टायन्बी का यह लेख गत १४ अप्रैल के 'आबजर्वर' नामक ब्रिटिश पत्रमें छपा है। पूंजीवाद तथा साम्यवाद (समाजवाद) दोनों ने मिलकर तथाकथित प्रगति की जो सनक समार पर लादी उसने मानव जाति को आज विनाश के कगार पर खडा कर दिया है। पूंजीवाद ने 'अबाधमुनाफा' और साम्यवाद ने उसकी हिफाजत के लिये 'अबाध सत्ता' का जो मूल्य ससार को दिया उसके सम्पूर्ण नकार में ही अब कुशल है। अपनी ८५ साल की उम्र में यह विश्व चितक भी आज यही चेतावनी दे रहा है। क्या भारत की सरकार और नेता इस काल-चेतावनी को सुनेंगे? गाधी को तो उन्होंने अनसुना कर दिया जिसने सालों पूर्व यही कहा था।)

औद्योगिक क्रांति के फल स्वरूप लगभग दो शताब्दि पहले एक ऐसी अर्थ व्यवस्था पैदा हुई जिसके विषैले दांत है और जिसने अब एक ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है कि उसको चलाये रखनेके लिये ही सतत वृद्धि (*Growth*) अनिवार्य है। इस नये आर्थिक जीवन के पहले क्रम में यंत्रीकृत उद्योगो के मालिको ने पहले तो अपने ही मजदूरों और फिर अन्य अनौद्योगिक देशों के वासियों (नटिव्स) की कीमत पर यह वृद्धि हासिल की है। इन यंत्रीकृत उद्योगों में शुरू शुरू में मजदूरो को बहुत कम मजदूरी दी गई और एशिया में तो कई घरेलू उद्योगो जैसे कि कताई और बुनाई, को इन पश्चिमी उत्पादकों ने अपने यंत्रीकृत उत्पादनो की प्रतिस्पर्धा में डालकर समाप्त ही कर दिया। एशिया, अफ्रिका और लैटिन अमरीका के देशों को इन पश्चिमी देशों का पक्का माल कम चुंगी पर खरीदने के लिये भी मजबूर किया गया और कोयला, धातुयें और खनिज तेल जैसे नये न बनाये जा सकने वाले वाले सीमित प्राकृतिक साधनों का तो अभूतपूर्व ढंग से और विशाल पैमाने पर शोषण किया गया है।

आदमी के द्वारा 'प्रकृति की लूट' का नतीजा :

इस शताब्दि में औद्योगिक मजदूरों ने अपनी संघ शक्ति के बल पर अपनी मजदूरी बढ़ाने में सफलता हासिल कर ली है। विकासशील देशों ने भी इधर अपने यत्र तत्र उद्योग खड़े कर लिये हैं। आज तो हालत यह है कि आदमी की प्रकृति की इस लूट ने स्वयं आदमी के लिये ही भयानक दूषण और साधनों की रिक्तता की समस्या पैदा कर दी है। साथ ही एक नयी प्रवृत्ति भी इधर पनपी है कि औद्योगिक देशों में पूँजी और श्रम के बाजार में स्थिति मजदूरों के पक्ष में हो गई है और इसलिए अब पूँजीपति और मजदूर दोनों ही इस वृद्धि का बनाये और बढ़ाने के लिये परस्पर सहमत हो गये हैं। मुनाफे में कमी किये बिना मजदूरों में वृद्धि की सतत और अप्रतिरोधक माँग की पूर्ति के लिये कुल राष्ट्रीय उत्पादन (जी. एन. पी.) में वृद्धि ही एकमात्र सहारा रह गई है। किन्तु फिर नटिक्स और प्रकृति दोनों ने मिलकर औद्योगिक देशों की राष्ट्रीय उत्पादन की इस वृद्धि पर रोक लगा दी है।

राजनीतिज्ञों में साहस नहीं

विकसित देशों में बहुत कम राजनीतिज्ञों ने अपनी जनता से यह बात कहने का साहस दिखाया है। किन्तु सचाई तो अब अनुपेक्षणीय ढंग से प्रकट हो ही रही है और अभी हाल ही में तेल उत्पादक देशों के द्वारा खनिज तेल की कीमतों में भारी वृद्धि ने यह सिद्ध कर दिया है कि अब नटिक्स भी पश्चिमी देशों के व्यापार और मजदूर संघों से एकाधिकारवादी परिस्थितियों का शोषण करने की कला खूब सीख ली है। तथाकथित विकसित क्षेत्रों (यूरोप, उत्तर अमरीका, सोवियत रूस और जापान) में यह वृद्धि अब स्थाई रूप से बंद होने वाला है। इतना ही नहीं अब यह कम उलटने वाला भी है। अब निरन्तर आर्थिक मंदी निरन्तर आर्थिक वृद्धि का स्थान लेने वाली है। तब इस भारी चेतावनी का सामना ये औद्योगिक देश किस प्रकार करने वाले हैं?

स्थायी गरीबी की ओर :

पिछली दो शताब्दियों में इन देशों की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण-कृषि से हटकर नगरी उद्योगों में लग गया है। फिर जनसंख्या का विस्तार भी इस कदर हो गया है कि अब उसे केवल घरेलू साधनों के ही बल पर टिकाये नहीं रखा जा सकता है। इसलिये ये लोग पहले से ही दूसरे देशों को अपना महँगा पक्का माल देने और उनसे सस्ता कच्चा माल, जैसे ईंधन खाद्य पदार्थ आदि लेने की नीति पर निर्भर होते गये हैं। अब चूँकि अंतरराष्ट्रीय व्यापार का रुख विकसित देशों के विरुद्ध और विकासशील देशों के पक्ष में हुआ है तो फिर विकसित देशों की जनता इस परिस्थिति के प्रति क्या रुख अपनायगी? अब ये लोग अपने को एक ऐसे स्थाई अवरोध

की अवस्था में पा रहे हैं जब कि उनका यह आर्थिक जीवन-स्तर पिछले दो विश्व युद्धों के दौरान की गरीबी तक पहुँच जायेगा। पर युद्ध काल की गरीबी अस्थाई थी जब कि यह गरीबी अब स्थायी होगी। यह दिन ब दिन और भी कठोर होती जायेगी।

अनिवार्य संकट के दौर में :

तब क्या करना है ? जब विकसित देश घटनाओं से विवश होकर इस नयी परिस्थितियों निष्ठुरता का समक्ष आयेंगे तब उनकी पहली प्रतिक्रिया मानो लोह के कांटा पर लात मारने जैसी होगी। और अब चूँकि कुदरत या नेचर के विरुद्ध कोई हमला करने में वे नितान्त असमर्थ हैं इसलिये वे अपने में ही एक दूसरे पर हमला करेंगे। इस प्रकार से घिरे हुए इन विकसित देशों में अपने ही भीतर फिर अपने ही सीमित साधना पर कब्जा करने के लिये भयंकर संघर्ष होगा। पर यह संघर्ष तो बुरी स्थिति को और भी बदतर बना देगा।

अनिवार्य तानाशाही की ओर :

इसलिये इस संघर्ष को तो रोकना ही होगा। यदि यह रोका नहीं गया तो यह संघर्ष फिर जनसंख्या कम करने के पुराने पड़ गये कुदरती तरीका, जैसे गृह-युद्ध, अकाल और महामारी आदि, से उत्पन्न जनसंख्या की भारी कमी या अराजकता ही उत्पन्न करेगा। इसका स्वाभाविक नतीजा यह होगा कि तब सभी विकसित देशों में और भी अधिक कठोर अधिनायकवादी पद्धति से समाज पर एक नियमित जीवन लाद दिया जायेगा। स्थाई अवरोधों की इस हालत में तब इन अधिनायकवादी सरकारों का पहला काम तो यही होगा कि वे व्यापारी तथा अन्य सभी वर्गोंपर एक प्रकारकी स्तरीकृत प्राण रक्षक भुगतान पद्धति (डिफरेन्सियल सबसिस्टेंस पेमन्ट सिस्टम) लाद दें अब ब्रिटेन में तो सिद्धान्त यह बात स्वीकार कर ली गई है कि इस प्रकार का स्तरीकरण आवश्यक है। यह बात अलग है कि अभी इसके क्रियान्वयन के स्तर पर सभी सहमत होनेमें असफल हो गय हैं। पर फिर इस प्रकार का स्तरीकरण लादना ही होगा।

इसके लिए कोई उचित आधार क्या हो सकता है ? बालकों, अपंगों-बेकारों और वृद्धा को काम करने लायक लोगों के भुगतानों पर एक प्रकार के टैक्स पर जिलाये रखना होगा। जीने योग्य एलाउन्स का यह स्तर काम के सामाजिक स्तर के अनुपात में होगा। किन्तु काम का सामाजिक मूल्य कैसे आंका जायेगा। अब कुदरती तौर पर नये न बनाये जा सकने वाले साधना के बारे में शोध करनेवाले किसी वैज्ञानिक का किसी रेलवे इंजिन के ड्राइवर से कम तो नहीं दिया जा सकता है यद्यपि वैज्ञानिक के काम का नतीजा आज से ३० साल तक न भी निकले। पुन समाजकी आत्मिक उन्नति के लिय काम करने वाले किसी परिवीक्षा अधिकारी का योगदान समाज के भौतिक कल्याण के लिये काम करने वाले किसी वैज्ञानिक के योगदान से

कम मूल्य का तो वहाँ समझा जाना चाहिये। इसलिये अवरोध की इस स्थाई व्यवस्था में तमाम निजी सम्पत्ति, केवल कुछ छोटे मकान मालिकों को छोडकर, का राष्ट्रीयकरण करना पड सकता है।

आत्मिक उन्नति का सम्भव अवसर :

ये सभी सुझाव क्रान्तिकारी हैं। किन्तु ये उतने ही आवश्यक हैं जितने युद्ध काल के वे नियत्रण जिनके सामने हमें झुकना ही पडा था। इसका नतीजा आर्थिक जीवनमें निजी साहस का अभाव भी हो सकता है। अर्थ व्यवस्था को सीकचा में रखना ही होगा। कुछ अनार्थिक क्रियायें, जैसे सट्टा या बडी बडी आर्थिक जमींदारियो का वास्तविक विकास, तो एक दम लुप्त ही हो जायेगी। इन हालता में तब लोग शायद यथोक्त कानूनों को बनानेवाली लाइनमें खडे मजदूर या किसी राष्ट्रीयकृत व्यवसाय के मैनजर के बजाय शिक्षक या धार्मिक प्रचारक या कलाकार या कवि बनना अधिक पसन्द करें या कम से कम इनमे कोई आर्थिक हानि नही मानी जायगी।

यह भौतिक दृष्टिसे अवनति मानी जा सकती है किन्तु इस तरह का समाज फिर आत्मिक दृष्टि से उन्नति भी कर सकता है। हम लोग सम्भवत पहली सदी के ऊपरी मिश्र के साधुओं या फिर छटी सदी में उनके आयरिस उत्तराधिकारियो के जीवन की ओर लौटन के लिये विवश हो सकते हैं। हमारी प्रचुरता की यह हानि अत्यन्त कष्ट दायक होगी और इसकी व्यवस्था करना निससदेह ही कठिन होगा। किन्तु यदि हम इस तरह के गम्भीर अवसर के अनुकूल जागृति दिखा सके तो यह स्थिति एक दूसरे रूप में हमारे लिय बरदान भी सिद्ध हो सकती है।

('सर्वोदय' (अंग्रजी) से साभार)

मनुभाई पंचोली :

श्री और दिव्यता की शिक्षा के आचार्य : स्व. मनसुखलाल भाई :

(नयी तालीम के उपासकों को यह जानकर सहज ही दुःख होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा के व्रतधारी और शारदा-मन्दिर तथा शारदा-ग्राम— जैसी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के सफल संस्थापक और संचालक श्री मनसुखलालभाई जोबनपुत्रा अब हमारे बीच नहीं रहे। कोई २॥ साल पहले उन्होंने अपने शारदा-मन्दिर के आंगनमें अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन का सफल संयोजन किया था। उस समय हम में से जिन जिन को शारदा ग्राम जाने, वहां रहने और वहां की विशाल शिक्षण संस्था को उसके विविध अंग उपांगों के साथ चलते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उनके मन पर तो शारदा-ग्राम का वह वातावरण अपनी अमिट छाप छोड ही चुका है। शिक्षा के क्षेत्र में लगातार ४५ बरस तक मिशनरी की-सी एकाग्रता, लगन, निष्ठा, कल्पनाशीलता और स्वप्नदर्शिता के साथ जिन्होंने अद्‌भुत पुरुषार्थ कर दिखाया, उनका पुण्यस्मरण सबके लिए प्रेरणाप्रद ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। लोकभारती, सणोसरा के श्री मनुभाई पंचोली ने सितम्बर, ७४ के 'कोडियुं' में स्व. मनसुखरामभाई को श्रद्धांजलि समर्पित की है, और उनके जीवन-कार्य की जो रूपरेखा दी है, उसे हम यहां साभार दे रहे है।

— सम्पादक)

'कृष्ण और सुदामा सांदीपनि ऋषि के आश्रम में पेडों की छाया तले ही पढते थे? हम भी शारदा बाधेंगे। हम भी पेडों के नीचे बैठकर पढेंगे।'

कराची के मानववाडा के एक सार्वजनिक बगीचे में कुछ बालकों और उनके पालकों की एक सभा में एक निर्दोष बालक के मुंह से ऊपर के शब्द सहज ही निकल पडे। कोई बारह वर्ष की उमर के इस बालक के शब्दों में एक ईश्वरीय संकेत ही छिपा था।

यह सुनकर कि बालक पेडों तले बैठकर पढने को तैयार हुए हैं, सभा में आये हुए कुछ लोगों को लगा कि सभा बुलानेवाले २४ साल के इस नौजवान का दिमाग खराब हो गया है। लेकिन कुछ विचारशील लोगों ने नौजवान को प्रोत्साहित करते

हुए कहा— "भैया, भगवान का नाम लेकर कूद पड़ा।" और सचमुच ही आदर्श के पीछे पागल बने उस युवक ने ईश्वर पर विश्वास रखकर अपने काम का श्रीगणेश कर दिया।

उस निर्दोष बालक के शब्दों में छिपे ईश्वरीय संकेत की फलश्रुति के रूप में सन् १९२१ के अप्रैल महीने की ८ तारीख को उसी सार्वजनिक बगीचे में ३ निम्बतराय वृक्षों के नीचे केवल ३ श्याम पाटों की मदद से 'हरि ॐ' मंत्र के उच्चारण के साथ 'श्री भारत सरस्वती मन्दिर' का शुभारम्भ हुआ। इसके साथ ही कराची में बसे गुजरातियों के बालकों के लिए माध्यमिक शिक्षा का श्रीगणेश पहला बार हुआ। बहुत दूरके स्वप्न प्रदेश की ओर बढ़ने का यह एक नम्र प्रयास था।

आदर्श के लिए दीवाने बनकर अपनी स्वप्न सृष्टि की रचना में मग्न बने नवयुवक ही कराची के श्री शारदा मन्दिर का और देश के बँटवारे के बाद सौराष्ट्र के श्री शारदाग्राम का संस्थापक और संचालक रहा। नाम था श्री मनसुखराम भाई मोरारजीभाई जोबनपुत्रा।

श्री मनसुखरामभाई का जन्म सन १८९८ के माघ महीने की पहली तारीख को राजकोट के निकट लोधिका गाँव में हुआ था। अपने पिता मोरारजीभाई और अपनी माता गंगाबहन के धार्मिक और पवित्र जीवन के संस्कारों की गहरी छाप मनसुखरामभाई के समूचे जीवन पर पड़ी थी।

सन १९०० के आसपास के वर्ष सौराष्ट्र के लिए बहुत ही कठिन वर्ष सिद्ध हुए थे। लगातार अकाल पड़ने के कारण व्यापार धन्धे सब बैठ चुके थे। ऐसी विषम परिस्थिति में कोई पाँच साल की उमर के मनसुखभाई को लेकर उनके माता पिता कराची चले गए और वहीं बस गए।

कराची और सौराष्ट्र के बीच बार-बार आते जाते रहने से बालक मनसुख की पढ़ाई गड़बड़ा गई। उसे व्यवस्थित शिक्षण मिल ही नहीं सका। वैसे मनसुखभाई पढ़ने में बहुत होशियार थे। स्मरण शक्ति अच्छी थी। चौथी कक्षा की वार्षिक परीक्षा में पहले नम्बर से पास हुए थे। सरकारी माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश के लिये ली गई परीक्षा में भी वे अपने साथ के १२७ विद्यार्थियों में सब प्रथम रहे थे। उनकी विद्यार्थी जीवन की नौका बार-बार भटक जाती थी। ऊँची शिक्षा पाने का अवसर उन्हें कभी मिला ही नहीं। उन्होंने जो भी ज्ञान प्राप्त किया था वह स्वाध्याय और स्वानुभव के सहारे ही किया था। माता पिता द्वारा दिए गए सुन्दर संस्कार, अलग अलग विद्यालयों में प्राप्त अनुभव अवलोकन उत्तम साहित्य का अध्ययन विद्वानों के प्रवचनों का श्रवण और मनन जैसी चीजों ने उनके जीवन को गढ़नेमें अमूल्य योगदान किया था। श्रीमन नथूराम शर्मा की पुस्तकों ने उन्हें जीवन की कला सिखाई। सैम्युअल स्माइल्स की 'चरित्र' (कैरेक्टर) और 'स्वपरिश्रम' (सेल्फ हेल्प) नामक

पुस्तकों ने उनके जीवन को बनाया। रूसो और ब्रटैण्ड रसेल के विचारों का और बूकर टी वाशिंगटन की आत्मकथा का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

कराची की 'हिन्दू अकादमी' नामक सिन्धी पाठशाला में जुड़कर उन्होंने अपने शिक्षक-जीवन का आरम्भ किया। सन् १९१८ में गुजराती बालकों के माध्यमिक विभाग का संचालन उन्हें सौंपा गया। अपने कुशल संचालन और उत्तम शिक्षण-कार्य के कारण वे विद्यार्थियों में खूब लोकप्रिय बन गए। उनकी शिक्षण-पद्धति पर निरीक्षक भी मुग्ध हो जाते थे और उनके विद्यार्थियों की अभ्यास पुस्तिकाएँ सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में ले जाकर उन्हें नमूने के रूप में सबको दिखाते थे।

असहयोग-आन्दोलन के दिनों में जब गांधीजी ने सरकारी और सरकार से अनुदान पानेवाली संस्थाओं के बहिष्कार का आवाहन किया, तो उसके उत्तर में मनसुखरामभाई ने हिन्दू अकादमी की संस्था से त्यागपत्र दे दिया। चार-चार साल से जो विद्यार्थी उनके सतत सम्पर्क में रहे थे और जो राष्ट्रीय विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित हुए थे, वे भी उनके पीछे-पीछे सरकारी विद्यालय छोड़कर बाहर आ गए। फलस्वरूप इस लेख के आरम्भ में नानकवाड़ा के जिस बगीचे की चर्चा की गई है, उसके पेड़ों के नीचे 'श्री भारत सरस्वती-मन्दिर' की स्थापना हुई।

निरे शून्य में से साकार हुए 'श्री भारत सरस्वती-मन्दिर' के पास शुरू में न तो पैसे थे, न मकान था और न साधन ही थे। इन सारे अभावों के बावजूद वह एक विशिष्ट प्रकार की पूँजी से समृद्ध बना था। यह समृद्धि थी, श्री मनसुखरामभाईकी शिक्षण विषयक अपनी एक अनोखी दृष्टि की, बाल सेवा द्वारा देश-सेवा करने की शुद्ध निष्ठा की और संस्था के संचालक ट्रस्टियों के प्रोत्साहनपूर्ण सहयोग की।

'श्री भारत-सरस्वती-मन्दिर' के संचालन के लिए श्री भारत-सरस्वती-मन्दिर-समिति की स्थापना की गई। पराधीनता के उस युग में अनगिनत कठिनाइयों का मुकाबला मनसुखरामभाई ने एक अडिग योद्धा की शान से किया और राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में उज्ज्वल यश और कीर्ति सम्पादन की। सन् १९३१ में कराची में गांधीजी के कर कमलों द्वारा संस्था के भवनों की नींव रखी गई। सन् ३२ की आजादी की लड़ाई के दिनों सरकार ने इस संस्था को गैरकानूनी करार दिया और बन रहे मकानों के साथ संस्था की सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। श्री मनसुखरामभाई को जेल की सजा दी गई।

बाद में सभा के अध्यक्ष और कराची-कारपोरेशन के मेयर जमशेदजी मेहता की प्रेरणा से दूसरी जगह श्री शारदा-मन्दिर के नये नाम के साथ संस्था की नवरचना की गई। आगे जब सरकार ने जब्ती उठा ली और मनसुखरामभाई जेल से लौटे, तो संस्था का नया नाम श्री शारदा-मन्दिर ही अन्तिम रूप से निश्चित किया गया। उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते-बढ़ते श्री शारदा-मन्दिर शिक्षण और संस्कार के क्षेत्र में

अपने समय की एक ज्योतिधर संस्था बना। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और मौलाना आजाद से लेकर उस समय के सभी प्रथम श्रेणी के नेताओं का प्रेम और आशीर्वाद शारदा मन्दिर को मिलता रहा। जब सन् १९४५ में इस संस्था की रजत जयन्ती मनाई गई तो संस्था द्वारा आयोजित शिक्षण सम्बन्धी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए मुख्य अतिथि के नाते विद्वद्वर डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने संस्था की सराहना करते हुए कहा—"आपकी संस्था अपने नाम के अनुरूप ही देवी शारदा का मन्दिर कहलाने की पात्रता रखती है।" डा॰ राधाकृष्णन् को शारदा-मन्दिर के अथ से इति तक के सब कामों में शिक्षा के अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्वों, उमंगों और कल्पनाओं के दर्शन हुए थे।

सन १९४७ में देश का बँटवारा होने तक शारदा मन्दिर ने परदेशी सरकार की सहायता और उसके बन्धनों को अस्वीकार करते हुए कराची की जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्थान में ऐतिहासिक योगदान किया था। उच्चकोटि की राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था के रूप में वह देश विदेश में सब कहीं प्रसिद्ध हो चुकी थी। देश के बँटवारे के फलस्वरूप उस समय अनेकानेक हृदय विदारक घटनायें घटीं। श्री मनमुखरामभाई की साधना के प्रतीक रूप श्री शारदा मन्दिर को पाकिस्तान सरकार ने जब्त कर लिया और उसे एक उर्दू संस्था को सौंप दिया। फलतः मनमुखरामभाई को अपनी संस्था और उसकी कोई १० लाख रुपयों की स्थावर सम्पत्ति का वहीं छोड़कर भारत आ जाना पड़ा।

भारत आने पर सरदार पटेल मौलाना अबुलकलाम आजाद, ढेबरभाई और देश के तत्कालीन अन्य राष्ट्रीय नेताओं की सहानुभूति और प्रेरणा के सहारे सन् १९४९ के अप्रैल महीने की पहली तारीख को सौराष्ट्र के मागरोल नगर के पासवाले ग्राम प्रदेश में एक झाड़ी खड़ी करके श्री मनमुखरामभाई ने और उनके साथियों ने पुनश्च हरि ॐ मंत्र के साथ कराची के शारदा मन्दिर को शारदा ग्राम के नाम से नये रूप में खड़ा करने का सकल्प किया। श्री मनमुखराम भाई की विलक्षण शैक्षणिक दृष्टि और योजना से प्रभावित केन्द्रीय सरकार, सौराष्ट्र सरकार और गांधी स्मारक-निधि की सहायता से तथा संस्था की कराची में जो साख खड़ी हुई थी उससे सुपरिचित स्वजनों और हितैषियों के प्रेमपूर्ण सहयोग से एक आश्रमी संस्था के रूप में शारदा ग्राम का विकास होता रहा है।

स्व॰ देशलजी परमार ने श्री मनमुखरामभाई को आत्मा की सर्वांगीण शिक्षा के अग्रदूत और स्व॰ ढोलरराय भाई ने ऊँचे श्री के अभिलाषी कहकर उनकी यथार्थ सराहना की थी। मनमुखरामभाई सच्चे दिल से चाहते थे कि शिक्षण-संस्था में दारिद्र्य अथवा दैन्य के नहीं बल्कि श्री समृद्धि प्रभुता और दिव्यता के दर्शन होने चाहिए। अनेकानेक विडम्बनाओं के सामने एक वीर योद्धा की तरह अकेले दम

जूझकर इस प्रचण्ड पुरुपार्थ के धनी संस्थापक और संचालक ने अपने सपनों को दो-दो बार साकार करके दिखाया था। कराची में केवल शून्य में से श्री शारदा-मन्दिर जैसी सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्था की सृष्टि की थी। बँटवारे के बाद उन्होंने फिर सौराष्ट्र में श्री शारदा ग्राम जैसी सुन्दर शिक्षण संस्था को साकार करके दिखाया।

सूफी संत गुरुदयाल मल्लिकजी ने प्रसंग प्रसंग पर श्री मनसुखरामभाई को 'आप खुदा के सच्चे बन्दे हैं', कहकर उनकी यथार्थ स्तुति की थी। मनसुखरामभाई की ईश्वर में असीम आस्था थी। वे प्रायः कहा करते थे ' मैंने अपनी नाव सूखेमें खडी की है। इस तैराकर उस पार पहुँचाने का काम ईश्वर का है।" और सचमुच ही एक मौके पर ईश्वर उनकी मदद पर दौड़ा है और संकट के अनेक अवसरों पर उन्हें उबार कर उनकी आकांक्षाओं को उसने पूरा किया है। शारदा ग्राम के अपने साथी श्री दुर्गेशभाई ठक्कर को ३ जून १९७४ के दिन पत्र लिखकर मनसुखरामभाई ने उनसे अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त करते हुए लिखा था— मुझे आज ७७ वाँ साल चल रहा है और मैं नहीं जानता हूँ कि अब ईश्वर मुझे इस दुनिया से कब अपने पास बुला लेगा। मैं उससे यही याचना करता रहता हूँ कि काम करते-करते यहीं अपनी अन्तिम साँस ले सकूँ।" ईश्वर ने उनकी यह प्रार्थना सुन ली। गुरुवार १ अगस्त १९७४ के दिन यानी लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि के शुभ दिन, वे संस्था के काम आई डाक निपटाने में लगे थे, तभी परम कृपालु परमात्मा ने उन्हें अपने पास बुलाकर उनकी अभिलाषा को परिपूर्ण किया।

अनुवादक—काशिनाथ त्रिवेदी

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा :

गांधी जी का छात्र जीवन :

(गतांक से)

माता के प्रति प्रतिज्ञ-निष्ठ :

अब मोहन के सामने भविष्य का सवाल खडा हो गया। वह अब क्या करे यह कुछ भी नही सूझा। भाई लक्ष्मीदास उसकी अब भी मदद करने को तैयार थे पर उन्हे भी नही सूझता था कि मोहन का अब वे क्या करें। इस बीच गाधी परिवार के कुछ मित्रो ने सलाह दी कि मोहन को विलायत भेज दिया जाय ताकि वह कानून की परीक्षा पास करके'अपने बाप दादा की ही तरह से नाम कमा सके'। कहा गया कि खर्च भी अधिक नही होगा केवल कुछ सौ ही रुपय का प्रश्न था। परिवार के एक परिचित मित्र ने कहा कि उनके परिचय का एक लडका विलायत मे है और वे उसके नाम मोहन की मदद के लिय पत्र देगे। पर सवाल पैसे का था। वह कैसे हो यह चिंता की बात थी। मोहन के चाचा जी ने कुछ मदद करनी चाही किन्तु इसी बीच उसकी जातिवालो ने कहा कि समुद्र यात्रा करना 'धर्म-विरुद्ध' है और जो कोई भी मोहन की मदद भी करेगा या उसे जहाज पर छोडने जायेगा उसको जाति से निकाल दिया जायेगा और सवा रुपया जुर्माना भी होगा। इस पर चाचा जी डर गए। तब गाधी परिवार के एक मित्र थे श्री वृन्दावन पटवारी। वे हिम्मत करके आगे आये और उन्होने पैसे की मदद की। भाई लक्ष्मीदास ने भी जाति की परवाह न करके मोहन को विलायत भेजने का निश्चय कर लिया था। माँ पहले तो बच्चेको इतनी दूर और अपने से अलग करने को तैयार नही हुई किन्तु बाद को मोहन से मास, मदिरा और स्त्री का स्पर्श न करने की प्रतिज्ञा करा कर वे भी उसे भेजने को राजी हो गई। इस प्रकार से ४ सितम्बर १८८८ को १८ साल का मोहनदास, जो अभी भी एक सकोची, भीरु और शर्मीला लडका ही था, एक अनजान दूर देश के लिये रवाना हो गया। मोहन के एक पुराने साथी ने उसे एक चादी की माला भेट दी और उसके काठियावाड हाईस्कूल ने उसके सम्मान मे विदाई पार्टी दी। यह न केवल मोहन का ही सम्मान था कि वह विलायत पढने जा रहा था अपितु वह स्कूल का भी सम्मान था।

कठिनाइयाँ भी अध्ययन का विषय हैं :

सितम्बर अत मे मोहनदास इगलैण्ड पहुँच गया। मार्ग मे सारी यात्रा उसने लगभग भूखो ही की और लदन मे भी जब तक उसे कोई शाकाहारी भोजनालय नहीं मिल गया वहाँ भी वह भूखा ही रहता रहा। क्योकि जहाज पर या लदन में

भी अधिकाश भोजन तो मासयुक्त ही था, और मोहनदास तो मास खाता ही नही था। बिना मास का भोजन लोग इस तरह से बनाते थे मानो वह मनुष्य के लिये हो ही नही। वह एकदम बेस्वाद होता था। फिर उसे अपनी माता जी को दिये गये वचन का बराबर ध्यान रहता था और वह इस बात मे बहुत सावधान था कि माँ की अनुपस्थिति में उसे दिया गया वचन भग न हो। काफी दौडधूप करने के बाद उसे लदन में एक शाकाहारी भोजनालय मिल गया और फिर तो मोहनदास न शाकाहार पर ही अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। उन दिनो से ही लदन में लोग मासाहार के बारे में शका करने लगे थे और शाकाहार पर खूब चिंतन मनन होता था। मोहनदास इस तरह के एक समूह में शामिल हो गया और फिर तो शाकाहार का वह इतना उत्साही प्रचारक बन गया कि लोग कहते थे कि यह पागल ही हो जायगा। इस प्रकार स भोजन की कठिनाइयो ने मोहनदास को एक नये विषय के अध्ययन की ओर उन्मुख कर दिया। कठिनाइयो को ही अध्ययन का विषय बनाने की मोहनदास की इस आदत ने ही उसे महात्मा गाधी बनाया।

राष्ट्रीय सस्कृति के प्रति दृढनिष्ठ

लदन के वातावरण ने मोहन को चकाचौध कर दिया। उसे वहाँ का रहन सहन व पहनावा आदि इतना अच्छा लगने लगा कि उसने तय कर लिया कि 'अंग्रेज बनकर ही जीना' अच्छा होगा। उसने पहनावे मे खासकर उनकी नकल करना आरम्भ कर दिया और दिनरात 'अंग्रेज बनने' की फिक्र करने लगा। यही हालत हमारे उन युवको की आज भी होती है जो विदेशो मे अध्ययन के लिये जाते है। किन्तु शीघ्र ही मोहनदास ने केवल तीन ही माह के अनुभव से सीख लिया। ये आज के युवक इस तरह से सीखने मे अब तक असमर्थ रहे है। पहले पहल मोहन ने आते ही अच्छी पोशाक और टोप खरीद लिया था और यूरोप की भाषा फ्रेंच तथा वायलीन बजाना सीखना आरम्भ कर दिया था। ये बाते उन दिनो लदन के उच्च पढ लिखे समाज मे प्रवेश के लिये आवश्यक होती थी। किन्तु तीन माह के बाद ही उसे लगा कि उसे 'अपने ही तरीके से' रहना चाहिये और वह फिर गहरे अध्ययन मे डूब गया और सादगी से रहने लगा। उसने फिर तो चाय पीना तक छोड दिया और स्वय ही अपना भोजन भी बनाने लगा। इस समय मोहनदास का साप्ताहिक खर्च लगभग एक शिलिंग के बराबर था।

खोखली इज्जत की शिक्षा:

६ नवम्बर १८८८ को मोहनदास ने प्रवेश के लिये निर्धारित प्रतिज्ञापत्र भरकर और दो बैरिस्टरो से इनर टेम्पिल की 'इज्जतदार कम्यूनिटी' के सम्मानित सदस्य के लिये आवश्यक योग्यता के स्वीकारा प्रमाणपत्र लेकर इनर टेम्पिल में भर्ती हो गया। इसमें कई बाते बडी दिलचस्प थी। दो शर्ते ऐसी थी जिनकी पूर्ति

करना आवश्यक होता था। एक तो यह कि भर्ती होने वाले को एक तिमाही में होने-वाली लगभग २४ दावतो में से कम से कम ६ दावतें खानी आवश्यक होती थी। दावतें याने सामुहिक भोजन जो कि शराव, मास आदि की होती थी। चार चार के समूह को इसमे दो बडी बोतले शराब परसी जाती थी और यह प्रतिष्ठित जन की दावत मानी जाती थी। मोहनदास तो कभी भी किसी दावत में सामिल नही हो सकता था किन्तु शर्त की पूर्ति भी आवश्यक थी। अत वह जाता और फिर बिना कुछ खाये यो ही सबके उठने पर उठकर आ जाता। बाद को उसने उसमे शाकाहारी भोजन परसने की माँग की जो मान ली गई। इस प्रकार से मोहनदास के कारण इनर टेम्पिल मे भी शाकाहार का प्रवेश हो गया। मोहनदास गाधी बनने के बाद भी नही समझ सका कि आखिर वैरिस्टर बनने के लिये इस प्रकार की दावतो की शर्तों की पूर्ति अनिवार्य क्यो मानी जाती थी। पर शायद यह उच्च समाज का 'एटिकेट' रहा हो जैसा कि कई बार हम आज के भारत के तथाकथित उच्च समाज मे भी कुछ इसी तरह का देखते हैं। आखिर हमने भी तो अँग्रेजो से ही अपनी वर्तमान सस्कृति उधार ली है न। आज भी हमारे बडे-बडे शहरो में भी इस तरह के समूह है जिन्हे 'क्लब' कहा जाता है। इस दावत के अलावा दूसरी तो स्वाभाविक शर्त थी कि इस परीक्षा मे पास होना आवश्यक था जिसमें सभी होते ही थे।

यही शिक्षा-दर्शन हमारे पल्ले पड़ा है :

यह परीक्षा कोई जरा भी कठिन नही थी। इसमें रोमन कानून और सामान्य कानून इस तरह के दो मुख्य विषय थे और साल में चार बार परीक्षा होती थी। किन्तु यहाँ कोई भी छात्र न तो पुस्तक ही खरीदता न गभीरता से पढता ही। 'सरल नोट्स' खूब रहते थे और छात्रो को वे 'सहज उपलब्ध भी करा दिये' जाते थे। उनके बल पर कोई भी छात्र बस एक या दो माह में मेहनत करके अच्छे नम्बरो से पास हो सकता था। हर छात्र को रोमन कानून में ९० प्रतिशत और सामान्य कानून मे ७५ प्रतिशत अक प्राप्त करने होते थे। अन्य छात्रो के लिये तो यह बहुत ही सरल बात होती थी जैसे कि आज हमारे देश की सभी परीक्षायें हो गई हैं क्योंकि इनर टेम्पिल की सरल नोट्स की यही प्रथा तो हमारी परीक्षा पद्धति की भी जान है किन्तु मोहनदास के लिये तो यह सचमुच पढाई का काम था और वह गहरी पढाई में जुट गया। उसने पुस्तके खरीद ली और अध्ययन करने लगा। बाकी छात्रो को तो यो भी काफी समय फालतू मिल जाता था जिसे वे गप्पे लगाने में बिताते थे। पर मोहन ने इस समय का अन्य उपयोग किया। उसकी अँग्रेजी कमजोर थी और फिर एक अँग्रेज देश के लिये तो वह और भी कमजोर थी। इसलिये मोहन ने यह कमजोरी दूर करने के लिये लदन की मैट्रिक परीक्षा पास करने का निश्चय कर लिया। इसमे लैटिन पढनी अनिवार्य थी और वैसे ही फ्रेंच भी। मोहन ने तब एक प्रायवेट कक्षा में प्रवेश ले लिया।

यह परीक्षा हर छठ माह होती थी और मोहन के पास तो केवल ५ हो माह बचे थे। किन्तु उसने अपना टाइम टेबुल तय कर लिया और बैरिस्टरी के साथ साथ मैट्रिक परीक्षा की भी तैयारी करने लगा। किन्तु फिर भी वह पहली परीक्षा म लैटिन में फेल हो गया। पर मोहन निराश नहीं हुआ और और भी कठिन मेहनत में लग गया। उसने रहन सहन और भी सरल कर दिया और दो कमरो के बजाय एक ही कमरे में रहने लगा। खाने का खर्च भी अब उसने कम कर दिया और अब उसका खर्च केवल १ शिलिंग ३ पेंस पर आ गया। उसे अपने बड़े भाई लक्ष्मीदास का भी बराबर ध्यान रहता था जो कि उसके पत्र पाते ही उसके लिए खर्च भेज देता था। इस प्रकार से जून १८९० में उसने लंदन की मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। वह कानून की पढ़ाई तो कर ही रहा था और २२ साल की उम्र मे वह १० जून १८९१ को बैरिस्टरी की परीक्षा में भी पास हो गया। ११ जून को उसे हाईकोर्ट के वकीलो की सूची म भर्ती कर लिया गया और १२ जून को फिर वह सीधे भारत अपने घर के लिये चल दिया। परीक्षा पास करने के बाद एक दिन भी वह विलायत में नही रहा।

ब्रिटिश-शिक्षा में भारत का स्थान

इस प्रकार से सन् १८८८ से सन् १८९१ तक तीन साल मोहनदास लंदन म रहा। वहाँ उसने रोमन कानून के साथ साथ सामान्य ब्रिटिश कानून का भी अध्ययन किया। रोमन कानून का उसका ज्ञान बाद को दक्षिण अफ्रिका में वहाँ के *कानून को समझने में उसके लिये मददगार हुआ। यह आश्चर्य की ही बात है कि* यद्यपि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा और महत्व का भाग था किन्तु इनर टेम्पिल की जैसी प्रमुख ब्रिटिश संस्था में भारतीय कानून के अध्ययन को कोई भी *स्थान नहीं था। इसलिये बैरिस्टर बनने के बाद भी मोहनदास को भारतीय कानून* की कोई जानकारी नहीं थी और बाद को फिर बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी को भारतीय अदालतो के लिये एक मुकदमा लिखना तक नहीं आया। बम्बई में आकर मोहनदास ने वकालत आरम्भ की पर वह सफल नही हो सका।

सीखने के अवसरों की कमी नहीं :

लंदन के अपने तीन साल के प्रवास को मोहनदास ने अत्यन्त लाभकारी बनाने का पूरा प्रयास किया। वह अन्य भारतीय विद्यार्थियों की तरह केवल दावतें *खाने और गप्पें लगाने में ही नहीं लगा रहा। ब्रिटेन में विचार स्वातन्त्र्य की जो* हवा मोहनदास को मिली उससे वह बहुत प्रभावित हुआ। वहाँ उन दिनों सारा ही राष्ट्र मानो एक चलता फिरता विश्व विद्यालय ही बन गया था और आए दिन देशमें खासकर लंदन में अनेक विद्वान् किसी न किसी विषय पर भाषण करते रहते थे। मैक्समूलर के जैसे विद्वान् के भाषण में तो उपस्थिति हजारो तक होती थी यद्यपि

मोहनदास का शर्मीलापन व सकोची स्वभाव तो बना रहा किन्तु इस विचार प्रवाह का असर उस पर पडा ही। फ्रेन्च चूंकि यूरोप की भाषा थी इसलिये उसने पहले वह पढी। पहले पहल तो उसने नाच भी सीखा और अनेक प्रकार की अंग्रेजी पोशाको पर भी रुपया बरबाद किया। पर जल्दी ही वह इस सबसे ऊब गया और अपने स्कूल के अध्ययन के साथ साथ वह समाज के अध्ययन मे भी लग गया। शाकाहारशास्त्र पर तो, जैसा पहले कहा गया है, वह इतना उत्साही प्रचारक ही बन गया कि लाग उसे पागल भी कहते थे। कुछ मित्रो की प्रेरणा से मोहनदास का परिचय वहाँ पर थियोसोफिस्ट लागो से हुआ और इसके माध्यम से उसे गीता का परिचय मिला। उसने सर आर्नाल्ड के अनुवाद दि साग सैलेस्टियल' (The song Celestial) के माध्यम से गीता पढी। फिर उसने आर्नाल्ड की ही लाइट आफ एशिया' (Light of Asia) पढी और उन्ही मित्रो ने उसे फिर थियोसोफी की सस्थापक श्रीमती ब्लैवास्ट्की (M. Blavatsky) और एनी बसेन्ट से परिचित भी करा दिया। श्रीमती ब्लैवास्ट्की की पुस्तक की टु थियोसोफी (Key to Theosophy) ने मोहनदास को हिन्दू धर्म के अध्ययन की प्रेरणा दी। इन मित्रो न मोहनदास को थियोसोफिस्ट बन जाने की भी सलाह दी किन्तु मोहनदास ने यह कह कर कि 'मेरे ही धर्म का मेरा अध्ययन अभी अधूरा है इसलिये अन्य किसी धर्म मे सामिल होना मेरे लिये उचित नहीं है' उसने उनकी बात नही मानी। इसी बीच शाकाहारी भोजनालय मे उसकी भेट एक उत्साही ईसाई सज्जन स हो गई जिसने मोहनदास को बाइबिल पढने की भी सलाह दी। उसने वह भी पढी और नयी पुस्तक (New Testament) ने तो, जैसा कि बाद को गाधी जी न स्वय कहा है उसके मन पर गहरा असर डाला। इस प्रकार के अध्ययन ने तब मोहनदास को ससार के धर्मों और खासकर अपने हिन्दू धर्म के अध्ययन के लिये और भी गहराई से प्रेरित किया और बाद को महात्मा गाधी का 'सव-धर्म-समभाव' का विचार भी प्रकार के अध्ययन का नतीजा था। धर्मों के इस अध्ययन ने भी मोहनदास को यह बता दिया कि 'यदि कोई व्यक्ति अपने धर्म को सही प्रकार से समझ कर उस पर ईमानदारी से चले तो फिर उसके मन में ससार के सभी धर्मों की मौलिक एकता सरलता से बैठ जायेगी।' हम अपने धर्म को श्रेष्ठ या हीन और दूसरे के धर्म को कुछ हीन या श्रेष्ठ इसलिये मान बैठते है क्योकि हमें असल में अपने ही धर्म का सही ज्ञान नही होता है।

हंस-विवेक आवश्यक :

लदन में रहकर मोहनदास को उन दिनो ब्रिटन मे चल रही नास्तिकवाद की जबरदस्त धारा से भी परिचय हुआ। उन दिना ब्रिटन में प्रख्यात ब्रिटिश दार्शनिक ब्रैडले और उसके नास्तिकवाद का भारी बोलबाला था और गाधी ने उस तरह के भाषण भी खूब सुने। किन्तु उस पर उस दर्शन का जरा भी प्रभाव नही पडा। फिर

भी ब्रैडले के लिये उसके मन में बहुत आदर बना और वह ब्रैडले की मृत्यु पर उसके अन्तिम संस्कार में भी सामिल हुआ।

१८९० के साप में मोहनदास सात दिन के लिये पेरिस भी रहा। उन दिनों वहाँ एक बड़ी प्रदर्शनी लग रही थी। पेरिस जैसे शहर में भी मोहनदास पैदल ही घूमा और उसने सात दिन में लगभग सारा शहर घूम डाला। वहाँ भी वह एक शाकाहारी भोजनालय में ही रहा।

इस प्रकार से तीन साल लंदन में रहकर मोहनदास २२ जून १८९१ को पुनः अपनी मातृभूमि पर आ गया। वहाँ आते ही वह बम्बई में वकालत करने के लिये गया किन्तु सफल नहीं हुआ। कुछ दिन तक वैचारिक उलझन रही किन्तु शीघ्र ही गांधी परिवार के एक मित्र ने, जो कि दक्षिण आफ्रिका में रहते थे, अपने किसी मुकदमें की पैरवी के लिये मोहनदास को दक्षिण आफ्रिका जाने के लिये राजी कर लिया और मोहनदास भारत का 'राष्ट्रपिता' और विश्व का 'महात्मा गांधी' बनने की राह पर, यद्यपि उस समय मोहनदास को भी यह सब कुछ भी पता नहीं था कि वह क्या बनने जा रहा है, चल पड़ा। उसके बाद की कहानी तो अब छात्र लोग स्वयं ही पढ़ेंगे।

सामान्य से महान् :

गांधी जी के इस छात्र जीवन वृत्त से पता लगता ही है कि वे बचपन में वैसे कमजोर या बुद्धू छात्र नहीं थे जैसा कि उनकी आत्मकथा पढ़ने से लोगों को लगता है। यह ठीक है कि वे सामान्य छात्र थे, यानी कोई अद्भुत प्रतिभाशाली छात्र नहीं रहे किन्तु निष्ठावान् अध्ययनशील और नित्यसत्य थे। और किसी भी छात्र में ये गुण होना अपने आप में एक ऊंची प्रतिभा का आधार होता है। ये गुण उस प्रतिभा के बीज होते हैं जो बाद को समय पाकर पनपते हैं उस प्रतिभा के नहीं जो कि पहले पहल एकाएक चमक कर फिर या तो सामान्य स्तर पर आ जाती है या फिर अक्सर ही 'समाज-विरोधी' या 'समाज-निरपेक्ष' निरे निजी स्वार्थ की पूर्ति में ही लग जाती है। इस तरह की प्रतिभा समाज के लिये किसी भी काम की नहीं होती। प्रतिभा हो और मानव सेवा की निष्ठा भी हो तो यह दुर्लभ बात है जो कि बचपन से ही गांधी जी में थी।

रामेश्वर दयाल दुबे

विश्व हिन्दी सम्मेलन

विश्व की भाषाओं में हिन्दीका अपना एक विशेष स्थान है। बोलनेवाले लोगों की संख्या की दृष्टि से विश्व की भाषाओं में हिन्दीका स्थान तीसरा है। हिन्दीका साहित्य, उसकी साहित्य-परम्परा कम महत्व की नहीं है। दुर्भाग्य से भारत डेढ़ सौ वर्ष तक पराधीन रहा, इसलिये एक हिन्दी ही क्या, भारत की सभी भाषाओं की उपेक्षा होती रही। परिणाम स्वरूप जितनी उन्नति हिन्दी को और अन्य भाषाओं को कर लेनी चाहिये थी, नहीं कर सकी। फिर भी हिन्दी और अन्य भारतीय भाषायें अपनी प्रबल जीवनी शक्ति के बलपर न केवल जीवित रहीं, वरन् यथाशक्ति उन्नति भी करती रहीं।

सौभाग्य से भारत स्वतंत्र हुआ और स्वतन्त्र भारत की संविधान सभा ने एक मत से देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी को 'राजभाषा' स्वीकार किया। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि सदियों से हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूपमें भारत की सेवा करती आ रही है। सन्तों का उसे आशीर्वाद मिला और जनता का उसे समर्थन, इसलिये, मान्यता भले अब मिली हो, हिन्दी, भारत की राष्ट्रभाषा बहुत पहले से बनी चली आ रही है।

भारत के बाहर भी, जैसे मॉरीशस, फिजी, सुरीनाम, दक्षिण अफ्रिका, पूर्व अफ्रिका, ट्रिनिडाड आदि-आदि देशों में, जहाँ भारत के मूल निवासियों की संख्या लाखों में है, हिन्दी का व्यापक प्रचार है।

यों पहले से ही विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का विधिवत अध्ययन चल रहा था, किन्तु इधर भारत में हिन्दी को राजभाषा पद मिलने के पश्चात् अधिकांश विदेशों में हिन्दी के प्रति विशेष रुचि दिखाई जा रही है। आज संसार के ९३ विश्व-विद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था है।

भारत की संस्कृति और उसका जीवन-दर्शन इतना उदात्त, इतना उच्च आशय प्रेरित रहा है कि उसके कारण विश्व भर में यह राष्ट्र आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। भारत ने अति प्राचीन काल से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष किया है। विश्व बन्धुत्व की भावना भारतीय संस्कृति की मूल धारा है। इसमें निहित समदर्शिता की भावना इतनी तीव्र और इतनी व्यापक है कि वह सदा अपने घर, परिवार, प्रान्त और देश की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई वसुधा पर के प्राणियों को अपने क्रोड में समेट लेना चाहती है। वेद तथा बुद्ध के काल से लेकर आधुनिक गांधी-युग तक भारतने सदा ही विश्व शान्ति और विश्व-बन्धुत्व की भावना का ही आग्रह रखा है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसी भव्य भाव को अपनी एक रचना में अंकित किया था —

> "एसो हे आर्य, एसो अनार्य, हिन्दु मुसलमान
> एसो एसो आज तुमि इंगराज एसो खिस्तान।
> एसो ब्राह्मण, शुचि करि मन, धरो हात सबाकार —
> एसो हे पतित, करो अपनीत सब अपमान भार !
> मार अभिषेक एसो एसो त्वरा, मंगलघट हयेनि भरा
> सबार-परशे-पवित्र-करा तीर्थ नीरे — '
> आज भारतेर महामानवेर सागर तीरे।'

> हे आर्य आओ, हे अनार्य आओ, हिन्दू मुसलमान सब आओ! आओ आओ अंग्रेज तुम भी आओ! ईसाइयों तुम्हारा भी स्वागत है। ब्राम्हणो आओ, मन पवित्रकर सब के हाथ पकड़ो। शूद्रगण आओ, अपमान के सब भार को उतार दो। भारत माँ के अभिषेक हेतु प्रकाशवन्त हो जाओ। सबके स्पर्श से पवित्र किये गये तीर्थ जल से मंगलघट अभी भरा नहीं गया है।

वैदिक काल से लेकर बहुत बाद तक मानव मात्र के बीच एक सूत्रता का निर्माण-कार्य संस्कृत भाषा द्वारा होता रहा। अपनी लोकप्रियता द्वारा संस्कृत ने भारत के पड़ोसी देश — लंका, जावा, सुमात्रा, बालि कम्बोज आदि को एक सूत्र में बांध रखा था। संस्कृत भाषा के माध्यम से ही भारतीय संस्कृति का दिव्य सन्देश विदेशों में पहुँचा था और आज भी पहुँच रहा है।

आज की बदली हुई परिस्थितियों में भारत की सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का उत्तरदायित्व अब भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी को उठाना है। वह जिस रूप में और जिस मात्रा में इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकेगी, वह अपने

उद्देश्य में उतनी ही सफल होगी। इस दृष्टि से हिन्दी भारतीय एकात्मता का माध्यम तो बनेगी ही, विश्व की एकता तथा शान्ति के सन्देशवाहक के रूप में विश्व की प्रमुख भाषाओं में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी।

इन्हीं दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, जनवरी ७५ में नागपुर में एक 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' का आयोजन करने जा रही है। विश्व हिन्दी सम्मेलन का उद्देश्य राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सन्दर्भ में हिन्दी की उपलब्धियों एवं सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श करना है कि कैसे वह आज की परिस्थितियों में, जब सभी राष्ट्रों को अनिवार्यतः एक विश्व और एक मानव-परिवार के लक्ष्य की ओर चलना है, सभी का एक उपयोगी साधन बन सकती है।

इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये काफी संख्या में प्रतिनिधि विदेशों से आवेंगे। रूस, जापान, इंगलैण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, जेकोस्लावेकिया आदि देशों के हिन्दी विद्वानों को आमंत्रित किया जा रहा है। यूनेस्को और यू. एन. जैसी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं से भी प्रार्थना की जा रही है कि वे अपने प्रतिनिधि और दर्शक इस सम्मेलन में भेजें।

सम्मेलन की अध्यक्षता मॉरिशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम करेंगे और सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिराजी करेंगी।

यह सम्मेलन चार दिन चलेगा।

विश्व हिन्दी सम्मेलन की विविध प्रवृत्तियों के अन्तर्गत नागरी-लिपि की एक प्रदर्शनी होगी जिसमें अन्य बातों के अलावा भारत के महान दार्शनिक एवं संत आचार्य श्री विनोबाके, एक लिपि के माध्यम से राष्ट्रीय एकात्मकता के कार्य का, प्रस्तुतीकरण होगा। भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को अभिव्यक्त करने के हेतु भी एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया जाएगा।

अन्य कार्यक्रमों में विश्व हिन्दी 'स्मारिका' का प्रकाशन, अन्तर-भारती परिसम्वाद, कवि-सम्मेलन, देश विदेश के अहिन्दी भाषी हिन्दी-सेवियों का सम्मान, सेवाग्राम में गांधी-कुटी का दर्शन, विनोबाजी के आश्रम की यात्रा, हिन्दीनगर (वर्धा) में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की भेंट तथा वहाँ संत तुलसीदास जी की प्रतिमा का अनावरण तथा रामलीला, भारतीय संगीत, नृत्य आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समावेश होगा। सम्मेलन की प्रमुख उपलब्धि के रूप में एक 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की कल्पना है, जहाँ देश विदेश के लोग अध्ययन अनुसंधान के लिए आ सकेंगे।

सौभाग्य की बात है कि इस विश्व हिन्दी सम्मेलन की कल्पना और योजना का सर्वत्र स्वागत हुआ है। भारत ही नहीं, विदेशों से भी बड़े ही उत्साहवर्धक पत्र प्राप्त हो रहे हैं।

महाराष्ट्र सरकार ने, जिसके क्षेत्र (नागपुर) में यह सम्मेलन आयोजित होने जा रहा है, पाँच लाख रुपय की सहायता देने का आश्वासन दिया है और अनेक प्रकार की सुविधायें सरकार देने वाली है। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसन्तराव नाईक सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष रहेंगे। वित्तमंत्री मधुकरराव चौधरी कार्याध्यक्ष हैं और प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अनन्त गोपाल शेवडे सम्मेलन महासचिव हैं और वर्धा समिति के मंत्री श्री शंकरराव लाढे जो महासचिव (सगठन) है।

भारतीय राष्ट्र जीवन के शाश्वत आदर्श हैं— प्रेम, सेवा, विश्व बन्धुत्व और विश्व शान्ति। यही आदर्श, 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' के आयोजन के भी प्रेरणा-बिन्दु होंगे।

आशा यह की जा रही है कि भारत के सभी क्षेत्रों और प्रान्तों के व्यक्तियों से, केन्द्रीय सरकार और अन्य राज्य सरकारों से, संस्थाओं से, व्यापक जनता से सम्मेलन को हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा और विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी का एक महान उत्सव सिद्ध होगा।

※

"भविष्यको बनानेमें सहायता देनेवाले व्यक्ति वे होंगे, जो आध्यात्मिक विकासको नियतिके रूपमें देखेंगे तथा इसलिए इसको मानवताकी महान आवश्यकता मानेंगे वे किसी विश्वास तथा आकार विशेषसे अपेक्षित उदासीन होंगे तथा वे मानवको विश्वासों तथा आकारोंका सहाय लेनेके लिए छोड देंगे। जिनके प्रति मानव प्राकृतिक रूपसे खिंचता रहा है, वे इस आध्यात्मिक परिवर्तनमें निष्ठाको ही अनिवार्य मानेंगे। वे विशेषतया यह सोचनेकी गलती नहीं करेंगे कि यह परिवर्तन मशीनों तथा बाहरी संस्थानोंके परिणामस्वरूप आ सकता है। वे पूर्वकी उस आन्तरिक विचारधाराको अंगीकार करेंगे, जो व्यक्तिको उसकी नियति तथा उसमें निहित मोक्षके रहस्यको जाननेकी प्रेरणा देती है।

—श्री अरविन्द

गोविन्द भाई रावल :

सच ही क्या हमारे नेता इसके लिए तैयार हैं :

[श्री गोविन्द भाई रावल गुजरात नयी तालीम संघ के अध्यक्ष और एक अनुभवी शिक्षक हैं। उनका यह विचारोत्तेजक लेख, आशा है शिक्षकों व छात्रों को भी चिन्तन के लिये प्रेरित करेगा।]

शिक्षा का आप्त कर्म क्या है ? मानव जाति की समस्याओं का हल निकालना, यह उत्तर सहज ही मिलेगा। किन्तु आज क्या स्थिति है ? क्या सचमुच हमारी शिक्षा हमारी समस्याओं का हल कर सक रही है ? या वह स्वय ही समस्या बन गई है या बना दी गई है। आज तो इससे छात्र, शिक्षक, अभिभावक, प्रशासक, सभी परेशान हैं। सरकार की भी आँखें खुल रही हैं। लगता है अब तो इस पर उसी तरह किसी का कोई काबू नही रह गया जैसे कि छूटे हुये तीर पर। परीक्षाओ मे खुले आम चोरी, पेपर लगते ही छात्र बाहर आते हैं और फिर उत्तर प्राप्त कर लेते हैं। और अब तो परीक्षा काल आते ही वे तोडफोड युक्त आन्दोलनो मे ही लग जाते हैं। तो न रहेगा बाँस न बजेगी बासुरी।

शिक्षा आयोगो का क्या हुआ :

सरकार ने कई तरह के शिक्षा आयोग कायम किये, उन्होने भारी भारी पोथे रिपोर्ट्स के दिये। सबने यही कहा कि शिक्षा का तत्काल सुधार होना चाहिये। किन्तु इनकी सिफारिशोंका क्या हुआ। सरकार को भी नही मालूम कि क्या हुआ। सरकार की छलनी मे वे भी छन गये। लगता है कि मनुष्य अभी भी अपनी आदिम अवस्था में ही है और अपनी भूलो से भी कुछ नही सीखना चाहता। लातो के देव बातो से नही मानते सरकार शायद इसी सिद्धान्त पर विश्वास करती है।

शिक्षा मे परिवर्तन के लिये कोई भी तैयार नही :

क्या इस स्थिति का कोई हल है ? लगता है किसी की नीयत असल में हल करने की है ही नहीं। आमूल क्रान्ति के लिय आज कोई तैयार दीखता नही। न छात्र, न शिक्षक, न अभिभावक, न प्रशासक और न सरकार ही। प्रत्येक का एक न एक स्थापित हित है जिसे वह किसी भी कीमत पर छोडने को तैयार नही है। जब बिना श्रम के हराम को खाने को मिल जाय तो फिर कोई मेहनत क्यो करे। इसलिये

फिर इस तरह की शिक्षा से भी क्या लाभ जो श्रम करना सिखाये। हालांकि सभी कह यही रहे हैं पर यह सब झूठ हैं। जो श्रमिक हैं वह तो शिक्षित नहीं। वह शिक्षित होना वही शिक्षा को बदलना। बाकी जो शिक्षित हैं वह श्रमिक नहीं। तो वह शिक्षा को श्रममूलक क्या बनायें ? यदि सरकार और उसके नेताओं की मन्शा सच ही शिक्षा में कोई आमूल परिवर्तन करने की होती तो फिर राष्ट्रपति से लेकर साधारण व्यक्ति तक जब बारबार परिवर्तन की रट लगाये हैं तब परिवर्तन होता क्या नहीं ? सरकार और जो बातें उसके हित में माने उसकी सत्ता बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं वे तो तुरन्त कर डालती है। तब फिर इस शिक्षा में परिवर्तन के लिये सरकार का किसने रोका है ?

जयप्रकाश जी का आवाहन :

अभी अभी श्री जयप्रकाश जी ने देश के छात्रों का आवाहन किया है कि वे कम से कम एक साल के लिय स्कूल कालेज छोड़ दें और शिक्षा में परिवर्तन के काममें लगें। श्री जयप्रकाश जो तो देश के नेता है और बड़े आदमी हैं किन्तु मेरे जैसा एक छोटा सा शिक्षक भी आज सचमुच यही अनुभव करता हूं कि यदि देश की सभी शिक्षण संस्थाओं को साल भर के लिये ताला लगा दिया जाय तो क्या हानि है। मेरा भी सरकार और शिक्षा संचालकों से अनुरोध है कि वे साल भर के लिये सभी स्कूलों, कालेजों में तालाबंदी घोषित कर दें और तब देखें कि देश पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। आज असल में यह सवाल विचारणीय हो गया है कि हमारे देश में आज जो शिक्षा चल रही है या चलाई जा रही है उसकी आवश्यकता किसे है ! वह किसकी आवश्यकताओं को पूरा करती है। आज के सभी शिक्षक तो बेरोजगारी के शिकार हैं फिर यह शिक्षा किसलिये है। इस पर कोई तो सोचे। गांधी जीने बहुत पहले से ही कार्यपरक शिक्षा, की बात कही थी तो सरकार व उसके नेताओं ने कहना आरम्भ कर दिया कि गांधी जी की बात पुराने युग की बात है। किन्तु अब फिर से 'वर्क एक्सीपीरियेन्स' आगे की बात कही जा रही है। क्या कोठारी कमीशन का कोई जिम्मेवार सदस्य या सरकार ही यह बतायगी कि यह कार्यनुभव गांधी जी की कार्य परक शिक्षा के विचार से किस अर्थ में आगे की बात है ? पर हम गांधी को जब में भी डाल दें तो भी पश्चिमी आयने से भी देखें तो क्या दीखता है। वहीं पर यह 'जाब ओरियन्टेड' शिक्षा के नाम से कई सालों से प्रयोग हो रहा है। उसके क्या नतीजे है। सरकार ने हमारे यहां भी टकनीकल विभाग आरम्भ किये हैं और अनेक प्रकार की संस्थाओं को जन्म देकर तरह तरह के पाठ्यक्रम बनाये हैं। उनमें से निकले हुये कोई एक भी ऐसा ग्रेजुयेट है जिसने स्वयं का कोई धंधा आरम्भ किया हो और सरकार या प्राइवेट नौकरी के लिये वह भटकता न हो। किन्तु कहें किसको ?

जिस देश की सरकार ही नागरिकों को एक रुपये की टिकट खर्च करके लखपति बनाने के लिये कहती हो उस देश का नागरिक

फिर मेहनत की शिक्षा क्यो ले ? जिस देश की सरकार यह तर्क देती हो कि शराब से उसको आमदनी होती है तो फिर लोग पढ लिख कर क्या करें ? वे भी फिर शराब ही न बेचे। हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे देश को इस तरह की सूझबूझ हीन सरकार मिली है। आज न तो सरकार ही श्रममूलक समाज मे रुचि लेती है न देश के ही नागरिक लेते हैं। सभी हराम की कमाई, मुफ्त की कमाई पर गुलछर्रे उडाना चाहते हैं। जब तक देश मे श्रम की प्रतिष्ठा कायम नही की जाती तब तक इस बीमारी का क्या कोई हल है ? पर यह प्रतिष्ठा श्रम को मिले कैसे।

यद् यद् आचरति श्रेष्ठ

सभी समाजो मे लोग समाज के नेताओ को अपना आदर्श मानते हैं। आज के हमारे नेता भी आज देश के लिये आदर्श माने जाते हैं। किन्तु जब ये ही नेता श्रममूलक शिक्षा की बात करते हैं तो भारत सरकार के पहले के शिक्षामंत्री श्री डा आर वी के राव के शब्दोमें वह दूसरो के बालको के लिये है अपने बालको के लिये तो उनके कन्वेंटस हैं ही। कम होना तो उनकी सख्या बढाई जा ही रही है। यह याद रखना चाहिए कि आज यदि देश की बुरी हालत हुई है तो उसका कारण और कुछ नही हमारे नेताओ की चरित्र हीनता और पाखंड है। यदि लोग इस बात को समझ जाय तो फिर वे नेताओ के पीछे चलने के बजाय स्वय की शक्ति का ही भरोसा करें। किन्तु जनताको स्वय अपनी शक्ति पर ही भरोसा करना है यह सीख किसने उसे दी है ? सरकार ने तो 'कल्याणराज' का नारा दिया है और इस नाम पर उसकी दखल अब व्यक्ति की रसोई तक मे हो गई है। तब फिर इस तरह से करोडो जनो का भार उठानवाली, उठाने का नाटक रचनेवाली सरकार क्या अधिक दिन तक टिक सकती है ? सरकार कल समाप्त हो जाय किन्तु क्या इस तरह का समाज जो बस सरकार पर ही निर्भर हो, कितने दिन टिकेगा, यह विचार की बात है।

उद्धरेत् आत्मनात्मानम्

इसलिए यदि सचमुच देश की शिक्षा में कोई सार्थक परिवर्तन करना ही हो तो उसमें इस बात की व्यवस्था पहले करनी होगी कि लोग आत्म-निर्भर बन सके। लोग यह समझ सकें कि उनका उद्धार कोई सरकार नही वे स्वय ही करेंग। यदि बुनियादी तौर पर यह नीति स्वीकार कर ली जाय तो फिर शिक्षा मे परिवर्तन का सवाल भी हल किया जा सकता है। तब फिर इस तरह की शिक्षा व्यवस्था करनी होगी कि प्राथमिक से लेकर दसवी तक की सर्व सामान्य जिम्मेदारी तो सरकार ले और इस दसवें दर्जे तक इस तरह की शिक्षा दी जाय कि तब तक बालक कोई न कोई हुनर सीख जाय, उसे मालूम हो जाय कि उसकी असल रुचि किस चीज मे है। उसे अपना मार्ग स्वय तय करने की चेतना उसमे आ सके। इस दस साल के शिक्षा काल मे छात्रको तरह तरह के अनुभव से होकर जाने देना होगा। यदि इतना कर लिया

जाय तो मानो आधा युद्ध तो जीत ही लिया। फिर आगे की शिक्षा का ढाँचा बनाना सहज हो जायेगा।

खेत और फैक्ट्री शिक्षण संस्थायें बनें :

तब आगे की शिक्षा के लिये पहला काम तो यह किया जाय कि हर खेत को, जो कि एक अनुकूल स्तर का हो जैसे कि कम से कम १०० एकड़ का हो, और फैक्टरी को कहा जाय कि वे अनिवार्यतः एक 'एप्रेन्टिस' विभाग चलायें और उसमें सीखने वाले को सीखने के काल में रोटी खर्च के लायक जीवन वृत्ति दे दें। यह छात्र की मेहनत के बदले होगा। फिर इस शिक्षा को पूरा करने के बाद या तो छात्र अपने खेत या फैक्ट्री पर चला जायगा या फिर उसी में उसे भी काम पर लगा दिया जा सकता है। इस प्रकार से हम युवकों को तालीम और काम दोनों ही दे सकेंगे। हाँ इनमें सरकार को इतना करना होगा कि इस तरह के फार्म या फैक्ट्री को वह उदारता से आर्थिक मदद कर्ज के रूप में करेगी। क्या इनसे शिक्षा को नया मोड़ नहीं दिया जा सकता है? उच्च शिक्षा के द्वार सबके लिये खुले हों यह बात सुनने में तो बहुत ही आकर्षक ही लगती है किन्तु यह भी तो मान लेना होगा कि आज का विशुद्ध जीवन भी तो इसी विचार के अमल करण का नतीजा है। तब फिर इस विचार का त्याग क्यों नहीं किया जाता? यह सही है कि जो प्रतिभावान हों और उनका आगे पढ़ना उनके और समाज के लिये आवश्यक हो उनके लिये यह हो पर सभी इस भ्रम में क्यों रहें। इससे तो परिताप और वैफल्य के सिवाय और कुछ भी तो हाथ आने वाला नहीं है।

उच्च शिक्षा का भ्रम न पाला जाय

यह सच है कि देश की तरक्की के लिये हमें उच्च शिक्षा की व्यवस्था करनी ही चाहिये किन्तु आज उसका भी क्या ढाँचा है। वह तो कोई नवीन खोज होने के बजाय बस सूचनाओं को जाँच करके डिग्री प्राप्त करने का माध्यम मात्र बन गई है। असल में तो जिसे जीवन के अनुभव से कुछ जिज्ञासा पैदा हुई हो और जो उस अनुभव के प्रयोग के लिये कुछ खोज करना चाहता है उसे ही उच्च शिक्षा का अधिकार दिया जाय। यह हो तो फिर आज की जो अंधी दौड़ इसके लिये होती है वह समाप्त होगी। दो साल तक प्रत्यक्ष काम करने के बाद जो अनुभव आये उस पर से उच्च शिक्षा में प्रवेश की व्यवस्था होनी चाहिये। तब तो कितने ही साहसी लोग ही इसमें आने को सोचेंगे और जो जायेंगे वे सचमुच ही कुछ करेंगे। जो केवल परिवार की आर्थिक हालत अच्छी है और कोई हाथ काम करना नहीं चाहते वे ही इस तरह के उच्च शिक्षा के नाम पर चलनेवाले विलास में जाते हैं। इससे न तो उच्च शिक्षा में अध्यापन में लगे शिक्षकों का ही विकास हो पाता है न छात्र का ही। इस तरह की उच्च शिक्षा में तब असल में वहीं लोग जायेंगे जिन्होंने पहले हायर सेकेंडरी तक किसी उद्योग के

माध्यम से जो शिक्षा पाई है उस पर से उद्योग किसी उद्योग के बारे में या विषय के बारे में अधिक जानने की जिज्ञासा लगी तो वे ही आगे जायग। इसलिये शिक्षा म उद्योग से ज्ञान की बात नहीं बल्कि उद्योग को ही शिक्षा बनाने की बात सही है। वास्तव म शिक्षा का काम कुछ सिखा देना नहीं है। क्योंकि कोई किसी को कुछ सिखा नहीं सकता। तो शिक्षा का तो केवल स्वय सीखने का वातावरण बना देना मात्र है।

शाला समाज जीवन के साथ समरस हो :

इसलिये यह आवश्यक है कि देश में सबसे अधिक ध्यान तथाकथित उच्च शिक्षा पर नहीं अपितु बुनियादी (मान हा० स० तक क,) शिक्षा पर देने की आवश्यकता है। यही आगे की शिक्षा और जीवन की असल बुनियाद है। यदि हम इस बुनियाद को समाज जीवन के साथ रखकर समरस कर सकेंगे तो इससे न केवल हमारी शिक्षा पद्धति ही पुष्ट होगी अपितु हमारा जीवन भी पुष्ट होगा। यह दुर्भाग्य की बात है कि आज हमारी सरकार जितना हो हल्ला तथाकथित उच्च शिक्षा के बारे म मचाती है और जितना धन उसपर खर्च करती है उतना वह बुनियादी शिक्षा पर करती तो देश आज कहाँ का कहाँ पहुँचा होता। हमारी प्राथमिक शालायें तो कराहती हैं और विश्व विद्यालयों पर करोडो रुपया खर्च करके उनके लिये आलीशान महल बनाकर एक भ्रष्ट विलास की रचना करने म सरकार लगी है। इससे शिक्षा का क्या काम हो रहा है ? विश्व विद्यालयों का आज समाज जीवन से कोई तालुक नहीं। व समाज पर निकृष्ट निगाह से देखते हैं। उनका यह भ्रम है कि वे समाज से अधिक बुद्धिमान और आवश्यक हैं। सरकार भी इस भ्रम को पोषती है। तब इस हालत में बुनियादी शिक्षा कैसे पनपे। इसलिये हमारा प्राथमिक शालायें भी आज आत्म विश्वास और प्रतिष्ठा से नितान्त वाचत हैं। समाज म न उनकी कोई प्रतिष्ठा है न समाज उन्हे आवश्यक ही मानता है। उन्हे तब समाज से कोई मतलब नहीं रह गया। समाज पूर्व की ओर देख रहा है तो हमारी इन शालाओं का मुह पश्चिम की ओर है। किन्तु इसके लिए इन को दोष नहीं दिया जा सकता। इसका दोष तो सरकार का है जो कि नितान्त ही दृष्टिहीन तरीके से सारा काम करती है।

हम यह याद रख कि शिक्षा भी एक यज्ञ कार्य है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि प्रजा का जन्म यज्ञ के साथ हुआ था। तो यदि हम शिक्षा रूपी यज्ञ को पालेंगे ही नहीं तो फिर प्रजा का रक्षण पोषण कैसे होगा ? हम यदि शिक्षा रूपी यज्ञ को पालेंगे तो देश और प्रजा दोनों ही पुष्ट होंगी। धर्मो रक्षति रक्षित।

देवीभाई :

अहिंसा के लिए लोक शिक्षण: मेडलीन सम्मेलन और कराकस विश्व विद्यालय गोष्ठी की रिपोर्ट :

(हमने नयी तालीम के पिछले अंक में लैटिन अमरीका से देवीभाई की एक चिट्ठी दी थी। उसका बाकी भाग यहां दिया जा रहा है। आशा है तीसरी दुनिया के एक भागके रूपमें लैटिन अमरीका के अनुभवों से हम भी कुछ सीख सकेंगे।)

जैसे गत रिपोर्ट में कहा गया था कि लैटिन अमरीका में आज सामाजिक-मुक्ति के लिये अहिंसात्मक कार्यवाही के बारे में गहरा चिंतन-मनन हो रहा है और इसी क्रम में अभी हाल में कोलम्बिया के मेडलीन नगर में गत २७, २८ फरवरी ७४ को लैटिन अमरीका तथा उत्तर अमरीका, भारत, फ्रान्स, जर्मन गणराज्य, ब्रिटेन और स्विट्जरलैण्ड सहित २२ देशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस प्रकार का एक सम्मेलन पहले भी ७१ की २८ मई से १ जून तक एल जुमेला में किया गया था। इस सम्मेलन में स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर किसान मजदूरों के संघर्षों, उनके उद्देश्यों और कार्य पद्धतियों, उस सन्दर्भ में चर्चा की भूमिका और इसके लिये जनता का व्यापक प्रशिक्षण करने की अहिंसक प्रक्रिया पर विचार किया गया था।

अहिंसक प्रक्रिया की कसौटी

आरम्भ में अमरीका के श्री एड कूनिन (Ed Cunin) ने अमरीका में सीजर चेवाज (Cesar Chaveg) के नेतृत्व में चलने वाले 'फार्म वर्कर्स यूनियन' नामक संगठन की कार्यविधियों का जिक्र किया और बताया कि आज यह आन्दोलन भी, जो कि केवल समाज के स्वास्थ्य और साक्षरता की जैसी समस्याओं को

लेकर जन जागरण का काम करता है, सरकारी दमन का शिकार हो रहा है। सरकार इतना भी नही सहन कर सकती कि लोग इन साधारण बातों में भी अब अपनी आवाज संगठित करें। यही बात उत्तरी मैक्सिको में चर्च के द्वारा होने वाले लोक शिक्षण कार्य के साथ घट रही है जो कि सहकारी कार्य के आधार पर जनता को जागृत करने का काम कर रहा है। फिर वेनजुयेला के श्री जीन वान लिर्डे (Jean van Lierde) ने काँगा में स्व पैट्रिस लुमुम्बा के नेतृत्व में किये गये सफल अहिंसक आन्दोलन का परिचय देते हुए बताया कि सन १९५६ में वे लोग मानते थे कि काँगा में किसी भी अहिंसक क्रिया की सफलता के लिये कम से कम ३० साल लगेंगे। सन १९५८ में उन्होंने कार्यवाही आरम्भ की और इसके तीन साल के भीतर वे सफल हो गए। इससे पता चलता है कि आज के संसार में अहिंसा की शक्तियाँ कितनी कारगर हो गई हैं। जीन ने यह बात खासकर बताई कि "एक बार यदि कोई आदमी किसी अहिंसक आन्दोलन में भाग लेने के बाद फिर किसी हिंसक क्रिया में जाता है तो मानना चाहिए कि विचार पर उसकी पकड़ मजबूत ही नही थी।'

शोषण का अन्तर्राष्ट्रीयकरण

ब्राजील के श्री प्रो अल्फोंसो गोरी (prot Alfonso Gregory) ने सम्मेलन को मुख्य भाषण दिया और बताया कि लैटिन अमरीका की समस्या असल में तीसरी दुनिया की ही समस्या है यह मानकर काम करना चाहिये। तीसरी दुनियाँ में सर्वत्र ही जनता में अब एक बेहतर जीवन की, यद्यपि बेहतर जीवन की परिभाषा करना अभी बाकी है आकांक्षा पनपी है और इस दुनिया में जो भी विकास हुआ है उसका लाभ असमान रूप से वितरित हुआ है तथा उससे जनसंख्या के एक बहुत ही अल्पसमूह (उच्च वर्ग) को ही लाभ मिला है। अनेक ऐतिहासिक कारणों से अब यह प्रक्रिया 'सस्थात्मक' बन गई है और लोगों ने इसे सामान्य क्रम मान लिया है। किन्तु यह बात याद रखनी होगी कि इस क्षेत्र में आज जो औद्योगिकरण की एक होड लगी है उसका आयाम विकसित देशों से भिन्न स्तर पर है। वहाँ पर औद्योगिकरण के बाद ही उसका अनिवार्य नतीजा नगरीकरण पैदा हुआ है पर यहाँ पर पहले नगरीकरण हुआ और बाद में औद्योगीकरण हो रहा है। इससे जनसंख्या का जिस तरह का बिखराव तीसरी दुनिया में हुआ है वह अपने में अलग ही स्थिति है। इससे ही वहाँ के जीवन में कुछ इस तरह के व्यवधान पैदा हुए हैं जो कि इन विकसित देशों में नहीं हैं। इसका एक ठोस नतीजा तो यही हुआ है कि ये सारे देश बजाय अपने क्षेत्र के स्पेन और ब्रिटेन के साथ अपनी अस्मिता खोजते रहे हैं क्योंकि पहले तो यहाँ सर्वत्र ही एक अल्पतंत्र (ओलिगार्की) रहा है और फिर उसका स्थान स्थानीय शहरी बुर्जुआ वर्ग ने ले लिया है। यह बात उन्हें स्पेन और ब्रिटेन जैसे सामंतवादी देशों के साथ सहज ही रख देती है। सन् १९५० के बाद जब पेरू और ब्राजील जैसे देशों ने विदेशी सहायता का द्वार खोला तो फिर इन राष्ट्रीय बुर्जुआओं का गठबन्धन दूसरे

देशों के बुर्जुआवों में हुआ और आज तो हालत यह है कि अनेक तरह के 'संयुक्त उद्योगों' (Joint ventures) के नाम पर ये दोनों ही बुर्जुआ वर्ग, जो कि अपने मूल रूप में जन-विरोधी तो हैं ही, स्थानीय सत्तावर्ग की शक्ति में और भी केन्द्रीकरण करने और जनता पर उसका काबू और भी मजबूत करने में उतनी ही मदद करते हैं। "आज तो तीसरी दुनिया की जनता, पहले जो अपने ही देश के बुर्जुआवा के कब्जे में थी इस 'संयुक्त अंतरराष्ट्रीय बुर्जुआशक्ति' के काबू में है। अब इस हालत में यह आवश्यक है कि किसी मुक्ति-आन्दोलन की सफलता के लिये उसमें सारी जनता के शामिल होने की स्थिति बने। जब तक आम जनता इस कार्य में भाग नहीं लेती तब तक यह मुक्ति असम्भव है।

संगठन नहीं संगठित किया

सम्मेलन ने फिर विचार के लिये सारे विषय को कुल आठ भागों में बाँट दिया और प्रत्येक भाग के लिए एक कमेटी बना दी गई। साथ ही अर्जेन्टाइना के श्री अडोल्फो परेज इस्क्विवल (Adolfo perez Esquivel) के नेतृत्व में एक समन्वय समिति भी बना दी गई है। भारत के ग्रामदान पर भी एक कमेटी में विचार किया गया और भारतीय प्रतिनिधि ने उसकी विस्तृत जानकारी दी। इस पर यह कहा गया कि "यद्यपि इस आन्दोलन ने विनोबा के कुशल नेतृत्व में एक व्यापक भूक्रान्ति के लिए अत्यन्त ही अनुकूल स्थिति बनाने में काफी हद तक सफलता पाई है पर यह स्थानीय भूपतियों और स्थित व्यवस्था के विरुद्ध कोई सक्रिय अहिंसक प्रतिकार संगठित न कर सकने के कारण देश के राजनैतिक जीवन पर कोई असर नहीं डाल सका है। जब तक अहिंसा यथास्थितिवाद के लिये वास्तविक 'खतरा' नहीं बनती तब तक वह कोई भी क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन नहीं कर सकेगी। यह बात लैटिन अमरीका के लिये भी सबक लेने की है और यहाँ अब यह प्रयास करना होगा कि भूमि के बड़े मालिकों और चर्च के विरुद्ध, जो कि भारी भूमि हड़पे बैठे हैं और कई बार तो वे हथियारों के बल पर भी उसकी रक्षा करते हैं, उनकी भड़कीली और खर्चीली व्यवस्था के खिलाफ जनमत जागृत और संगठित करने के लिये कदम उठाया जाय। इसमें यह भी आवश्यक होगा कि अब अपने देश की जनता के साथ ही विकसित देशों की जनता से भी अपील की जाय कि वह अपने अपने देशों में उस संगठित बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष आरम्भ कर दे जो कि तीसरी दुनिया के बुर्जुआओं के साथ मिलकर जनता का दमन करने में यथा स्थितिवादियों का साथ दे रहे हैं। इसके लिये विशाल पैमाने पर हस्ताक्षर आन्दोलन संगठित करने का भी सुझाव दिया गया है। यह काम खासकर स्कूलों, कालेजों, चर्च, गाँवों और छोटे कस्बों में खासकर किया जाना चाहिये जहाँ लघु समूहों का संगठन करना सरल होता है। हमें संगठन बनाने के बजाय संगठित क्रिया की पद्धति की खोज करनी होगी।"

हमारा काम ठोस स्थितियों (Concreat Situations) से सम्बन्धित

होना चाहिये और जनता को उसके प्रति जागृत (Conscientise) करना ही हमारा असल काम है।

कराकस गोष्ठी :

प्रो ग्रिगोरी की बात सम्मेलन ने बहुत ध्यान से सुनी और उस पर सर्व सम्मति स सहमति भी प्रकट की। इसस पता चलता है कि आज लैटिन अमरीका में अहिंसक प्रक्रिया पर एकमति का वातावरण काफी जागृत है।

इसस पहले वेनजुयला के कराकसमक नगर के केन्द्रीय विश्व विद्यालय में फादर इस्तवन (Father Esteban) के प्रयास से अहिंसा पर शिक्षकों और छात्रों की एक गोष्ठी भी की गई। इसमें विश्व विद्यालय और कालेज के कुल २० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें बहुत ही कम लोग एसे थे जिन्होंने कभी पहले गांधी, मार्टिन लूथरकिंग या अहिंसा का नाम भी सुना हो। कुछ लोग तो एकदम नये थे और वे इन बातों स एकदम ही बेखबर थे। इस गोष्ठी में भी सीजर चेवाज के काम का जिक्र आया और फिर लैटिन अमरीका में अहिंसक पद्धति की प्रक्रिया पर चर्चा हुई।

गोष्ठी में यह बात साफ की गई कि " अहिंसा का अर्थ अन्याय का मूक-समर्थन नहीं है। यह कायर का हथियार भी नहीं है और न यह यथास्थितिवाद को ही समर्थ समर्थन है। अहिंसा के लिये भी हिंसा या सेना की ही तरह से कल्पनाशक्ति, सावधानी, प्रशिक्षण, अनुशासन और बदलती परिस्थितियों में नई नई प्रक्रियाओं की खोज जैसी बातें शामिल हैं। इसके अलावा हिंसा का अंत हमेशा ही अति केन्द्रीकरण और तानाशाही में होता है जब कि अहिंसा का नतीजा तो विकेन्द्रीकरण और वर्तमान पद्धति में मनुष्य का अमानवीकरण करनेवाली सैनिकवादी वृत्ति और अपनी सीमाओंस बाहर जाकर सत्ताओं की दुश्मन खोजने या बनाने की क्रियाओं के विरुद्ध जन-जागरण होता है। कोलम्बिया में सन् ४१ में भयंकर हिंसा हुई थी और यह देश पूरे १५ साल तक (सन् ५७ तक) हिंसा में ही पलता रहा है जब कि वहाँ पर एक मत संग्रह के फलस्वरूप एक संयुक्त मोर्चा सरकार कायम हुई। यह सरकार ७३ तक चली और अभी यहाँ नयी सरकार के लिये तैयारियाँ चल रही हैं। इस संयुक्त मोर्चा सरकार के काल में ही यहाँ पर अहिंसा पर काम करनेवाले एक आन्दोलन 'आक्सियों कम्युनाल मवमेन्ट" (सामूहिक क्रिया आन्दोलन) नाम का आरम्भ हुआ था जो कि बीचमें सरकार की कोप दृष्टिका भी भाजन बना। वह अब फिर जोर पकड रहा है। ये छात्र इसस भी अपरिचित थे। वहाँ की सबसे मजबूत मजदूर संघ (केन्द्रीय मजदूर यूनियन) अब सरकार या राजनैतिक दलों से मुक्त है और उसका

देश में काफी असर है। अब देश में गांधीवादी साहित्य की भी रुचि पैदा हो रही है और जान मास मायस इसके लिये कोशिश कर रहे हैं।

कालेज एवं विश्वविद्यालय का काम :

इस देश की शिक्षा व्यवस्था भी चिंतनीय है। कराक्स विश्व विद्यालय के समाज विज्ञान विभाग की एक प्राध्यापक ने बताया कि आज भी देश में विश्व विद्यालय और हाईस्कूल का शिक्षा पद्धति एक जैसी है यानें छात्रों को बस लक्चर कंटस्थ करने के लिये विवश किया जाता है और वे कोई प्रश्न तक नहीं पूछ सकते हैं। अब यह प्राध्यापक अपने कुछ शिक्षक मित्रों और छात्रों के साथ मिलकर शिक्षा चेतना का आंदोलन आरम्भ करने पर विचार कर रही हैं। उनका उद्देश्य यह है कि छात्र और शिक्षक उनके देश की स्थिति देश का दूसरे देशों के साथ के सम्बन्धों और जनता के विकास तथा मुक्ति में विश्व विद्यालय की भूमिका जैसे सवालों पर विचार और बहस करें ताकि वे अपने देश की परिस्थिति के प्रति जागृत हो सकें और फिर वे समस्या के हल के लिये भी किसी पद्धति पर सोच सकें। यह बात उनके लिए खास महत्व की है कि आज अंतरराष्ट्रीय संयुक्त उद्योगों के नाम पर जो कुछ अन्तरराष्ट्रीय स्वार्थ संगठित होकर उनके और तीसरी दुनिया के सभी देशों की जनता का स्थानीय और अन्तर राष्ट्रीय शोषण करने में मददगार कर रहे हैं उनका सामना कैसे किया जाय। आज तीसरी दुनिया के हर देश के बौद्धिक जीवन पर इस बहाने से विदेश हस्तक्षेप बहुत अधिक हो रहा है।

अहिंसा का काम आज सबसे पहले यह है कि वह देश के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय शोषण के विरुद्ध जनमत जागृत करे। तभी अहिंसा को हम कोई विश्व व्यापक आयाम प्रदान कर सकते हैं। विश्व विद्यालय और कालेजों का यह काम हो कि वे छात्रों और शिक्षकों को इस प्रकार के अहिंसक लोक जागरण के प्रशिक्षण के लिये तैयार करें और उन्हें लोक में फिर प्रशिक्षण के लिये भेजें।

■

मन का संतुलन बिगड़ा है या नहीं, इसका निर्णय जैसे असंतुष्ट और असफल व्यक्ति नहीं कर सकता, वैसे ही यशस्वी लोग भी नहीं कर सकते।—समाज-रचना के प्रतिष्ठित आदर्शों से व्यक्तियों का व्यवहार मेल खाता है या नहीं, यह संतुलन का कोई विश्वस्त लक्षण नहीं है। क्योंकि यह प्रतिष्ठित आदर्श संतुलन बिगड़ी हुई संस्कृति का निदर्शक भी हो सकता है। वस्तुतः निर्लोभत्व में ही संतुलन है।

—जे. कृष्णमूर्ति

उद्योगवाद का अभिशापः दूषणः

अभी अभी बम्बई में चेम्बूर और उसके आसपास के क्षेत्र का एक शैक्षणिक सर्वेक्षण किया गया तो पाया गया कि उस क्षेत्र में वायु और अन्य प्रकार के दूषण अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं। यह सर्वेक्षण क्षेत्र में ही स्थित ११ पाठशालाओं के ९ वी और १० वी के छात्रों और वहीं के एक शिक्षा महा विद्यालय के छात्रों ने मिलकर किया जिसमें उन्होंने कुल १०५० लोगों से सम्पर्क किया। उन सबको पहले से एक निश्चित प्रश्नावली दी गई और उस पर से अन्य प्रासंगिक प्रश्न भी तब साक्षात्कार लेने वाले छात्रों ने पूछे। इस प्रकार से वह यह दुहरी जाँच हुई और काफी गहरी हुई।

सर्वेक्षण से पता लगा कि इस छोटे से क्षेत्र में भी लगभग २८ ८ प्रतिशत लोग तो हृदय सम्बन्धी बीमारियोंसे, १० ८ श्वास प्रक्रिया की बीमारी से, १३ ० लोग आँख बहने की बीमारी से, ११ ६ लोग पेट की बीमारी से, १८.६ लोग शरीर का वजन कम होने की बीमारी से, ९ ७ लोग त्वचा सम्बन्धी बीमारियों से ६ २ लोग कान बहने की बीमारी से और २४ ९ लोग श्वास लेने की कठिनाई की बीमारी से पीड़ित थे। इन सभी बीमारियों में तिलक नगर का क्षेत्र सबसे आगे है। यहाँ पर लोग दमा, ब्रांकाइटिस, खासी, श्वास लेने में अत्यधिक कठिनाई और छीकने तथा नाक बंद हो जाने की बीमारी से सबसे अधिक ग्रस्त हैं।

इन छात्रों ने जो न्याम (Datas) प्राप्त किये उनका विश्लेषण बम्बई के प्रसिद्ध टाटा समाज विज्ञान सम्स्थान में किया गया और यह सर्वेक्षण चेम्बूर की सिवी सोसायटी के ही डा ए ए सोरेज की देखरेख में किया गया। इस सर्वेक्षण में यद्यपि पानी व वायु के दूषण की कोई तकनीकी परीक्षा नहीं की गई है किन्तु डा सोरज का कहना है कि लोगों में इस तरह का बीमारियों के इस आधिक्य का कारण इसी क्षेत्र में स्थित फर्टीलाइजर कारपोरेशन आव इन्डिया के

खाद कारखाने से निकलने और उड़ने वाले सल्फरडाइ आक्साइड और फास्फेट की धूल कणों का हवा में उड़ना है जिससे स्वाभाविकतया ही गला और नाक खराब होते हैं। फिर पास ही टाटा का बिजली का कारखाना (टाटा थर्मल प्लांट) है इससे भी जो उच्छिष्ट राख आदि हवा में वितरित होता है उससे नाक आदि का खराब होना बिल्कुल सहज है। इसी क्षेत्र में फिर कैलिको सिल्क का केमिकल रसायन फैक्ट्री है जिससे पुन क्लोराइन और पान डिनेन क्लोराइड नाम के दूषित पदार्थ निसृत होते हैं जो कि श्वास नलिका का नुकसान पहुंचाते हैं। इससे निकलने वाली कार्बन गैस आँखको नुकसान पहुंचाती है और यही कारण है कि लोगों की आँखें यहाँ बराबर बहती रहती है।

यह तो एक अत्यन्त ही छोटे से क्षेत्र की तस्वीर है किन्तु यही प्रक्रिया और भी बड़े व्यापक पैमाने पर सारे देश में चल रही है जहाँ पर अन्य अन्य तरह के कई कारखाने से एसे और इनसे भी खतरनाक पदार्थ निकलकर पानी और हवा दोनों को खराब कर रहे हैं। विकास की यही कीमत है जो कि हमको देनी होगी। पर यह विकास किसका हो रहा है कि जब कि जनसंख्या का अधिकांश भाग तो एक तरह की बेइलाज बीमारियों का शिकार हो रहा है।

(३१ अगस्त १९७४ के 'टाइम्स आफ इण्डिया'
की एक रिपोर्ट पर से संकलित।)

●

क्रान्ति किस लिए?

मार्क्स और लेनिन से लेकर गांधी विनोबा तक इस दुनिया में जितने भी क्रांतिकारी हुए हैं, उन सबने एक बात मानी कि क्रांति किसलिए? इसलिए कि दुनिया में औजार रहेंगे और हथियार नहीं रहेंगे। समाजमें प्रतिष्ठा औजारों की होगी, हथियारों की नहीं और हम इसके लिए प्रयत्न करेंगे।

—दादा धर्माधिकारी

अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा सम्मेलन के प्रतिनिधियों को सूचना :

जैसे पहले सूचना दी गई थी कि आगामी २९, ३० नवम्बर और १ दिम्बर १९४७ को सेवाग्राम में अखिल भारत बुनियादी शिक्षा सम्मेलन हो रहा है। अखिल भारत नयी तालीम समिति ने इस सम्मेलन का आयोजन किया है और देश भर से बुनियादी शिक्षा के काम में लगे रचनात्मक कार्यकर्ता, बुनियादी शिक्षा की संस्थाओं के शिक्षक और प्रमुख तथा बुनियादी शिक्षा में रुचि लेनेवाले प्रमुख शिक्षाविदों को इसके लिये आमन्त्रित किया गया है। इनके अलावा केन्द्र तथा राज्य सरकारों के शिक्षा प्रशासक और नियोजक भी इसमें भाग लेंगे। सम्मेलन तीन दिन तक चलेगा और उसमें नीचे लिखे मुख्य विषयों पर मुख्यरूप से चर्चा होगी —

१ विभिन्न राज्यों में बुनियादी और उत्तर बुनियादी शिक्षा की प्रगति की रिपोर्ट।

२ विभिन्न राज्यों में बुनियादी शिक्षा के संगठन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार।

३ सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर बुनियादी शिक्षा के सक्षम और प्रभावकारी कार्यान्वयन के लिये सुझाव और उन पर विचार तथा

४ ग्रामदान क्षेत्रों में बुनियादी शिक्षा का स्वरूप।

सम्मेलन को पूज्य विनोबा जी भी सबोधित करेंगे।

सम्मेलन के लिये भारतीय रेलवे ने कन्सेसन देने की भी स्वीकृति प्रदान कर दी है और यह कन्सेसन सम्मेलन में आने वाले लोगों को प्रथम श्रेणी के लिये एक तरफ की यात्रा के लिये १५ प्र श माइलर दो टिकट और द्वितीय श्रेणी के लिये वापसी एक टिकट के लिये ही मिल सकेगा। जो लोग १८०० रु मासिक से कम वेतन पाते हैं और ४०० किलोमीटर से अधिक दूर की यात्रा करेंगे वे ही कन्सेसन के अधिकारी होंगे। सम्मेलन के प्रतिनिधियों को रजिस्ट्रशन के लिय ५ रु शुल्क देना होगा और वार्का भोजन आदि के लिय ६ रु रोज का खर्च स्वय वहन करना होगा। रहने की व्यवस्था सम्मेलन की ओर से निशुल्क होगी।

जो लोग सम्मेलन में भाग लेने के इच्छुक हैं वे कृपया अपने अपने राज्यों की नयी तालीम समितियों से सम्पर्क कर वहीं रजिस्ट्रेशन करा लें। जिन राज्यों में राज्य नयी तालीम समिति नहीं है वे सीधे ही मन्त्री, नयी तालीम समिति, सेवाग्राम को ५ रु शुल्क भेजकर रजिस्ट्रेशन करा लें।

महात्मा गांधी की जय हो :

[तमिलनाडु के क्रांतदर्शी कवि श्री सुब्रह्मण्य भारती (१८८२-१९२१) ने विविध विषयोंपर रचनायें लिखी हैं। वे कविता, राजनीति, समाज-सेवा, राष्ट्रनायकों की स्तुति और भक्ति आदि पर हैं। अपने काव्य के द्वारा तमिलवासियों को आजादी की प्रेरणा देते देखकर ब्रिटिश सरकार उन पर नाराज हो गई और उसने उन्हें गिरफ्तार करने की सोची कि इससे पहले ही कवि पाण्डुचेरी चले गये जो उस समय फ्रान्स के अधिकार में था। वहाँ अरविन्द से उनका अधिक परिचय हुआ। गांधीजी पर उनकी यह कविता १९२१ से पहले की ही है। इस अक्तूबर में राष्ट्रपिता की जयती आनी है। हम इसे 'चर्खा जयती' रूप में मनाते हैं। चर्खा अहिंसा का प्रतीक है। इस अहिंसा धर्म के पुजारी बापू की स्तुति में कवि के दो पद्य हम यहाँ दे रहे हैं। कवि ने ठेठ उस काल में ही गांधीजी के बारे में कितनी दूरदर्शी कल्पना कर ली थी, यह इस कविता से प्रकट है। आज कितने ही देशों में अहिंसा की चर्चा हो रही है।

—सम्पादक]

वाळह नी, एम्मान् इन्द वैयत्तु नाट्टिलेल्लाम्
जय हो तेरी, हमारे बापू! इस दुनियाके सब देशोंमें

ताळ्वुट्र वरुमै मिंगि विडुदलै तवरिक् केट्टु
नीचा होकर गरीबी बेहद अपनी आजादी चूकसे खोकर

पाळ्पट्टु निन्रताम् ओर् भारत देशम् तन्नै
नष्ट-भ्रष्ट हालतमें फिर भी खड़ा इस भारत देश को

वाळ्विक्क वन्द गान्धि महात्मा नी वाळ्ह, वाळ्ह
जिलाने के लिये आये गांधी महात्मा तेरी जय हो, जय हो

(२)

अडिमै वाळ्वु अहन्रि इन्नाट्टार् विडुदलै यारन्दु शेल्वम्
गुलामी जिन्दगी छूटकर इस देशवासी आजाद होकर धन

कुडिमैयिल् उयर्वु कल्वि ज्ञानमुम कूडि ओंगी
कृषीमें उन्नति तालीम ज्ञानभी प्राप्तहोकर बढ़चढ़कर

पिडिमियिल् तलैमै एय्दुम् पडिक्कु ओर् शूळ्च्चि शेय्दाय्
दुनियामें प्रधानता हासिलहो ऐसा एक गूढ़ तरीका निकाला

मुडिविला कीर्त्ति पेट्राय् पुविमिशै मुदन्मै पेट्राय्
अनंत कीर्ति प्राप्तकी दुनियामें प्रथमस्थान हासिल किया।

नयी तालीम : सितम्बर, '७४
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

असहयोग का सिद्धान्त !

जीवन की मुख्य आवश्यकतायें प्राप्त करना प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। यह अधिकार तो पशुओं और पक्षियों को भी है। और चूंकि प्रत्येक अधिकार के साथ साथ एक सम्बन्धित कर्तव्य जुड़ा हुआ है और उस अधिकार पर कहीं से कोई आक्रमण हो तो उसका वैसा इलाज[1] भी है, इसलिये हमारी समस्या का रूप यह है कि हम उस प्रारम्भिक बुनियादी समानता को सिद्ध करने के लिये उस समानता के अधिकार से जुड़े हुये कर्तव्य और इलाज को ढूंढ निकालें। यह कर्तव्य यह है कि हमें अपनी मेहनत के फल से जो वंचित करे उसके साथ हम असहयोग करें।[1]

इसमें कोई शक नहीं कि असहयोग एक ऐसी तालीम है जिससे लोकमत विकसित और एक स्पष्ट स्वरूप पाता जा रहा है। और ज्यों ही उसका इतना संगठन हुआ कि उसके द्वारा कारगर कदम उठाया जा सके, त्यों ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा। हिंसात्मक वायुमंडल में लोकमत का संगठन नहीं किया जा सकता। अतएव हमें अपने आन्दोलनों में से हर किस्म के दबाव को बिलकुल निकाल देना चाहिये। अगर हम असहिष्णुता दिखाकर दूसरोंको अपना मत प्रकट न करने देंगे तो हम अपने उद्देश्य की पूर्ति में बाधा डालेंगे। इसलिये सफलता की सबसे अनिवार्य शर्त यही है कि हम लोगोंको अपनी राय ज्यादा से ज्यादा आजादी से प्रकट करने के लिये प्रोत्साहित करें। हमारा असहयोग तो उस प्रणाली के खिलाफ है जो अंग्रेजों ने स्थापित की है। (और जो आज भी हमारे देश में चालू है—सपादक)

हमारा असहयोग तो इस भौतिकवादी सभ्यता और उसके साथ जुड़े लोभ, लालच तथा कमजोरों के शोषण की प्रवृत्ति के खिलाफ है। हमारे असहयोग का मतलब है कि हमारे लौटकर अपने घर जाना।

—मो० क० गांधी

(१—यंग इण्डिया—२६—३—३१, २—गांधी वाङ्मय, भाग—२१, पृष्ठ ३६)

मुद्रक : प्रभाकरराव सौंदे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

१६ वां अखिल भारत बुनियादी

शिक्षा सम्मेलन

अंक

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] दिसम्बर–जनवरी, १९७५ [अंक : ५–६

सम्पादक मण्डल
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष २
अंक ५-६
इस अंक का मूल्य २ रु प्रति

अनुक्रम

दिसम्बर–जनवरी, '७५

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और इस अंक का मूल्य २ रु है
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २३
अंक : ५

सेवाग्राम का बुनियादी शिक्षा सम्मेलन :

पूर्व निश्चित तिथियोंके अनुसार तारीख २९, ३० नवम्बर और १ दिसम्बर को सेवाग्राम में अखिल भारतीय नयी तालीम समिति द्वारा आयोजित बुनियादी शिक्षा सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। हमें खुशी है कि इस सम्मेलन में विभिन्न राज्यों से लगभग २०० बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं, शिक्षा-अधिकारियों और लोक-सेवकों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन का उदघाटन उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री हेमवतीनंदन बहुगुणा ने किया और कार्यकर्ताओं को ऋषि विनोबा के प्रेरक मार्गदर्शन का भी सुअवसर प्राप्त हुआ।

इस सम्मेलन में तीन दिन तक बुनियादी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गम्भीर चर्चा हुई। सभी कार्यकर्ताओं ने महसूस किया कि देश की वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिये बुनियादी तालीम को एक बार फिर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ाने की नितान्त आवश्यकता है। विभिन्न प्रान्तों में बुनियादी और उत्तर बुनियादी विद्यालयों ने इतने वर्षों तक जो अच्छा काम किया है उसे अधिक तेजस्वी बनाया जाय ताकि वे फैले हुए अन्धकार में प्रकाश-स्तम्भ (लाईट हाउस) का काम कर सके। कठिनाइयों के बावजूद निराशा का कोई कारण नहीं है। पूज्य विनोबाजी ने अपने प्रवचन में समझाया कि जब अधिक कठिनाइयाँ सामने आती है तब और भी उत्साह और हिम्मत से काम करना हमारा फर्ज हो जाता है।

सम्मेलन ने यह भी सुझाव दिया कि वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप 'समग्र नयी तालीम' का एक संशोधित शिक्षा क्रम तैयार किया जाय और उसका मूल

आधार आचार्य विनोबा के "योग, उद्योग और सहयोग"— तीन सूत्र हों। अखिल भारत नयी तालीम समिति ने बिहार के अनुभवी कार्यकर्ता श्री द्वारिकाप्रसाद सिंह की अध्यक्षता में एक उप-समिति का गठन कर दिया है जो छह महीने के अन्दर यह परिवर्द्धित शिक्षा-क्रम तैयार करेगी। इस समिति के संयोजक अखिल भारत नयी तालीम समिति के नये मंत्री श्री वजुभाई पटेल रहेंगे।

सम्मेलन ने यह भी तय किया कि मार्च १९७५ के अन्त तक सभी राज्यों में नयी तालीम समितियों का गठन किया जाय ताकि वहाँ बुनियादी शिक्षा का काम और भी मजबूती और व्यापक ढंग से संचालित किया जा सके। कई राज्यों में तो इस प्रकार की समितियाँ गठित हो चुकी हैं। लेकिन कुछ प्रान्तों में अभी यह कार्य बाकी है। हम आशा करते हैं कि अगले चार महीनों में यह काम पूरा हो जायगा।

सम्मेलन ने उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति के निमंत्रण पर यह तय किया कि अगला अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन उत्तर प्रदेश में किया जाय। यह सम्मेलन १९७५ के अक्टूबर या नवम्बर मास में होगा ऐसी आशा है।

'नौकरी' के लिये शिक्षा :

सूरत के दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय में अपना दीक्षान्त भाषण देते हुए हाल ही में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री प्रो. नूरुल हसन ने कहा कि नौकरियों के लिये शिक्षा का ढाँचा बदलने की बात खतरनाक है। सरकारी या गैर-सरकारी नौकरियाँ तो सीमित ही हैं, किन्तु विद्यार्थियों की संख्या दिनोंदिन तेजी से बढ़ती ही जा रही है। इसलिये अगर वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को इस ढंग से बदलने की कोशिश की गई कि वह विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिये विद्यार्थियों को तैयार करे तो भविष्य में काफी अशांति और असन्तोष फैलना निश्चित ही है। इसलिए प्रो. नूरुल हसन नहीं चाहते कि हमारी शिक्षा 'जॉब-ओरिएन्टेड' हो।

क्या इसका यह अर्थ हुआ कि हमारी शिक्षा-पद्धति आजकी तरह ही निकम्मी बनी रहे? न वह नौकरी के लिये हो और न वह दूसरे किसी काम की। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ३७ वर्ष पहले देश के सामने बुनियादी शिक्षा का प्रारूप पेश किया था। उनकी यही दृष्टि थी कि देश के बच्चों को ऐसी तालीम दी जाय जिसके द्वारा वे स्वावलम्बी बन सकें, अपने पैरों पर खड़े रहना सीखें और नौकरियों के पीछे न घूमें। अन्य देशों की अपेक्षा भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ बहुसंख्यक समाज स्वाश्रयी है और अपना खुद मालिक है, किसी का नौकर नहीं। इस समय भी देश में करोड़ों किसान और कारीगर जीवन-निर्वाह के लिये अपना कार्य खुद करते हैं, न वे सरकार के नौकर हैं और न किसी उद्योगपति या व्यापारी के। इसी प्रकार के स्वयं-सेवित कार्यकर्ता देश की बुनियाद को मजबूत बनाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली ऐसी हो जो इस स्वयं-सेवा और

स्वावलम्बन के जीवन-क्रम को अधिक व्यापक और सुदृढ़ बनाने में सक्षम हो। अगर नौकरियों के लिये ही शिक्षा दी जाने लगी तो फिर युवा-वर्ग के सामने अन्धकार ही अन्धकार छा जायगा।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता स्पष्ट ही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की शिक्षा की जितनी आवश्यकता सन् १९३७ में थी उससे भी कहीं अधिक उसकी जरूरत आज है।

दो दीपक बुझ गये :

हमें इस बात का बहुत दुःख है कि हाल ही में हमारे देश के दो प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं का आकस्मिक निधन हो गया। सेवाग्राम सम्मेलन के अवसर पर ही हमने अखबारों में पढ़ा कि श्रद्धेय नारायणदास गांधी का स्वर्गवास राजकोट में हुआ और श्रीमती सुचेता कृपलानी का देहावसान एक दिसम्बर को प्रातःकाल दिल्ली में हृदय गति रुक जाने से हो गया। श्री नारायणदास गांधी ने खादी और ग्रामोद्योग द्वारा नयी तालीम का बड़ी लगन से बहुत वर्षों तक राजकोट की राष्ट्रीय शाला द्वारा प्रचार किया। उनकी उम्र तो करीब ९० वर्ष की थी, किन्तु उनका उत्साह अन्त तक अदम्य बना रहा। हम उनके सुपुत्र श्री पुरुषोत्तम गांधी व कनु गांधी और परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट करते हैं।

श्रीमती सुचेता कृपलानी तो मूलतः एक लगनशील रचनात्मक कार्यकर्ता थीं जिन्होंने अपना सारा जीवन गरीबों और दुखियों की सेवा में अर्पित किया था। यद्यपि वे सक्रिय राजनीति में भी रहीं और उत्तर प्रदेश की मुख्य मंत्री की हैसियत से कई वर्ष तक कुशलता से कार्य किया, फिर भी उनका दिल गांधीजी के रचनात्मक कामों में सदा लगा रहा। वे बहुत वर्षों से केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि की उपाध्यक्षा थीं और निधि के काम में गहरी दिलचस्पी लेती थीं। उनके असामयिक निधन से हम सभी को बहुत गहरा धक्का लगना स्वाभाविक है। वयोवृद्ध आचार्य कृपालानी के प्रति हम सादर अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हैं।

—श्रीमन्नारायण

चटोरी संस्कृति से सावधान

आज से हजारों साल पहले हमारे ऋषियों ने कहा था कि यह धरती हमारी माता है और हम सब इसके पुत्र हैं। 'माताभूमि पृथिव्या पुत्रोऽहम्।'

इसलिये हमारा प्रकृति के साथ का व्यवहार माँ के साथ पुत्र के जैसा होना चाहिये। पुत्र माँ को नष्ट करने या उसका अनादर करने का काम नहीं करता, करे तो वह कुपूत कहलाता है। किन्तु इधर पिछले सौ साल से मनुष्य ने जो जीवन विधि अपनाई है और जिसका नेतृत्व पूंजीवाद और साम्यवाद ने किया उसने मनुष्य और

प्रकृति को परस्पर शत्रुता की स्थिति में डाल दिया है। आज वायु, जल, तथा धरती के दूषण की जो समस्या मानव समाज के सामने खडी हो गई है वह इसी 'चटोरी-सस्कृति' का नतीजा है। तथाकथित 'प्रगति' के नाम पर हम प्रकृति का इस कदर निर्दयता से शोषण और दूषण करते जा रहे है कि अब प्रगति के मसीहा भी घबरा गये हैं और विज्ञान अब कुछ समय से, डर कर ही सही पर, सत्य बात कहने लगा है। बडे बडे कारखानों तथा उद्योगों से अनेक प्रकार के दूषित और घातक पदार्थ वायु, जल और धरती में मिल रहे हैं और उनका मुकाबिला करने की प्रकृति की शक्ति या क्षमता की गति से कहीं अधिक तेजी से यह काम हो रहा हैं। इससे प्राकृतिक सतुलन एकदम बिगड गया है। जीवन अविभाज्य प्रक्रिया है और उसके एक स्तर पर किये गये व्यवहार का असर उसके 'समग्र' पर होता हैं यह बात पहले दर्शन कहता था, पर अब विज्ञान को भी यह कहना पडा रहा है। विज्ञान के इस नये विकास का नाम 'इको विद्या' (Ecology) है। यह विद्या कहती हैं कि यदि हमने प्रकृति के सीमित साधनो का इसी तेजी और निर्बूंशता से शोषण करना जारी रखा तो आगे केवल ३०–४० साल में ही मानव जाति विनाश से बच नहीं सकती है।

अभी अभी भारत के केन्द्रीय सार्वजनिक स्वास्थ्य सस्थान की ओर से एक सर्वे किया गया तो पाया गया कि केवल आसनसोल से लेकर कलकत्ता तक के २३० किलोमीटर क्षेत्र में दामोदर (गगा) नदी का इतना भयानक दूषण हो गया है कि अब इस भाग में जल-जीवन एक दम समाप्त हो गया है। इस भाग में नदी अनेक रसायनिक द्रव्यों, जैसे कि ऐसिड, अमोनिया, फिनोल, साइनाइड, नाइट्रोजन पदार्थों और आक्सीजन सोंखनेवाले अन्य अनेक दूषित पदार्थोंसे पट गई है। यह स्मरण रहे कि इसी क्षेत्र में हमारे कई बडे बडे कारखाने हैं। भारत में तो खासकर नदियाँ धार्मिक महत्व भी रखती हैं और लाखों करोडों लोग बडी श्रद्धा से उनमें स्नान करना और उनका जलपान करना अपना पुनीत कर्तव्य मानते है। वे इस धार्मिकतामें यह नहीं देखते कि नदी अनेक तरह से दूषित हो गई है। नतीजा यह होता है कि सारा देश भयानक रोगों से सरलता से ही ग्रस्त होता जा रहा है। कानपुर, वाराणसी, दिल्ली, अहमदाबाद, आदि जगहोंपर भी नदियोंका यही हाल है। शहरोंकी सारी गदगी भी नदियोंमें धकेल दी जाती है।

कारखाने वाले तो अपने कारखानों से असीम मुनाफा कमा लेते हैं और फिर ऐसे स्थानों से दूर, सुन्दर पहाडों पर जहाँ शुद्ध वायु अभी बाकी है वहाँ, चले जाते हैं। *पर बाकी करोडों लोगों का क्या होता है जो कही बचकर नहीं जा सकते हैं?* इस सवाल पर अब जनता को विचार करना चाहिये और जन-स्वास्थ्य की सारी कीमत

इन बड़े धन-पतियोंसे वसूल की जानी चाहिये। सरकार इस अपराध में दूसरी अपराधी है। अब समय आ गया है कि जब देश में इसके विरुद्ध भी आवाज उठनी चाहिये और बड़े बड़ कारखानोंको कायम करने से सरकार तथा उद्योगपतियों दोनो को रोकना चाहिये। जनता इसके लिये अपनी जमीन आदि देना और एसे कारखानो से बनी चीजें खरीदना बद कर दे। शिक्षा और खासकर नयी तालीम को इस तरहका शैक्षिक आंदोलन भी देश में आरम्भ करना ही होगा।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

सक्षप में मनुष्यकी ये दोनो दुनियायें—उसे उत्तराधिकार में प्राप्त जैव विश्व (Biosphere) तथा उसके द्वारा निर्मित यत्र विश्व (technosphere)—परस्पर असतुलित ही नही अपितु निश्चित सघर्ष में पड गई है और मनुष्य इनके बीच में है। हम इतिहास के एक ऐसे पेंच पर खड है जहाँ से अधिक आकस्मिक, अधिक जागतिक, अधिक अपरिहार्य तथा चकरानेवाला, जिससे कि मनुष्य का पहले कभी पाला नही पडा, सकट का ऐसा द्वार खुल रहा है जो कि हमारे पैदा हुए शिशुओ के जीवन-काल में ही निर्णायक मोड ले लेगा।

—(स्टाक्होम की 'इन्वायरम मेंटल कांग्रेस', १९७३, के प्रस्तावोंसे)

श्रीमती प्रभा राव, राज्य शिक्षा मंत्री,* महाराष्ट्र :

स्वागत भाषण :

मान्य बहुगुणा जी, श्रीमन् जी, भाइयो और बहनो,

अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन की ओर से इस सम्मेलन में आये आप सभी भाई बहनों का हृदय से स्वागत करने में मुझे हर्ष है। मैं मानती हूँ कि शाश्वत ज्ञान की खोज ही भारत में हमारे जीवन का उच्चतम लक्ष रहा है और वेदों में हमारे लिये 'गायत्री' मंत्र के रूप में ईश्वर से इसी ज्ञान के लिये आशीर्वाद मांगा गया है। ज्ञान से ही जीवन की अन्य धारायें निसृत होती है और ज्ञान-विहीन जीवन तो निरा पशुजीवन ही है। आधुनिक शोधों से भी पता लगता है कि मनुष्य अपने ज्ञान के विभिन्न स्तरों के कारण ही सुखी या दुखी, भला या बुरा और अपराधी या संत के रूप में रहता है। अतः यह बिल्कुल ही उचित है कि हम अपने लिये कोई ऐसी उपयुक्त शिक्षा-प्रणाली का विकास करें जो अधिक विकसित मानव का विकास करने में सफल हो सके। शिक्षा एक साध्य की प्राप्ति का साधन है और स्वयं अपने आप में कोई साध्य नहीं है। विश्व-इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज ने अपने इन्हीं साध्यों को ध्यान में रखकर अपनी शिक्षा-प्रणालियों का विकास किया और फिर उस समाज को वैसा ही भला या बुरा रूप मिल गया।

जैसी शिक्षा वैसा समाज :

ऐथेन्स के लोग केवल ज्ञान को, जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहार से नितान्त असम्पृक्त, ही सदा मानते थे। स्पार्टा के लोग भौतिक समृद्धि चाहते थे। रोम के लोग केवल उपयोगितावादी दृष्टि से ही सोचते थे। इसलिए ऐथेन्स, अपने उच्च सभ्यताकाल में भी केवल चिंतक,–केवल मस्तिष्क, हाथ नहीं–स्पार्टा के लोग केवल ऐसे सशक्त सैनिक, जिनके सामने कोई जीवन का उच्च लक्ष नहीं था, और रोमन लोग जीवनके किन्हीं भी सद्यों से असम्पृक्त व्यवहारकुशल गृहस्थ ही पैदा कर

सके। [किन्तु मेरे विचार में नयी तालीम, या जिसे बापू 'बुनियादी-शिक्षा' कहते थे, वह इन सबका समग्र है, समन्वय है। निचोड है। यह एक ऐसा समन्वय है जिसके आधार पर हम एक स्वस्थ और मजबूत शरीर तथा कुशल हाथो के साथ विकसित मस्तिष्क का विकास कर सकते हैं।

गाधी-विनोबा की देन

यह सम्मेलन इसी विनम्र आशा मे बुलाया गया है, कि यहाँ एकत्र हुए आप सभी विचारक, शिक्षाशास्त्री और प्रशासक इस प्रकार की 'समग्र' शिक्षा-पद्धति का विकास कर सकेंगे। बापू जी ने अपना बुनियादी शिक्षा का विचार और अब पूज्य विनोबाजीने अपना प्रसिद्ध 'त्रिमूर्ती' शिक्षा का विचार दिया है वह हमारे लिये इस तरह की शिक्षा प्रणाली का सम्यक् विकास करने के लिये इन महापुरुषो के अनुभव जन्य विचारो के रूप में असीम आशीर्वाद ही है।

हम अपनी सीमित शक्ति और साधनों के कारण आपके आराम के लिये समुचित व्यवस्था नही कर सके हैं। पर जैसा कि आप जानते है कि पूज्य बापू ने तो हमें मस्तिष्क और आत्मा के आराम का मंत्र दिया था। अत आप हमारे साथ इन शारीरिक कष्टो को खुशी से सहन कर लेंगे यह आशा है। मै पुन आप सबका हृदय से स्वागत करता हूँ।

भारतीय तालीम का आदर्श

ज्ञानरूपी शस्त्र के सामने बाकी सब शस्त्र निकम्मे है। ज्ञान में अगर यह शक्ति नहीं तो वह ज्ञान नही है। जिस ज्ञान के साथ अभय नही, निर्भयता नही वह क्या ज्ञान है ? इसलिये भारत में हमको अपने सामने तालीम का यह आदर्श रखना चाहिये कि शिक्षण-विभाग पुलिस और सेना को खतम करेगा। यह शिक्षण का सामाजिक और राष्ट्रीय उद्देश्य है।

—विनोबा

—[हसमाथो गोष्ठी, ७-८ जन '५८]

आचार्य श्रीमन्नारायण :

प्रास्ताविक भाषण :

श्री बहुगुणाजी भाइयो और बहनो,

हम सबको प्रसन्नता है कि काफी समय के बाद देश के प्रमुख बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ता, बुनियादी शिक्षा में रुचि लेने वाले शिक्षाशास्त्री और प्रशासक फिर बुनियादी शिक्षा पर विचार विमर्श करने के लिये यहाँ सेवाग्राम में एकत्र हुए हैं। आज से ३७ साल पहले हमने वर्धा शिक्षा मंडल की ओर से एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद यहाँ बुलाई थी जिसकी अध्यक्षता स्वयं गांधीजी ने की थी और उसमें ही बुनियादी शिक्षा को स्वरूप प्रदान किया गया था। अब हम देखेंगे कि इन ३७ सालों में हमने क्या किया और कितना करना बाकी है। मेरे विचार में हम म० प्र० में पचमढ़ी सम्मेलन के बाद आज ही मिल सके हैं। शारदाग्राम में भी हम मिले थे पर वहाँ बहुत कम लोग ही आ सके थे। हम आज तक के इतिहास पर संक्षिप्त निगाह डालेंगे तो देखेंगे कि निराशा की भी कई बात हैं पर हम साहस और धैर्य रखें और हिम्मत तथा आशा के साथ आगे बढ़ें।

बुनियादी शिक्षा का कोई विकल्प नहीं :

हम जानते हैं कि आज बुनियादी शिक्षा का कोई विकल्प नहीं है और यह देश की बुनियादी आवश्यकता है। इसलिये आज इसकी आवश्यकता सन ३७ से कहीं अधिक है। आज जो शिक्षा चल रही है या चलाई जा रही है उसका हाल तो आप सब जानते हैं। कालेज बंद रहते हैं, विश्वविद्यालयों में पढ़ाई होती नहीं क्योंकि वे भी साल के अधिकांश भाग तक एक या दूसरे कारणों से बंद ही रहते हैं और फिर उनमें जो शिक्षा दी जाती है वह छात्रों के किसी काम की नहीं है। छात्रों के सामने अंधकार है और हर क्षेत्र में अशांति है। इसलिये बुनियादी शिक्षा का यह काम है कि वह छात्रों को ही न केवल मार्गदर्शन करे अपितु समस्त समाज को भी दिशा प्रदान करे। आज तो लगता है कि बुनियादी शिक्षा के नाम से भी कुछ एलेर्जी है और विद्वान और प्रशासक यद्यपि इससे भिन्न कोई बात न तो करते हैं न जानते हैं पर फिर भी इसका नाम लेने से वे डरते हैं। हमने सन् १९७२ में यहीं सेवाग्राम में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन किया था जिसका उद्घाटन स्वयं प्रधानमंत्री जी ने किया था। उसने जो मत प्रकट किया आज वह देश में राष्ट्रीय शिक्षा का चार्टर माना जा रहा है और

दीप-स्तभ का नमूना पेश करें :

दूसरी वात मैं यह यह कहना चाहता हूँ कि जब तक हमारा कोई देशव्यापी मजबूत सगठन न बन तब तक हमारा काम कमजोर रहेगा। अत अब हमें हर प्रदेश में अपना सगठन वनान और मजबूत करन पर लग जाना चाहिय। हर प्रदेश में नयी तालीम सामतिया वनें और फिर वे हर प्रदेश में कुछ नमून की बुनियादी शिक्षा की सस्थायें खडी कर। य समाज के लिय दीपस्तम्भ का काम करेंगी। आज यह बात विनोवा जा और जयप्रकाश जी भी जोर देकर कह रहे हैं कि हमें इस तरह के दीप जगह जगह प्रदीप्त करन होंगे तभी हम समाज को काई प्रकाश दे सकेग। हम एस नमून खड कर और जो हैं उन्हे हम प्रोत्साहन दे।

सरकार के भरोसे न रहें :

हम यह बात भ याद रख कि यह काम सरकार के भरोस रहकर नही हो सकता है। वह कुछ मदद कर सकता है पर हम उन पर निभर हो जाय ता यह काम नुकसान म रहनवाला है। कभी भी किसी सरकार न काइ क्रान्ति का काम नही किया है। काम तो गैर सरकारी स्तर पर ही हो सकता है। काका साहब कालेलकर जी न यही वात अपन विनोदी ढग स कही है कि यदि हम कोई असरकारी काम करना चाहे ता उस अ-सरकारी हाना चाहिय। प डित जवाहरलालजी भी कहते थ कि सरकार क हाथ म अच्छी स अच्छी चीज चली जाय तो वह भी निकम्मी बन जाती है और सरकार उस दबोच देती है। अत काम ता हमको ही करना हागा। मुझे आशा है कि इस सम्मेलन म हम लोग इन सवालो पर विस्तार स चर्चा करग और देशकी नयी आवश्यकताओं क लिय अनुकूल शिक्षा प्रणाली बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्ता के प्रकाश म विकसित कर सकेग।

आप सब लाग काफी दूर स यहाँ आय हैं। आप सबका मैं नयी तालीम समिति की ओर स स्वागत करता हूँ। खासकर हमारे उ प्र के मुख्यमत्री श्री बहुगुणा जी हमारे निमत्रण पर यहाँ आय उनका मैं हृदय स स्वागत करता हूँ। व नयी तालीम के काम में रुचि ले रह हैं और चाहते ह कि कुछ ठास काम हो। तो मैं उन्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हम ठोस काम करन के लिय ही प्रयास कर रहे हैं। अभी तो उ प्र सहित सभी राज्यो में इस काम म कुछ ढिलाई आ गई है। पर मैं आशा करता हूँ कि अब उनक प्रयास स यहाँ भी यह काम आग बढगा और अन्य राज्यो के लिय नमूना बनगा। उसमें वे जो चाहग हमारी मदद उन्हे मिलेगी ही। अब मैं उनस निवेदन करता हूँ कि वे इस सम्मलन का विधिवत उदघाटन करें।

हेमवतीनन्दन बहुगुणा, मुख्यमंत्री, (उ प्र)

उद्‌घाटन भाषण :

श्री श्रीमन् जी, भाइयों और बहनो,

मैं श्री श्रीमन् जी का अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने आज बुनियादी शिक्षा जैसे युगान्तरकारी विषय पर कुछ सुनने और अपने विचार प्रकट करने के लिए मुझे यहाँ बुलाया है। बुनियादी शिक्षा गाधी जी का सर्वोत्तम विचार था यह तो स्वयं बापू ने ही कह दिया था। वे जब स्वराज्य की लडाई लड रहे थे तब भी व उतने ही नहीं अपितु उससे भी अधिक महत्व के साथ स्वतन्त्र भारत मे खती, शिक्षा स्वावलम्बन आदि विषयो पर चिंतन कर रहे थ और अपनी युगपरिवर्तक अतरराष्ट्रीय गतिविधियो के साथ ही वे इन विषयो पर चर्चा, चिंतन ढीला नही करते थ। वे सब कलाओ मे पूर्ण पुरुष थे और वे जो कुछ कह गये हैं वे स्वयंसिद्ध बात है। वे हमें आदेश दे गये हैं और मैं जानता हूँ कि हम इन आदेशा पर जिस ढग से अमल करेंगे उसी से हमारे देश को स्वरूप मिलेगा।

अखिल भारतीय सम्मेलन के लिए आपने वर्धा का स्थान चुना यह सर्वथा उचित है। वर्धा का नाम हमारे स्वतत्रता सग्राम के साथ इस तरह जुड गया है कि वास्तव में यह हमारा एक पवित्र तीर्थ स्थान बन चुका है। यहाँ राष्ट्रीय महत्वके बडे-बडे निर्णय लिये जा चुके हैं। मुझे विश्वास है कि आज यहाँ जिस सम्मेलन में आप सब लोग एकत्र हुए हैं, उसमें भी एस निर्णय लिए जायगे जिससे शिक्षा, समाज तथा देश को एक नयी दिशा मिल सकेगी।

बेसिक शिक्षा के साथ वर्धा का अत्यन्त गहरा सबध रहा है— वास्तव में बेसिक शिक्षा वर्धा में ही अकुरित हुई थी। मैं बात कर रहा हूँ १९३७ की, जब २२ और २३ अक्तूबर को अखिल भारतीय स्तर का सम्मेलन वर्धा में हुआ था। गाधी जी ने उससे पहले 'हरिजन' म कतिपय लेख लिखकर बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार देश की जनता के सामने थे और शिक्षा शास्त्रियो तथा राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ की विचारधारा राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में स्थिर होने लगी थी। गाधी जी के विचारो पर काफी गहराई से चर्चा हुई थी और विचार-विमर्श के बाद बेसिक शिक्षा के चार मुख्य बिन्दु उभरे थे —

(१) कक्षा १ से ८ तक की शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा की एक इकाई मान कर इन कक्षाओं की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये

(२) इस शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा ही होनी चाहिये

(३) किसी उत्पादक एवं रचनात्मक शिल्प के माध्यम से समवाय पद्धति को अपनाते हुए विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिये। यह शिल्प यथासंभव स्थानीय वातावरण से सम्बद्ध होने चाहिये

(४) यह आशा की गई कि शिक्षा व्यवस्था केन्द्रीय शिल्प के माध्यम से आत्म निर्भर हो सकेगी।

इन चार मूलभूत सिद्धांतो पर बेसिक शिक्षा का ढाँचा खडा किया गया। अपने देश के तत्कालीन राजनैतिक व आर्थिक स्थिति में इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प भी न था। सारे देश में बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में समय समय पर जो भी विचार विमर्श किये जाते रहे हैं उनमें इन चार सिद्धान्तों को सामान्यतः किसी न किसी रूप में बराबर माना जाता रहा है।

सर्वत्र गांधी विचार फैल रहा है

शिक्षा के बारे में गांधी जी ने जो कुछ कहा वह उनकी सनक मात्र नहीं थी। उनके बुनियादी शिक्षा के विचार को अब युनेस्को ने भी मान्य किया है और मैं तो कहना चाहता हूं अमरीका से लेकर रूस और चीन तक में जो कुछ शिक्षा के क्षेत्र में किया जा रहा है उनमें अहिंसा को छोडकर हालांकि इससे बुनियादी अंतर पड जाता है वह सब गांधी जी की ही धारा है। शरीर तो इसमें उनका अपना है पर उसमें आत्मा गांधी जी की है। अतः हम इस बात में न पडें कि आज बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता है या नहीं। अभी तो हमारे सामने बस एक ही प्रश्न है कि हम यह सोचें कि हमारा यह गाडा कहाँ फंसा है। हम अपनी पीढियों का कैसे उद्धार कर सकें यही सवाल अहम है। यदि हममें गांधी-युग की कुछ भी चेतना बाकी है तो हमें यह भूल स्वीकार करनी होगी कि हमने शिक्षा के क्षेत्र में भारी भूलें की हैं। अब इसके लिये हम क्या करें। वे स्वयं कोई भूल करते थे तो तुरन्त उसके सुधार हेतु उपवास कर लेते थे। इससे वे अपने शुद्ध कर लेते थे और आगे से फिर वही भूल नहीं करते थे। हमारे लिये भी इसके सिवाय और क्या मार्ग हो सकता है? मित्रों! यह हमारे लिये वहम का नहीं आत्म निरीक्षण का सवाल है। यदि हम सच्ची निगाह से अपना आत्मनिरीक्षण करेंगे तो फिर कोई कारण नहीं कि हम वांछित फल न प्राप्त कर सकें।

भारतीय परम्परा पर आधारित :

बेसिक शिक्षा के विचार अपने देश के लिये एकदम नये नहीं थे। यह हमारी पुरानी परम्पराओं पर आधारित थे। स्थानीय समाज के पूर्ण नियंत्रण में धार्मिक और सामुदायिक केन्द्रों का उपयोग हमेशा ही शिक्षा, चिकित्सा आदि सामाजिक सेवाओं के लिये होता रहा है। यह भी स्पष्ट है कि गाँवों की शिक्षा का प्रबन्ध यदि गाँवों के द्वारा ही हो तो जहाँ शिक्षा व्यवस्था सरल हो जायगी, वहाँ उस सरलता से प्राप्त भी किया जा सकेगा। गाँवों से अन्न, वस्त्र, कंद, मूल-फल और कुछ द्रव्य संग्रह हुआ करता था और जो लोग शिक्षा के काम में लगे होते थे, उनकी वृत्ति इसी संग्रह से चलती थी। दूसरे शब्दों में गाँव अपनी शिक्षा का आर्थिक प्रबन्ध भी स्वयं किया करते थे। शिक्षक का काम केवल पुस्तकीय शिक्षा देने तक ही सीमित नहीं रहता था। ग्रामीण संस्थाओं के माध्यम से राष्ट्रीय और धार्मिक आयोजनों के द्वारा, सभा और गोष्ठियों के द्वारा, सामाजिक अनुष्ठाओं के द्वारा गाँवों में चरित्र-निर्माण और अच्छे जीवन की शिक्षा जीवन भर दी जाया करती थी।

बेसिक शिक्षा के इन मूलभूत सिद्धांतों द्वारा, आप यह देखेंगे कि श्रम पर बल दिया गया। अपने देश की जिस प्रकार की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था थी, उसकी पृष्ठभूमि में यह अपरिहार्य था। शुरू से ही बच्चों में उत्पादकता और उत्पादक कार्यों के प्रति आस्था निर्माण करने में इस शिक्षा व्यवस्था को निश्चय ही सहायक सिद्ध होना था। पढ़े-लिखे छात्रों में श्रम और श्रमिक के प्रति आदर की भावना पनपाना, श्रम करने की शारीरिक क्षमता बढ़ाने और श्रम करने का अभ्यास पुष्ट करने की आवश्यकता की पूर्ति भी बेसिक शिक्षा की इस नवीन संकल्पना से ही संभव थी।

शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है स्वस्थ मन, मस्तिष्क और शरीर में एक सीधा सम्बन्ध हमेशा से माना जाता रहा है। यदि हम बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं, तो हमें शारीरिक श्रम में आस्था पैदा करनी होगी और उसे जीवन का एक अनिवार्य अंग मानकर आगे बढ़ाना होगा। स्पष्ट है कि हमें बौद्धिक विकास के कार्यक्रमों के साथ ही शिल्प और दस्तकारी को भी समान महत्व प्रदान करना होगा। वास्तविक बात यह है कि बुनियादी शिक्षा पद्धति कोई शिक्षा पद्धति मात्र नहीं है। यह जीवन का एक ढंग है, एक जीवन-दर्शन है। हम एक नये मनुष्य के निर्माण की संकल्पना कर रहे हैं। शोषणहीन समाज की रचना करने के लिये हम कृत-संकल्प हैं। हमारे नये समाज में जाति-पाँति नहीं होगी, न कोई ऊँचा होगा न कोई नीचा होगा। ऐसे नये मनुष्य के, जो वर्गहीन और शोषणहीन समाज में विश्वास रखता हो, निर्माण की आधारशिला बुनियादी शिक्षा पद्धति के जीवन दर्शन से ही रखी जा सकती है।

बेसिक शिक्षा के उपर्युक्त मौलिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए अपने देश की प्राथमिक पाठशालाओं में क्रमशः बेसिक शिक्षा का समावेश किया गया। संविधान की धारा ४५ में १४ वर्ष की आयु तक बालक तथा बालिकाओं की व्यापक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए निर्देश दिए गये। विभिन्न प्रदेशों में इस दिशा में प्रगति भी हुई है। आज वय वर्ग ६ से ११ के लगभग ८५ प्रतिशत बच्चे विद्यालयों में पढ़ रहे हैं। लेकिन वय वर्ग ११–१४ में केवल ३३ प्रतिशत बच्चे ही विद्यालयों में आ सके हैं। बालकों की शिक्षा की स्थिति बालिकाओं की शिक्षा की अपेक्षा अच्छी है। इसीलिए इधर बालिकाओं की शिक्षा पर सारे देश में अधिक बल दिया जा रहा है तथा बालिकाओं की शिक्षा कक्षा १० तक निःशुल्क की जा रही है। बालिकाओं की शिक्षा को जो यह अधिक महत्व दिया जा रहा है, वह उचित ही है, क्योंकि एक बालक की शिक्षा के द्वारा तो हम एक व्यक्ति को शिक्षित बनाते हैं, परन्तु एक बालिका को शिक्षित कर हम एक पूरे परिवार को शिक्षित बनाते हैं।

शैक्षिक व सामाजिक मूल्यों में समन्वय आवश्यक:

इस अवसर पर क्या यह उचित न होगा कि हम बुनियादी शिक्षा के पिछले वर्षों के इतिहास का थोड़ा सा सिंहावलोकन कर लें और यह विचार करें कि इस सारी अवधि में बेसिक शिक्षा का जिस प्रकार से कार्यान्वयन हुआ है, क्या उससे हमें संतोष है? क्या बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे मूल उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकी है? बिना किसी सन्देह के यह स्वीकार करना होगा कि इन प्रश्नों का उत्तर तो आशाजनक नहीं है। लेकिन वह आशाजनक क्यों नहीं है? थोड़ी-सी गहराई से यदि हम विचार करेंगे तो हमें यह ज्ञात हो जायगा कि बुनियादी शिक्षा के और समाज के वर्तमान मूल्यों में अन्तर है। आज समाज में खाते पीते सम्पन्न परिवारों में श्रम का महत्व नहीं दिया जा रहा है। ऐसे परिवारों के बालक विद्यालयों में बीतने वाले ६ घंटे के बाद अपने आपको एकदम भिन्न वातावरण में, एकदम भिन्न मूल्यों वाले जीवन में पाते हैं। विद्यालय और परिवार के बीच की यह खाई कैसे पाटी जाय? इन दोनों के सामाजिक मूल्यों में आवश्यक समन्वय के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि अभिभावक, अध्यापक तथा छात्र तीनों के जीवन मूल्यों में एकरूपता आये। इसके लिये यह अनिवार्य होगा कि ये सब मिलकर समन्वित रूप से विद्यालय के कार्यक्रमों को जीवन की वास्तविकताओं और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप बनायें।

हमारी समस्यायें

बेसिक शिक्षा के कार्यान्वयन की व्यवस्था में स्पष्टतः केन्द्र बिन्दु अध्यापक को होना ही था। इन अध्यापकों को बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिये अभिनवीकरण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाये गये। लेकिन उसके बावजूद तत्कालीन शिक्षा पद्धति में जो क्रांतिकारी परिवर्तन बुनियादी शिक्षा पद्धति द्वारा लाये जाने थे,

आ गयी। विद्यार्थियों में तथा उनके अध्यापकों में भी श्रम के प्रति वहाँ निष्ठा और श्रद्धा जाग्रत नहीं हो सकी, जिसकी आशा थी। यह स्मरणीय है कि बेसिक शिक्षा में जिन मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, वे अव्यवहारिक या अनोखे नहीं थे। विश्व के अन्य समकालीन शिक्षा शास्त्री भी इसी प्रकार का मत व्यक्त कर चुके हैं। हरबर्ट ने भी समवाय पद्धति के पक्ष में कहा है। श्रमदान पर जान डीवी ने भी बल दिया। रूस की शिक्षा पद्धति में आज भी शारीरिक श्रम को शिक्षा में एक केन्द्रीय स्थान दिया गया है। फिर भी हम अपने देश में बेसिक शिक्षा के नाम से प्रतिपादित इन सर्वमान्य सिद्धान्तों का समुचित कार्यान्वयन क्यों नहीं कर सके ?

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के सन्दर्भ में अपनी वर्तमान शिक्षा पद्धति का सिंहावलोकन किया गया था। मैं उनके इस मत से पूरी तरह से सहमत हूँ कि हमें अपनी शिक्षा पद्धति को ऐसा बनाना होगा कि बच्चों में मानवतावाद, प्रजातन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के बुनियादी मूल्य जाग्रत हों। मातृभूमि के प्रति प्रेम उत्पन्न हो और हमारी सांस्कृतिक विरासत तथा उपलब्धियों के प्रति उचित भावना पैदा हो। राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये उनमें उचित असाम्प्रदायिक वृत्ति का विकास हो और सर्वोच्च राष्ट्र-निष्ठा के आगे संकीर्ण निष्ठायें तुच्छ पड़ जाय। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए वैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा दृष्टिकोण का विकास इस प्रकार किया जाय कि तकनीकी और शिल्प-कौशल के माध्यम से उत्पादकता बढ़े, शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान पैदा हो, कठिन परिश्रम करने की तत्परता आये, लागत के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो और उद्यम में जोखिम उठाने की प्रवृत्ति बढ़े।

पुनः विचार आवश्यक :

इस दृष्टि से यदि हम विचार करेंगे तो हमें ऐसा लगेगा कि बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत शिल्प की कल्पना में हमें थोड़ा परिवर्तन करना होगा। विज्ञान, टक्नोलोजी तथा उद्योगों के इस युग में बेसिक विद्यालयों के अन्तर्गत जिस शिल्प को केन्द्रीय शिल्प का रूप दिया जा रहा है, वह शिल्प क्या हो, इस पर हमें पुनर्विचार करना होगा। हमें उसके अन्तर्गत यांत्रिक शिल्पों का समावेश करना होगा। हमारा ख्याल है कि यदि ऐसा कुछ किया गया तो वह समय के अनुरूप होगा और अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों ही ऐसे अग्रगामी समय की ओर उन्मुख (फारवर्ड लुकिंग) शिल्प में अधिक रुचि लेंगे और उसके अध्ययन और अध्यापन को सफल बनायेंगे। मैं अत्यन्त विनम्रता के साथ यह कहना चाहूँगा कि पढ़ने-लिखने और साधारण गणित सीखने की प्राइमरी पाठशाला की पुरानी कल्पना में थोड़ा परिवर्तन हो चुका है। तीन आर के स्थान पर अब साक्षरता, अंक विज्ञान तथा प्रारम्भिक तक्नीकी ज्ञान (लिटरेसी, न्यूमरेसी तथा टक्नोरेसी) आ चुके हैं।

विद्यालयों के नये दायित्व :

स्पष्ट है कि हमारे विद्यालयो को उनके अपने भू-भाग में प्रचलित, उनके अपने समाज और समुदाय के लिये उपयोगी शिल्पो मे और अधिक कुशलता प्राप्त करने का उत्तरदायित्व सभालना होगा। हमारा ख्याल है कि यदि हम इसे केन्द्रीय शिल्प न कहकर समाज के लिये उपयोगी उत्पादक कार्यक्रम और क्रिया का रूप दे दें तो सभवत यह अधिक उपयुक्त होगा। मैं आप सभी से इस बिन्दु पर विचार करने का अनुरोध करता हूँ।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत जिस कार्यकलाप को ले, उसकी उपादेयता और उपलब्धि की ओर ध्यान न दें। उसका अपना स्थान है। विद्यालयो में टाट पट्टी बनाने, स्याही बनाने, श्याम पट बनाने, चाक बनाने आदि के कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। सारे बेसिक विद्यालयों की इन वस्तुओं की आवश्यकता की पूर्ति इस उत्पादक कार्यक्रम के द्वारा केवल विद्यालयों के माध्यम से ही पूरी की जा सकती है। लेकिन मैं जिस चीज और *जिस बात पर बल देना चाहता हूँ, वह यह है कि केन्द्रीय शिल्प की जो एक कठोर* पारिभाषिक कल्पना है, उस कल्पना को हमें कुछ बदलना होगा।

सबसे बड़ा परिवर्तन हमें अपने शिल्प अध्यापक के सबध में भी करना होगा। मेरा यह विनम्र मत है कि अध्यापकों की नियुक्ति की सामान्य औपचारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रेरणा से भरे हुए अच्छे और सुदक्ष शिल्प अध्यापक का चयन कठिन है। क्या यह आवश्यक है कि एक अच्छा शिल्पी उस शिल्प से सम्बन्धित निर्धारित शैक्षिक योग्यताओं से विभूषित हो? क्या शैक्षिक योग्यताओं के जाल में फसकर ऐसे शिल्प अध्यापकों का चयन नहीं हो जाता जिनमें शिल्प की वास्तविक दक्षता और अभिरुचि का अभाव रहता हो? हमें अपने शिल्प अध्यापकों के बारे में कुछ सोचना होगा। क्या हम शिल्प अध्यापक को औपचारिक शिक्षा पद्धति से स्वतत्र रखकर अनौपचारिक रूप से रख सकते हैं?

अनौपचारिक शिक्षा का प्रश्न :

अनौपचारिक शिक्षा के सबध में इधर देश के शिक्षा शास्त्रियों द्वारा बराबर ही विचार व्यक्त किये जा रहे हैं। पाँचवी पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था को भी काफी महत्व दिया गया है। यह आवश्यक भी है, क्योंकि आजादी के २७ वर्ष बाद भी सारे देश में हम जूनियर बेसिक स्तर पर ८५ प्रतिशत और सीनियर बेसिक स्तर पर ३३ प्रतिशत बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था हो कर सके हैं। एतद्विषयक सवैधानिक निर्देश के बावजूद यह स्थिति अपनी कहानी स्वय ही कह रही है। पहले यह कल्पना थी कि १९६० तक इस सवैधानिक निर्देश

का अनुपालन हो जायगा। अब १९८० और १९८१ की बात सोची जा रही है। मुझे सदह है कि उस समय तक भी यह कार्य हो पायेगा या नही। इसीलिए हमें विवश होकर अनौपचारिक शिक्षा के बारे में सोचना पड रहा है। औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था के अन्तर्गत कक्षा १ मे प्रवेश होने से जो बच्चे छूट जाते हैं, उन्हें सामान्य शिक्षा-व्यवस्था के अन्तगत आकर फिर शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं रहता। इस जीवन में अपने गुजार जनपदों म कराने क लिय वे मजबूर रहते हैं। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारी सामान्य शिक्षा-व्यवस्था की रेलगाडी में, जो किसी भी कारण स न चढ पाय हों या चढकर किसी कारण उतर कर प्रारम्भिक स्टेशन पर ही छट गये हो, उनकी शिक्षा यात्रा की कोई व्यवस्था की जाय तो हम उनके लिय अन्य रेलगाडियो की व्यवस्था करनी होगी। अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न स्तरीय प्रवेश-व्यवस्था (मल्टीपुल एन्ट्री सिस्टम) के पीछ यही भावना है। अनौपचारिक शिक्षा का यह कार्य करन के लिय हमारे देश के नौजवानो को आगे आना होगा। उन्हें अपने अपन क्षत्र में समाज सेवा का व्रत लेकर इस दिशा मे पहल करनी होगी। यह विचारणीय है कि हमार विद्यार्थियो को विश्वविद्यालय या डिग्री स्तर का कोई डिप्लोमा देन के पूव उनके लिय समाज-सेवा तथा उत्पादक कार्यों के साथ सम्बद्ध रहना अनिवाय बना दिया जाय। मेरा ख्याल है कि इन नौजवानो की सहायता से बच्चो को उत्पादक समाजोपयोगी, सुरुचिपूर्ण तथा फारवड लुकिंग शिल्प की शिक्षा देना सम्भव हो सकेगा।

हम एसा कुछ करना होगा जिसस शिक्षा की औपचारिक और अनौपचारिक पद्धतियो का एक अच्छा समन्वय हो जाय। स्थानीय शिक्षित युवजनो का इस शिक्षा व्यवस्था म पूरा सहयोग हो, साथ ही स्थानीय जनता का भी इस शिक्षा-व्यवस्था को आशीर्वाद तथा वरदान मिला रहे। इस सम्बन्ध मे हमें अपन दृष्टिकोण में कुछ परिवतन लाना पडेगा। धीरे से कोई बात कह देने मात्र से अथवा यहाँ-वहाँ कुछ स्फुट विचार व्यक्त कर देन मात्र स काम नही चलेगा। भारत सरकार द्वारा देश के विभिन्न भागो में इसी दृष्टिकोण स नेहरू युवक केन्द्र प्रारम्भ किय गये हैं। मुझ विश्वास है कि उनस भी जो अपेक्षा की गई है, उसकी पूर्ति होगी।

बालकों को अपन समुदाय के उत्पादक कार्य के साथ सम्बद्ध करन की आवश्यकता पर जब हम विचार करते हैं तो एक प्रश्न स्वत सामने आ जाता है। हमारे देश की अधिकाश जनता आज भी मुख्यत कृषि पर अवलम्बित है। क्या हमारी बेसिक पाठशालाओं म फसलो की बुआई और कटाई के समय पर अवकाश नही होने चाहिये? क्या विद्यालयो को आजकल जिस अवधि मे बन्द किया जा रहा है उसको

स्थान पर फसली छुट्टी देना अधिक उपयुक्त न होगा ? ऐसे अवसर पर यदि पाठशालायें बन्द हों, जब बच्चे अपने खेत पर जाकर अपने परिवार के काम में हाथबटा सके तो निश्चय ही यह अधिक युक्तियुक्त होगा। जिन परिवारों के पास अपनी जमीन नहीं है, वे अन्य किसानों की जमीन पर काम कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि हमारे शिक्षित युवकों को नेतृत्व अपने हाथ में लेना होगा और आगे बढ़कर इन सारे बच्चों की शिक्षा में एक नया मोड़ देने का प्रयत्न करना होगा।

श्रम-केन्द्रित शिक्षा आवश्यक :

आज माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण के सम्बन्ध में बड़े जोरों से चर्चा हो रही है। मेरा अत्यन्त विनम्र निवेदन है कि माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरणमें समाप्त होने वाले व्यवसाय पाठ्यक्रमों की जो संकल्पना है, वह तभी सफल हो सकती है, जब लोगों के मन में श्रम के प्रति आन्तरिक निष्ठा हो। श्रम की यह निष्ठा माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर पर एकदम पैदा नहीं की जा सकती। उसे यदि उत्पन्न करना है, यदि माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण करना है, जो एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, तो बेसिक शिक्षा को हमें श्रम-केन्द्रित शिक्षा का स्वरूप देना होगा ताकि बेसिक शिक्षा समाप्त करते-करते बच्चे न तो श्रम से पलायन करें, न किसी उत्पादक कार्य को करने में ही हिचकें। इससे भी आगे बढ़कर मैं यह कहना चाहूँगा कि उनमें श्रम और उत्पादन से आंतरिक प्रेम उत्पन्न हो जाय। यदि हम विद्यार्थी में श्रम की प्रतिष्ठा तथा श्रम के प्रति सम्मान जाग्रत करते हुए जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने के लिये आत्म-विश्वास तथा भविष्य के लिये आशा उत्पन्न नहीं कर, सके एवं 'योगः कर्मसु कौशलम्' का पाठ नहीं पढ़ा सके, तो उसकी शिक्षा निश्चय ही अधूरी और निरर्थक रह गई।

मेरे मन में यह संकल्पना है कि बेसिक पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में साधारण योगासनों, शारीरिक व्यायाम, वृक्षारोपण, विद्यालय, गांव और नगर की सफाई तथा अन्य समाजोपयोगी रचनात्मक कार्यक्रमों का समावेश होना चाहिये।

परिवर्तन का नेतृत्व गैर-सरकारी हो :

किन्तु मैं यह मानता हूँ कि शिक्षा में परिवर्तन का काम केवल सरकार से नहीं होगा। वह मददगार होगी पर यह अच्छी तरह समझ लें कि यह काम सरकार के ही भरोसे तो बिल्कुल नहीं होगा। गांधीजी तो सरकार चलाने का काम द्वितीय श्रेणी का काम मानते थे। इसलिये वे स्वयं भी उससे अलग रहे और अपने उत्तम साथियों को भी उन्होंने यही सलाह दी थी। इसलिये बुनियादी शिक्षा के काम में भी गैर सरकारी कार्यकर्ताओं और संस्थाओं को ही नेतृत्व लेना होगा और अपने कामसे सरकार के सामने भी एक उदाहरण रखना होगा। जहाँ तक उ० प्र० का सवाल है, उ० प्र० की सरकार की ओर से मैं आपके सामने यह आश्वासन दे सकता हूँ कि

आप गैर-सरकारी स्तर पर जो कुछ भी काम इस दिशा में करेंगे उसमे उ प्र सरकार का पूर्ण सहयोग होगा। मुझे कोई शका नहीं है कि हम आगे बढेंगे और चुनौतियो का सफलता से सामना करेंगे।

मुझे आपके सामने आकर सम्पूर्ण देश के बडे-बडे शिक्षाविदो के समक्ष बेसिक शिक्षा जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने का मौका मिला, इसके लिये मैं इस सम्मेलन के आयोजको का हृदय से आभारी हूँ। इस सम्मेलन में सारे देश के जैसे विद्वान्, विचारक और शिक्षाशास्त्री बैठे हैं, उनके सामने मैंने जो भी कहा है, वह सब कहते हुए मैंने बराबर सकोच का अनुभव किया है। मैंने केवल अपने अतिप्रिय विचार आपके सामने व्यक्त करने का साहस किया है। उसके आधार पर यदि आप देश की बमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कोई नयी दिशा दे तो मैं अपने आपको अत्यन्त गौरवान्वित समझूंगा। मैं इस सम्मेलन के लिये अपनी शुभ कामनायें अर्पित करता हूँ और आप सबको एक बार पुन धन्यवाद देता हूँ।

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीय जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरियं ॥१॥

ससार में प्राणिमात्र के लिये ये चार बातें दुर्लभ हैं—१–मनुष्यत्व या मानव-जन्म, २–श्रुति याने सद्‌वचनो का श्रवण, ३–उन सद्‌वचनो पर श्रद्धा और ४–सयम के लिये प्रवृत्ति तथा पुरुषार्थ।

—भगवान् महावीर
(महावीरवाणी — १०।८८।१)

के. एस. आचार्लू, मंत्री, अखिल भारत नयी तालीम समिति :

मंत्री का निवेदन :

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के इतिहास का एक नया अध्याय ही आरम्भ हुआ जब पूज्य विनोबा जी ने सन् १९५९ में पठानकोट में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ को सर्व सेवा संघ में मिल जाने की सलाह दी और कहा कि अब नयी तालीम के कार्यकर्ताओं को ग्रामदान, ग्रामोद्योग, खादी और शांति सेना का काम भी उठाना चाहिये। इसके आगे अब सर्वोदय की सभी संस्थाओं और कार्यकर्ताओं को नयी तालीम का वाहक बनना था। इस प्रकार से जो नयी तालीम अब तक एक छोटी सी धारा में बह रही थी उसे अब विशाल सागर में उतरना पड़ा। उद्देश्य निस्सन्देह ही ऊंचा और आकर्षक था पर, जैसा कि समय ने बता दिया है इस सारे प्रकरण में नयी तालीम एक प्रकार से उपेक्षित बालक की ही तरह से रह गयी। सर्व सेवा संघ ने, जो पहले से ही अनेक विध रचनात्मक कार्यों में लगा था, इस नयी जिम्मेदारी को भी लिया और इस सम्बन्ध में कई सम्मेलन किये, शिक्षा के अनेक सवालों पर गोष्ठियाँ की और शिक्षाशास्त्रियों से चर्चायें आयोजित कीं। फिर भी यह कमी अनुभव की जाती रही कि सेवाग्राम के विशिष्ट प्रयोगों को इससे हानि ही हुई है और इस सवाल पर विचार और काम करने वाली कोई अलग ही संस्था होनी आवश्यक है।

इस विचार के आधार पर फिर सर्व सेवा संघ ने सन् १९६५ में १५ से १७ अप्रैल तक नई दिल्ली में श्री ऊ. न. ढेबर की अध्यक्षता में एक गोष्ठी का आयोजन किया। इसमें केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, शिक्षा नियोजक, सर्वोदय शिक्षाशास्त्री और क्षेत्र में काम करने वाले नयी तालीम के कार्यकर्ताओं को भी बुलाया गया। इस सम्मेलन ने नयी तालीम के सवाल पर विस्तारसे चर्चा की और पाठ्यक्रम, प्रशासन आदि में कई सुधार करने की सिफारिशोंके साथ ही यह भी सिफारिस की कि सर्व सेवा संघ नयी तालीम के काम को सम्यक् और द्रुत गति से सम्पन्न करने के लिये एक 'नयी तालीम समिति' का गठन करे। इस पर श्री मनुभाई पंचोली, श्री अरुणाचलम् और श्री के. एस. आचार्लू के सह-संयोजकत्वमें ४१ लोगोंकी एक नयी तालीम समिति का गठन किया गया। समितिको बुनियादी शिक्षा का काम करने वाले लोगों और कार्यकर्ताओं से सम्पर्क करने, इस क्षेत्र में सूचनाओं और अनुभवों का आदान-

प्रदान करने, प्रदेश स्तर पर नयी तालीम समितियों का गठन करने, देश-विदेश में शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों की जानकारी रखकर उनसे लाभ लेने, विभिन्न पहलुओं पर गोष्ठि-चर्चा या सम्मेलन करने और बुनियादी शिक्षा के निजी या सार्वजनिक प्रयोगों को प्रोत्साहन देने का काम सौंपा गया। समिति का कार्यालय श्री आचार्लू के मन्त्रित्व में बगलौर में रखने का निश्चय किया गया।

समितिका पहला काम बुनियादी शिक्षा का काम करने वाले लोगों और सस्थाओं से सम्पर्क कायम करना था। इसके लिये कई शिक्षकों, सस्थाओं से सम्पर्क किया गया। इसी बीच भारत सरकार ने डा कोठारी के नेतृत्व में एक शिक्षा आयोग का गठन किया। नयी तालीम समिति ने इस आयोग को भी अपना प्रतिवेदन दिया और इस पर आयोग ने कुछ नयी तालीम कार्यकर्ताओं को अपने सामने गवाही के लिये बुलाया। समिति ने फिर आयोग के सदस्यों का पूज्य विनोबा जी से एक साक्षात्कार भी आयोजित किया किन्तु पहले से सब कुछ तय हो जाने के बावजूद आयोगने ऐन वक्त पर साक्षात्कार के लिये आने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। इस कोठारी आयोग ने, यह मानते हुए भी कि बुनियादी शिक्षा के मूल्य उसे मान्य हैं, उस राष्ट्रीय शिक्षानीति के लिये मानने से और 'बुनियादी' नाम तक स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। तब समिति ने फिर इसके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ किया और इस सिलसिले में हजारों तार और पत्र भेजे गये और कई गोष्ठियाँ भी आयोजित की गई। समितिने इस पर बुनियादी शिक्षा पर एक नोट भी तैयार किया और उसे केन्द्र तथा राज्य सरकारों को भेजा गया कि वे बुनियादी शिक्षा के नाम को स्वीकार करें। इस में यह भी कहा गया कि 'राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा सस्थान' को जारी रखा जाय जो कि इसी हेतु स्थापित किया गया था कि वह बुनियादी शिक्षा के हर पहलू पर शोध करके सलाह दे। इस नोट की केन्द्रीय शिक्षा उपमत्री श्रीमती सौन्दरम् रामचन्द्रन् ने भी सराहना की और यह आश्वासन दिया कि इस पर विचार किया जायेगा। किन्तु इस सबका कुछ नतीजा नही निकला और राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा सस्थान को समाप्त कर दिया गया और बुनियादी शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा के साथ मिला दिया गया।

तब नयी तालीम समिति ने म प्र के कुडेश्वर नामक स्थान पर इस सारी स्थिति पर विचार करने के लिये एक सम्मेलन बुलाया जिसकी अध्यक्षता गाधी निधि के अध्यक्ष श्री डा आर आर दिवाकर जी ने और उद्घाटन श्री जी रामचन्द्रन् ने किया। सम्मेलन ने कोठारी आयोग की सिफारिशो पर विचार किया और बुनियादी शिक्षा के मूल्यों में अपनी आस्था पुन व्यक्त की। सम्मेलन में आयोग के 'कार्यानुभव' के सिद्धान्त पर भी विचार हुआ और बुनियादी शिक्षा के नाम पर भी। इसमें बुनियादी शिक्षा शब्द को स्वीकार करने का प्रस्ताव पास हुआ। फिर सम्मेलन की सिफारिशो को

देश स्तर पर प्रचारित करने के लिये गोष्ठियाँ आयोजित की गई। कई स्थानों पर रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन हुए जिनमें बुनियादी शिक्षा के प्रति अपना विश्वास पुन: प्रकट किया गया। इसी प्रकार की एक गोष्ठी बम्बई की 'आल इण्डिया बेसिक एज्युकेशन काउन्सिल' ने भी आयोजित की।

इसी बीच ग्रामदान कार्य काफी प्रगति करता गया और उस सन्दर्भ में फिर खासकर शिक्षित बेकारी की बढोतरी, छात्र-असन्तोष और जनता में बालकों और युवकों की शिक्षा के प्रति बढती चेतना के फल स्वरूप सर्व सेवा संघ ने नयी तालीम समिति को पुन: नया रूप देने का निश्चय किया। इस पर फिर श्री शंकरराव देव जी की अध्यक्षता में एक कमेटी बैठी जिसने यह सिफारिश की कि संघ के अंग के रूपमें एक अधिक व्यापक स्वायत्त नयी तालीम समिति का गठन किया जाय। यही वर्तमान समिति है। इस नयी तालीम समिति की पहली बैठक नवम्बर १९७० में नई दिल्ली में हुई और श्री श्रीमन्नारायण जी को इसका अध्यक्ष चुना गया। श्री मनुभाई पंचोली और श्री अरुणाचलम् जी को उपाध्यक्ष और श्री के. एस. आचार्लू का समिति का मंत्री नियुक्त किया गया। समिति का काम तब से सरकारों से सम्पर्क करके नयी तालीम के काम में उनका मार्गदर्शन करना, बुनियादी शिक्षा के विचार का प्रचार-प्रसार करना और छात्रों को रचनात्मक दिशा प्रदान करने के लिये तरुण शान्ति सेना के विचार और कार्यक्रम का प्रसार करना तथा आचार्यकुल के विचार प्रचार-प्रसार के साथ बुनियादी शिक्षा के विचार और कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार करना रहा है।

समिति ने फिर फरवरी ७२ में सेवाग्राम में एक नयी तालीम सम्मेलन का आयोजन किया। किन्तु उसी समय भारत पर पाकिस्तान के हमले के कारण वह स्थगित करना पडा। किन्तु देश भर से लोग सम्मेलन की आवश्यकता पर जोर देते रहे अतः तब जून ७२ में गुजरात के जूनागढ जिले के सुन्दर स्थान शारदाग्राम में, जहाँ श्री मनसुखलाल भाई ने नयी तालीम की अत्यन्त भव्य साकार कल्पना स्थापित की है, नयी तालीम सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन ने शिक्षा के वर्तमान संकट, उसके हल के लिये शैक्षिक उपाय, ग्रामदान क्षेत्रोंमें बुनियादी शिक्षाकी आवश्यकता, और राज्यों में बुनियादी शिक्षा की प्रगति पर विचार किया और कई सुझाव दिये। गुजरात राज्य ने विकास के साथ शिक्षा को जोडने का जो अच्छा काम किया था इस सम्मेलन ने देश का ध्यान उस ओर भी खींचा और अन्य राज्यों से भी वैसा करने को कहा।

देश में यह विचार अब जोर पकड रहा है कि बुनियादी शिक्षा राष्ट्र की प्रचलित मुख्य शिक्षाधारा से विलग रहकर नहीं चल सकती इसलिये उसे शिक्षा की समूची धारा पर विचार करना चाहिये। इस दृष्टि से फिर अक्टूबर ७२ में सेवाग्राम में एक राष्ट्रीय शिक्षा परिसंद बुलाई गई जिसमें कई विश्व विद्यालयों के उपकुलपति,

राज्यों के शिक्षामंत्री, बुनियादी शिक्षा के प्रमुख कार्यकर्ता और अन्य प्रमुख शिक्षाशास्त्री शामिल हुये। इस सम्मेलन का उद्‌घाटन स्वयं प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया और अध्यक्षता नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने की। श्रीमती गांधी ने अपने भाषण में शिक्षा को राष्ट्र-विकास के साथ जोड़ने, जीवन पद्धति को उसके अनुरूप ढालने और स्वतन्त्रता और अनुशासन तथा विज्ञान और गांधी जी के द्वारा बताये गये रास्ते के अनुकूल जन-चेतना विकसित करने पर जोर दिया। सम्मेलन का मुख्य विषय समिति के अध्यक्ष द्वारा लिखे गये मुख्य नोट 'विकास तथा सामाजिक न्याय के लिये शिक्षा' पर विचार करना रहा और इस पर विस्तृत चर्चा के बाद सभी विश्व विद्यालयों के उपस्थित कुलपतियों और शिक्षा मंत्रियों ने उसे स्वीकार किया और उन पर अमल करने के लिये गुजरात कृषि विश्व विद्यालय के उप-कुलपति श्री बी आर मेहता के संयोजकत्व में एक 'फालोअप कमेटी' बनाई। श्री श्रीमन्नारायण जी इस कमेटी के अध्यक्ष हैं। इस कमेटी की रिपोर्ट से पता चलता है कि उनके संयोजक श्री मेहता जी के निजी प्रयास और विचार विमर्श के कारण इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई है और इसके लिये हम सब श्री मेहता जी के प्रति आभारी हैं। नयी तालीम समिति ने भी इस विषय पर देश भर में कई गोष्ठियां आयोजित की हैं और कई शिक्षा-शास्त्रियों से शिक्षा में परिवर्तन के लिये आवश्यक प्रगति पर विचार विमर्श किया।

यह सम्मेलन इस नाते एक विशिष्ट सम्मेलन है कि इसमें हमने केवल बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं और उसमें रुचि लेने वाले लोगों को ही खासकर बुलाया है कि शिक्षा में आज बहु चर्चित क्रान्ति की दृष्टि से क्या किया जाय। समिति ने सभी प्रदेशों से निवेदन किया है कि वे इस बीच अपने प्रदेश में नयी तालीम समितियों का गठन कर लें और फिर उनको केन्द्रीय समिति से सम्बद्ध कर लें। गुजरात, बिहार, तामिलनाडु, राजस्थान और पश्चिम बंगाल ने पहले ही यह कर लिया है और अभी इसी सम्मेलन के दौरान उ. प्र. में भी नयी तालीम समिति का गठन हो गया और उसका सम्बद्धन भी हो गया। हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, काश्मीर, कर्नाटक, आन्ध्र और म. प्र. तथा आसाम आदि में यह काम होना अभी बाकी है। बम्बई की आल इण्डिया बेसिक एज्युकेशन काउन्सिल भी विभिन्न समयों पर शोध कार्य, गोष्ठियां, और सम्मेलन करके देश में बुनियादी शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करने और उसका साहित्य प्रकाशित करने का अच्छा काम करती रही है।

यह सन्तोष की बात है कि विभिन्न सुदूर प्रदेशों से काफी संख्या में प्रतिनिधि इस सम्मेलन में आये हैं। नयी तालीम समिति की ओर से हम सभी प्रतिनिधियों से अपील करते हैं कि वे यहाँ से जाकर अपने अपने प्रदेशों में नयी तालीम समितियों का गठन करके उन्हें शीघ्र ही केन्द्रीय समिति से सम्बद्ध करनेका काम पूरा करें ताकि

बुनियादी शिक्षा का यह देशव्यापी आन्दोलन गति पकड सके। यहाँ पर आये कई प्रदेश प्रतिनिधि अपने काम की रिपोर्ट भी सम्मेलन के सामने पेश करेंगे।

मैं यहाँ पर प्रतिनिधियों के सामने समिति के सामने दो बडी समस्याओं का जिक्र भी करना चाहता हूँ। समस्यायें समिति को काफी दूर तक परेशान किये हैं। पहली समस्या तो समिति के सामने आर्थिक कठिनाई की है। अभी तक तो सर्व सेवा सघ हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था किन्तु आज तो उसके सामने भी स्वय की आर्थिक दिक्कत है अत वह अब हमारी कोई मदद करने मे असमर्थ है। इस बीच सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान ने रु ५ हजार की मदद देकर समिति की सकट के वक्त पर मदद की है और इसके लिये हम सभी उसके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है। बस यही एकमात्र रकम है जिससे हम समिति का काम पिछले साल से चला रहे है। अत हम सभी प्रतिनिधियों से अपील करते हैं कि वे इस दिशा मे विचार करें और इसके लिये कुछ व्यावहारिक उपाय सुझाये। दूसरी समस्या यह है कि पिछले साल से नयी तालीम समिति ने 'नयी तालीम' पत्रिका का भी भार अपने ऊपर लिया है। पहले यह पत्रिका भी सर्व सेवा सघ ही प्रकाशित करता था। इस पत्रिका को ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि यह बुनियादी शिक्षा ही नही अपितु सामान्य शिक्षा-चिंतन पर कितनी मूल्यवान सामग्री देती है और इसमें समय समय पर पूज्य विनोबाजी के जीवन और शिक्षा सम्बन्धी विचारो को भी देश के सामने रखा जाता है। यह पत्रिका कोई पत्र निकालने के जैसा 'मनोरजन' का काम मात्र नहीं है और न विज्ञापन दाताओंको अपने विज्ञापन प्रकाशित करने का कोई एक व्यापारिक काम ही है। मात्र ग्राहक और दान-दाता ही इसके एकमात्र सहारा हैं। इस साल भर के भीतर ही पत्रिका लगभग १५ हजार के घाटे में रही है। अत हम सभी प्रतिनिधियो राज्य सरकारो और बुनियाद शिक्षा और गाधी विनोवा के विचारो में रुचि लेने वालो स अपील करते है कि वे इस सकट पर काबू पाने मे हमारी मदद करें और इसकी ग्राहक सख्या बढाने के लिये काम करें। दान भी इस कार्य के लिये सादर स्वीकार किये जायेगे।

मित्रो! हमारा देश आज चरित्र के सकट के दौर से गुजर रहा है। जनता सामाजिक और राजनैतिक चेतना के प्रति जागरूक हो गई प्रतीत होती है। आज जीवन के मूल-ढाँचे मे मौलिक परिवर्तन के लिये पुकार हो रही है। यह स्वागत योग्य बात है कि अब हमारे छात्रो और युवको का मानस वेअर्थ के आन्दोलनो से अर्थपूर्ण शैक्षिक क्रान्ति की ओर झुका है और यह हम गाधी-विचार मे आस्था रखनेवालो के लिये स्वर्ण अवसर है कि हम इस जागरण को रचनात्मक मोड देने के लिये काम करें। गाधी जी का सदेश केवल भारत के लिये ही नही अपितु सारे विश्व के लिये है और पश्चिम के सभी बुद्धिमान लोग भी यही कह रहे हैं कि आज के भय, चिंता और अधकार से मुक्ति के लिये यह आवश्यक है कि गाधी जी के द्वारा बताये गये सिद्धान्तो पर अमल

विनोबा :

देश की प्रमुख समस्या--शिक्षा-सुधार :

[३० नवम्बरको बापूजीके अनन्य सहयोगी श्री नारायणदास गांधीजी का निधन हो गया। यह खबर मिली तो पू० विनोबाजी ने अपने प्रवचन में पहले उसी की चर्चा की और कहा कि 'पहले दो मिनट का मौन रखना है। आज एक घटना हो गई है इसलिए। श्री नारायणदास भाई का निधन हो गया यह खबर मिली। वे उत्तम उम्र भोगकर गये और नयी तालीम के उत्तम आचार्य थे। उन्होंने चरखे का प्रयोग अपने पूरे जीवन-भर किया। उनकी मृत्यु का दुःख नहीं है किन्तु हम सबको यह प्रार्थना करनी है कि भगवान् उनकी ही जैसी सद्बुद्धि हम को भी दे'। फिर दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजली की गई। बाद फिर विष्णु सहस्रनाम हुआ। तब पूज्य बाबा का भाषण आरम्भ हुआ।]

देश में नयी तालीम के उत्तम नमूने खडे हों :

आज अपने देश के सामने अनेक विध समस्यायें हैं। वे अनेक भी हैं और कठिन भी हैं इस हालत में हम सबका उत्साह तो बढना ही चाहिए। बाबा का उत्साह तो बढा हुआ है। मनुष्य को इसमें पुरुषार्थ का अवसर और प्रेरणा मिलती है। इस मौके पर ही मनुष्य को भगवान् की मदद की आवश्यकता भी अनुभव होती है। हमारे सामान्य जीवन में यह नहीं होता। इसलिये इसमें दोनों तरफ से भला ही है। पूर्ण पुरुषार्थ का एक अवसर है और भगवान की मदद की आवश्यकता का अनुभव करने का अवसर भी। हमने विष्णु सहस्रनाम से आरम्भ किया यह अच्छा ही किया। इसलिये अभी हमारे पुरुषार्थ की परीक्षा है।

दो मुख्य समस्यायें : ब्रिटेन की नकल :

अब हम समस्याओं का पृथकरण करें तो दो खास समस्यायें हैं। एक तो है तालीम सुधार की और दूसरी है चुनाव में सुधार की। अब हमारे यहाँ जो चुनाव प्रणाली है वह तो ब्रिटेन की नकल मात्र है। किन्तु यह समझना चाहिये कि वह तो अत्यन्त ही छोटा सा देश है, वहाँ केवल ५ करोड ही लोग रहते हैं। उनमें से भी मात्र १० लाख को छोडकर सभी अंग्रेज ही हैं। उनकी भाषा भी सबकी एक ही है अंग्रेजी। किन्तु भारत में तो विकसित १५ भाषायें हैं। फिर यह इतना बडा देश है। अतः हम उसकी नकल करें तो यह ठीक नहीं है। किन्तु यह अलग स्वतन्त्र विषय है और मैं अभी इसपर चर्चा नहीं करूंगा। मेरी दृष्टि से शिक्षा में सुधार का अहम् महत्व है। वह होगा तो बाकी सब बातें स्वयं ही ठीक हो जायेगी। तालीम सुधार ही मूल है। जाकिर साहब अत्यन्त ही बुद्धिमान् मनुष्य थे। एक बार उनसे मैं चर्चा कर रहा था

कि आज की शिक्षा से तो लोग पढ़े तो बेकार बनते हैं और न पढ़े तो मूर्ख बनते हैं। तो वे तुरन्त बोले कि 'नहीं इससे वे दोनों ही बनते हैं।' यह उनकी सहज प्रतिभा थी। ऐसी यह आज की निकम्मी शिक्षा है। अतः जो आज इसे नहीं पाते वे ही असल में भाग्यवान हैं क्योंकि वे इस दुहरे अभिशाप से बच जाते हैं।

त्रिसूत्री ही भारत को बचायेगी :

शिक्षा के विषय पर मैंने बहुत कहा है। मैंने एक किताब भी इस पर लिखी है 'शिक्षण विचार' उसका भारत की कई भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। फिर ७२ में मैंने एक त्रिसूत्री दी है। योग, उद्योग और सहयोग की। यह त्रिसूत्री ही भारत को बचायगी। अब मेरे लिये कुछ कहना बाकी नहीं है। आप सब इस पर विचार कर जो निर्णय देंगे वह अमल में आयेगा तो सब कुछ सही ही होगा। हमारे कई साथी राज्यकर्ता बन हैं, पर वे भी नयी तालीम में विश्वास करते हैं। उनका भी सहयोग मिलेगा ही। हमारे सामने ये बहुगुणा जो बैठे हैं। बहुत गुण हैं उनमें। उन्होंने भी मान्य किया है कि यह तालीम लाभदायी है। हमारी प्रधानमंत्री ने भी माना है कि हमने पुरानी तालीम रखकर भारी भूल की है।

यह फुटबाल का खेल चल रहा है :

आज तो एक तरह से यह फुटबाल का खेल चल रहा है। केन्द्र कहता है कि शिक्षा तो राज्यों का विषय है पर राज्य कहते हैं कि हम केन्द्र के ही निर्देश पर काम करते हैं। इस खेल का अच्छा अनुभव श्रीमन् जी को है। वे तो राज्यकर्ता भी रहे हैं और नयी तालीम भी करते हैं। उन्होंने कहा है कि हम सरकार पर निर्भर न रहें, बल्कि अपनी अपनी शक्ति के अनुसार नमूने की संस्थायें बनायें। सेवाग्राम में ऐसा हो तो यह एक उदाहरण होगा। फिर यू. पी. में हो। वहाँ तो काशी जैसी मुक्त नगरी है वहाँ एक नयी तालीम का उत्तम नमूना चलाओ। यह नमूना अच्छा होगा तो उसका आस पास असर तो होगा ही।

आचार्यकुल नयी तालीम का काम उठायें :

अब ये आचार्यकुल के लोग हैं जो कि प्राचीन आचार्यों की तरह से निर्भय होकर विचार करते हैं और कोई पक्ष नहीं लेते। वे भी इस तरह के नमूने खड़ा करें। वे मार्ग दर्शन करेंगे तो लोग उसे उठा लेंगे। इस तरह से जगह जगह पर नयी तालीम आदि सभी रचनात्मक कार्यों के नमूने चलें। मैंने यहाँ पर श्रीमन् जी को वर्धा जिले के लिये कुछ सुझाव दिये हैं। वह किया जाय। यहाँ की सभी संस्थायें, वह ब्रह्म विद्यामंदिर हो, गाँधीजी का यह जिला ही है, घर ही है, रचनात्मक कार्य की इतनी सी संस्थायें हैं तो ये, सब मिल करें तो ही सकता है। यह सब पहले गाँधी जी ने भी कई बार कहा था। बाबा भी बार बार कह रहा है। अब आपको स्वयं भी सोचना चाहिये। आप इस तरह के नमूने बनायेंगे तो दुनिया को उससे प्रकाश मिलेगा। यहाँ से यह

प्रकाश तेजी से फैलेगा क्योंकि यह दुनिया का मध्यबिन्दु है। इस स्थान ने विश्व को नई नये विचार दिये हैं। सत्याग्रह का विचार दिया है, यह प्रेम का विचार है। इस पर आप विचार करें और आगे कदम बढ़ायें। बाबा की शुभकामना आपके साथ है।

अनन्त से सम्पर्क : तालीम का उद्देश्य :

बाबा तो आज कल अनंत का चिंतन करता है। यह सृष्टि कितनी तक होगी? यह सोचता है। क्या इसका भी कहीं अंत होगा। पहले लोग कहते थे कि नौ ही ग्रह होते हैं पर अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी धरती के जैसे तो लाखों ग्रह हैं इस विश्व में। किन्तु इस अनंत में भी एक जगह अंत तो होता ही होगा। हमारी इन्द्रियां पाँच ही हैं। कम वाले प्राणी भी होंगे पर क्या कोई अधिक वाले भी हैं, होंगे अवश्य, पर हमसे उनका सीधा सम्पर्क नहीं है। क्योंकि हमारी शक्ति अभी उन तक सम्पर्क करने लायक विकसित नहीं है। जैसे कि हमारी शक्ति से चींटी की शक्ति, जो कि हमारे ही साथ रहती है, कम है अतः हमारा और उसका सम्पर्क नहीं होता। तो हम अपनी शक्ति कैसे बढ़ायें कि उन असंख्य लोगों से भी सम्पर्क कर सकें। यह मैं सोचता रहता हूँ। शायद हैं आगे कभी विज्ञान इसमें भी हमारी कुछ मदद करे। हमारी तालीम को यह भी चिंतन करना चाहिये। अनंत का चिंतन करने से तटस्थता से चिंतन हो सकता है। हमारी तालीम में इस सबको भी गुंजाइस रहनी चाहिये।

ज्ञान प्रत्यक्ष प्रकृति से आने दो :

प्रश्नोत्तर :

प्रश्न —वही शिक्षा सही मानी जाय जो अब थ्री आर के स्थान पर थ्री एच (हैन्ड, हार्ट और हेड) पर जोर दे।

उत्तर —हमारे विधान में हमने कई हक लोगों को दिये हैं पर आप जानते होंगे बाबा आज कल एक और हक मांगता है, अनपढ़ रहने का। इस बारे में मेरे विचार सर्व विदित है। मैं कबीर और मुहम्मद की कहानी भी कई बार कह चुका हूँ, कि हम मनुष्य और प्रकृति के बीच किताब का न रखें। ज्ञान को सीधे ही प्रकृति से आने दो। आजकल लोकों विद्या (इकॉलाजी) भी यही कहती है। इस तरह की प्राकृतिक शिक्षा भारत की मूल शिक्षा पद्धति है। उसमें सब कुछ आ जाता है।

उत्पादक शिक्षा का तात्पर्य :

प्रश्न —हर बालक पढ़ाई के साथ कमाई भी करे, क्या यह ठीक है?

उत्तर —मैं कहता हूँ कि कृपया बालक को एक भी पैसा न कमाने दो। वह पैसा नहीं अनाज पैदा करे। इस पैसे ने ही सारी मुसीबतें खड़ी की हैं। प्रसार

(इन्फ्लेसन) इसी ने किया है। यह अवैज्ञानिक है। इसको कमाने मे जरा भी मेहनत नहीं लगती। बस एक ठप्पा लगाया कि एक का नोट बन गया। दूसरा ठप्पा लगाया कि सौ का नोट बन गया। पर एक किलो अनाज और सौ किलो अनाज पैदा करने में कितना श्रम करना होता है।

इस शिक्षा का बहिष्कार करो :

प्रश्न —शिक्षा में सरकारीकरण बढ रहा है। क्या किया जाय ?

उत्तर —आप यदि इससे सचमुच ही चिंतित है तो फिर राह खोजनी कठिन नही है। जहाँ चाह है वहाँ राह भी मिल ही जाती है। आप लोग सचमुच परिवर्तन चाहते हो तो एक तारीख तय कर लो कि उस दिन से स्कूल का बहिष्कार करेंगे। यह होगा तो फिर सरकार और सभी सबधित लोग सोचेंगे कि क्या करना। यह सब विचार करने से ही नही होगा, करना होगा तब ही होगा। मैंने इस शिक्षा के बहिष्कार की बात पहले भी कई बार कही है। हमारे देश की तालीम तो राजपुत्र व गरीब के लिये एक ही थी और जब श्रीकृष्ण को गुरुकुल मे भेजा गया तो गुरु ने उसे राजपुत्र मानकर कोई विशिष्ठ शिक्षा नही दी बल्कि सुदामा के साथ ही जगल में लकडी लाने के लिये भज दिया। आपको चाहिये कि यदि आप शिक्षा में बदल चाहते हो तो फिर यह करो कि सबको एक ही शिक्षा मिले और आप भी अपने लिये विशिष्ठ शिक्षा की बात नही करेंगे। तब सरकार के सामने आपकी बात मानने के सिवाय कोई अन्य चारा ही नही रहेगा।

प्रश्न —तब क्या हम भी शिक्षा में बदलने के आन्दोलन में लगें।

उत्तर —यह आपको ही तय करना है।

लंदन में गुजराती अनिवार्य हो :

प्रश्न —गुजरात में अंग्रेजी अनिवार्य कर दी जा रही है। शिक्षा की नयी योजना में उद्योग को निकाला जा रहा है। इस समस्या से कैसे निपटें।

उत्तर —गुजरात में अंग्रेजी अनिवार्य हो गई हो, तो लदन में भी गुजराती अनिवार्य कर दो। जब सभी कामनवेल्थ है ता फिर लदन में भी गुजराती, हिन्दी आदि अनिवार्य क्यो न हो ? पर वे यह नही करेंगे। वे ता सिर्फ फेंच या जर्मन ही पढेंगे। कहना यह है कि आपको यह बात कहनी चाहिये और सरकार न माने तो फिर यह तो केवल ५ ही साल की नौकर है। नौकर आपकी बात नही मानता तो फिर नौकर के साथ क्या करना यह आप जानते ही है। सरकार जब गलत करती है ता समझने की बात है कि हमने ही उसे गलत शक्ति भी दी है। अन्त उपाय तो सहज है। हम स्वय सही हो और फिर सही शक्ति का ही उपयोग करें।

प्रश्न —शिक्षा योजना में 'बुनियादी नाम' के बारे में आपकी राय क्या है ?

उत्तर —मैंने एक नाम दिया है 'त्रिसूत्री शिक्षा'। उसमें सब आ जाता है।

प्रश्न —सच्ची शिक्षा के लिए क्या करें। बिहार में शिक्षकों ने चाहा कि सरकार शिक्षा अपने हाथ में ले ले। वह हो गया। पर सही शिक्षा का कहीं नाम नहीं। जनता का इस परिस्थिति में क्या कर्तव्य है ?

उत्तर —सर्वत्र यही समस्या है। मैंने कह दिया है कि तालीम सरकार के हाथ में नहीं अपितु आचार्यों के हाथ में रहनी चाहिए। यह आप करें।

प्रचलित शिक्षा बनाम बुनियादी शिक्षा

प्रश्न —क्या प्रचलित और बुनियादी तालीम में कोई मेल सम्भव है ?

उत्तर —यह खिचड़ी चाहता है। पर खिचड़ी से बीज होती है।

प्रश्न —नयी तालीम में प्राकृतिक चिकित्सा आती है क्या ?

उत्तर —क्या नहीं आती। वह आनी ही चाहिए।

हिंसा नहीं संहार :

प्रश्न —लगता है कि आपने जो ग्रामदान भूदान का आरम्भ किया था वह अब रुक-सा गया है और लोग हिंसा की ओर जा रहे हैं। इस हालत में क्या किया जाय ?

उत्तर —हिंसा से आपके मसले यदि हल होते हों तो मेरी ओर से परवानगी है। मेरा कहना है कि मकान मत तोड़ो, हिम्मत हो तो आदमी मारो। सवाल यह है कि हिंसा किसकी करें। बाबा हिंसा से डरता नहीं यह बात मैंने कई बार कही है। पर हिंसा करते बार अपने को अलग मत रखो। यह करोगे तो हिंसा का तरीका आपकी समझ में आयगा। सम्पत्ति की हानि करना कोई बहादुरी का काम नहीं। हिंसा मत करो संहार करो। संहार। बाबा को संहार पसंद है हिंसा नहीं। हिंसा (काल-बाह्य) अब 'आउट डेटेड' हो गई है।

शिक्षा योजना में माँ का स्थान

प्रश्न —देश में शिक्षा की नयी नयी योजनायें बन रही हैं। पर नतीजा कुछ निकलता दीखता नहीं। इसमें एक बड़ा कारण यह भी है कि योग्य शिक्षक मिलते नहीं। क्या किया जाय ?

उत्तर —यही असल सवाल है। सर्वोत्तम शिक्षक यानं क्या। हमारे शास्त्रों में कहा है कि हजार शिक्षका के बराबर एक पिता है किन्तु हजार पिताओंसे बढकर एक माता है। हजार शिक्षको के बराबर पिता किन्तु हजार पिताओ से माँ बढकर है, हजारके बराबर नही। यह बात ध्यान में रखन की है। बाबा आज जो कुछ बन सका है वह अपनी माँ के ही कारण से बना है।(माँ का स्मरण करते ही बाबा का गला भर आया और वे कुछ समय तक बोल नही सके)। माँ को मैं रोज देखता था कि वह किस प्रकार स रहती और काम करती है। वह घर का काम काज करन के बाद राज ठाकुर जी का स्मरण करती और कहती था आज वे गुनाह माफ कर दो। बाबा को अपना उत्तम शिक्षण अपनी माँ स ही मिला। आज तो माँ को कोई पूछता ही नही। पर हमारे शिक्षण में माँ का मुख्य स्थान मिलना चाहिये। तभी यह समस्या हल होगी।

राज्यों में बुनियादी शिक्षा : गैर सरकारी रिपोर्ट :

उत्तर प्रदेश मंत्री की रिपोर्ट हो जाने के बाद सबसे पहले अध्यक्ष जी ने उ प्र के प्रतिनिधि श्री करणभाई से कहा कि वे अपने प्रदेश की रिपोर्ट दें। श्री करण भाई ने कहा कि उ प्र की इस सम्बन्ध में स्थिति अन्य प्रदेशों से कुछ भिन्न रही है। सन् १९३७ में जब बुनियादी शिक्षा की योजना बनी तब उ प्र के सामने जाकिर हुसैन कमेटी के अलावा प्रदेश सरकार के द्वारा नियुक्त आचार्य नरेन्द्रदेव कमेटी की भी रिपोर्ट थी। नरेन्द्रदेव समिति ने कहा था कि शिक्षा में स्वावलम्बन सम्भव नहीं है किन्तु बुनियादी शिक्षा के बाकी सिद्धान्त उसे मंजूर थे। उसने कहा था कि प्रदेश में गैर-बुनियादी और बुनियादी विद्यालयों की दो श्रेणियाँ न रखकर एक ही तरह की प्राथमिक शिक्षा दी जाय अतः वहाँ पर समानान्तर प्रणाली नहीं रही। पर इसका नतीजा यह भी हुआ कि बिना किसी मौलिक परिवर्तन के एक नोटिस के द्वारा एक दिन में ही प्रदेश के सभी स्कूल बुनियादी विद्यालय बना दिये गये। पहले यह कक्षा ५ तक ही रखी गई और फिर सन् ५६ में कक्षा ८ तक एकदम बुनियादी शिक्षा लागू करने का आदेश दे दिया गया। किन्तु इस पर भी यह नहीं समझा गया कि कक्षा १ से कक्षा ८ तक का एक ही समन्वित पाठ्यक्रम भी बनना आवश्यक है। यह अलग अलग ही रहा। कक्षा ६ से आगे इसके साथ कृषि का मुख्य उद्योग के रूपमें जोड़ दिया गया यद्यपि साथ ही सामुदायिक पहलू पर भी जोर दिया जाता रहा। कृषि के अलावा कुछ विद्यालयों में कताई-बुनाई, काष्ठकला, धातुकला आदि उद्योग भी रखे गये हैं। किन्तु यह सब नाम मात्र को ही हैं और विद्यालयों की हालत अत्यन्त ही असन्तोषजनक है।

इसके इलाज के रूपमें फिर जुलाई ७२ में समूची प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीकरण कर दिया गया है और फिर उसके लिए एक कानूनी 'बेसिक शिक्षा परिषद' का भी गठन किया गया है। इसने अब कुछ अन्य उद्योग जैसे कि सड़क बनाना, ईंट बनाना, पुल बांधने का काम आदि सामुदायिक उद्योग भी चालू किये हैं। सन् १९६६ से गैर सरकारी स्तर पर काम कर रहे उत्तर बुनियादी विद्यालय सेवापुरी के काम से सन्तुष्ट होकर सरकार ने अपने लिये भी अब उत्तर बुनियादी पाठ्यक्रम

स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार से उ प्र में माध्यमिक स्तर पर भी बुनियादी शिक्षा स्वीकार कर ली गई है।

किन्तु हमारे प्रदेश में इस दिशा में अच्छा काम तो गैर सरकारी स्तर पर ही हो रहा है और सेवापुरी को सेवा भारती, कौसानी का लक्ष्मी आश्रम, सिल्याराकी बुनियादी शाला हरिद्वार गुरुकुल, रणीवां का बुनियादी विद्यालय और देहरादून का विविध बुनियादी विद्यालय इसके अच्छे नमूने हैं। कौसानी की संस्था सरला बहन ने स्थापित की थी जो कि पहाड की अच्छी सेवा कर रही है। सेवापुरी के विद्यालय को अब सरकार ने भी मान्य कर लिया है। इसी प्रकार से गोविन्दपुर के आदिवासी क्षेत्र में आदिवासी बालकों के लिये भी श्री प्रेम भाई अच्छा काम कर रहे हैं। ये हमारे प्रदेश के काम के कुछ अच्छे नमूने कहे जा सकते हैं। यह सब होने पर भी यह तो साफ है कि अभी उ प्र मे बुनियादी शिक्षा का जड पकडना बाकी है और सरकार को इसके लिए अपनी नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा।

इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर अब हमने प्रदेश मे 'नयी तालीम समिति' की भी स्थापना कर ली है जिसके अध्यक्ष श्री अक्षय कुमार करण और मंत्री श्री बंशीधर श्रीवास्तव हैं। इस समिति की अब तक तीन बैठकें हो चुकी है और समिति शिक्षा मे आमूल परिवर्तन के लिए एक उप समिति के माध्यम से विचार विमर्श कर रही है।

बिहार —बिहार की रिपोर्ट श्री द्वारिका बाबू ने दी। उन्होंने कहा कि बिहार मे बुनियादी शिक्षा को ले जाने का श्रेय स्व डा राजेन्द्र प्रसाद जी को है। द्वितीय युद्ध के समय जब अन्य प्रदेशों मे बुनियादी शिक्षा लगभग समाप्त कर दी गई तब भी बिहार मे यह तत्कालीन बिहार गवर्नर श्री रजतफोर्ड के प्रयासों से, जो कि बुनियादी शिक्षा के बहुत बडे प्रशसक थे, यह वहाँ चालू रही और काफी हद तक आगे बढी। बिहार मे बुनियादी शिक्षा को हम तीन मुख्य कालो में बाँट सकते हैं। पहला काल तो सन् १९३८ से १९४७ तक का रहा। इसे हम प्रयोग काल कह सकते हैं। दूसरा काल सन् १९५६ तक का रहा इसे हम सगठन काल कह सकते हैं। सन् ५६ से आगे का समय विराम का समय रहा है और ६८ से के बाद इसका ह्रास काल आरम्भ हो गया है। बिहार का हमारा अनुभव है कि बुनियादी शिक्षा ने बहुत काम किया था। अस्पृश्यता निवारण मे, पर्दा प्रथा को मिटाने मे और ऐसी ही अन्य सामाजिक बुराइयों को निरस्त करने का जो भी काम बिहार में हो गया है, उसमें इन बुनियादी विद्यालयों का बहुत बडा हाथ है। पर सरकार यह सब समझने मे असमर्थ रही है। अभी प्रदेश मे यद्यपि कई बुनियादी विद्यालय है, बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय भी हैं किन्तु फिर भी प्रदेश सरकार की ओर से अभी इसे उचित प्रोत्साहन नहीं है।

अभी इसके छात्रो का विश्व विद्यालय के लिये प्रवेश की सीधी अनुमति नही मिल सकी है।

बीच मे तो सरकार ने बुनियादी विद्यालय नाम भी मिटा दिया था पर बिहार के बुनियादी शिक्षा के शिक्षको के सगठन 'बिहार बुनियादी शिक्षक सघ' ने आन्दोलन करके फिर सरकार को इसको मान्य करने पर विवश कर दिया और फिर से ले लिया गया है। पर अब बिहार नयी तालीम समिति ने सरकार के सामने एक १० वर्षीय योजना रखी है जिस पर अभी विचार चल रहा है। उसकी मुख्य बातें यह हैं कि —

बुनियादी स्तर और विद्यापीठ स्तर। इसमें अभी क्रमश ३५००, २१००, १३० और ४ बुनियादी शिक्षा सस्थान काम कर रहे हैं। २१०० प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में से ५६० तो 'गुजरात नयी तालीम सघ' सीधे ही अपनी देखरेख मे चला रहा हैं। हमारे इन ५६० विद्यालयो में हमने दो साल में ही लगभग २ लाख की खादी का निर्माण किया हैं जिसमें लगभग २० हजार छात्र लगे थे। हमारे १३० उत्तर बुनियादी विद्यालय सरकार के द्वारा मान्य हैं। इनमें हम श्रममूलक शिक्षा चलाते हैं और हमारे रिजल्ट भी उत्तम हैं। हमारे छात्र ९० प्र श से भी अधिक उत्तीर्ण होते हैं। गुजरात में लगभग १०० प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र हैं और वे सरकारी तथा गैर सरकारी सभी के लिए एक ही तरह के हैं। इससे हमारे शिक्षकों को सरकार के यहाँ भी काम करने में कोई बाधा नहीं होती। इनमें ८० तो गैर सरकारी क्षेत्र के ही है। प्रदेश में कुल ५ स्नातकोत्तर शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र हैं जिनमें ४ गैर सरकारी हैं। विद्यापीठें कुल ५ हैं और सरकार ने इन्हें मान्य किया हैं। इनकी अपनी पदवियाँ हैं। अभी कुछ समय पहले सरकार ने गुजरात के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री मनुभाई पचोली की अध्यक्षता में एक मूल्याकन कमेटी कायम की थी उसने बुनियादी शिक्षा के उन्नयन के लिये कई मूल्यवान सुझाव दिये हैं। अब सरकार उन पर अमल करने का प्रयास कर रही हैं।

किन्तु इधर हमारे सामने कुछ नयी बाधायें आ गई हैं। खासकर ४ मुख्य बाधायें हैं —

१ पहली तो अभी हाल ही में पारित भूमि सीमाबंधी कानून हैं जिसके तहत अब बुनियादी विद्यालयो को भी शिक्षा हेतु से उतनी जमीन रखने की दिक्कत हो रही हैं जो वे अभी तक रखते आये हैं और जिसके सहारे वे सरकार पर निर्भर किये बिना भी अपना काम अच्छी तरह स चला रहे थे।

२ दूसरी बाधा यह आई हैं कि अभी सरकार ने कुछ शिक्षकों की मागपर आवासीय नियमों में ढील कर दी हैं कि शिक्षक चाहे तो छात्रालयों में न भी रह सकते हैं। इससे अनुशासन रखने की भारी समस्या आ गई है। हमने अब तक शैक्षिक कारणोंसे ही यह अनिवार्य रखा था पर अब सरकारी कानून से यह बात बिगाड दी गई हैं।

३ तीसरी बाधा यह हैं कि अब सरकार ने एक नियम यह बनाया हैं कि अब शिक्षकों की नियुक्ति सरकारी बोर्ड करेगा पर अभी तक हम अपने विद्यालयों के लिये अपने स्वय के शिक्षक रखते आये हैं। अब एक तो इससे हमारे मन के अच्छे शिक्षक हमें कैसे मिलेंगे और दूसरे यह विद्यालयों की भी स्वायत्तता में भी हम दखल मानते हैं।

४ चौथी बाधा यह है कि अब १०+२+३ की प्रणाली के मातहत सरकार ने उद्योग शिक्षण और उसकी परीक्षा में ढील दे दी है। अभी एक केन्द्रीय कमेटी ने यह कहा इसलिय यह किया गया है। अब हम यह नही समझ पाते कि सरकार एक तरफ तो शिक्षा में परिवर्तन की बात करती है और उसे कार्यपरक बनाने की बात करती है और दूसरी तरफ उसमें से उद्योग को ही समाप्त कर रही है। इस पर भी मजा तो यह है कि सरकार ने अपने इस बचकाने कदम को एक 'क्रान्तिकारी कदम' कहा है।

हमें इन प्रतिगामी कदमों के विरुद्ध लडना होगा और हम अखिल भारत नयी तालीम समिति से भी अपील करते हैं कि वह इसमें हमारा साथ दे। शिक्षा में स्वायत्ता के लिय हम काम कर और तथा कथित यूनीफॉर्मिटी के नाम पर दखल का रोक। यह सब कोठारी कमीशन के नाम पर हो रहा है पर इस कमीशन न तो बुनियादी शिक्षा का पीठ पर छुरा भोका है। शिक्षा से उद्योग को समाप्त करने का यह आदेश नितान्त गलत है और इसका सख्त विरोध होना आवश्यक है। गुजरात म श्री जुगतराम भाई ने भी इसके लिय आवाहन किया है।

तमिलनाडु —तमिलनाड की रिपोर्ट तामिलनाडु वेशिक एज्युकेशन *सान्यटी के मंत्री श्री के मुनियान्डी न दी। उन्होंने कहा कि सन् १९४५ में तामिलनाडु* में वेशिक एज्युकेसन सोसायटी का गठन किया गया था। पहले मद्रास राज्य में बुनियादी शिक्षा का काम अच्छा चला था। सन् १९६१ तक राज्य में ४५०० बुनियादी विद्यालय थे और ४ बुनियादी प्रशिक्षण केन्द्र थ। किन्तु सन १९७३ में अचानक सरकार न सभी बुनियादी विद्यालयो का बुनियादी नाम समाप्त कर दिया और अब सभी प्राइमरी स्कूल हैं। यह कोठारी कमीशन के कारण हुआ। अभी तामिलनाडु म केवल हम ही कल्लू पट्टी में एक बुनियादी विद्यालय चलाते थ और हमारे छात्र यद्यपि सरकार की एस एस एल सी की परीक्षा देकर विश्व विद्यालय में जा सकते थ पर अब सरकार न हमें भी बुनियादी शिक्षालय नाम छोडकर केवल हाईस्कूल कहने को कहा है। हमको वह मानना पडा है। यद्यपि हमारे पाठ्यक्रम को अभी तो वैसा ही रखा गया है और उसमें उद्योग के लिय काफी स्थान है। किन्तु सरकारी का यह कदम नितान्त प्रतिगामी है और इसका विरोध होना ही चाहिय। सरकार ने बुनियादी शिक्षा को मान्य करने का ढोग तो किया पर उस उसन कभी सही रूप में माना ही नही। समानान्तर प्रणाली चलाकर इसे समाप्त किया गया है। अब रहा सहा काम कोठारी कमीशन ने पूरा कर दिया।

पश्चिम बगाल —पश्चिम बगालकी रिपोर्ट वहाँ की नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री क्षितीशराय चौधरी न दी। उन्होंने कहा कि बगाल का इतिहास इस मामले में नितान्त पिछडा है। किन्तु वहाँ आज शिक्षा में परिवर्तन की माँग सर्वाधिक

तेज हैं। अभी तो स्कूल कालेज चलते नहीं। विश्व विद्यालय बंद हैं, परीक्षायें होती नहीं। वे दो तीन साल में क्या कभी एक बार हो जाती हैं। हम तो इस सम्मेलन से कुछ संदेश लेने आये हैं। बंगाल में भी कुछ गैर सरकारी स्तर पर थोड़ा बहुत काम हो रहा है। हमारे चित्तभूषण बाबू 'समग्र ग्राम सेवा' का अध्यासक्रम लेकर एक बहुत अच्छा केन्द्र चला रहे हैं। वैसे ही हम भी दलारामपुर में कुछ ग्रामस्तर पर काम कर रहे हैं। किन्तु हमारे सामने भी वही समस्यायें हैं जिनका जिक्र अभी अन्य प्रतिनिधियों ने किया कि सरकार न इसे माना नहीं और हम भी यदि कुछ करना चाहते हैं तो वह उसमें भी बाधा पैदा करती है। हमारा कहना यह है कि आज सरकारी एक हाईस्कूल खोलने पर सरकार कम से कम ५० हजार रुपया लगाती है। तो हम कहते हैं कि आप एक बुनियादी विद्यालय को कुछ जमीन और एक बार कुछ रकम देकर उसे अपने पैरों पर खड़ा क्यों नहीं होने देते? हमारा विश्वास है कि ऐसा करने से शिक्षा में स्वावलम्बन सध सकता है। यदि हम पैसों के आधार पर शिक्षा की योजना करते रहे तो फिर हम पाश्चात्य औद्योगिक ढाँचेके शिकार हो जायेंगे, जो कि आज स्वयं ही लड़खड़ा रहा है। मैं चाहता हूँ कि हम यहां पर इस सवाल पर विचार करें और इसके लिये एक पाठ्यक्रम भी तैयार करें। यह जो १०+२+३ की योजना है यह तो 'इलिट' के लिये है पर लाखों ग्रामीणों के लिये क्या होगा जो कि इसमें कहीं भी नहीं आते। अतः 'स्कूल से बाहर की शिक्षा' पर भी जोर दिया जाय और अनौपचारिक शिक्षा पद्धति का विकास हो। इस तरह की शिक्षा के लिये हमें मास मूवमेण्ट चलाना होगा।

राजस्थान —राजस्थान की रिपोर्ट **श्री पूर्णचन्द्र जी जैन** ने दी। उन्होंने कहा कि राजस्थान में पिछले ६ साल से नयी तालीम समिति का संगठन काम कर रहा है। सन् ३८ में जब कि देश में बुनियादी शिक्षा का आरम्भ हुआ तो तब तो राजस्थान था ही नहीं। अलग अलग कुछ रियासतें थीं जो कि इस तरह के कार्य से एकदम ही अछूती थीं। किन्तु उनमें भी राष्ट्रीयता का वातावरण तो था ही। जब विनोबा जी ने ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य का काम आरम्भ किया तो इसी सन्दर्भ में यहां पर कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये नयी तालीम का आरम्भ हुआ यह हम कह सकते हैं। इस तरह का काम करने वाली लगभग १५ संस्थायें अब भी वही काम कर रही हैं। पर हम यह नहीं कहेंगे कि वे बुनियादी शिक्षा की ही संस्थायें हैं। वे परम्परागत शिक्षा के साथ बस कुछ गांधी-विचार को लेकर चल रही हैं। इनमें से अनेक में हमने चौथी श्रेणी के कर्मचारी नहीं रखे हैं और यह काम स्वयं ही शिक्षक या छात्र करते हैं। यह वर्ग हीनता की ओर कदम कहा जा सकता है।

मध्यप्रदेश —मध्यप्रदेश की रिपोर्ट **श्री काशीनाथ जी त्रिवेदी** ने दी और कहा कि आज तो प्रदेश की स्थिति अत्यन्त ही निराशाजनक है। सन् ५६ में जब

आज का म प्र बना था तो उस समय तक उसके बनाने वाले भागो में नयी तालीम का कोई खास काम नही था। हाँ केवल पहले म भा क्षेत्र में वहाँ मुख्यमत्री श्री **रविशकर जी शुक्ल** ने एक ' विद्या मदिर योजना ' चलाई थी जो कुछ नयी तालीम के ढग पर थी। उनके नेतृत्व में म भा ने बुनियादी शिक्षा चलाने का तय किया था और उसके लिये कई बुनियादी स्कूल और प्रशिक्षण विद्यालय भी खोले थे। बुनियादी शिक्षा का सही ढग पर अमल हो इसके लिये कुछ अध्यापको और प्रशासन के लोगो को एक अध्ययन मडल के रूप में बिहार और गुजरात भेजा गया था जिसने वापस आकर सरकार को अपनी जो रिपोर्ट दी वह सरकार ने मान्य की और काम अच्छा चला। किन्तु म प्र बनने पर काम में रुकावट आ गई। म भा के समय में ' बुनियादी *शिक्षा सलाहकार बोर्ड* ' बना था, वह *कुछ समय तक तो चालू रखा गया पर फिर* ६३ के साल में उसे समाप्त कर दिया गया। बुनियादी और प्रशिक्षण विद्यालयों की सख्या भी कम कर दी गई। अब तो सारे म प्र में केवल ४ या ५ ही प्रशिक्षण विद्यालय हैं और उनका नाम भी 'शिक्षा महाविद्यालय' हैं बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय नही। कहीं भी उद्योग नही है और उसे केवल एक ' विषय ' के रूप में ही रखा गया है।

अभी जो थोडा बहुत कुछ काम हो रहा है वह गैर सरकारी क्षेत्र में ही हो रहा है। पर अब वह भी सकट से गुजर रहा है। सरकार ने उसे मान्य नहीं किया अत मदद का तो कोई सवाल ही नही है। *करजगांव में* **श्री दाढनकर जी** *पिछले* कई साल से एक बहुत ही अच्छा काम कर रहे थे पर अब उन्हे भी मदद के अभाव में अपना काम बद करना पडा। कस्तूरबा ग्राम मे भी कस्तूरबा ट्रस्ट ने एक बुनियादी *विद्यालय चलाया है पर उसे अब उत्तर बुनियादी करने की बात आई तो ट्रस्ट के* नियमानुसार तो वह उसे कोई मदद नही कर सकता था सरकार ने भी उसके लिये कोई मदद करने से इन्कार कर दिया। इसी तरह से होशगाबाद में **श्री बनवारी लाल** जी कुछ काम कर रहे थे, पर वह भी बद है और रतलाम में भी ऐसा ही हुआ। म प्र गांधी निधि की ओर से हमने टवलाई (धार जिले) में ' कुमार मदिर ' बुनियादी शाला का काम आरम्भ किया था वह किसी तरह अभी तक चल रहा है पर उसपर भी सकट है। इस साल से ९ वे १० वी कक्षा में चालू की है। म प्र की हालत तो यह है कि पिछले ८ साल में वहाँ बुनियादी शिक्षा का एक सम्मेलन तक भी नही हो सका है।

इसके बाद **श्री गुरुशरण** ने **श्री** *सुब्बाराव जी के नेतृत्व मे अब जौरा मे* आरम्भ हुए काम की जानकारी दी और कहा कि वहाँ अच्छा आरम्भ हुआ है और बालवाडी का काम तो इतना अच्छा चल रहा है कि लोग अपने बालकों को उसमे भेजने के लिये आग्रह करते जा रहे है। एक विद्यापीठ की योजना भी बनी है जिसका आरम्भ युवक मित्र कर रहे हैं।

महाराष्ट्र :—महाराष्ट्र की जानकारी श्री वसुभाई पटेल ने दी और कहा कि यहां पर तो नयी तालीम की मान्यता नहीं है। सरकार ने साफ कहा है कि वह इसे मानती नहीं है। पर विद्यालयों और विश्व विद्यालयों में भी पाठ्यक्रमों में बुनियादी शिक्षा के तत्व काफी हद तक शामिल किये गए हैं। अभी महाराष्ट्र में कुल लगभग ६ हजार हा स्कूल और ३० हजार प्रा स्कूल होंगे। हर हा स्कूल स्तर तक 'कार्यानुभव' को मान्य किया गया है और १० वीं तक 'समाज सेवा' को भी 'विषय' के रूप में मान्यता है। विद्यालयों में कई तरह के उद्योग भी दाखिल किये गये हैं और मातृभाषा में उसका साहित्य भी उपलब्ध कराया गया है। उसी प्रकार से शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों में भी कई तरह के कार्यक्रम शामिल किये गये हैं और महाराष्ट्र राज्य में खासकर फन्क्सनल लिटरेसी का काम तो बहुत ही अच्छा हुआ है। उसे इसके लिये तो 'पहलवी' अवार्ड भी मिला है 'युनेस्को' की ओर से। राष्ट्रीय सेवा का अनिवार्य कर दिया गया है। बम्बई में 'आल इण्डिया बेसिक एज्युकेशन काउन्सिल' नाम की एक गैर सरकारी संस्था हम लोगों ने कुछ समय पहले बनाई थी और जब सेवाग्राम में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का काम बंद हो गया तो इस संस्था ने वह काम इस प्रदेश में जारी रखा है। उसने इसके बारे में काफी अच्छा साहित्य भी प्रकाशित किया है और शिक्षा की नवीन तकनीकों के प्रकाश में बुनियादी शिक्षा में भी नयी तकनीकें दाखिल की हैं। पिछले समय तामिलनाडु के मदुराई नामक स्थान पर कार्यानुभव पर कालेजों व विश्वविद्यालयों का एक 'वर्कशाप' भी हुआ था तो बेसिक एज्युकेशन काउन्सिल को भी इसके लिए बुलाया गया था। कोठारी कमीशन ने अनेक तरह की 'टास्क फोर्स' कायम किये थे उनमें भी हमारी संस्था को स्थान दिया गया था। हमने बार बार कहा है कि शिक्षा में सर्वत्र ही 'सेल्फ हैल्प' के तत्व दाखिल किये जाने चाहिए किन्तु यह बात अभी तक नहीं हुई है। हमने भारत भर में इसके लिए आन्दोलन करने का तय किया है और कई राज्यों से हमारा सम्पर्क है। हम जब तक वैज्ञानिक परिवेश को बुनियादी शिक्षा में शामिल नहीं करेंगे तब तक अपने उत्तम सिद्धान्त भी कोई असर नहीं कर सकेंगे। अब हम प्रयास करेंगे कि महाराष्ट्र में भी नयी तालीम का संगठन बन जाय।

उडीसा :—उडीसा की रिपोर्ट श्रीमती अन्नपूर्णा महाराणा ने दी और कहा कि वहाँ तो ३८ में ही बुनियादी शिक्षा का आरम्भ हुआ था और उडीसा उन प्रदेशों में है जहाँ यह काम पहले बहुत अच्छे ढंग से चला। किन्तु सरकार ने जब युद्ध के बहाने ३९ में इसे बंद कर दिया तो सरकारी शिक्षकों में से कई लोगों ने स्तीफा देकर श्री गोपबन्धु चौधरी के नेतृत्व में 'उत्कल मौलिक शिक्षा मंडल' की स्थापना कर स्वयं इस काम को आगे बढ़ाया। ५१ में सरकार ने फिर इसे मान्य कर लिया और एक 'बुनियादी शिक्षा बोर्ड' भी बना दिया। ६१ तक प्रदेश में लगभग ७६० बुनियादी

विद्यालय थे। किन्तु वहाँ भी सरकार ने अन्य जगहो की जैसी ही नीति अपनाई कि हमारे छात्रो को आगे की शिक्षा की सुविधायें नही दी न हमें ही उत्तर बुनियादी के लिये मान्य किया। इससे हमारे बालक आगे पढने से रह गये। किन्तु वे जब अमरीका गये तो वहाँ के शिक्षाअधिकारियो ने उन्हे मान्य किया और वे वहाँ से एम ए आदि की उच्च कक्षायें पास करके वापस आये तो सरकार ने उसे मान्य किया। यह हमारे मानस की दासता का उज्वल नमूना ही माना जाना चाहिये। फिर सरकार ने अपनी निजी बुनियादी शिक्षा चलाई किन्तु वह उस तरह से कारगर नही है जैसे हम करते थे। हमारे विद्यालयो में सामुहिक जीवन, लोकतन्त्र का प्रशिक्षण, तथा सफाई और सुरुचिपूर्ण जीवन की तालीम दी जाती थी पर अब ये बाते नही है। अब तो बस एक रुटीन है। आज जो चल रहा है उसमे तो हम अब अनिवार्य शिक्षा की बात करने से डरते है क्योकि इससे तो लोग अनपढ ही रह जाय तो कोई हर्ज नही है। हम अभी शायद १ घटे की पाठशाला का प्रयोग करना चाहिये या वह भी विचारणीय हो सकता है जो चीन मे हो रहा है 'हाफ स्कूल' का प्रयोग। शिक्षा कार्य से ही दी जानी चाहिये।

३०–११–७४: प्रातः पवनार राज्यो की रिपोर्ट जारी

दिल्ली —दिल्ली की रिपोर्ट श्री सी ए मेनन ने दी और कहा कि दिल्ली में अभी तक कोई नयी तालीम सम्मेलन नहीं हो सका है और न वहाँ पर लोगो में इसके लिये कोई दिलचस्पी ही है। लोग जब राजघाट पर गाधी समाधि पर जाते हैं तो वहाँ पर कताई का कम चलता ही रहता है और लोग उसमें सामिल होते हैं। सरकार की ओर से बुनियादी शिक्षा के लिये कोई विचार या कार्यक्रम नही चलता है। पर गैर सरकारी स्तर पर गाधी स्मारक निधि कुछ काम कर रही है। वह बालवाडियाँ चलाने और गाँवो में नयी तालीम का प्रचार करने के लिये समय समय पर कार्यवाही करती है। उसी प्रकार से किंग्स्वे कैंप मे हरिजन सेवक सघ भी नयी तालीम के ढग पर ही बालकको के औद्योगिक प्रशिक्षण का काम करता है और वह भी वहाँ एक बुनियादी विद्यालय चलाता है। पर अब उसका रूप भी लगभग प्रचलित हाईस्कूल जैसा ही हो गया है। पहले स्व जाकिर साहब के समय मे जामिया मिलिया ने इस दिशा मे काफी अच्छा काम किया था पर अब वहाँ भी यह काम लगभग बद ही मानना चाहिये। वे शिक्षको का एक प्रशिक्षण विद्यालय चलाते है पर यह प्रचलित शिक्षाके लिये ही शिक्षक तयार करता है, क्योकि सरकार ने दूसरी तरह की कोई शिक्षा रखी ही नही है। यह राजधानी का चित्र है। दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रो मे भी कोई दूसरी तस्वीर नही है। नई तालीम के लिये वहाँ भी न कोई सरकारी प्रयास है न गैर सरकारी स्तर पर ही कुछ हो रहा है। इसलिये दिल्ली मे तो यह काम नये सिरे से ही आरम्भ

करना होगा और हम लोग इस दिशा में सोच रहे हैं कि क्या कुछ किया जा सकता है। हम प्रयास कर रहे हैं कि वहाँ भी नयी तालीम समिति का गठन हो जाय तो फिर कुछ काम आगे बढ़े।

इसके बाद जामिया मिलिया के डा सलामतउल्ला ने कहा कि जहाँ तक जामिया का सवाल है यह सही है कि पहले हमने काफी अच्छा काम किया था। ५५ मे सरकार ने एक कानून बनाया था कि प्रदेश में बुनियादी शिक्षा चलेगी किन्तु बाद का सरकार की नीयत ही बदल गई और वह प्रयोग बंद कर दिया गया। जामिया तो मुख्यत शिक्षक-प्रशिक्षण का ही केन्द्र है किन्तु जब आसपास कहीं भी बुनियादी शिक्षा ही नही है तब हम उसके लिए शिक्षक भी कैसे तैयार करें। यह हमारी समस्या है। हमारे शिक्षकों का हम यद्यपि अपने पास रहने तक तो बुनियादी शिक्षा के ही ढंग पर शिक्षित करते हैं। उन्हें कुछ उद्योग भी सिखाते हैं और कहते हैं कि चाहे विद्यालयों में भले ही इसका कोई उपयोग न हो तो भी सीखने में कोई हर्ज नही है और इस प्रकार से आपके पास एक हुनर तो रहेगा। पर फिर भी उनपर हमारी बातका असर कम ही होता होगा। अभी तो बस इतनी ही सुविधा है कि सरकार ने अभी हमें यह बात साफ साफ नही कही है कि आप हम (सरकार को) परेशान न करो। दिल्ली की हालत तो यह है कि वहाँ सारी शिक्षा सरकारी ही है और यदि कोई गैरसरकारी प्रयास होता तो हम उसका लाभ ले सकते थे। अब हमने कार्यानुभव पर कुछ ध्यान देना आरम्भ किया है और हमारी कोशिश यह है उसे सभव स्तर तक बुनियादी शिक्षा के अनुकूल किया जाय। अब हमें लगता है कि समझौता करने के लिये तैयार रहना ही होगा।

आन्ध्र प्रदेश —आन्ध्र प्रदेश की रिपोर्ट हैदराबाद बुनियादी विद्यालय के आचार्य **श्री श्रीधर जी** ने दी और कहा कि आज प्रदेश में हजारों हाई स्कूल हैं पर उनमें बुनियादी शिक्षा की झलक भी है यह कहना कठिन ही है। फिर भी कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ पर पूरा नही तो कुछ मान में बुनियादी शिक्षा के कुछ पहलुओं पर अमल हो रहा है। ऐसा एक मिशनरी स्कूल है जहन्नमा में। वह आधुनिक टेक्नालाजी के साथ कुछ तालीम की व्यवस्था करता है और उसमें श्रम के साथ सामूहिक जीवन तथा अन्य बातें सामिल की गई हैं। इसी तरह से एक टैगोर होम भी है जिसने एक नया ही प्रयोग आरम्भ किया है कि विद्यालय का सम्बन्धित गाव के लिये उपभोक्ता सामग्री का उत्पादन केन्द्र सा बना दिया है। गाँव को क्या चाहिये वह विद्यालय पैदा करने का प्रयास करता है। इस तरह से यह समाजीकरण की शिक्षा के साथ स्वावलम्बन की भी शिक्षा है। कई विद्यालय सागभाजी पैदा करने और पौधे लगाने का भी काम करते हैं। पर बाजार की कठिनाई उनके सामने है। हमारा अनुभव यह है कि हम उद्योग और समूहजीवन के साथ भी बालकोंका बौद्धिक स्तर प्रचलित विद्यालयों से कहीं ऊँचा

रखते हैं और यह उनको जवाब हैं जो कि बुनियादी शिक्षा के कम बौद्धिक स्तर की बातें करते हैं। हमने देखा है कि इस कामका अच्छा प्रभाव पडता है और लोग हमारे काम से भी संतुष्ट हैं।

किन्तु मुझे एक बात खासकर कहनी है कि मुझे लगता है कि बुनियादी शिक्षा को कुछ मार्क्सवादी दृष्टि भी रखनी चाहियें। हमें देश के समूचे ढाचे से अलग नही होना है तो फिर शिक्षा को सामाजिक परिवेश में मिलाकर ही चलाना होगा। केवल गाधी या श्रीमन् जी की बात की रट लगाने से ही नही होगा बल्कि हर रोज समाज मे जो परिवर्तन होते हैं उन्हे भी हम ध्यान में रखकर चले। हम श्रम परक कार्यक्रम ले तब शिक्षा दें। समाजवादी देशो के उदाहरण से हम कुछ सीख सकते है। यद्यपि मेरा मानना है कि शिक्षा का एकदम ही फैक्ट्रीवर्क भी नहीं बनना होगा। इसमे व उसमें फर्क होता है और वह रहना चाहिये। नयी तालीम का फैक्ट्री व शिक्षा का समन्वय साधना होगा।

अन्य राज्यो से कोई गैर सरकारी रिपोर्ट नही आई।

सरकारी रिपोर्ट :

उ. प्र.:–श्री ईश्वर शरण गौड (उप शिक्षा (बुनियादी) निदेशक) :–

उ प्र में बुनियादी शिक्षा का आरम्भ भी देश के साथ ही ३८ में हो गया था और यह पहला राज्य था जिसने समूची शिक्षा के लिये इसे स्वीकार किया था। नरेन्द्र देव कमेटी ने सिफारिश की थी कि दो तरह के स्कूल नहीं चलाये जाने चाहिये। अतः सरकार ने सभी प्राथमिक विद्यालयो के लिये बुनियादी प्रणाली ही मान्य की। बादको फिर इसके सही उन्नयन के लिये राज्य सरकार ने एक कानून सम्मत 'बुनियादी शिक्षा परिषद' का भी गठन कर दिया जो अब इस काम को देखती है और बुनियादी शिक्षा के निदेशक उसके पदेन सचिव होते हैं। पहले से हमारे निदेशक श्री श्रीनिवास जी शर्मा ने इस दिशा में कुछ सुझाव दिये थे जो कि सरकार ने मान्य किये हैं और वह कार्य अभी चल रहा है। उसमे विद्यालयो को विभिन्न उद्योगो से सबधित किया जा रहा है। किन्तु हमारी अभी समस्या यह है कि हम यह काम प्रदेशके सभी विद्यालयो मे शीघ्र कैसे करें। क्योकि यदि हम सख्या का महत्व कम माने तो काम नहीं होता है। तब तो यह बस एक 'रोटीन' मात्र हो जाता है। सरकार का प्रयास है कि प्रदेश की समूची शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के अनुकूल कैसे किया जाय। इसके लिये माध्यमिक स्तर तक तो कृषि को मुख्य उद्योग माना गया है और कुछ स्थानों पर कुछ अन्य उद्योग भी दाखिल किये गये हैं। यह काम अभी सन्तोष जनक ढग से चल रहा है।

किन्तु हम यह बात भी ध्यान में रखे कि शिक्षा जैसे विषय में बहुत अधिक और द्रुत परिवर्तन करने से भी कोई लाभ के बजाय हानि ही अधिक होने की सम्भावना

हैं। शान्ति की बात सुनने में अच्छी अवश्य लगती है पर इससे मनुष्य का निर्माण नहीं होता। मनुष्य तो सतत विकासशील प्राणी है और यह काम सातत्य से ही हो सकता है। शिक्षा भी सतत विकास की ही प्रक्रिया है। हम देखना यह है कि हम शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों भाषा साहित्य विज्ञान गणित आदि में बुनियादी शिक्षा के तत्व कैसे दाखिल करें। इस दिशा में सबसे बड़ी जो दिक्कत है वह यह है कि हम इसके लिये योग्य शिक्षक नहीं मिलते हैं। हम इसके लिये भी प्रयास कर रहे हैं।

गुजरात –श्री गोवर्धन भाई (उप शिक्षा (बेसिक) निदेशक)

हमारे यहाँ तो ३८ से ही सरकार बुनियादी शिक्षा के प्रति दृढ निष्ठ रही है और जब श्री श्रीमन जी वहां के राज्यपाल थे तब इस काम को और भी गति मिली थी। हमारे यहाँ सरकार ने कोठारी कमीशन की कार्यानुभव की बात तो मानी पर उसमें बुनियादी शिक्षा के अपने पहले से चलते आ रहे प्रयोग को कम नहीं कर दिया। हमने बुनियादी शिक्षा के सम्यक क्रियान्वयन पर सुझाव देने के लिये श्री मनुभाव पंचोली की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति का गठन किया था उसने कई उपयोगी सुझाव दिये थे जिन पर सरकार अमल कर रही है। फिर कार्यानुभव पर भी एक कमेटी बनाई गई। इस पर फिर यह सोचा गया कि इन दोनों कमेटियों ने लगभग बहुत सी बातें समान कही है अतः इन दोनों का समन्वय किया जाय और कार्यानुभव को बुनियादी शिक्षा का आधार बनाया जाय। अब एक समन्वित पाठ्यक्रम बना है। इसमें कुछ लोग कहते हैं कि समवाय कुछ छूट गया है। शायद यह बात कुछ हद तक सही है पर फिर भी हम इसके प्रति सजग हैं। इन्टीग्रेटेड काम में उद्योग शिक्षण को अनिवार्य रखा गया है और यही बात काफी हद तक विद्यालयों पर भी लागू की जा रही है। हर जिले की पंचायतों को भी शिक्षा के काम से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ दिया गया है और उसको भी कई महत्वपूर्ण दायित्व दिये गये हैं। कई ने तो अपने यहाँ उद्योग के लिये जंगलात विषय भी लिया और सरकार ने वह भी मान्य किया पर इसके लिये शिक्षकों की दिक्कत सबसे पहले आ गई। इस पर अब काम में कुछ सुधार हुआ है और उसमें ५ वीं और ८ वीं के बाद है उद्योग का चयन तय किया गया है।

राजस्थान –श्री मदनलाल गर्ग (उप शिक्षा निदेशक)

राजस्थान तो कई छोटे छोटे-मोटे रियासतों को लेकर बना है। पर इन रियासतों के भी पहले लोग यहाँ से वाग्राम जाकर प्रशिक्षण लेकर जाते थे। राजस्थान बनने पर फिर राज्य में कई प्राथमिक केन्द्र खुले जिनमें समवाय पर अधिक जोर दिया गया था। अब आज इनमें यद्यपि कुछ कमी आई है यानि नाम तो बेसिक अवश्य है पर समवाय की बात उतनी उजागर नहीं रह गई है। उद्योग भी है और

अब कार्यानुभव भी रखा गया है। ८ वी कक्षा तक समाज सेवा को अनिवार्य माना गया है। विद्यालयों के लिये उनकी सुविधानुसार लगभग ५० उद्योग सुझाये गये हैं और वे कोई भी चुन सकते हैं। अभी एक 'सीखो व कमाओ' योजना आरम्भ की गई है जिसके मातहत कई विद्यालय तो अच्छा काम कर रहे हैं। सरकार ने इन विद्यालयों को इस पर आयकर से मुक्ति दी है। इस आय का ७० प्र श बालकों में ही बांट दिया जाता है इसका ५ प्र श रिजर्व भी करते हैं और कुछ विद्यार्थियों को भी देते हैं जो उद्योग शिक्षण के लिये मदद करते हैं। अब यह आप ही तय करें कि यह बुनियादी शिक्षा है या नहीं। पर हमारा विचार तो यह है कि हम इसमें भी बुनियादी शिक्षा की ही भावना से कर रहे हैं। अब व्यवसायीकरण पर जोर दिया जा रहा है और इसी तरह से समाजसेवा के लिये भी कुछ नमूने तैयार किये जा रहे हैं जिनमें कोई न कोई कोर्स भी रहेगा। यह खासकर उन लोगों की दृष्टि से किया जा रहा। जो कि अपनी स्कूली पढ़ाई समय से पहले ही अधूरी छोड़ देते हैं व स्कूल में गये ही बहुत कम हैं। इसमें पढ़ाई और उद्योग का समन्वय होगा। हम यह मानते हैं कि हमें देश की वर्तमान शिक्षा पद्धति में तो आमूल परिवर्तन करना है क्योंकि यह तो एक 'मार्डनम शिक्षा' है। अब यह प्लस कैसे हो यह विचार करने की बात है।

आन्ध्र —श्री मनोहर राव (उप शिक्षा निदेशक और प्राचार्य राज बुनियादी प्रशिक्षण केन्द्र)

मेरे विचार में यह पहला राज्य था जिसने ३७ में बुनियादी शिक्षा पहले अपनाई थी। किन्तु अब तो वहां भी सब जगह की ही तरह से उदासीनता ही है। अभी राज्य में लगभग ३००० जू० ब० स्कूल हैं और प्रशिक्षण का भी ढांचा बुनियादी ढंग पर ही रखने का प्रयास है। यह सेवाकालीन और सेवा पूर्व दोनों ही तरह प्रशिक्षण है। विद्यालयों के लिये एक 'इंटीग्रेटेड पाठ्यक्रम' है जिसमें विभिन्न उद्योगों का समवाय है किन्तु वे अलगाव में नहीं हैं। यह सही है कि हमने बुनियादी नाम नहीं रखा है पर हमारा दिमाग खुला है और हम बराबर ही प्रयोग के लिये तैयार हैं। हमारा विचार है कि पाठ्यक्रम जीवन स्थितियों के अनुसार हो इसलिये हमारे पाठ्यक्रम में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों का पूरा समावेश है। हमने नाम भले ही छोड़ दिया हो पर हम काम वही कर रहे हैं।

किन्तु मैं एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि हम बुनियादी शिक्षा का विचार जनता को नहीं समझा सके हैं। यह काम पहले होना चाहिये। अब समय आ गया है जब हम इसके लिये नये सिरे से पाठ्यक्रम पर भी विचार करें। मैं कहना चाहता हूँ कि नयी तालीम समिति यह काम करे। उसमें सबका प्रतिनिधित्व लिया जाय और फिर सभी प्रदेश उस पर अमल करें। आपको इसका दायित्व लेना होगा।

मुझे आशा है कि सरकारें भी फिर उस पर ध्यान देंगी और मैं कहना चाहता हूँ कि हम तो पहले करेंगे।

उड़ीसा:—श्री भुवनेश्वर मिश्र (उप शिक्षा (बेसिक) निदेशक)

उडीसा मे बुनियादी शिक्षा ३९ में ही आरम्भ हुई थी और अभी वहाँ पर ३५९ जू बे २५ सीनियर बेसिक और ६ पोस्ट बेसिक विद्यालय हैं। सरकार ने बुनियादी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए ५१ मे ही 'उडीसा बेसिक एज्युकेसन एक्ट' बनाया था जिसके मातहत एक 'बेसिक एज्युकेसन बोर्ड' हैं जिसमें सरकारी और गैर सरकारी लोग हैं। सेवाग्राम मे आकर कई सरकारी और गैर सरकारी शिक्षकों और अधिकारियो ने प्रशिक्षण लिया जो फिर राज्य के विभिन्न क्षेत्रो में बुनियादी शिक्षा के काम में लग गये हैं। अभी राज्य मे ६ बेसिक ट्रेनिंग स्कूल है और अगुल में एक बेसिक ट्रेनिंग कालेज भी है। सरकार की नीति इसे पूरा सहकार देने की है और उसने इसके लिये बुनियादी शिक्षा के 'इन्स्पेक्टर' और 'मोबाइल ट्रेनिंग स्क्वायड्स' भी गठित किये हैं। गैर सरकारी स्तर पर भी सरकार बुनियादी शिक्षा की संस्थाओं को प्रोत्साहन देती हैं। ६१ तक राज्य में इस प्रकार से यह काम खूब चला। फिर उस समय चूँकि यह संभव नही था कि हम राज्य में और बुनियादी विद्यालय खोल सकते अत यह तय किया गया कि सभी स्थित प्राइमरी विद्यालयों के शिक्षकों को कुछ बुनियादी शिक्षा देकर उन सबको ही बुनियादी ढग पर कर दिया जाय। इस दृष्टि से फिर पाठ्यक्रम में भी तदनुकूल बदल किये गये। शिक्षक-प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम भी फिर उसके अनुसार बदला गया और अब सरकार पहले सेवाग्राम में बने 'नयी तालीम भवन' (ट्रेनिंग कालेज) के ढग पर इस कार्य का मूल्यांकन करने का काम कर रही है। अभी ६ नये पोस्ट बेसिक विद्यालय चालू हुए हैं और राज्य के सभी शिक्षाशास्त्रियो ने कर्म परक शिक्षा के सिद्धान्त को मान्य कर लिया है।

चूँकि प्रशिक्षण विद्यालयो के पाठ्यक्रम को बुनियादी शिक्षा के ढग पर करने का निर्णय ले लिया गया है अत पहले के बेसिक ट्रेनिंग स्कूल और कालेजो को भी सामान्य क्रम में कर लिया गया है और अब इनसे निकलने वाले शिक्षकों को भी बुनियादी विद्यालयों के लिये लिया जा रहा है। बेसिक एज्युकेसन बाईं भी अब काम नहीं कर रहा है और बाईं के सचिव का पद भी जो कि पहले बेसिक एज्युकेसन का सगठक भी होता था समाप्त कर दिया गया है। अभी जो कुछ बुनियादी स्कूल बचे हैं वे एक सामान्य स्कूल इन्स्पेक्टर के मातहत कर दिये गये हैं। हम यह भी कहना चाहते हैं कि निष्ठावान शिक्षकों का अभाव हमारे यहाँ भी है और इस समस्या का सामना करना ही होगा।

३०।११।७४ दोपहर चर्चा :

सामान्य विषय : आचार्यकुल :

नयी तालीम समिति के सदस्य और आचार्यकुल के संयोजक **श्री वंशीधर श्रीवास्तव** जी ने सम्मेलन के विचार के लिये एक प्रस्ताव भेजा था कि चूंकि आचार्यकुल और नयी तालीम समिति का काम काफी हद तक एक जैसा है और दोनों की शिक्षा जैसे विषय पर एक राय हो तो ठीक है अतः इन दोनों संगठनों के आगे के काम की दृष्टि से यदि दोनों को एक मिली जुली 'समन्वय समिति' हो तो ठीक है। इसमें दोनों के प्रतिनिधि हों और नयी तालीम समिति के अध्यक्ष इसके पदेन अध्यक्ष हों और आचार्यकुल के संयोजक इसके पदेन संयोजक हों। यह प्रस्ताव आचार्यकुल की ओर से उसके संगठक **श्री गुरुशरण** जी ने पढ़ा। इस पर विचार चर्चा हुई।

श्री गुरुशरण ने बताया कि अभी देश के १४ राज्यों में आचार्यकुल का संगठन हो गया है और लगभग १२ हजार सदस्य हैं जो शुल्क देते हैं। आचार्यकुल का एक सामान्य कार्यक्रम बना है पर वह लचीला है और राज्य अपनी आवश्यकतानुसार इसमें फेर बदल कर सकते हैं। इसका एक विधान भी बनाया गया है और अब उसके हिसाब से केन्द्रीय समिति भी बन चुकी है।

श्री श्रीमन् जी ने आचार्यकुल का विस्तार से परिचय देते हुए कहा कि यह पूज्य विनोबा जी ने इस आशा से आरम्भ किया है कि इसके माध्यम से देश की प्रबुद्ध शक्ति देश के काम में आगे आ सके। इसमें तीन बातें खास हैं। पहली तो यह कि यह शिक्षकों का ही नहीं बल्कि उन सभी बुद्धिवादियों, साहित्यकारों, प्राध्यापकों, पत्रकारों आदि का संगठन है जो कि इसके सिद्धान्तों में आस्था रखते हों। दूसरी बात यह है कि यह पक्षमुक्त संगठन है जो समय समय पर देश की अहम् समस्याओं पर अपना अभिमत प्रकट करता है। पिछले समय पर इसने जजों के मामले पर और अभी फिर बिहार आन्दोलन पर अपना अभिमत प्रकट किया है। तीसरी बात यह है कि यह तटस्थ है और बिना किसी हिचक या भय के सही बात कहता है। यह तीनों बातें नयी तालीम के लिये भी सही हैं। अभी सत्तानम् जी ने सुझाया कि भ्रष्टाचार के मामले पर भी विचार हो तो आचार्यकुल इस पर भी विचार कर रहा है। यह बात तो साफ ही है कि इन सभी बातों का शिक्षा से गहरा सम्बन्ध है। हम चाहते हैं कि आचार्यकुल का व्यापक स्तर पर संगठन हो और मैं तो नयी तालीम के हर

कार्यकर्ता से कहूँगा कि वह इसे भी अपना काम ही माने। अत इस तरह की कोई समन्वय समति हो तो अच्छा है। यह दोनो के लिये सामान्य कार्यक्रम तैयार करने में मददगार होगी।

आन्ध्र के उप शिक्षानिदेशक **श्री मनोहरराव** जी ने कहा कि यह विचार तो बहुत अच्छा है पर देश मे अन्य भी शिक्षक सघ है उन्हे भी इसके फोल्ड में लेना चाहिय। वगाल के **श्री प्राचार्य दत्त** न कहा कि मुझे तो शका है कि हमारे यहाँ कोई इस जानता भी है कि नही। शिक्षको को अपना एक व्यावहारिक नैतिकता का विकास करना चाहिय और यह आचार्यकुल यह काम भी करे। यह 'वर्ल्ड एज्युकेसन फेलोशिप' की ही तरह स एक अतरराष्ट्रीय सगठन बन।

चर्चा के बाद एक समन्वय कमेटी बन यह तय हुआ और निश्चय हुआ कि नयी तालीम समिति की अगली बैठक मे यह काम हो।

नयी तालीम का नया पाठ्यक्रम :

सदस्यो न यह भी चर्चा उठाई कि जाकिर हुसैन कमेटी का पाठ्यक्रम उस समय बना था तब से आज काफी परिवर्तन हो गय है अत नय सिरे स फिर इस पर विचार होना चाहिय। इस पर अध्यक्ष न कहा कि हम यह बात याद रखें कि हम कोई एकदम नया पाठ्यक्रम बनान नही जा रहे है। बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त तो वही है जो उस कमेटी न तय किय है। कार्यान्वयन मे कुछ इधर उधर के बदल हो सकते है पर हम मूल सिद्धान्त नही छोडन जा रह है। सरकार ने बुनियादी शिक्षा के साथ जिस तरह का व्यवहार किया है उसे दखते हुये अभी अवश्य कुछ कन्फ्यूजन है हम उस ही दूर करन का काम करें। बुनियादी शिक्षा की शुद्धता बनाये रखने की आवश्यकता है। उस समय बापू ने केवल कताई हो इसके लिये एक उद्योग माना था किन्तु यह तो इसलिय था कि उन्होन कहा कि हमे कृषि का अनुभव नही है, इसलिये अभी कताई ही रखें। पर अब हमने खेती, नियोजन आदि का काफी अनुभव प्राप्त कर लिया है अत ये बातें भी हम उसमे सामिल कर सकते है। जैसे विनोबा जी कहते है कि यह नित्य नयी तालीम हो तो हमे नयी बदलती परिस्थितियो के अनुसार भी करना होगा। **श्री पूर्णचन्द** जी न कहा कि हम यह तय करे कि इस पाठ्यक्रम के क्या मुद्दे होंगे। **श्री वजुभाई** ने कहा कि हम बुनियादी शिक्षा के कन्सप्ट को लेकर काम करें। हम यह स्पष्ट करें कि 'वर्क बेस्ड पाठ्यक्रम' कैसे हो। आप इस क्षेत्र मे काफी श्रम है। हर स्थान को फिर अपने लिये पाठ्यक्रम पर अमल करने की पूरी छूट रहे पर गाइड लाइन्स रह जो सबके लिये हो? **क्षितीश राय चौधरी** ने सवाल उठाया कि यह पाठ्यक्रम किस स्तर तक हो यह बात पहले साफ कर ली जाय। हम शायद है कि स्कूल को ही ध्यान में रखकर काम कर रहे है पर हमारे देश का अधिकाश

तो निरक्षर हैं उसके लिये हम किस तरह की शिक्षा का प्रबन्ध करने जा रहे हैं यह सवाल महत्व का है। अत हम 'समग्र नयी तालीम' की ही दृष्टि से विचार करें। गुजरात विद्यापीठ के कुलपति श्री रामलाल परीख ने कहा कि हम दो बातें ध्यान में रखें। एक तो प्रयोगशीलता कायम रखी जानी चाहिये और उसे ध्यान में रखकर हम कुछ गाइडलाइन मात्र दें। फिर हमें गैर सरकारी स्तर पर अधिक जोर देना होगा। तभी सरकारों पर असर होगा। तब स्वावलम्बन को भी हम नहीं छोड सकते हैं। हमारा अनुभव यह है कि आज सरकार शिक्षा के खर्च से बेहद घबराती है पर हम कहते हैं कि आप विद्यालयों को कुछ जमीन दे दो तो वे अपना खर्च का ६० प्र श से भी अधिक स्वय ही पैदा कर लेंगे। फिर सरकार उसमें दखल देने की अपनी आदत छोडे। अन्त में हमें पाठ्यक्रम में बौद्धिक विषयों पर विचार करना होगा। अभी तो हम प्रचलित पाठ्यक्रम ही अपनाते चले जा रहे हैं पर हमारे पाठ्यक्रमों में और इनमे तो फर्क रहना ही चाहिये। हमारा पाठ्यक्रम व्यावहारिक हो।

बगाल के श्री चित्तभूषण दास गुप्त ने कहा कि हमारे सामने असल सवाल यह है कि नयी तालीम को लोक मान्यता नहीं है। वे (लोग) जो चाहते हैं हम वही करें। हमारी शिक्षा ९५ प्र श के लिये हो। हम अपने यहाँ एक प्रयोग कर रहे हैं कि लोग ही स्वय अपना पाठ्यक्रम तैयार करें। पर सरकार कहती है कि आप हमारी अनुमति के बिना यह सब क्यो करते हैं। हम कहते हैं कि 'नीचे से पाठ्यक्रम' आने दो। हमको तो असल में यहाँ सेवाग्राम में १४ भाषाओं के माध्यम से चलने वाला एक विश्व विद्यालय कायम करना चाहिये। श्री देवेन्द्र भाई ने कहा कि आज की शिक्षा वर्गभेद को बढ़ावा दे रही है और यदि हम इसमें नयी तालीम के तत्व दाखिल कर भी ले तो भी वह वर्गभेद तो समाप्त नहीं होता। हमारे देश में तो ससार के सबसे अधिक लोग स्वय ही अपने काम पर रहते हैं और वे किसी की नौकरी के लिये नही रहते हैं। तब हमारी शिक्षा को इस तथ्य को नजर में रखना होगा कि हम जनता के इस स्तर को कैसे उन्नत करें। अत यह तो साफ ही है कि हमारी शिक्षा पद्धति इस स्व-उत्पादन की पद्धति को बढावा देनेवाली होनी चाहिये। हमें इस तरह के उद्योग दाखिल करने होंगे जो कि कम खर्च से और आज रद्दी माने जाने वाले सामान से भी चल सके। राजस्थान से श्री गोकुलभाई भट्ट ने कहा कि शिक्षा तो मनुष्य को आगे उत्कर्ष के मार्ग पर बढाने के लिये है। सरकार तो अपने पक्ष को ही मजबूत करने की शिक्षा देती है किन्तु वह तो मानव जीवन पुष्ट करने वाली होनी चाहिये। अत हम इस तरह की शिक्षा का एक खाका बनाकर तयार करे और समाज के सामने रखे। बिहार के श्री द्वारिका बाबू ने कहा कि जाकिर हुसैन कमेटी के पाठ्यक्रम को ही आधार मानकर हम एक समिति कायम करे जो कि वर्तमान को ध्यान में रखकर कुछ 'गाइडलाइन' देगी और कुछ 'नार्मस' तय करेगी। यह काम शीघ्र होना चाहिये क्योकि कई राज्योमें

अभी पाठ्यक्रम सुधार पर है और बिहार में तो इसी जनवरी में यह काम पूरा हो जायेगा। हम तब तक यह काम पूरा करे। नयी तालीम समिति के मन्त्री और अर्नाटक के श्री आचार्ल् जी ने कहा कि यह बहस इस सम्मेलन की 'क्रीम' है। अत. हम इस सवाल पर खूब सावधानी से विचार करें। हम एक ऐसा 'माडल सिलेबस' तैयार करें जिस पर सभी अमल कर सके। किन्तु यह काम करने से पहले हम यह साफ कर ले कि नयी तालीम आखिर है क्या चीज। नयी तालीम समिति यह काम करे क्योंकि यही इस विषय पर विचार करने के लिये सर्वाधिक अधिकारी सस्था है। जाकिर हुसैन कमेटीने एक पाठ्यक्रम दिया फिर आठ माला पाठ्यक्रम बना फिर भारत सरकार ने भी एक 'माडल पाठ्यक्रम' दिया और उसमें से ही उसका 'इन्टीग्रेटेड सिलेबस' भी निकला। अभी पूज्य विनोबा जो ने योग उद्योग और सहयोग के तीन सूत्र हमें दिये हैं मेरा तो यह विचार है कि हमारे पाठ्यक्रम का यही आधार रहा हो। हम इन सूत्रो को परिभाषा दें और पाठयक्रम में इन उचित रीति से दाखिल करें। मैं मानता हूँ कि हम सभी विषयो की शिक्षा भी इन सूत्रो के आधार पर दे सकते हैं। इसमें परिवार का स्याल महत्व का है जो कि आज की शिक्षा ने तो एकदम ही समाप्त कर दिया है। हम यह तथ्य भी ध्यान में रखें। इन तथ्यो के आधार पर हमारा पाठ्यक्रम हो किन्तु वह कोई रिजिड न हो बल्कि उस पर हर दस साल बाद फिर विचार हो।

नयी तालीम समिति के कार्यमन्त्री और नयी तालीम के सम्पादक श्री श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने कहा कि पाठ्यक्रम में क्या विषय हों यह महत्व का सवाल नहीं है। महत्वका सवाल तो यह है कि हम किसलिये शिक्षा देना चाहते हैं। शिक्षा के आदर्श और समाज के आदर्श यदि समान न हो तो फिर कोई भी उत्तम से उत्तम शिक्षा पद्धति भी बेकार ही सिद्ध होगी। आज के समाज का आदर्श तो 'कम काम और अधिक आराम' है फिर हर क्षेत्र में केन्द्रीकरण है। हम तो एक विकेन्द्रित, स्वायत्त और स्वावलम्बी समाज की रचना करना चाहते हैं तब हमारी शिक्षा में ये तत्व स्पष्ट रहने चाहिये। यह नही हो सकता कि देश की सारी आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली एक तरह की हो और फिर शिक्षा दूसरी तरह की दी जाय। अत हमें तो इस आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली के ही विरुद्ध सघर्ष करना होगा। पाठ्यक्रममें यह बात ध्यान में रखी जाय तो ठीक होगा।

अन्त मे अध्यक्ष श्री श्रीमन् जी ने बहस का समापन करते हुए कहा कि हम न तो कोई एक नितान्त नया ही पाठ्यक्रम बनाने जा रहे हैं और न सरकार के पाठ्यक्रमा का ही नकल करने जा रहे हैं। विनोबा जी ने जो तीनसूत्र दिये हैं वह भी कोई नयी बात उन्होने नही कही है। वे यह बात कई बार पहले भी कह चुके हैं। अभी तो एक ऋषि की तरह से उन्होंने अपनी बात सूत्र में रखी है इसलिये कुछ लोगो को लगता है कि यह एकदम ही कोई नयी बात है। पर यह बात हम याद रखे कि उन्होने

जो कुछ कहा है यह हमारे काम का आधार होगा और हम बुनियादी शिक्षा के मूल आधार को इससे पुष्ट करना चाहते हैं। अभी राज्यों ने जाकिर हुसैन कमेटी के पाठ्यक्रम में भारी फेर बदल कर दी है और इस दिशा में उन्होंने काफी गडबड पैदा कर दी है। अंत हम बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों की पुन व्याख्या करें और फिर राज्यों से कहें कि अब वे इस पर अमल करने का काम करें। हम इस कार्य में अभी हमारे बीच जाकिर हुसैन कमेटी के उन सदस्यों में से, जिन्होंने वह पाठ्यक्रम बनाने में बडा काम किया था, पूज्य विनोबा जी और पूज्य काका साहब मौजूद हैं तो हम उनसे भी सलाह लेंगे। उस समय तो कताई का सारा पाठ्यक्रम विनोबा जी ने ही बनाया था। वे उसके विशषज्ञ हैं। इस तरह से ढांचा तो हमारा वही मौलिक रहेगा पर कुछ नयी बातें भी जोडनी होगी।

अभी मैं समझता हूँ कि यह पाठ्यक्रम हम १ से १० तक के लिये ही बनायें। इसमें प्रौढ शिक्षा और विश्व विद्यालय का भी बाद में शामिल करना ही होगा। भारत सरकार ने पिछले कुछ समय पहले 'कान्सेप्ट आव बेसिक एज्यूकेसन' नाम से एक नोट तैयार किया था हम उस पर भी विचार करेंगे। यह बात सही है कि हम इसके लिये शिक्षक-सघो से भी सम्पर्क करें। उन्होंने हम से कोई सम्पर्क नही रखा है यह हमारा उनपर आरोप है पर हम तो रखे। वे भी अपनी सलाह हमें दे तो हम उसका भी स्वागत करेंगे। अब इस पर बहस काफी हो गई है और अब नयी तालीम समिति इसके लिये एक पाठ्यक्रम कमेटी बना देगी। नयी तालीम समिति की बैठक में यह कमेटी भी बना दी गई।

आगे की दिशा .

नयी तालीम को आग कोई सक्रिय और सार्थक मोड देने का विचार चर्चा में जारी रहा। एक तो उसके लिये नये सिरे से पाठ्यक्रम बने यह तय किया गया और अब उसकी आगे की क्या दिशा हो इस पर बहस आरम्भ हुई। अध्यक्ष श्री श्रीमन् जी ने बहस आरम्भ करते हुये कहा कि विनोबा जी न जो तीन सूत्र दिये हैं हम उन पर गभीरता से विचार करेंगे और हमारे काम की आगे क्या दिशा हो यह तय करेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा का नयी तालीम में स्थान :

महाराष्ट्र के श्री कुलकर्णी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि नयी तालीम में प्राकृतिक चिकित्सा का क्या स्थान हो। अध्यक्ष जी ने उनसे अपनी बात रखने को कहा। उन्होंने कहा कि गाधी जी ने हमें एक जीवन का समग्र दर्शन दिया है और उसमें मुख्य बात यही थी कि हमारा जीवन जीने का ढग क्या हो। उसमें वे प्रकृति के साथ सहयोग करने पर जोर देते थे न कि उसे जीतने के पागलपन पर। यह मेरे विचार में नयी तालीम का ही विषय है और उस भी उसके पाठ्यक्रम मे स्थान मिलना चाहिये। इस विषय पर सदस्यों ने भी सहमति प्रकट की।

नयी तालीम का आगे का काम :

इस विषय पर काफी चर्चा हुई। बिहार बुनियादी शिक्षक संघ के श्री राजेन्द्र शर्मा ने कहा कि हमारा कुछ असर तो रहा है पर वह जिस तेजी से होना चाहिये उतना नहीं है। हमने शारदाग्राम सम्मेलन में डिग्री को नौकरी से अलग करने की बात कही थी वह अब स्वीकार की जा रही है। फिर ७२ के सेवाग्राम सम्मेलन के निष्कर्ष तो अब 'भारतीय शिक्षा का चार्टर' ही बन गये है। किन्तु यही काफी नही है। विनोबा जी ने जो त्रिसूत्री दी है उस पर हम गहराई से चले तो बहुत कुछ कर सकते है। अब हमको यह कहना चाहिये कि बुनियादी शिक्षा को सरकार 'एकमात्र शिक्षा पद्धति' के रूप में मान्य करे और उसके ही स्नातकों को सरकारी नौकरी के लिये मान्य करे। दूसरी बात यह है कि सबको एक ही प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिये याने शिक्षा में आज की कई प्रणालियों को नही चलना चाहिये। तीसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि सेवाग्राम को पुन देश के काम का केन्द्र बनाया जाय। पहले यहीं से देश को रोशनी मिली थी और वह अब तक काम कर रहा है। यहाँ एक केन्द्रीय संस्था हो जो कि शिक्षकों और अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। बगाल के चितभूषण दासगुप्त ने कहा कि हम सरकार पर भरोसा न रखें। यह सरकार तो समाप्त करने लायक है। श्री जयप्रकाश जी यह काम कर रहे हैं। हम तो विनोबा की त्रिसूत्री को पकड ले और सभी 'हैंवनाट्स' के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करें। हम ५ से ८ तक का 'पैचवर्क' क्या करें। हम तो 'समग्र-शिक्षा' की बात करें। हमें 'ग्राम्य पाठ्यक्रम' तैयार करना चाहिये।

सेवाग्राम में पुन काम आरम्भ हो यह माग होने पर सेवाग्राम की आज की स्थिति पर कुछ स्पष्टता करने की दृष्टि से अध्यक्ष श्री श्रीमन् जी ने कहा कि यह बात पहले हम समझ ले कि सेवाग्राम की आज क्या स्थिति है। यहाँ पर आशादेवी और आर्यनायकम् जी के नेतृत्व में काफी समय तक अच्छा काम चला था। किन्तु राष्ट्र ने उसे मान्यता नहीं दी। उनके बाद काम लगभग बद ही हो गया और जो बालक हमारे पास आते थे उनके लिये पैसा जर्मन से आता था। इससे बालकों में एक तो कुछ भीख का जैसा मानस बनता गया और इससे भी अधिक उनमें जर्मन के प्रति एक 'गॉड फादर' का जैसा भाव पनपने लगा। यह बात हमने देखी तो हम भी चौंके और इसे बढने देना तो उचित नही था। इस काम के लिये देश ने ही मदद की होती तो यह नौबत नही आती। पर यह नही हो सका। तब हमने विनोबाजी से भी सलाह की और काम बद करना पडा। अब यहाँ पर कुछ ग्रामीण प्रौढ़ो के लिये एक 'प्रौढ विद्यालय' चलाने का प्रयास हो रहा है जो कि काम करते हुए कुछ कृषि आदि का प्रशिक्षण लेकर अपना काम आरम्भ करना चाहते हैं। इसमें भाषा, गणित आदि की पढाई तो शामिल की ही है। हमने किसान और शिक्षक का भेद जैसा तो नही

रखा है और अलग अलग विभागो के कार्यकर्ता ही शिक्षा का भी काम करते है। अभी इसमें बालकों की संख्या कम है पर हम आशा करते हैं कि इसमें कम से कम २०–२५ तक हो तो फिर यह प्रयोग कुछ चलेगा। हमें यह समझना होगा कि अब काम और शिक्षा कोई अलग चीज नही रह गई है और जो लोग अब भी 'हाफ-स्कूल' का जिक्र करते हैं वे पुरानी बात ही दुहराते हैं। यह बात अब तारीख से पुरानी हो गई है। यह यदि बन गया तो फिर हम आगे के लिये भी कुछ सोच सकते हैं। हम चाहते हैं कि सेवाग्राम को घर मानकर काम करने वाली कोई सक्षम दम्पति आशादेवी-आर्यनायकम् दम्पति की ही तरह से हमे मिले तो हम हिम्मत के साथ कुछ काम कर सकेगे।

आन्ध्र के श्री नृसिंहम् राजू ने पहले कुछ संस्कृत में और फिर अंग्रेजी में कहा कि वे भी एक अच्छा केन्द्र चला रहे हैं और प्रतिनिधि आकर देखें तथा बतायें कि क्या करना है। बिहार नयी तालीम समिति के मंत्री श्री नर्मदाप्रसाद शर्मा ने कहा कि हम सही स्थान पर चोट करें। शिक्षा का आज सरकारी नौकरी से घना सम्बन्ध है। इसलिये अभी तो शिक्षा एक विशिष्ट वर्ग के ही लिये है यह कैसे बदले यह सवाल है। अतः नौकरी के लिये बुनियादी शिक्षा को निश्चित करें। यह अनिवार्य किया जाय। साथ ही विशिष्ट आचार्यों जैसे कि पूज्य विनोबा जी, श्रीमन् जी आदि के साथ काम करने को भी योग्यता का प्रमाण माना जाय। पाठ्यक्रमों में ही यह बात रहे। हम स्थान स्थान पर अपने प्रयोग केन्द्र भी चलायें। गाधी निधि गाधी-विचार के प्रचार-प्रसार के लिये एक 'सर्वोदय विचार परीक्षा' भी चलाती है। उसकी जानकारी निधि उप-कार्यालय सेवाग्राम के श्री अखिलभाई ने दी और अध्यक्षजी ने प्रतिनिधियों से इसमें सहयोग देने को कहा।

गुजरात में भाषा कमीशन के अध्यक्ष श्री जितेन्द्र जोशी ने सुझाव रखा कि हमें विचार के परिवर्तन का काम करना चाहिये। आज विनोबा जी यह काम सबसे अधिक कारगर ढग से कर रहे हैं। वे तो एक सम्पूर्ण चलते फिरते विश्व-विद्यालय ही हैं। गाधी जीने भी जो मार्ग समन्वय का बताया वह कोई धार्मिक बात नहीं शिक्षण की ही बात है। अतः नयी तालीम को आगे के लिये कुछ सक्रियता से गाधी-विनोबा के इन सूत्रों को उठा लेना चाहिये। ज्ञान व भक्ति का समन्वय ही नयी तालीम का काम होना चाहिये। यही बुनियादी शिक्षा का असल काम है।

इसके बाद अध्यक्ष जी ने कहा कि अब बहुत लगभग हो गई है और हम अब यह प्रयास करेंगे कि आप सबकी बात सम्मेलन की ओर से एक निवेदन के रूप में रख दी जाय। इसके लिये इन लोगों की एक 'ड्राफ्टिंग कमेटी' काम कर रही है और वह कल यह निवेदन सदन के सामने रखेगी।

सम्मेलन का निवेदन : बहस :

ता १–१२–७४ प्रात ड्राफ्टिंग कमेटी की ओर से उसके सयोजक श्री मजुभाई ने निवेदन पढकर सुनाया। फिर उस पर बहस आरम्भ हुई। श्री त्रिवेणी प्रसाद जी ने कहा कि बुनियादी शिक्षा कही चल नही रही है इस पर साफ साफ चिन्ता प्रकट की जाय। गुजरात के श्री योगेन्द्र परीख ने कहा कि गुजरात की वर्तमान स्थिति पर सरकारी करण की प्रवृत्ति के विरध में एक अलग प्रस्ताव भी किया जाय और इस दिशा में 'गुजरात नयी तालीम सघ' का समर्थन दिया जाय। इस पर श्रीमन् जी ने कहा कि अभी बहस चल रही है और सरकार भी पुन विचार कर रही है। अत उसके नतीजे का इन्तजार करना उचित होगा। इसके बाद यदि स्थिति में कोई सुधार न हुआ तो फिर गुजरात के मित्र मुझ लिखे तो मैं इसमे सरकार से बातचीत करूँगा। और मामला न सुलझ तो मैं कहूँगा कि गुजरात के मित्र फिर सत्याग्रह तक के लिय तैयार रहे। किन्तु हम अभी कुछ एसा न कहे कि मामला पहले ही बिगड जाय।

श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने कहा कि निवेदन मे लगभग सभी बात आ गई है और इस स्वीकार किया जाना चाहिये। किन्तु एक बात मै भी कहना चाहूँगा कि आजादी स पहले और आजादी के तुरन्त बाद भी सरकार ने बुनियादी शिक्षा का बहुत उत्साह स स्वागत किया था और इस 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के रूप में मान्यता दी मान्यता दी थी। किन्तु इस पर निष्ठा और लगन के साथ कभी अमल नही किया। इसस नयी तालीम के काम में भारी बाधायें आई है। यह बात हम साफ साफ कहे। यह सुझाव स्वीकार किया गया। श्री अखिल भाई ने कहा कि लोकमत जागृत करने के लिय 'लोक शिक्षण' पर जोर दिया जाय। यह बात भी स्वीकार हुई। गुजरात के श्री रामलालभाई परीख ने सुझाया कि नयी तालीम समिति का नाम 'समिति' के बजाय 'सघ' रहे तो ठीक है तभी वह देश की प्रदेश समितियों के समग्र का नमूना पेश कर सकेगी। उनका यह भी सुझाव था कि जगह जगह 'बेसिक एज्युकेसन बोर्डस' की समुचित कार्यक्षमता के लिये उनके पास सक्षम अधिकार और अधिकारी भी होने चाहिये। गुजरात सम्बन्धी मामला भी निवेदन म से आय यह भी उनका सुझाव रहा।

इस पर अध्यक्ष ने कहा कि हम किसी प्रदेश विशेष का नाम न ले तो ठीक होगा। ये सब बातें कार्यवाही में तो आवेगी ही। हम निवेदन के तीसरे परा में यह भावना भी सामिल कर लेगें। बगाल के क्षितीश बाबू ने भी इस मत का समर्थन किया।

निवेदन के ४ थे पैरा पर मूल्यांकन के मामले मे बगाल के एक प्रतिनिधि का कहना था कि मूल्यांकन में सतत सर्वांगीण विकास और चरित्र सबधी मूल्यांकन को भी सामिल कर लिया जाय। श्री आचार्यजी का सुझाव था कि इसमे तीनसूत्री सिद्धान्त

शामिल कर लिये जाय। श्री द्वारिका बाबू का सुझाव था कि इसमें शरीर विकास और नैतिक विकास की बात भी रहे। आन्ध्र के श्री मनोहर राव ने कहा कि हम व्यक्ति का हर तरह का विकास चाहते हैं अत हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक मानववाद का होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि बोर्डस के बारे में समिति को जो भी निर्देश करने हों वे एकदम स्पष्ट हों और बोर्डस को कहने से पहले हम लोकशिक्षण पर अधिक जोर दें तो ठीक होगा। आन्ध्र के ही एक अन्य भाई ने कहा कि हम विज्ञान और टेक्नालाजी के जरा भी विरुद्ध नहीं हैं यह बात साफ साफ कही जाय।

बहस के अन्त में अध्यक्ष जी न कहा कि मूल्यांकन में त्रिसूत्री सिद्धान्त तो रहेगा ही। नैतिक और चारित्रिक विकास तो शिक्षा का मूल ही होता है अत उस न रखने का तो सवाल ही नहीं। इन बातो पर 'सेवाग्राम सम्मेलन न काफी स्पष्टता से बात कही है मैं समझता हूँ कि उन्हे भी हम इसम ध्यान म रखेंगे। अब जो चर्चा हुई उन सबको ध्यान रखकर हम करेंगे। आप सब मुझे अधिकार दें कि मैं आप सबकी बात ध्यान में रखकर निवेदन को अन्तिम रूप दे दूँ। अध्यक्ष जी को यह अधिकार दिया गया।

अगला सम्मेलन

अध्यक्ष जी न सुझाव दिया कि अब हम यह सिलसिला जो बीच मे कुछ समय तक बद हो गया था पुन बराबर जारी रखना चाहिये। अत अब मैं चाहता हूँ कि हम अगले सम्मेलन का भी निश्चय यही अभी कर ल। इस पर उ प्र नयी तालीम समिति के अध्यक्ष जी श्री अक्षय कुमार करण जी न अगले सम्मेलन के लिये एक निमन्त्रण पत्र अध्यक्ष जी को दिया था। वह उनकी ओर स उ प्र के प्रतिनिधि श्री चन्द्रभूषण भाई न पढा और बताया कि हम यह सम्मेलन उ प्र की सबसे पुरानी बुनियादी शिक्षा की संस्था 'सेवा भारती' सेवापुरी मे ही करना चाहेंगे ताकि आप लोग वहाँ के काम का भी प्रत्यक्ष जाकर देख सकें। अध्यक्ष जी न इसे स्वीकार करते हुये कहा कि यह अच्छा ही है कि अगला सम्मेलन उ प्र में हो। वहाँ मुख्यमत्री श्री बहुगुणा जी नयी तालीम के काम में काफी रुचि भी ले रहे हैं। यह भी अच्छा ही है कि हम अब सेवाग्राम से सीधे सेवापुरी जायें। सम्मेलन न उनका यह आमन्त्रण सधन्यवाद स्वीकार किया।

आचार्य श्रीमन्नारायण

समारोप भाषण :

संगठन मजबूत करें :

हमने इन तीन दिनों मे जो चर्चा की है वे काफी अच्छी रही है और हमने कई महत्वपूर्ण निर्णय भी लिये है। मुझे आशा है कि हमारा काम आगे बढ़ता जायेगा। अत में मैं आपको पुन स्मरण कराना चाहता हूँ कि हमारा पहला काम तो अभी यही है कि हम अपना सगठन मजबूत करें और हर प्रदेश मे नयी तालीम समितियाँ गठित हो जाय। मेरे विचार मे यह काम हमें अगले मार्च ७५ तक पूरा कर ले। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम नयी तालीम समिति की ओर से 'नयी तालीम' पत्रिका निकाल रहे है। उसका स्तर काफी अच्छा है और आज देश मे उस स्तर की वैसी कोई पत्रिका नही है जो कि बुनियादी शिक्षा की बात सरागोपाग ढग से रख सके। किन्तु अभी उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। इसलिये प्रतिनिधिगण इस ओर भी ध्यान दे और उसके ग्राहक बढाने के लिये काम करे। कम से कम ५–६ हजार तक हो तब यह ढग से चल सकेगी। आगे से हम इसमें एव स्थाई अँग्रेजी विभाग भी रखने का सोचते हैं। वैसे अब भी हम कभी कभी अँग्रेजी सामग्री देते ही है। पर इसे आप सब बल दे।

दीप-स्तभ कायम हो :

तीसरी बात यह है कि जैसा मैंने पहले ही कहा था कि हम देश मे जगह जगह पर अब कुछ नमूने का काम आरम्भ करें। विनोबा जी ने भी कहा है कि हम जगह जगह पर कुछ 'दीप' तो जलायें। मुझे इसमे कोई शका नही है कि सरकार को आखिर बुनियादी शिक्षा को स्वीकार करनी ही होगा पर जब तक हम उसे भी अपने दीपस्तम्भो के जरिये कोई प्रकाश नही देते तब तक वह भी कुछ नही कर सकेगी। आज तो सर्वत्र ही अधकार है। हमारे शिक्षामत्री श्री नुरुलहसन साहब ने अभी यही कहा है कि हम 'जाब-ओरियेन्टेड' शिक्षा की बात अब न करें क्योंकि जाब तो बराबर बढ नही सकते हैं और बेकारी दिन व दिन बढ रही है। हम भी यही कहते है। बापू ने तो यही बात पहले कही थी कि शिक्षा को स्वावलम्बी बनाये बिना इस समस्या का कोई हल ही नही है। अब सरकार अभी इस बात को न माने तो कोई बात नही पर पहले हम इसके लिये लोकआकाक्षा तो जगायें। जनता की माग होगी तो फिर सरकार को शिक्षा में बदल करना ही होगी। अत हम अपने दीप पहले स्वय बने। दिक्कत तो आयेगी ही पर इनसे तो हमारा उत्साह ही बढाना चाहिये।

अपनी चीजो का मूल्य समझें :

अपने देश में अपनी ही चीजो का मूल्य अभी कम है। जब मैं इटली गया तो मैंने वहाँ पर जाकर पूछा कि मैं मान्टीसरी विद्यालय देखना चाहता हूँ, तो लोगो

को आश्चर्य हुआ और कहा कि यहाँ इस तरह कुछ नहीं है क्योंकि वहाँ पर यह कोई नयी चीज नहीं थी जो लोग उस तरफ अधिक ध्यान देते। पर भारत में तो वही आदर्श शिक्षा है। बुनियादी शिक्षा का तो यह हाल है कि जब मैं अमरीका गया तो मैं वहाँ के ख्यात शिक्षाशास्त्री श्री जानड्यूवी से मिला। मैंने उनसे बुनियादी शिक्षा की गांधी जी की इस योजना का जिक्र किया तो वे अत्यन्त ही प्रसन्न होकर बोले "मैं तो केवल 'प्रोजेक्ट' तक ही जा सका पर यह तो 'मुझसे भी वही आगे की बात' है। यहाँ तो 'समाज को ही विद्यालय' बनाने की बात है। यदि मैं अभी जवान होता तो अब मैं भी यही करता।" अभी अभी 'युनेस्को' ने भी एक शिक्षा आयोग बिठाया था। उसने तो समूची प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाके लिये 'बुनियादी शिक्षा' शब्द का ही इस्तेमाल किया है। यह भी कहा है कि यह शिक्षा बालक को जन्म से लेकर जीवन भर दी जाय और उसके माँ बाप को भी दी जाय। अब यह सारी बात तो बापू ने कई साल पहले कही थी पर इस देश के शिक्षाशास्त्रियों को यह सब पुराना लगता है और यूरोप की १०० साल पुरानी शिक्षा पद्धति 'नयी' मालूम देती है। पर नाम से हमारा कोई झगड़ा नहीं है। हम तो यही कहते हैं कि आप शिक्षा को देश की आवश्यकता के अनुकूल करो और आप जब यह करना चाहोगे तो फिर आप बुनियादी शिक्षा के अलावा और कुछ कर ही नहीं सकते। अतः हमारा केस तो मजबूत है। हम निराश न हों। सरकार यदि कुछ करना चाहते हैं तो हम उससे सहयोग करेंगे पर इस निकम्मी शिक्षा के साथ तो हम कोई सहयोग नहीं कर सकेंगे।

हमें तो अपना काम करते जाना है। नयी तालीम समिति को आपका बल चाहिये। हमें कुछ अच्छे कार्यकर्ता चाहिये जो कि सेवाग्राम को अपना 'घर' मानकर काम करें। यहाँ पर अभी तक श्री आचार्लू थे उन्होंने ही सारा काम उठाया। अब वे जा रहे हैं। अभी श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा जी भी यहाँ आये हैं। इससे काफी मदद हुई है। पर और भी लोग आवें तो काफी काम होगा। अब हमारे वजुभाई ने बम्बई से ही नयी तालीम समिति का मंत्री का काम करने को कहा है। इससे भी काफी मदद होगी। वे बम्बई में काफी अच्छा काम कर रहे हैं। हमारे सहमंत्री श्री दातेकर हैं वे भी मदद करते हैं। इन सब मित्रों का स्वागत है। पर यह काम तो इतना बड़ा है कि सभी मित्रों की मदद के बिना यह नहीं हो सकेगा। मैं आचार्लू जी का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने अपनी उम्र और कमजोर स्वास्थ्य के बावजूद भी इस काम को अब तक उठाये रखा और निभाया है। अब वे जा रहे हैं पर वे समिति के सक्रिय सदस्य तो रहेंगे ही और उनकी मदद हमें मिलती रहेगी। आप सबका भी मैं आभार मानता हूँ और आप सबने यहाँ आकर जो रुचि इस काम में ली उससे उत्साह ही बढ़ता है। मैं आशा करता हूँ कि हमारा काम आगे बढ़ेगा।

कृतज्ञता ज्ञापन :

अध्यक्षजी के समारोप भाषण के बाद श्री आचार्य जी ने कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए कहा कि मैं एक छोटासा शिक्षक था पर आदरणीय श्रीमन् जी ने जब मुझे इतने बड़े काम की जिम्मेदारी दे दी तो मैं पहले तो कुछ घबरा गया। पर आप सबके ही सहयोग से यह काम मैं अब तक अपनी शक्ति भर करता रहा हूँ। मैं जहाँ भी गया सर्वत्र ही मुझे प्रेम और स्वागत मिला है और नयी तालीम के ही कारण से देश भर का प्रेम पा सका नहीं तो मेरे जैसे गरीब आदमी के लिये यह सब कहाँ था। मैं अभी ७६ में चल रहा हूँ पर आप लोग जो भी काम मुझे मेरी शक्ति के अनुसार देंगे मैं सहर्ष करता रहूँगा। श्रीमन् जी के कारण तो मुझे जो अपार सम्मान मिला, राजभवन का भी आदर मिला वह तो मेरे लिये अकल्पनीय ही था। आगे मैं अब आचार्यकुल और नयी तालीम का ही काम करने का सोचता हूँ। आप सबके प्रेम और स्नेह के लिये मैं आप सबका आभारी हूँ।

आभार :

प्रतिनिधि की ओर से श्री काशीनाथ जी त्रिवेदी ने धन्यवाद ज्ञापन करते हुये कहा कि कई साल के बाद हम सब फिर से अपनी इस मातृभूमि, इस पितृभूमि में मिले है। बापू ने जब बुनियादी शिक्षा का काम बताया था तब से आज परिस्थितियो मे काफी बदल हुआ है पर इसकी आवश्यकता तो कही अधिक बढ़ गई है। इस सम्मेलन से हम सबको पुन बल मिला है और आगे के लिये प्रेरणा मिली है। मैं प्रतिनिधियों की ओर से इसके लिये नयी तालीम समिति और स्वागत समितिका आभार मानता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे से हम एकाग्रता से यह काम करते रहेंगे। एकाग्रता ही हमारा सम्बल है।

नयी तालीम समिति की ओर से सहमंत्री श्री हातेकर जी ने भी धन्यवाद ज्ञापन किया और कहा कि अनेक दिक्कतों के बावजूद आप सब यहाँ आये और हमारी कमजोर व्यवस्था के कारण आपने जो कष्ट सहन किये इसके लिये मैं समिति की ओर से आप सबका आभारी हूँ। खासकर महाराष्ट्र की शिक्षामंत्री श्रीमती प्रभाराव जी का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने स्वागत स[illegible]ति का अध्यक्ष पद स्वीकार कर हमारे काम को हलका किया। अन्य मददगार मित्र[illegible] प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

'जन गण मन' राष्ट्रगीत के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ।

अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन, सेवाग्राम का निवेदन :

तारीख २९, ३० नवम्बर व १ दिसम्बर, (१९७४)

१ अखिल भारतीय नई तालीम समिति, सेवाग्राम द्वारा आयोजित और २९, ३० नवम्बर और एक दिसम्बर, ७४ को सेवाग्राम में आमन्त्रित १६ वें अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन मे देश के विभिन्न राज्यों से आये हुए नई तालीम के लगभग २०० कार्यकर्ताओं, शिक्षाविदों, शिक्षाधिकारियों और विविध रचनात्मक कार्यों में लगे लोक-सेवकों ने देश की वर्तमान गम्भीर स्थिति के सन्दर्भ में बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) के व्यापक प्रचार और प्रसार के प्रश्न पर और आज के सन्दर्भ में उसकी बढ़ती हुई आवश्यकता, अनिवार्यता एवं महत्व पर गहराई से विचार किया। सम्मेलन की अध्यक्षता नई तालीम के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण ने की और उसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणाजी ने किया। सम्मेलन को ऋषि विनोबा के मार्गदर्शन का भी सुअवसर प्राप्त हुआ।

२ इस सम्मेलन की यह स्पष्ट मान्यता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सन् १९३७ में बुनियादी शिक्षा का जो विचार और कार्यक्रम देश के सामने रखा था, उसका स्वरूप केवल एक रूढ़ शिक्षा-पद्धति का नहीं, बल्कि समग्र जीवन-दर्शन का था तथा उसका सम्बन्ध मानव के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक के पूरे जीवन-काल से था। सम्मेलन नई तालीम के इस समग्र, व्यापक और विशाल स्वरूप की ओर सभी सम्बन्धियों का ध्यान अपने पूरे बल के साथ आकर्षित करता है और चाहता है कि सारे देश में प्रचलित परम्परागत शिक्षा के स्थान पर इस नई शिक्षा को समूचे लोक-जीवन में प्रतिष्ठित करके शिक्षा-जगत् में और लोक-जीवन में आई हुई विकृतियों, असमानताओं और कुण्ठाओं को समाप्त करने का सामूहिक पुरुषार्थ तीव्रता और तत्परता से किया जाय जिससे नये समाज की रचना का काम सुगम हो सके।

३. स्वतन्त्रता से पूर्व देश ने बुनियादी शिक्षा का उत्साहपूर्वक स्वागत किया था और स्वतन्त्रता के बाद केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने उसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में मान्यता भी दी थी। किन्तु इस पर उचित निष्ठा और प्रयास के साथ अमल नहीं किया गया। इसकी वजह से बुनियादी तालीम के विकास में गम्भीर बाधायें खड़ी होती गईं।

फिर भी विपरीत और प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ प्रान्तों में वहाँ के कार्यकर्ताओं और सरकारों ने नई तालीम के काम को श्रद्धा और सातत्य के साथ आगे बढ़ाने, विकसित करने और उसकी अनेकानेक सम्भावनाओं को सिद्ध करने का अपना उपाय यथाशक्ति जारी रखा है। सम्मेलन उनके इस कार्यधैर्य और निष्ठा को हृदय से सराहना करता है और चाहता है कि देश के सभी प्रान्तों में यह काम फिर उठे और बदले हुए सन्दर्भों में सब जगह पूरी सजगता के साथ इसका क्रमिक विकास और विस्तार हो।

कुछ प्रान्तों में नयी तालीम के सिद्धान्तों के विरुद्ध जो कदम उठाये जा रहे हैं उनसे सम्मेलन को चिन्ता हो रही है। हम आशा करते हैं कि ये कठिनाइयाँ शीघ्र दूर की जायेंगी ताकि उन प्रदेशों में नई तालीम का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे।

४ शिक्षा को सही दिशा देने और उस ठोस आधार पर खड़ा करने के लिये पूज्य विनोबाजी ने योग, उद्योग और सहयोग के जो तीन सूत्र शिक्षा जगत् के सामने रखे हैं, यह सम्मेलन उनका स्वागत और समर्थन करता है और चाहता है कि देश की सारी शिक्षा-व्यवस्था को इन सूत्रों के सहारे खड़ा करने का प्रयत्न किया जाय।

नई तालीम के इन उद्देश्यों और कार्यों को अमली रूप देने की दृष्टि से सम्मेलन की राय में नीचे लिखी व्यवस्थायें सारे देश में तुरन्त खड़ी की जानी चाहियें —

(१) शासकीय रूप से नई तालीम का काम करने की दृष्टि से राज्यों में नई तालीम समितियों का गठन करके उन्हें सक्रिय किया जाय और उनके माध्यम से राज्यों में व्यापक लोक-शिक्षण के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था की जाय।

(२) केन्द्र में और राज्यों में बुनियादी शिक्षा के सचालन के लिये राज्य क्षमता के साथ विधिवत् किया जाय जिसमें नई तालीम में लगे हुए कार्यकर्ताओं का प्रभावशाली प्रतिनिधित्व हो। बोर्डों की सिफारिशों के अमल के लिये सक्षम प्रशासकीय व्यवस्था होनी चाहिये।

(३) राज्यों में नई तालीम के विकास और विस्तार को प्रतिबिम्बित करने वाले ऐसे आदर्श और स्वायत्त नई तालीम विद्यालय चलाने का प्रबन्ध किया जाय जो अपने-अपने क्षेत्र में प्रकाश-स्तम्भ का काम कर सके।

(४) पिछले ३७ सालों में हुए नई तालीम के विविध प्रयोगों और अनुभवों को ध्यान में रखकर और आज के स्वतन्त्र, विकासशील और लोकतन्त्रनिष्ठ भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप समग्र नई तालीम का एक सशोधित शिक्षा-क्रम (सिलेबस) तैयार किया जाय। अखिल भारत नई तालीम समिति इस कार्य के लिये विशेषज्ञों की एक समिति गठित करे, जो अगले छह महीनों के अन्दर १ से १० श्रेणी तक के इस परिवर्धित शिक्षाक्रम को "योग, उद्योग और सहयोग" मूल्यों के

आधार पर प्रस्तुत करें और शिक्षा सचालकों व शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिये आवश्यक मार्गदर्शक पुस्तिकायें उपरोक्त मूल्यों एव सिद्धान्तों के आधार पर तैयार करे।

(५) सम्मेलन की राय है कि शिक्षा का वैज्ञानिक मूल्यांकन करते समय विद्यार्थी के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसकी उद्योग-कुशलता, समाज-सेवा, चरित्र गठन तथा अन्य सम्बन्धित गुणों का मूल्यांकन समान स्तर पर किया जाना चाहिये।

(६) शिक्षकों के सही प्रशिक्षण की शिक्षा के विस्तार (एक्सटेन्शन) की और शिक्षा में शोध कार्य की समुचित व्यवस्था की जाय।

(७) बुनियादी विद्यालयों को अपने उत्पादन-कार्य के लिये कार्यकारी पूंजी उपलब्ध कराई जाय। यदि यह सम्भव न हो तो उन्हें अपने उत्पादन-कार्य के सहारे अपनी पूंजी खड़ी करने की सुविधा दी जाय जिससे वे अपना समुचित विकास कर सके।

सम्मेलन को विश्वास है कि शिक्षा मे आमूल परिवर्तन की बढ़ती मांग को ध्यान में रखकर केन्द्र सरकार सहित राज्यो की सब सरकारें और देश की आम जनता बुनियादी शिक्षा के विकास और विस्तार के लिए सुझायें गये ऊपर के सब बिन्दुओं पर पूरी गम्भीरता से विचार करेगी और इन पर अमल के लिये आवश्यक सारी कार्रवाई यथाशीघ्र करना अपना प्राथमिक कर्तव्य मानेगी।

अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा महाराष्ट्रः

दिनांक २९।११।७४ और १।१२।७४ की बैठक की संक्षिप्त कार्यवाही तथा मुख्य निष्कर्ष

दिनाक २९–११–७४ को अ भा नयी तालीम समिति की बैठक हुई जो फिर १–१२–७४ को भी जारी रही। इसकी सक्षिप्त कार्यवाही और मुख्य निष्कर्ष यहाँ दिये जा रहे हैं।

दिनाक २९–११–७४ को प्रात दस बजे से समिति की बैठक उसके अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी की अध्यक्षतामें आरम्भ हुई। बैठक मे नीचे लिखे सदस्य और आमन्त्रित उपस्थित थे —

सदस्य — सर्व श्री के एस आचार्लू, दे ज हातेकर, क्षितीशराय चौधरी, द्वारिका सिंह, के मुनियाडी, रामलाल परीख, पूर्णचन्द्र जैन, ग ऊ पाठणकर, और दजुभाई पटेल।

आमन्त्रित — सर्वश्री डा सलामतउल्ला, द्वारको सुन्दरानी, कामेश्वर बहुगुणा, सुश्रीमती मृणालिनी देवी।

बैठक के आरम्भ मे अध्यक्ष जी ने सूचना दी कि आज ही मिली सूचनानुसार श्री नारायण दास गाधी जी का निधन हो गया है। वे गाधी जी के अनन्य सहयोगी रहे हैं और रचनात्मक कार्यो मे उनका बहुत महत्व का योगदान रहा है। उनकी मृत्यु पर दो मिनट की मौन श्रद्धाजलि अर्पित की गई। उसी प्रकार १–१२–७४ को प्रात दिल्ली मे श्रीमती सुचेता कृपालानी जी के निधन की सूचना मिलते ही उस दिन समिति की बैठक में उन्हें भी २ मिनिट की मौन श्रद्धाजलि दी और राष्ट्र के लिये उनकी बहुमूल्य सेवाओंका का कृतज्ञता पूर्ण स्मरण किया गया।

फिर समिति के मत्री श्री आचार्लू जी ने पिछली बैठक की कार्यवाही और निर्णयो पर उठाये गए कदमो की जानकारी दी। वह कार्यवाही पुष्ट की गई। बैठक के सामने मुख्य विचारणीय सम्मेलन का कार्यक्रम रहा। अध्यक्षजी ने सम्मेलन के बुलाने के उद्देश्य पर प्रकाश डाला और कहा कि इसमें हम लोग बुनियादी शिक्षा के हर पहलू पर, उसकी अब तक की प्रगति पर और आगे के लिये किसी ठोस कार्यक्रम पर विचार करेंगे। इससे हम आशा कर रहे हैं कि नयी तालीम समिति का प्रदेशवार

सगठन भी हो सकेगा और हम देश में इस आधार पर एक भाई-चारा भी कायम कर सकेंगे।

सदस्यों ने बुनियादी शिक्षा के स्वतन्त्र प्रयोगों के लिये सुविधाओं, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद की सिफारिशों, इसमें नयी तालीम समिति को प्रतिनिधित्व देने नयी तालीम का एक नया समन्वित पाठयक्रम बनाने और नयी तालीम का आगे का व्यापक कार्यक्रम तैयार करने पर बल दिया। यह भी तय किया गया कि सम्मेलन के बाद उसकी ओर से एक सर्व सम्मत निवेदन भी जारी किया जाय। चर्चा के बाद इन विषयों पर ये निर्णय लिये गय —

१. सम्मेलन का निवेदन .

इस कार्य के लिये इन लोगों की एक 'ड्राफटिंग कमेटी' नियुक्त कर दी गई जो सम्मेलन के अन्तिम दिन अपना ड्राफट सम्मेलन में पेश करे। सर्व श्री वजुभाई पटेल सयोजक, रामलाल परीख, डा सलामतउल्ला, द्वारिका बाबू, हातेकर जी और कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा बाद का इसमें श्री काशीनाथ जी त्रिवेदी और गुरुशरण भी शामिल कर लिये गए। कमेटीने यह निवेदन सम्मेलन में रखा जो स्वीकृत किया गया।

२ पाठ्यक्रम समिति :

इस विषय पर चर्चा के बाद निश्चय किया गया कि श्री द्वारिका बाबूकी अध्यक्षता मे श्री वजुभाई, श्री क्षितीशराय चौधरी, श्री आचार्य जी, श्री पूर्णचन्द जैन, श्री के मुनिस्वामी, श्री डा सलामतउल्ला, श्री वंशीधर जी श्रीवास्तव, डा. वी आर मेहता की एक कमेटी बनाई जाय जिसे अन्य भी कुछ सदस्य कोआप्ट करने का अधिकार हो। यह कमेटी आगामी ६ माह में अपना प्रतिवेदन समिति को देगी। इस कार्य के लिये पूज्य विनोबाजी और पूज्य काका साहब कालेलकर से भी सलाह लेने का निश्चय किया गया। ये दोनों ही लोग 'जाकिर हुसैन कमेटी' के भी सदस्य थे। इसके लिये शिक्षा अधिकारियों और बुनियादी शिक्षा के अन्य तज्ञों की भी राय ली जायेगी और उन्हें भेजने के लिये वजुभाई श्री द्वारिका बाबू से मिलकर एक नोट तैयार करेंगे। यह भी तय हुआ कि इस कमेटी की अगली बैठक सेवाग्राम में ही २ और ३ जनवरी ७५ को की जाय।

३. ग्राम-स्वराज्य (लोक शिक्षण) में नयी तालीम का योगदान :

इस सवाल पर भी विस्तृत चर्चा हुई और निश्चय किया गया कि नयी तालीम के इस पक्ष को अब सक्रिय किया जाय और इसके लिये एक ठोस कार्यक्रम तैयार किया जाय। इस कार्य के लिये भी श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा के सयोजकत्व में श्री द्वारको सुन्दरानी, श्री गोविन्द भाई रावल, श्री पूर्णचन्द जी जैन और श्री

पाटणकर जी की एक कमेटी नियुक्त की गई जो कि श्री धीरेन्द्र मजूमदार जी की 'ग्रामगुरुकुल' के विचार पर भी विचार और उनसे सलाह लेकर शीघ्र ही अपना प्रतिवेदन समिति के सामने रखेगी। इस कार्य में श्री रामश्रेष्ठ राय जी को भी सलाह ली जायेगी।

४. आचार्यकुल और नयी तालीम का समन्वय :

इस विषय पर समिति के सदस्य और आचार्यकुल के संयोजक श्री बंशीधर जी श्रीवास्तव ने समिति के विचारार्थ एक प्रस्ताव भेजा था। वह पढा गया। चर्चा के बाद निश्चय किया गया कि चूंकि ये दोनों काम परस्पर पूरक हैं अतः इस तरह की कोई समिति कायम करना उचित होगा और इस पर आचार्यकुल की ओर से श्री बंशीधर श्रीवास्तव, श्री गुरुशरण, श्री देवेन्द्र कुमार गुप्त, श्री शीतल प्रसाद, और श्री ओमप्रकाश त्रिखा तथा नयी तालीम समिति की ओर से श्री आचार्लू जी, श्री हातेकर जी, श्री वजुभाई, श्री पूर्णचन्द्र जी जैन और श्री क्षितीशराय चौधरी की एक कमेटी बना दी गई। नयी तालीम समिति के अध्यक्ष इसके पदेन अध्यक्ष और आचार्यकुल के संयोजक इसके पदेन संयोजक होंगे।

५. नयी तालीम समितियों का संगठन :

अध्यक्ष जी ने इस बात की ओर सदस्यों का ध्यान खींचा कि अब तक का अनुभव यह रहा है कि जहाँ पर हमारे कुछ संगठन हैं वहाँ तो कुछ काम होता है पर बाकी जगहों पर नहीं होता। हमें नयी तालीम का काम आगे बढाना हो तो फिर हमारा संगठन देशव्यापी और मजबूत होना चाहिये। यह बात सदस्यों ने भी स्वीकार की और तय हुआ कि इसके लिये हर प्रदेश में जहाँ नयी तालीम समिति का गठन अभी तक नहीं हो सका है वहाँपर आगामी मार्च ७५ तक यह काम हर प्रदेश में पूरा हो जाय। इसके लिये समिति के नये मंत्री श्री वजुभाई प्रदेशों में जाय। उनकी मदद अलग अलग प्रदेशों में सदस्य करें। कर्नाटक और आन्ध्र में श्री आचार्लू जी, केरल में श्री मेनन के सहयोग से श्री मुनियान्डी, म. प्र. में श्री काशीनाथ जी और श्री पाटणकर जी, आसाम, त्रिपुरा और नागालैण्ड में श्री क्षितीशराय चौधरी, हरियाणा में श्री ओमप्रकाश जी त्रिखा, काश्मीर और हिमाचल प्रदेश में श्री यशपाल मित्तल उडीसा में श्रीमती अन्नपूर्णा महाराणा के सहयोग से श्री क्षितीशराय चौधरी से यह काम करने का निवेदन किया गया जो सबने स्वीकार किया। अध्यक्ष भी आगे जब नागालैण्ड जायेंगे तो वे भी वहाँ के मित्रों से इस बारे में बातचीत करेंगे। यह भी तय हुआ कि देश में नयी तालीम का काम करने वाली सभी संस्थाओं की एक सूची समिति प्राप्त करे और यह भी पता लगाये कि विश्व-विद्यालय स्तर पर नयी तालीम का क्या काम हो सकता है। इसके लिये गांधी शान्ति प्रतिष्ठान की मदद मांगी जाय और श्री आचार्लू जी से निवेदन किया गया कि वे यह काम करें। उन्होंने यह स्वीकार किया।

६. नयी तालीम समिति और नयी तालीम पत्रिका की अर्थ व्यवस्था :

इस विषय पर चर्चा करते हुये समिति के मंत्री श्री आचार्लू जी ने बताया कि समिति की आर्थिक हालत अत्यन्त ही खराब है और पत्रिका तो लगभग १५ हजार के घाटे में चल रही है। पहले सर्व सेवा संघ हमारी आवश्यकता पूरा कर लेता था पर अब उसकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही है अतः इस साल से उसने भी मदद देना बंद कर दिया है। इस मौके पर आश्रम प्रतिष्ठान सेवाग्राम हमारी मदद में आया। इसके लिये उसके प्रति आभार माना गया। किन्तु उससे भी जो ५ हजार मिलना था वह अभी तक नही मिला और पिछले साल की थोडी सी रकम से ही अब तक काम चला है। चर्चा के बाद तय हुआ कि आगे से पत्रिका की पूरी जिम्मेदारी समिति ही उठाये और इसके लिये समिति को आश्रम प्रतिष्ठान के नयी तालीम बजट से ५ हजार और खेती से ५ हजार इस तरह से कुल दस हजार रुपया सालाना मिले यह निवेदन आश्रम प्रतिष्ठान से किया जाय। आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से उसके अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने यह स्वीकार किया। चूँकि समिति के नये मंत्री श्री वजुभाई बम्बई से ही काम करेंगे अतः उनकी सुविधा के लिये बम्बई में भी समिति का एक हिस्सा खोलने और सेवाग्राम बैंक में श्री आचार्लू जी के स्थान पर उनका नाम रखने का भी तय हुआ।

७. नये मंत्री की नियुक्ति और पुराने मंत्री का त्यागपत्र :

समिति के मंत्री श्री आचार्लू जी अपने कमजोर स्वास्थ्य के कारण काफी समय से समिति से मुक्ति की माग कर रहे थे। अब बम्बई के श्री वजुभाई ने यह जिम्मेदारी उठानी स्वीकार की है अतः श्री आचार्लू जी का त्यागपत्र उनके अब तक के काम के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के साथ स्वीकार किया गया और उनके स्थान पर श्री वजुभाई को मंत्री नियुक्त किया गया।

※

विशेष सूचना

वर्ष–२३ अंक–५-६ सम्मेलन-अंक होने से यह दिसम्बर-जनवरी का संयुक्तांक निकाला जा रहा है। पृष्ठों पर यह भूल रह गई। कृपया ग्राहक नोट कर लें।

डा० अवध प्रसाद

बुनियादी तालीम एक पुराने छात्र की समीक्षा :

(डा कुमारप्पा ग्राम-स्वराज्य सस्थान के डा अवध प्रसाद, जो नयी तालीम के छात्र रहे हैं, ने एक छात्र के नाते 'नयी तालीम' की जो समीक्षा यहाँ दी है उस पर नयी तालीम में रुचि रखनेवाले सभीको विचार करना चाहिए। उनका यह कहना सही है कि सरकार ने तो कभी इस पर विश्वास पूवक काम ही नहीं किया किन्तु गैर सरकारी स्तर पर भी यथोचित प्रयत्न नहीं किए गये। अब भी समय है कि यह मूल सुधारी जाय।)

गाधीजी न जिस बुनियादी तालीम की बात कही थी उसे प्रयोग एव कालक्रम की दृष्टि स मोट तौर पर दो वर्गों म विभाजित कर सकते हैं। एक गाधीजी के जीवनकाल में उनके मागदशन में चलन वाली बुनियादी तालीम। इसमें सेवाग्राम के विद्यालय को नमूना माना जा सकता हैं। दो गाधीजी के बाद तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बुनियादी तालीम के सिद्धान्तो के आधार पर गैर सरकारी स्तर पर किए गए प्रयोग। यह माना गया कि बनियादी तालीम में जीवन की शिक्षा दी जाय और शिक्षा प्राप्त करन के बाद विद्यार्थी स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सके। इस कारण इस प्रकार के प्रयोगा म सरकार स मुक्त रहन का भी प्रयास किया गया। मेरी शिक्षा का प्रारम्भ ही श्रमभारती खादीग्राम में हुआ जिसका सचालन बुनियादी तालीम के प्रमुख विचारक श्री धीरेन्द्र मजूमदार क मागदशन में होता था।* बाद में उत्तर बुनियादी तक की शिक्षा सेवापुरी के प्रयोगात्मक विद्यालय में हुई। मेरे साथ अनक विद्यार्थी थ जिन्हे इस तालीम के खट्टे मीठ अनुभव हुए। व्यक्तिगत रूप स मुझे इस तालीम स असन्तोष नहीं है। लेकिन अन्य साथियो को प्राय पूण असन्तोष है। इसके अपवाद भी हो सकते हैं।

---

* यह सस्था आज भी नयी तालीम के सम्पादक आचाय राममूर्ति जी के मागदशन में चल रही है। —सपादक।

सरकार ने कभी इस पर निष्ठा रखी ही नहीं :

सामान्यतया सरकार भी इस बुनियादी तालीम को, गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर नहीं चला सकी। बिहार में उत्तर बुनियादी तक की शिक्षा का प्रयोग सरकार ने किया, पर वह सफल नहीं हो सकी। सरकार को इस पर कभी विश्वास नहीं रहा और इसलिये उसने तो इसे बिगाडने के ही सारे प्रयत्न किये।

इसे कोई चलाता नहीं यह चलती है :

किन्तु यहाँ मैं गैरसरकारी स्तर पर के कामों तक ही सीमित रहना चाहता हूँ। जब हम छोटे थे और पूज्य धीरेन्द्र भाई की नयी तालीम की सैद्धान्तिक विवेचना को हम नहीं समझ पाते थे, उस समय बुनियादी तालीम का स्वर्णिम भविष्य हमें दिखता था। एक बार बिहार के एक शिक्षा मंत्री एवं गांधी-भवन खादीग्राम आये। मौजूदा शिक्षा पद्धति की अनुपयोगिता उन्हें बतायी गयी तो उन्होंने स्वीकार किया कि आज सरकार जो शिक्षा दे रही है वह बेकार है। जब उनसे यह पूछा गया कि जब सरकार तथा आप जैसे लोग इसे बेकार समझते हैं तो यह शिक्षा क्यों चला रहे हैं ? उनका उत्तर था— 'इसे कोई चला नहीं रहा है, बल्कि अपने आप चल रही है।' इतने वर्षों बाद आज भी पुरानी शिक्षा चल रही है। प्रधान मंत्री से लेकर सामान्य व्यक्ति तक इसे बेकार कहता है फिर भी यह शिक्षा चल रही है। दुःख तो यह है कि इसके बावजूद कोई विकल्प सामने नहीं आ रहा है। गांधी का विकल्प प्रस्तुत करने वाले सरकार की ओर देखते और यदि स्वतन्त्र प्रयोग करना चाहते हैं तो विद्यालय में ताला बन्द करना पडता है। उन्हें न तो विद्यार्थी मिलते हैं और न साधन। कुल मिलाकर भारतीय शिक्षा की स्थिति बडी विकट है।

नयी तालीम बनाम पुरानी तालीम .

गांधी जी ने जिस तालीम की बात कही थी उसे स्पष्ट करते हुए विनोबा ने कहा है—'नयी तालीम नये मूल्यों की स्थापना है। पुरानी तालीम शारीरिक और मानसिक परिश्रमों के मूल्यों में फर्क करती है। नई तालीम दोनों का मूल्य समान समझती है। इतना ही नहीं दोनों का समन्वय करती है, दोनों का समवाय साधती है। पुरानी तालीम क्षमता की इज्जत करती है। नई तालीम क्षमता को समता की दासी समझती है।' गांधीजी ने बुनियादी तालीम की कल्पना को स्पष्ट करते हुए १९३७ में कहा था— "सच्ची शिक्षा वही है जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के गुणों का सर्वांगीण विकास कर सके और प्रकाश में ले सके। साक्षरता न तो शिक्षा का ध्येय है और न उससे शिक्षा का आरम्भ ही होना है वह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित बनाने के अनेक साधनों में एक साधन मात्र है। इसलिये मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ शुरू से ही कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षण उसकी शिक्षा शुरू होती है, उसी क्षण से उसे कुछ न कुछ नया सृजन करना सिखाकर

ही करूँगा . इसके लिये आवश्यक है कि जो उद्योग धन्धे यन्त्रवत सिखाये जाते है वे वैज्ञानिक ढग से सिखाये जाय।" इस प्रकार बुनियादी तालीम में काम के साथ साथ शिक्षण देने की पद्धति अपनायी जाती है। इसे एक शब्द में 'समवाय-शिक्षण' पद्धति कहा गया। समवाय-पद्धति मे हर स्तर का विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार उत्पादन करता और उस उत्पादन की प्रक्रिया के साथ साथ उसे ज्ञान दिया जाता है।

हमें इसपर गौरव है।

इस पद्धति की उपयोगिता उस समय की याद दिलाती है जब हम श्रम-भारती खादीग्राम मे थ और बुनियादी शाला के विद्यार्थी थे। पाँचवी से लेकर आठवी कक्षा तक की समवाय शिक्षण की प्रक्रिया का अनुभव का भान उस समय नही होता था। इस समय जब उस बात को सोचता हूँ एव पुरानी डायरी देखता हूँ तो इस अनूठ प्रयोग में भागीदार बनने में गौरव का भान होता है। खादीग्राम में हम विद्यार्थी मिट्टी काटन, धान रोपने,गोशाला में गाय चराने, टट्टी पेशाबघर की सफाई स लेकर भोजन बनाने तक का काम करते थे। हमारे साथ शिक्षक रहते थे और जहाँ तक याद है, हमसे अधिक काम शिक्षक करते थे। हमारे काम की हमें मजदूरी मिलती थी। इस प्रकार काम का भौतिक मूल्याकन होता था। उस दौरान हमने कितनी कमाई रुपये में की इसका हिसाब मेरे पास नही है, यदि उसे प्राप्त किया जाय तो विद्यालय स्वावलम्बन का एक अदाज लग सकता है। लेकिन विद्यार्थी कितना कमाता है इसका महत्व नही है। महत्व इसका है कि उस कमाई के साथ उसने कितना ज्ञान प्राप्त किया है। जैसा कि गाधीजी ने कहा है, 'स्वावलम्बन मेरे लिय नयी तालीम की पहली शत नही, बल्कि उसकी सच्ची कसौटी है।" बुनियादी-तालीम में उत्पादन को ज्ञान का माध्यम माना गया जिसमे स्वावलम्बन सहज में सधता है।

समवाय शिक्षण की प्रक्रिया भी अपने ढग की होती है। यह अत्यन्त कठिन काम है। इसके लिय शिक्षकों में खास प्रतिभा एव निष्ठा की आवश्यकता है। जब हम रसोई बनान का काम करते थे तो पाक-शास्त्र के साथ-साथ स्वास्थ्य, सफाई जीव विज्ञान आदि की जानकारी दी जाती थी। इसी प्रकार खेती के काम के साथ कृषि विज्ञान का ज्ञान दिया जाता था। काम के साथ ज्ञान की जो प्रक्रिया चली उसका स्थायी असर होना स्वाभाविक है। यह प्रक्रिया उत्तर बुनियादी स्तर तक चली। यह अपेक्षा रखना स्वाभाविक है कि विद्यार्थी के स्तर विकास के साथ साथ समवाय के स्तर का भी विकास होगा। विद्यार्थी बुनियादी शाला में भी वही काम करेगा और उत्तर बुनियादी शाला में भी वही काम करेगा। लेकिन समवाय पद्धति में ज्ञान की गहराई बढ़ती जायेगी, साथ साथ उत्पादन की मात्रा भी बढ़ती जायेगी। इस दृष्टिस

खादीग्राम एवं सेवापुरी* दोनों स्थानों के प्रयोगों की सराहना की जानी चाहिये। सेवापुरी में उत्तर बुनियादी का प्रारम्भ उत्साहवर्धक था और प्रारम्भ के ६ वर्षों में जो निर्माण कार्य हुआ वह भी सराहनीय है। वहां के विद्यार्थियों को उसका भौतिक पुरस्कार भी मिला और उन्हें एक प्रकार से मुफ्त की शिक्षा मिली। यह अलग प्रश्न है कि उसमें लक्ष्य की प्राप्ति कितनी हुई। समवाय साधन का प्रयास वहां भी किया गया।

विद्यार्थियों को क्या मिला ?

यहाँ यह सवाल उठता है कि इस प्रयोग को, जिसे शिक्षा के क्षेत्र में नमूने का माना जाना चाहिये, क्या प्रतिफल मिला? विद्यार्थियों को क्या मिला और स्वयं प्रयोग को क्या मिला?

हमारे साथी, जिनके बारे में हमें मालूम है, अपनी तालीम से सन्तुष्ट नहीं है। वे कैसा भी जीवन बिता रहे हों यदि उन्हें तालीम से सन्तोष है तब तो यह माना जा सकता है कि इन प्रयोगों ने जो तालीम दी उसका इन विद्यार्थियों ने स्वागत किया है। परन्तु यदि इन्हें संतोष नहीं है तो स्थिति भिन्न मानी जानी चाहिये। यद्यपि इस प्रयोग से निकले विद्यार्थियों में गिने चुनों को संतोष भी है। लेकिन आम प्रतिक्रिया यह देखने में आयी— प्रयोग अपने आप में प्रयोग हो सकता है। लेकिन हमारा जीवन बना नहीं। (१) जो शिक्षा दी जाती वह समाज में व्यवहार्य नहीं है, (२) हम इतने निपुण नहीं हुए कि भौतिक दृष्टि से स्वावलम्बी जीवन बिता सकें, (३) सरकारी मान्यता नहीं होने के कारण हमारी आगे की शिक्षा अवरुद्ध हो गयी, (४) हो सकता है कि आज हमारी अच्छी आर्थिक स्थिति हो लेकिन यह अच्छी आर्थिक स्थिति उन मूल्यों की प्राप्ति नहीं करती जिसकी शिक्षा हमें नयी तालीम के प्रयोगों में मिली थी। (५) हमें सिद्धान्त तथा तात्कालिक व्यवहार में जो बातें बतायी गयी थी उस पर हम नहीं चल रहे हैं। ये पाँच बातें भिन्न भिन्न विद्यार्थियों के मतों का सार है। एक बार मेरे पिताजी खादीग्राम आये तो पूज्य धीरेन्द्र भाई ने उनसे कहा था कि तुम्हारा लड़का बाबू नहीं किसान बनेगा। लेकिन मैं न तो बाबू बना और न किसान। ऐसा लगता है किसानी का काम काफी कठिन है। लिखना अधिक आसान है और उसी से जीविका चलती है।

इन प्रयोगों को यदि हम विद्यार्थी बन कर देखते हैं तो कुछ अन्य बातें भी सामने आती हैं। हमें बौद्धिक एवं शारीरिक दोनों ज्ञान दिया गया। हमें यह स्वीकार करते हुये गर्व हो रहा है कि हम बौद्धिक स्तर में परम्परागत विद्यालयों से

---

* उ० प्र० के वाराणसी जिले में यह संस्था आज भी सफलतापूर्वक चल रही है। —सम्पादक।

निकले समकक्षीय विद्यार्थियों से किसी माने में पीछे नहीं रहे हैं। जब मैं सर्व प्रथम कालेज में आया तो हमारी मानसिक स्थिति यह थी कि हम कालेज में सबसे कमजोर हैं। हम बौद्धिक क्षेत्र में उनकी बराबरी नहीं करते हैं। लेकिन वार्षिक परीक्षा-फल आने पर यह भ्रम टूट गया। मैं ही नहीं, अन्य विद्यार्थी भी सामान्यतया कालेज के अन्य विद्यार्थियों से आगे रहे। तो इन प्रयोगों में बुद्धि विकास का स्तर नीचा है, ऐसा नहीं कह सकते हैं। स्वावलम्बन की दृष्टि से हमें जो कुछ मिला उसका क्षेत्र सीमित है। हमें कृषि उद्योग का अच्छा ज्ञान मिला ऐसा मानने में कोई शका नहीं है। हमारे जो मित्र खेती में लगे वे अच्छे किसान बने। करजगाँव बुनियादी विद्यालय* (मध्य प्रदेश) के एक सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ के विद्यार्थी वैज्ञानिक कृषक बने और उन्होंने स्वावलम्बन ही नहीं साधा बल्कि कृषि में अच्छी सफलता प्राप्त की है। खादीग्राम तथा सेवापुरी के प्रयोगों के अनुभव के आधार पर यह कहना चाहूँगा कि इन प्रयोगों में खेती के अलावा अन्य किसी ऐसे उद्योग की शिक्षा इस स्तर पर नहीं दी जा सकी कि व्यक्ति स्वावलम्बी जीवन बिता सके। अन्य उद्योगों में वस्त्र उद्योग, चमड़ा उद्योग, तेल घानी आदि का ज्ञान तथा उद्योग स्तर पर इतनी संभावनाएँ नहीं हैं जिससे व्यक्ति स्वावलम्बी हो सके। इसका एक कारण यह भी है कि इन उद्योगों के लिए जो तकनीक, पूंजी, बजार तथा अन्य सुविधाएँ चाहिये वे नहीं मिल पाती हैं। कुल मिला कर स्वावलम्बन का क्षेत्र कृषि तक सीमित हो जाता है। इसका एक कारण विद्यालय के पास साधनों की कमी भी मानी जानी चाहिये।*

समस्यायें

जहाँ तक इन प्रयोगात्मक विद्यालयों की स्थिति का सवाल है सबके सामने अपनी अपनी समस्याएँ हैं। कुछ समस्यायें समान हैं तो कुछ भिन्न। इन विद्यालयों की जो स्थिति बनी उस विचार एवं व्यवहार के आधार पर संस्थापकों द्वारा अपने क्रान्तिकारी विचारों का मूर्त रूप देने के लिये कुछ विद्यालय स्थापित किये गये पर, जब उन्हें लगा कि अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं या अनुभव के आधार पर यह लगा कि विद्यालय बन्द करना चाहिये तो ये विद्यालय बन्द कर दिये गये। इस प्रकार के विद्यालयों में खादीग्राम को माना जा सकता है, फिर कुछ ऐसे विद्यालय भी चलाये गये जो कि बुनियादी तालीम को मूर्त रूप देने के लिये थे। पर बाद में इन विद्यालयों के सामने भी कई ऐसी समस्यायें आयीं कि उन्हें समस्याओं के साथ समझौता करना पड़ा।

---

* यह शाला नयी तालीम के ख्यात आचार्य श्री पाटणकर जी के मार्गदर्शन में चल रही है। — संपादक।

* साथ ही केन्द्रित यन्त्राधारित-उद्योग-व्यवस्था के रहते इस प्रकार स्वावलम्बन नहीं सध सकता है। — संपादक।

और इस प्रकार के विद्यालयो ने सरकारी पाठ्यक्रम एवं मान्यता एवं एव अश तक आर्थिक मदद भी प्राप्त की। फलस्वरूप प्रयोग का मूल रूप कायम नही रहा। जिन प्रयोगात्मक विद्यालयों ने परिस्थिति के साथ समझौता नहीं किया उसे बन्द करना पडा, जैसे कि श्रम भारती खादीग्राम। इसके संस्थापक श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने नयी तालीम के विचार को आगे बढाकर एक स्थान पर विद्यालय चलाने के बजाय पूरे गाँव को विद्यालय 'ग्राम-भारती' का रूप देने की बात सामने रखी। उन्होंने नयी तालीम के विचार को आगे बढाया और उस क्रम में श्रम भारती के बुनियादी विद्यालय को बन्द कर दिया। उन्होंने बुनियादी तालीम के विद्यालय को वैचारिक आधार पर बन्द किया। विद्यालय को बन्द करने के कारणो में अनेक व्यावहारिक कारण भी थे। विद्यालय बन्द होने में निम्नलिखित व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी सहायक थी।

जिन कारणों से बुनियादी विद्यालयो के प्रयोगात्मक स्वरूप बदलने पडते है उन्हें विद्यालय की समस्या के रूप में इस रूपमें गिना सकते है —

(१) विद्यालय में जो कुछ भी कार्यक्रम चलता, शिक्षण की जो पद्धति अपनायी जाती है, वह परम्परागत समाज व्यवस्था से भिन्न है। समाज के लिये इस नये प्रयोग को सहज में स्वीकार करना सम्भव नही हुआ।

(२) आज की शिक्षण पद्धति में शारीरिक श्रम से घृणा का मानस बनता है जब कि बुनियादी तालीम शारीरिक श्रम को समवाय पद्धति से बौद्धिक विकास का माध्यम बनाती है। मौजूदा परिस्थिति में बुनियादी विद्यालय की स्थिति समुद्र में बूंद के समान हो जाती है। इस प्रतिकूलता के कारण बुनियादी विद्यालय के छात्रो की स्थिति ठीक नहीं रहती है। विद्यार्थियों की सख्या काफी कम रहती है। जो विद्यार्थी आते है उनका मन भी प्राप्त कर रही शिक्षा के बारे में साफ नहीं रहता है।

(३) योग्य शिक्षको का अभाव इस प्रकार के विद्यालय के सामने है। बुनियादी तालीम के लिये प्रशिक्षित शिक्षक प्राय नही मिलते है।

(४) सरकारी मान्यता के प्रश्न के कारण विद्यालय का चलना असम्भव-सा हो जाता है। यदि विद्यालय को सरकारी मान्यता नही है तो उस पर विद्यार्थियो के सकट के साथ साथ आर्थिक सकट भी आ जाता है। विद्यार्थी भी अपने को अधकार मे पाता है।

(५) लेकिन यह सवाल इसलिये भी महत्व का हो जाता है क्योंकि बुनियादी विद्यालय में निश्चित क्लास के बाद शिक्षण की व्यवस्था नही है। आगे पढने वालो के लिये यह प्रश्न महत्व का हो जाता है। यदि सरकारी मान्यता स्वीकार करते हैं तो उनका पाठ्यक्रम, उनके नियम, परीक्षा आदि भी स्वीकार करनी पडती है। फिर पूर्ण समवाय पद्धति नहीं चल पाती है।

(६) इस प्रकार के विद्यालयो के पास साधनो का अभाव रहता है। सरकारी मदद न मिलने के कारण साधन सीमित होते है। विद्यालय में पूर्ण स्वावलम्बन नही सध पाने के कारण आर्थिक कठिनाइयां और भी बढ जाती है। विद्यालय के पास उतने आर्थिक साधन नही होते कि पूर्ण स्वावलम्बन सध सके।

(७) विद्यार्थी जो कुछ सीखता उससे वह आज के वातावरण के अनुसार 'अच्छी जिंदगी' बिताने का नमूना पेश नही कर पाता है। इस कारण विद्यार्थियो का इस ओर आने का आकर्षण नही रहता है। हमारी राय में अकार्षण के अभाव का मुख्य कारण विद्यालय के सामने उक्त कठिनाइयाँ है।

बुनियादी तालीम के जो भी प्रयोगात्मक विद्यालय चले उन सभी के सामने उक्त कठिनाइयां आयी और इस कारण उन्हे परिस्थिति के साथ समझौता करना पडा या विद्यालय को बन्द करने का निर्णय लेना पडा।

सच्चाई से प्रयास ही नहीं हुये

ऊपर जो बातें कही गई है उससे बुनियादी विद्यालय की कठिनाइयो के अतिरिक्त विद्यार्थियो की मन स्थिति का एक चित्र स्पष्ट होता है। इससे उन्हें बुनियादी विद्यालयो के लिये उत्साह का भान नही होता। शायद इसके प्रति आशावान भी न होना चाहे। प्रयोगात्मक बुनियादी विद्यालयो की सामान्यतया यही स्थिति देखने में आयी। जब हम बुनियादी तालीम को समाज की समस्याओ एव देश की शिक्षा नीति के सन्दर्भ में देखते है तो कई बातें साफ होती है। ये प्रयोगात्मक विद्यालय पूर्णतया नही सफल हो सके इसका यह अर्थ नही कि ये हमारे अनुकूल नही है। हम तो यह कहना चाहेंगे कि अभी तक इस दिशा में सच्चाई से प्रयोग किया ही नहीं गया है। (१) इस सन्दर्भ में देश की सरकार की शिक्षा नीति हमेशा अस्पष्ट रही। वह बुनियादी तालीम के पक्ष में कभी नही रही। बल्कि इसके प्रयोग तक को अस्वीकारा गया। (२) देश का, सत्ताधारी सम्पत्तिवान एव बुद्धिजीवी वर्ग अपने स्वार्थ के कारण बुनियादी तालीम को नही चलाना चाहता है। (३) शिक्षा क्षेत्र (मौजूदा विद्यालयो में) में लगे लोग भी अपने स्वार्थवश इस तालीम को नहीं चलने देना चाहते। (४) इसका निष्ठापूर्वक प्रयोग भी अब तक नहीं किया जा रहा है। जो प्रयोग हुए उसकी भी अपनी सीमायें थीं। (५) सरकार ने बुनियादी शिक्षा के नाम को एक सीमा तक अपनाया परन्तु सिद्धान्त एव व्यवहार की ओर ध्यान नही दिया।*

---

* अब तो नाम तक भी त्याग दिया गया है।

—सपादक

— विश्व-गीत —

वसुधाके कुटुम्बकी जय हो।

हिन्दी बने सेतु हृदयोंको
कोटि-कोटि जनताकी जय हो।।

स्नेह-सिक्त मानसकी वाणी,
गूंजे गिरा यही कल्याणी;
चिर उदार भारतकी संस्कृति
सदा अभय हो, सदा अजय हो।
वसुधाके कुटुम्बकी जय हो।।

मिटे विषमता, सरसे समता,
रहे *मूलमें मीठी ममता;*
तमस-कालिमाको विदीर्ण कर
जन-जनका पथ ज्योतिर्मय हो।
वसुधाके कुटुम्बकी जय हो।।

जाति, धर्म, भाषा विभिन्न स्वर,
एक राग हिन्दीमें सजकर;
झंकृत करे हृदय-तन्त्रीको
स्नेह-भाव प्राणोंमें लय हो।
वसुधाके कुटुम्बकी जय हो।।

शील, शक्ति, सौंदर्य समन्वित,
ममतामय मानव हो निर्मित;
'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' द्वारा
मानवताकी पुण्य विजय हो।
वसुधाके कुटुम्बकी जय हो।।

—रामेश्वर दयाल दुबे

नयी तालीम : दिसम्बर-जनवरी '७५
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

कभी-कभी मेरी ऐसी कल्पना करने की इच्छा होती है कि चन्द्रमा भूमि से आकार में छोटा तो है, परन्तु उस पर जीवन की उत्पत्ति भूमि से कहीं पहले हुई थी। एक युग था, जब चन्द्रमा में भी रंगरलियां मनाई जाती थीं। वहाँ भी संगीत होता था, गति थी। उसके भाण्डार खाद्य पदार्थों से भरे रहते थे। उसके बाद चन्द्रमा में एक ऐसी पीढ़ी ने जन्म लिया, जिसने अपनी लोलुपता के कारण अपने चारों ओर के वातावरण का भक्षण शुरू कर दिया। इस पीढ़ी में ऐसे इन्सान पैदा हुए, जिनमें बुद्धि तो थी, किन्तु साथ ही पाशविक वृत्ति का आधिक्य था। वे इस बात की कल्पना नहीं कर सकते थे कि केवल वृद्धि करते रहने से पूर्णता नहीं आती। अपने वृहत् आकार के कारण उपलब्धि, आनन्द प्रदान नहीं करती, अपनी रफ्तार के कारण गति प्रगति नहीं बन सकती—प्रगति तभी प्रगति होती है, जब वह पूर्णता के किसी आदर्श से सम्बन्धित हो। वहाँ मोटे भुक्खड़ों ने वस्तुओं की स्वाभाविक माग उत्पन्न नहीं की। उन्होंने प्रकृति की दबी हुई सम्पत्ति को गहरी खुदाई करके बाहर निकाला और उसके साधनों का बहुत बुरी तरह उपयोग किया। जब उन्होंने सीमित साधनों को खत्म कर लिया, तब वे आपस में बड़ा भाग प्राप्त करने के लिये लड़ने लगे। अपनी उस होड़ में उन्होंने नैतिक नियमों की हँसी उड़ाई और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना वे अपनी पीढ़ी की श्रेष्ठता का चिह्न मानने लगे। उन्होंने जलपूर्ति के साधन खत्म कर दिए, वृक्षों को काट दिया और उस ग्रह की भूमि को असमतल मरुभूमि बना दिया। उन्होंने उसे बन्दूक की एक ऐसी थैली की तरह कर दिया, जिसमें से गोलियाँ निकाल ली गई हों, एक ऐसे फल की भाँति कर दिया, जिसमें रहने वाले कीड़ों ने ही उसका सारा गूदा खाकर उसे खोखला कर दिया हो। चन्द्रमा अन्ततः जीवनरहित एक घोंघा बन गया। उन भुक्खड़ लोगों की कब्र बन गया, जिन्होंने उसी दुनिया का भक्षण किया, जिसमें वे पैदा हुए थे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मुद्रक : शकरलाल लोढ़े, सत्साहित्य प्रेस, वर्धा

द्विमासिक

भविष्य मातृशक्ति का ही है :

हमारे लिये भावी कार्य :

भौतिकवाद का तूफान :

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] फरवरी–मार्च, १९७५ [अंक : ७

वर्ष २३
अंक ७
इस अंक का मूल्य २ रु प्रति

अनुक्रम

फरवरी–मार्च '७५

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* नयी तालीम का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और इस अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २३
अंक : ७

एकाधिकार की गलत दिशा :

हाल ही में दो ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनसे भारत में गहरी चिन्ता होना स्वाभाविक है। एक तो हमारे नये पडोसी राष्ट्र बंगला देशमें राजनीतिक अशान्ति व हिंसा के कारण संसदीय लोकशाही के स्थान पर एक ही पार्टी की अध्यक्षीय व्यवस्था कायम होना और दूसरे पाकिस्तान में मुख्य विरोधी पार्टी नेशनल अवामी लीग को गैरकानूनी घोषित करना व अनिश्चित काल तक वहाँ आपात् स्थिति लागू करना। श्रीलंका में भी पहले ही विरोधी दलों केऊपर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जा चुके हैं। बर्मा में तो काफी सालों से श्री ने विन की अध्यक्षता में फौजी सरकार ने राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में ले ही रखी है।

इस तरह भारत के करीब सभी पडोसी राष्ट्रों में लोकतंत्र का चिराग बुझ गया है। एशिया व अफ्रीका के अन्य देशों में भी एकाधिकार व्यवस्था चल रही है और प्रजातन्त्र केवल नाम के लिए है। इस गम्भीर परिस्थिति को देखते हुये भी हमारा पक्का विश्वास है कि भारत के लिए डेमोक्रेसी का तंत्र ही सर्वोत्तम है और उसमें परिवर्तन करनेकी बात सोचना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होगा। कुछ लोग यहाँ भी 'सीमित डिक्टेटर-शिप' की चर्चा करते रहे हैं। किन्तु यह ख्याल गलत है क्योंकि एकाधिकार से आम जनताका कभी स्थाई कल्याण नहीं हो सका है और न भविष्य में हो सकेगा। जैसा ऋषि विनोबा कई बार कह चुके हैं लोकतंत्र 'डेयरी के दूध' जैसा सामान्य होता है— न बहुत अच्छा, न बहुत खराब। किन्तु उससे उत्तम कोई और विकल्प नहीं है।

हाँ, उसमें कई प्रकार के सुधार अवश्य किये जा सकते हैं, और करने भी चाहिए। आजकी चुनाव पद्धति में बहुत से दोष है जिन्हें परिवर्तित करना अत्यन्त आवश्यक है। हमारी निर्वाचन प्रणालीमें धनिकों का प्रभाव तुरन्त बन्द होना चाहिए। चुनावोंको कम खर्चीला बनानेके लिए भी कई व्यावहारिक कदम उठाना जरूरी है।

प्रजातन्त्रको विकेन्द्रित करना भी लाजमी है। प्राचीन भारतमें पंचायतोंकी व्यवस्था 'पंच-परमेश्वर' के रूपमें विद्यमान थी। प्रशासन व न्याय का ढाँचा विकेन्द्रित होनेके कारण भ्रष्टाचार व अन्याय का अवसर बहुत कम था और राजनीतिक व आर्थिक सत्ता काफी मात्रामें जनताके हाथमें थी। इस समय भी करीब सभी राज्योंमें 'पंचायती राज्य' कानून बने हुए हैं। लेकिन फिर भी ग्राम पंचायतों को उतना महत्व नहीं दिया जाता है जितना दिया जाना चाहिए। अधिक सत्ता अभी भी केन्द्रीय व प्रान्तीय शासनों के पास ही है। सिर्फ कुछ राज्योंमें हमारा स्वराज्य कुछ हद तक जिला में पहुँच सका है।

जो हो, हमें देश की लोकशाही को सही दिशा में अधिक मजबूत व प्रभावशाली बनाने का प्रयास करते रहना है। एकाधिकार की गलत दिशा में कदम बढ़ाने के प्रयत्नों को किसी भी तरह का प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। उनका जोरदार विरोध भी करना हमारा परम कर्तव्य है।

इस दिशा में कार्य करने व उचित वातावरण बनाने का प्रयत्न करने की मुख्य जिम्मेवारी शिक्षण संस्थाओं की मानी जायगी। अगर भारत का युवा वर्ग यह बात भली भाँति समझ ले कि प्रजातन्त्र का मार्ग ही सर्वोत्तम है तो फिर देश का भविष्य उज्ज्वल रहेगा और कोई भी शक्ति हिन्दुस्तान को एकाधिकार की गलत दिशा में धक्का न दे सकेगी।

विद्यार्थियों में गांधी-विचार प्रचार

पिछली २४, २५, और २६ जनवरी को शिक्षा मंडल ने वर्धा में स्वर्गीय कमलनयन बजाजकी स्मृतिमें एक अन्तर विश्वविद्यालयीन वक्तृत्व स्पर्धा का आयोजन किया जिसमें देश की चालीस युनिवर्सिटियों के छात्रों ने भाग लिया। काश्मीर से केरल और कलकत्ता से कच्छ के विद्यार्थी तीन दिन तक वर्धा में एक साथ प्रेम से रहे और "भारत की वर्तमान आर्थिक समस्याओं का गांधी विचारधारा द्वारा हल" विषय पर उन्होंने गम्भीर चर्चा की। अधिकतर विश्वविद्यालयों ने जो प्रतिनिधि इस कार्यक्रम के लिये वर्धा भेजे थे वे अपने अपने क्षेत्र में अन्तरमहाविद्यालय स्पर्धा आयोजित करने के पश्चात चुने गये थे। इस तरह गांधीजी के आर्थिक विचारों का अध्ययन व प्रचार सारे देश में काफी व्यापक ढंग से होनेका सहज मौका मिल गया। जिन विद्यार्थियों ने इस वक्तृत्व स्पर्धा में हिस्सा लिया वे हिन्दी व अँग्रेजी दोनों भाषाओं

में बोले। उनका स्तर बहुत संतोषजनक रहा। उत्तम विचार व प्रभावशाली भाषा के अलावा उनमें गांधी जी के आदर्शों के प्रति गहरी श्रद्धा भी झलकती थी।

दो हजार रुपये का प्रथम पुरस्कार बम्बई के टाटा इन्स्टीटयुट ऑफ सोशल साइन्सेस के श्री जोन डि'मेलो को प्राप्त हुआ। दूसरे और तीसरे पुरस्कार (एक हजार और पांच सौ रुपये के) मद्रास युनीवर्सिटी के श्री जेम्स मेलकिओर और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के श्री विनोद घवन को दिये गये। इनके अलावा ढाई सौ रुपये के पांच अन्य प्रोत्साहन पुरस्कार पंजाब युनीवर्सिटी की कुमारी नीना शर्मा, इंडियन इन्स्टीटयुट ऑफ साइन्स, बंगलोर के श्री सुन्दरम्, उस्मानिया युनीवर्सिटी के श्री गोपाल, श्री वेंकटेश विश्वविद्यालय के श्री चन्द्रमोहन और कानपुर युनीवर्सिटी के श्री मोहन अग्रवाल को प्रदान किये गये। सभी नक्द पुरस्कारों के साथ गांधीजी की कुछ पुस्तकें भी दी गई थीं।

यह स्पर्धा शिक्षा मंडल वर्धा की ओर से प्रतिवर्ष होगी। हर साल पूज्य महात्मा गांधी की विचारधारा का एक-एक पहलू चुना जाएगा जिनपर विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपना भाषण देंगे। इस प्रकार विभिन्न विषयोंपर महात्माजी के विचारों को समझने व उनपर अपने ख्याल जाहिर करने का अवसर छात्रों को मिलता रहेगा। वर्धा व सेवाग्राम के सात्विक वातावरण में एक साथ रहकर उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना भी अधिक दृढ बन सकेगी।

इस योजना को शुरू करने के लिए हम शिक्षा मंडल का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हम आशा करते हैं कि इस कार्यक्रम का लाभ देश के अधिक से अधिक विश्वविद्यालय उठावेंगे। हमें ज्ञात हुआ है कि अगले वर्ष से यह स्पर्धा गांधी विचार धारा पर एक परिसंवाद के रूपमें आयोजित की जायगी।

विश्व हिन्दी विद्यापीठ :

पूर्व सूचनानुसार ता १० से १३ जनवरी तक विश्व हिन्दी सम्मेलन का अधिवेशन नागपुर में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। ता १४ जनवरी को मकर सक्रान्ति के पुण्य पर्व के दिन बहुत से विदेश व भारत के हिन्दी विद्वान वर्धा भी पधारे। उन्होंने सबसे पहले पवनार आश्रम में ऋषि विनोबा का दर्शन किया और उनका विशेष सन्देश सुना। उनके एक वर्ष के मौन के शुरू होने के एक दिन पहले विनोबाजी ने विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रतिनिधियों के विचारार्थ कुछ विचार व्यक्त किये थे जो रिकार्ड कर लिये गये थे।

उसके पश्चात सभी प्रतिनिधि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के हिन्दी नगर के प्रांगण में विश्व हिन्दी विद्यापीठ के शिलान्यास सम्बन्धी महोत्सव में शामिल हुये। इस विद्यापीठ की रूपरेखा 'नयी तालीम' के पाठकों को नवम्बर के अंक में दी जा चुकी है।

विश्व हिन्दी विद्यापीठ का शिलान्यास केन्द्रीय कृषि मंत्री माननीय जगजीवनराम के करकमलों द्वारा हुआ और समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी ने की।

शिलान्यास के कार्यक्रम में आचार्य काकासाहब कालेलकर, आदरणीया महादेवी वर्मा व विदेश के कई विद्वानों का आशीर्वाद प्राप्त हो सका।

श्री जगजीवनरामजी ने अपने भाषण में बिलकुल ठीक ही कहा कि विश्व हिन्दी विद्यापीठ विभिन्न देशों के विद्यार्थियों को केवल हिन्दी ही नहीं सिखायेगी बल्कि भारत की समन्वित संस्कृति और विशेषकर गांधीजी की विचारधारा व संस्कारों के वातावरण का सिंचन भी करेगी।

हमें उम्मीद है कि इस विद्यापीठ का काम अब शीघ्र ही प्रारम्भ हो जायगा। उसकी सफलता के लिये हमारी हार्दिक कामनायें तो हैं ही।

—श्रीमन्नारायण

नकारात्मक संस्कृति की ओर :

अभी हाल ही में 'सोसल सर्विस ऑफ इंडिया' नामक एक समाजसेवी संगठन ने उ. प्र. के कुछ बड़े नगरों में बाल अपराधों की एक जांच सम्पन्न की है जिसके अनुसार लगभग २० प्र. श. बालकों ने तो केवल मनोविनोद और जोखिम की भावना से ही पहला अपराध किया। लगभग ३० प्र. श. बालक प्रौढ़ अपराधियों के संग स्वयं ही चले गये। पारिवारिक विघटन के कारण से १८ प्र. श. बालक और सिनेमा, शराब आदि के कारण से २७ प्र. श. बालक अपराध की ओर गये। इन में सबसे अधिक संख्या (७० प्र. श.) के अपराध जेब काटने और छोटी-मोटी चोरी करने के थे। १२ प्र. श. चाकू छुरे भोंकने के अपराधी थे। गरीबी से तंग आकर भी कई अपराधी बने। अनेक बालक 'अपराध भावना' से तंग थे और समाज में वापस जाने को उत्सुक थे पर समाज उनके अपराध कलंक को स्वीकार कर माफ नहीं करेगा इसीलिये वे जेल में ही रहने के लिये विवश थे।

इसी तरह की एक रिपोर्ट कुछ समय पहले दिल्ली में हुई अपराधों की एक पुलिस जांच के बारे में मिली थी। उसके अनुसार भी दिल्ली जैसे बड़े नगरों में खासकर सनसनीखेज अपराध, जैसे कि डकैती करना, चाकू-छुरा भोंकने या बलात्कार करने आदि, पिछले तीन चार-साल में लगभग चार गुना बढ़ा है। इससे भी भयावह बात यह है कि ऐसे अपराधियों में खासकर बड़े माने जानेवाले घरों, जैसे कि व्यापारियों, सरकारी अधिकारियों और नेताओं, के बालक या रिश्तेदार ही अधिक थे। ये लोग शहरी जीवनकी चकाचौंध और फैशन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने या रोमांस

की मनोवृत्ति के कारण अपराध करते हैं। इस तरह के अपराधी अधिकतर कालेजों और विश्व विद्यालयों के छात्र-छात्रायें होती हैं।

अब यह तो अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इन बाल-अपराधों और युवा-अपराधों के बीच क्या समीकरण है पर एक बात कही जा सकती है कि ये बाल-अपराध जहाँ वर्तमान परिस्थिति के कारण पैदा होते हैं ये युवा-अपराध वहीं ठीक इसी परिस्थिति को 'बनाये रखने की हविश' के कारण होते हैं। माने ये युवा-अपराधी वर्तमान परिस्थितिके प्रति कोई नकारात्मक भाव रखने के बजाय उसमें स्वय फिट न बैठने के कारण ही खोज कर अपराध करते हैं। यह सबसे भयावह बात है। यह शिक्षाशास्त्रियों, प्रशासकों और नेताओ के लिये विचार और चिन्ता का विषय होना चाहिये। हमारी शिक्षा का इसमें सबसे बड़ा हाथ है जो कि कालेजों और विश्व विद्यालयों में पनप रही है। अतः इसमें परिवर्तन अपरिहार्य है।

शिक्षा में परिवर्तन का असल अर्थ यह होना चाहिये कि हमारी शिक्षा इस तरह की बनाई जाय ताकि हम देश की विशाल जनसख्या के गरीब से गरीब को भी कोई न कोई ऐसा हुनर सीखने की सुविधा और अवसर प्रदान कर सके कि वह अपनी सम्यक् जीविका की छानबीन करने के साथ ही उसे कमाने में भी समर्थ हो सके। इस दृष्टिसे देखेंगे तो आज शिक्षा में परिवर्तन के नाम पर दुर्भाग्य से केवल 'कुर्सी की दौड़' का वह खेल ही खेला जा रहा है जिससे अन्त में एक ही जीतता है और बाकी को केवल निराशा के तनाव में छोड़ दिया जाता है और फिर वे 'दासता की सस्कृति' के शिकार और वाहक मात्र बनकर रह जाते हैं।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

मो. क. गांधी :

भविष्य मातृशक्ति का ही है :

(संयुक्त राष्ट्र ने सन् १९७५ के वर्ष को अन्तरराष्ट्रीय 'स्त्री-वर्ष' माना है। उद्देश्य यह है कि पृथ्वी की इस आधी जन संख्या की, जो आज भी अत्यन्त पिछड़ी तथा दलित अवस्था में पड़ी है, ओर संसार का ध्यान जाय और मानवता के उच्चतमगुणों की सहजमूर्ति तथा जननी के उत्थान की दिशा में कुछ सक्रिय चिंतन करे। इस प्रसंग में महात्मा गांधी के विचार यहाँ दिये जा रहे हैं।)

स्वराज्य और स्त्रियाँ :

जिस स्वराज्य की मैं कामना करता हूँ वह तब तक असम्भव है जब तक कि उसमें स्त्रियाँ शामिल न हो और वे उसे समझ कर उसे अपना काम न मान लें। स्वराज्य के लिये मैंने जो भी सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें तय की है स्त्रियाँ उनका जितनी बारीकी से पालन कर सकती है पुरुष उतनी ही बारीकी से नहीं कर सकते हैं। यदि स्त्रियाँ इस बात को नहीं समझती या नहीं स्वीकार करती कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता को बनाये रखना और स्वतन्त्रता छिन गई हो तो उसे प्राप्त करना उनका धर्म है तो फिर राष्ट्र की सुरक्षा असम्भव ही है।[1] अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना मे जितना और जैसा अधिकार पुरुष को अपने भविष्य की रचना करने का है उतना और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है। लेकिन अहिंसक समाज की व्यवस्था में जो अधिकार मिलते हैं वे किसी न किसी कर्तव्य या धर्म के पालन से ही प्राप्त होते हैं। इसलिये यह भी मानना चाहिये कि सामाजिक आचार-व्यवहार के नियम स्त्री और पुरुष दोनों आपस मे मिलकर और राजी खुशी से तय करें। इन नियमों का पालन करने के लिये बाहर की किसी सत्ता या हुकूमत की जबर्दस्ती काम न देगी। स्त्रियों के साथ अपना व्यवहार और बर्ताव में पुरुषों ने इस सत्य को पूरी तरह से पहचाना नहीं है।[2]

स्त्री अबला नहीं :

स्त्रियों को अबला कहना उनका अपमान करना है। यह पुरुष का स्त्री के प्रति किया जाने वाला अन्याय है। यदि ताकत का अर्थ हम नैतिक ताकत से लेते हो तो फिर इसमें तो स्त्री पुरुष से कहीं अधिक शक्तिशाली है। क्या उसमें अधिक

१. हिन्दी नवजीवन ३०-१०-२०।
२. रचनात्मक कार्यक्रम, पृष्ठ ३२-३४।

स्त्री पुरुष की साथिन है जिसकी बौद्धिक क्षमतायें किसी भी तरह से पुरुष से कम नहीं हैं। पुरुष की प्रवृत्तियों और उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग और उपांग में भाग लेने का उसे अधिकार है और आजादी तथा स्वाधीनता का उसे भी उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को है। जिस तरह से पुरुष अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना गया है उसी तरह से स्त्री को भी अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में माना जाना चाहिए। स्त्रियाँ पढ़ना लिखना सीखें और उसके परिणाम स्वरूप यह स्थिति आये ऐसा नहीं होना चाहिये। यह तो हमारी सामाजिक व्यवस्था की सहज व्यवस्था होनी चाहिये।[५] स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। मेरी राय में उन पर कोई ऐसा कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता, नहीं लगाया जाना चाहिये जो कि पुरुषों पर न लगाया जा सकता हो। पुत्र और कन्याओं में किसी तरह का भेदभाव नहीं होना चाहिये। उनकेसाथ पूरी समानताका व्यवहार होना चाहिये।[६] पुरुष और स्त्री की समानता का यह अर्थ नहीं कि वे समान धन्धे भी करें। स्त्री के शस्त्र धारण करने या शिकार करने के खिलाफ कोई कानूनी बाधा नहीं होनी चाहिये। लेकिन जो काम पुरुष के करने के हैं उनसे स्त्री स्वभावतः ही विरत होगी। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एक दूसरे के पूरक के रूप में सिरजा है। जिस तरह से उनके आकार में भेद है उसी तरह से उनके कार्य भी मर्यादित और भिन्न हैं।[७]

शील रक्षा और अहिंसा :

पवित्रता जैसे स्त्री के लिए ध्येय मानी जाती है, वैसे ही वह पुरुष के लिये भी है। किन्तु कुछ ऐसा लगता है कि इस मामले में भी पुरुष ने अपने लिये कुछ विशिष्टता-सी स्वीकार की है। स्त्रियों की पवित्रता के बारे में पुरुष मानसिक अस्वस्थता की सूचक जैसी चिन्ता क्या दिखाते हैं ? क्या पुरुषों की पवित्रता के विषय में स्त्रियों को कुछ कहने का अधिकार है ? पुरुषों के शील की पवित्रता के विषय में हम स्त्रियों को कोई चिन्ता करते हुए नहीं सुनते। फिर स्त्रियों के शील की पवित्रता के नियमन का अधिकार अपने हाथों में लेने की इच्छा पुरुषों को क्या करनी चाहिये ? पवित्रता कोई ऐसी चीज नहीं है जो ऊपर से लादी जा सके। वह तो भीतर से विकसित होने-वाली और इसलिये वैयक्तिक प्रयत्न से सिद्ध होनेवाली चीज है।[८] मैंने हमेशा यह माना है कि किसी भी स्त्री का शीलभंग उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं किया जा सकता

---

५ उपरोक्त, पृष्ठ ४२५।
६ यंग इन्डिया, १७–१०–७२४।
७ हरिजन, २–१२–३९।
८ यंग इंडिया, २५–११–२६।

हैं। इस अत्याचार की शिकार वह तब होती है जब उसके मन पर डर छा जाता है, या जब उसे अपने नैतिक बलकी प्रतीति नही होती।[9] किसी भी स्त्री पर जब आक्रमण हो उस समय उसे हिंसा या अहिंसा का विचार करने की कोई जरूरत नहीं है। उसका पहला कर्तव्य आत्मरक्षा करना है। अपने शील की रक्षा के लिये उसे जो भी उपाय सूझे उसका उपयोग करने की उसे पूरी आजादी है। भगवान ने उसे दाँत और नाखून तो दिये ही हैं। उसे अपनी पूरी ताकत के साथ उनका उपयोग करना चाहिये और यदि जरूरत पड जाय तो प्रयत्न करते हुए मर जाना चाहिये। जिस भी पुरुष या स्त्री ने मरने का डर छोड दिया है वह न केवल अपनी ही रक्षा कर सकेगी बल्कि अपने प्राणों का बलिदान करके भी वह दूसरों की रक्षा भी कर सकेगी।"[10]

स्त्री और पुरुष समान दरजे के हैं परन्तु एक नही। उनकी अनोखी जोडी है। वे एक दूसरे की कमी पूरी करने वाले हैं और दोनों एक दूसरे का सहारा हैं। यहाँ तक कि एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता है। किन्तु यह सिद्धान्त ऊपर की स्थिति में से ही निकल जाता है कि पुरुष या स्त्री कोई एक अपनी जगह से गिर जाय तो दोनों का नाश हो जाता है। इसलिये स्त्री-शिक्षा की योजना बनाने वालो को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिये। दम्पती के बाहरी कामो में पुरुष सर्वोपरि है। बाहरी कामों का विशेष ज्ञान उसके लिये जरूरी है। भीतरी कामों में स्त्री की प्रधानता है इसलिये गृह-व्यवस्था, बच्चों की देखभाल उनकी शिक्षा आदि का स्त्री को विशेष ज्ञान होना चाहिये। यहाँ किसी को कोई भी ज्ञान प्राप्त करने से रोकने की कल्पना नही है किन्तु शिक्षा का क्रम इन विचारों को ध्यान में रखकर न बनाया गया हो तो स्त्री-पुरुष दोनों को अपने क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने का अवसर नही मिल सकेगा।"[11]

भविष्य स्त्री के साथ है :

मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ। किन्तु मैं यह नही मानता कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योगदान पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके दे सकती है। वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है किन्तु पुरुष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नही जा सकती है जिस ऊँचाई तक उठना उसके लिए सम्भव है। उसे पुरुष की पूरक बनना चाहिये।[12] यदि अहिंसा हमारे जीवन का नियम है तो मैं कह सकता हूँ कि भविष्य स्त्री के ही साथ है।

---

९ हरिजन, १४–१–४०।
१० हरिजन, १–३–४२।
११. सच्ची शिक्षा, पृष्ठ १५८–६१।
१२. हरिजन २७–२–३७।

विनोबा :

हमारे लिये भावी कार्य :

(गत २५ दिसम्बर से पूज्य विनोबा जी ने साल भर के लिये मौन व्रत धारण किया है। इस बीच वे लिखने का भी काम नहीं करेंगे। इससे पहले २२ और २३ दिसम्बर को सर्व सेवा संघ के कुछ साथी पवनार में एकत्र हुये और ग्राम-स्वराज्य के भावी कार्य पर विचार विमर्श करते रहे। उनसे बातचीत करते हुए पूज्य विनोबा जी ने जो विचार प्रकट किये वे यहाँ दिये जा रहे हैं।)

शब्दों का अपना विकास होता है। उन पर भी होमियोपैथी का जैसा नियम लागू होता है कि शब्द भी होमियोपैथी की तरह से जितने घोटे जायेंगे वे उतना ही अधिक गहरा अर्थ प्रकट करेंगे। घोटे जाने से उनकी भी पोटेन्सी बढ जाती है। यह समझना चाहिये कि हमने जब 'लोकशक्ति' की बात कही तो उससे 'गणशक्ति' नहीं कहा। लोकशक्ति और गणशक्ति में अन्तर होता है। गुणवान् गणशक्ति ही लोकशक्ति होती है। यहाँ पर हमें समर्थ स्वामी रामदास जी का वह कथन याद आ गया। जिसमें वे गणेश को ही 'गुणेश' भी कहते हैं। उन्होंने उसी 'गुणेश-गणेश' को ही नमस्कार किया है। इस गणेश का वाहन चूहा है जो सर्वत्र प्रवेश कर सकता है। यह बात समझने की है। इसलिये हम कहते हैं कि हमेशा गुणवर्णन ही करो। 'गुणवुम्बकत्व' का विकास करो। इसी सन्दर्भ में हमारे तीसरी-शक्ति के विचार को भी समझना चाहिये। हमने कहा है कि यह तीसरी शक्ति हिंसाशक्ति की विरोधी है और दंडशक्ति से भिन्न है। यह नहीं कहा कि यह दंडशक्ति की विरोधी है। उसकी यह विरोधी नहीं उससे भिन्न है। दंडशक्तिवाले तो हमारे नौकर हैं वे हमारे पाँच साल के लिये नौकर हैं। उनकी नौकरी हमें पसंद हुयी तो फिर भी उन्हें आगे के लिये नौकर रख सकते हैं नहीं तो नहीं। हमें जनता में इस प्रकार की पहचान करने की शक्ति जागृत करनी है।

हमने विदेशी डिमाक्रेसी लागू की है :

हमने अभी भारत में विदेशी ढंग की डिमाक्रेसी लागू की है। किन्तु बाबा ने इसके बारे में अपनी पुस्तक 'स्वराज्य-शास्त्र' में लिख दिया है। जो लोग उसमें रुचि रखते हों वे उसे पढ़कर डिमाक्रेसी पर बाबा के विचार जान सकते हैं। आज की यह डिमाक्रेसी तो डेरी का दूध है कोई शुद्ध गाय का दूध नहीं है। डेरी का दूध औसत होता है न बहुत खराब न बहुत अच्छा। वैसे ही यह डिमाक्रेसी भी है। यह न तो रावण राज्य होती है न रामराज्य ही होती है। यह उसके बीच की चीज है। इसलिये बाबा को तो इसके लिये कोई उत्साह नहीं है। यह तो 'बहु सख्यायनन' का राज्य है 'सज्जनायनन' का नहीं जिसके लिये बाबा ने अपने स्वराज्य शास्त्र में कहा है — 'बाबा का यह राजशास्त्र अभी कायम करना है आप सबको। यह आपके लिये आगे का काम है।' आज की इस डिमाक्रेसी की 'रक्षा' करने या उसकी 'हत्या' करनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है। मेरे विचार से तो यह वैसा ही सवाल है कि दूधमें पानी कितना है। अब वह पानी नल का भी हो सकता है और गगा का भी। पर वह है तो पानी ही। और कोई यह कहकर दूध बेचे कि मैंने इसमें गगा का पानी मिलाया है तो क्या वह दूध शुद्ध कहा जायगा? इसलिये बाबा के लिये इस सवाल का कोई महत्त्व नहीं है।

पचशक्ति सहयोग का अर्थ :

अब आपको बाबा के ये विचार यदि अरुचनीय मालूम पड़े तो आप पानी मिलाकर इस शुद्ध दूध को पियें पर यह बाबा के लिये शक्य नहीं होगा। हमें तो शुद्ध डिमाक्रेसी ही चाहिये आखिर पानी नहीं। बाबा ने यह भी कहा है कि यह काम भारत में बिना पचशक्ति सहयोग के नहीं होगा। उस पचशक्तिमें एक शक्ति शासन शक्ति भी है। मैंने उसे 'अनामिका' शक्ति कहा है याने उसका कोई नाम नहीं होता। उसका महत्त्व तो केवल वस्त्र सजावट के लिए ही है जैसे कि हम अनामिका में बस केवल अंगूठी ही पहनते हैं उसका और कोई उपयोग नहीं करते। वैसे ही शासन-शक्ति का हाल है। उसका उपयोग हमें इस तरह से करना है कि उसका महत्व ही समाप्त हो जाय। उसे तो बाकी चारों अंगुलियों से जुडकर ही अपना काम करना होगा। जैसे अनामिका स्वय अपने बल पर कुछ नहीं कर सकती है वैसे ही यह शासनशक्ति भी है। उसे आप चारों के साथ जोडो और उसको भी कुछ अलंकरण कर दो। बाकी असल काम तो सज्जनशक्ति, विद्वद्जनशक्ति, महाजन शक्ति और जनशक्ति को ही करना है। यह शासनशक्ति अपने आप में नहीं इन चारों से जुडकर ही काम करेगी। यह सब बाबा के इस विचार से निकलता है।

गाधी का आदेश अभी भी पडा है :

यह सब करना हो तो फिर अभी से काम आरम्भ करना होगा। गाधी जी ने सन १९१६ में ही एक बार मुझसे कहा था कि 'देख विनोवा! भारत में ७ लाख गाँव हैं, (उस समय भारत से पाकिस्तान अलग नही हुआ था) तो हमें हर गाँव के लिये एक कार्यकर्ता चाहिए।' अब बापू जी की इस बात को आज पूरे ६० साल हो रहे हैं पर हमने उनके इस आदेश पर कितना अमल किया है। इसके लिये मैं आज भी कह रहा हूँ कि यह होना चाहिये और यह किये बिना भारत का काम नहीं होगा। मैंने श्रीमन जी से कहा है कि वे ही वर्धा से यह काम आरम्भ करें। वर्धा को भारत के लिये नमूना बना सकते हो तो फिर वह सारे देश में फैलेगा ही।

मौनकी ताकत समुद्रकी ताकत है :

अब बाबा दो दिन के बाद साल भर का मौन ले रहा है। लोग कहते हैं कि फिर तो मुझे जो कुछ साल भर में कहना है वह मैं, अभी सब कह दूँ। जैसे कि लोग कहे कि कल एकादशी है तो आज ही उसके बदले भी खाले। पर हमारे यहाँ तो रिवाज दूसरा ही है। पहले ही दिन से कम खाना आरम्भ करते हैं। मेरे मौनसे आपको अधिक शक्ति मिलेगी यह बाबा का विश्वास है। मौन तो विश्व की सभी भाषाओं में है और उसकी ताकत तो समुद्र की जैसी है। इसमें शर्त इतनी ही है कि बाबा पूर्ण अहकार मुक्त हो गया हो जो कि बाबा का कोई दावा नही हो सकता है। फिर भी कुछ लाभ तो होगा ही।

आचार्य श्रीमन्नारायण :

भौतिकवाद का तूफान :

आत्म-विश्वास जागृत करें :

प्रारम्भ में ही मैं यह निस्संकोच कहना चाहता हूँ कि यदि उचित मार्गदर्शन व प्रोत्साहन दिया जाय तो भारत के नवयुवक संसार के किसी भी देश के नवयुवकों से किसी भी प्रकार कम योग्य नहीं हैं। मैं दुनिया के बहुत से देशों में घूमा हूँ और वहाँ के विश्वविद्यालयों का निरीक्षण भी किया है। मैं अपने देश की युवा पीढ़ी से यह कहना चाहता हूँ कि वे अपने दिल में किसी प्रकार की हीन भावना न रखें और आत्मविश्वास के साथ सभी दिशाओं में उच्चतम प्रगति प्राप्त करने की आशा व उत्साह रखें। हमें खुशी है कि स्वतंत्र भारत के नौजवानों ने शिक्षा, कला, पर्वतारोहण, खेल-कूद, विज्ञान तथा देश के संरक्षण आदि में अपनी कुशलता व बहादुरी का सुन्दर परिचय दिया है। अगर उन्हें योग्य दिशा दर्शन मिलता रहे तो वे भारत को एक आदर्श व प्रभावशाली राष्ट्र बनाने में अवश्य सफल होंगे। मेरे मन में उनके लिए सदा प्रेम और आदर रहा है और मेरी श्रद्धा है कि उनके हाथ में हमारा देश सुरक्षित रहेगा।

यह संतोष का विषय है कि पिछली २६ जनवरी को हमारे संविधान ने अपने २५ वर्ष पूरे कर लिये हैं। इन २५ वर्षों में देश को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चीन और पाकिस्तान से युद्ध लड़ने पड़े और कई तरह की प्राकृतिक आपत्तियाँ भी झेली गईं। राजनैतिक क्षेत्र में भी काफी उथल-पुथल हुई। फिर भी भारतीय संविधान के लचकीलेपन ने इन दिक्कतों का सफलता से सामना किया और इस देश में प्रजातंत्र को कायम रखा है। इस समय एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरीका में लोकशाही की व्यवस्था बहुत ही कम देशों में चल रही है और अधिकतर में एकतंत्रवाद या डिक्टेटरशिप का संचार हो रहा है। ऐसी अवस्था में भी भारतीय गणराज्य अपने कठिन मार्ग पर चलता जा रहा है। यह सही है कि हमारे प्रजातंत्र में कई खामियाँ व कमजोरियाँ हैं। फिर भी कुल मिलाकर हम अपनी बहुमुखी प्रगति व विकास पर गर्व कर सकते हैं। हम सभी का यह परम कर्तव्य है कि भारतीय लोकतंत्र को अधिक मजबूत बनावें ताकि वह अन्य विकासशील देशों के

लिए एक नमूना पेश कर सकें। मेरा यह पक्का विश्वास है कि आम जनता के कल्याण के लिये कुछ कमियों के बावजूद प्रजातन्त्र की पद्धति ही सर्वोत्तम है। भारत को इसी प्रणाली का अवलम्बन करते रहना चाहिए। किसी भी प्रकार के एकाधिकार द्वारा राष्ट्र का स्थायी हित न हो सकेगा।

लोकशाही की अनिवार्यतायें :

आजाद होने के बाद भारत में हम दो महत्वपूर्ण काम अभी तक नहीं कर पाये हैं। एक तो शिक्षा प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन नहीं हुए हैं और दूसरे हमारी चुनाव-पद्धति विकृत बनती जा रही है। चुनावों के सम्बन्ध में तो मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि उनमें काले धन का संग्रह और उपयोग तुरन्त बन्द होना चाहिये। पहले व्यापारी वर्ग खुले ढंग से विभिन्न राजनीतिक-दलों को चेक द्वारा सहायता दे सकते थे। किन्तु कुछ वर्ष पहले इस प्रकार की आर्थिक सहायता देना गैर-कानूनी कर दिया गया। फलतः अब चुनावों में सिर्फ काले धन का बड़े पैमाने में इस्तेमाल हो रहा है और इसके कारण तस्करी, चोर-बाजार, मिलावट व भ्रष्टाचार को बहुत बढ़ावा मिला है। चुनाव इतने महंगे हो गए हैं कि एक साधारण व्यक्ति के लिये तो उन्हें लड़ना नामुमकिन हो गया है। अतः यह जरूरी है कि चुनावों के ढंग में कुछ ऐसे परिवर्तन किये जायें जिनके द्वारा वे शुद्ध, सादा और कम खर्चीले बन जायें। नहीं तो हमारी लोकशाही गम्भीर खतरे में पड़ जायगी और देश की आजादी को भी धक्का लगे बिना नहीं रहेगा।

जहाँ तक शिक्षा का सवाल है—राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री से लेकर साधारण नागरिक भी यह मानता है कि उसमें कुछ बुनियादी सुधारों की जरूरत है। इस सम्बन्ध में कई कमीशनों और कमेटियों ने अपनी सिफारिशें पेश की हैं। किन्तु हमें स्वीकार करना होगा कि पिछले २५ वर्षों में हमारी शिक्षा-प्रणाली करीब ज्यों की त्यों बनी है और उसकी वजह से हमारे राष्ट्रीय जीवन में घोर असन्तोष और विद्रोह का वातावरण खड़ा हो गया है। इसलिये अब इस काम में अधिक विलम्ब नहीं होना चाहिए और हमें हिम्मत और समझदारी से शिक्षा के ढाँचे में आमूलाग्र परिवर्तन कर देने चाहियें। करीब दो वर्ष पहले अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में हमने एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् संयोजित की थी जिसका उद्घाटन स्वयं प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया था। इस सम्मेलन में करीब सभी राज्यों के शिक्षा-मंत्री और बहुत से विश्वविद्यालयों के कुलपति भी शामिल हुए थे। देश के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री और बुनियादी तालीम के विशेषज्ञ तो उसमें उपस्थित थे ही। तीन दिन की गम्भीर चर्चा के बाद इस परिषद् ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया था जो अब एक प्रकार से शिक्षा-सुधार का 'चार्टर' माना जाता है। इस वक्तव्य में यह सर्वानुमति से स्वीकार किया गया था कि हमारी शिक्षा हर स्तर पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी और उत्पादक

क्रिया-कलापों द्वारा आर्थिक विकास से सम्बद्ध की जाय और उसका प्रसार ग्रामीण तथा नगरीय दोनों क्षेत्रों में तेजी से किया जाय। यह भी स्वीकार किया था कि प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तरों के पाठ्यक्रमों में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, श्रम-प्रतिष्ठा और समाज सेवा के मूल तत्वों पर बल दिया जाय। नैतिक मूल्यों का सिंचन तथा सर्व-धर्म-समभाव के बुनियादी सिद्धान्तों पर जोर देना भी जरूरी है। इन पाठ्यक्रमों में हमारी समन्वित सांस्कृतिक परम्परा की जानकारी, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, राष्ट्रीय एकता, अन्तरराष्ट्रीय सहयोग तथा अहिंसा, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की विचारधारा का समावेश होना चाहिये। हमें खुशी है कि कई राज्य सरकारों ने इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है और वे अपने क्षेत्र में उन्हें लागू करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि उत्तर प्रदेश सहित अब राज्य-शासन भी इस ओर विशेष ध्यान देंगे ताकि देश की शिक्षा-पद्धति में नये जीवन का संचार हो सके। जब तक हमारी शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादन और विकास के विभिन्न कार्यक्रमों से जोड़ा नहीं जायगा तब तक शिक्षितों की बेकारी की समस्या हल करना असम्भव होगा। इस समय एक तरफ हमारे पढ़े लिखे नौजवान बेकार घूम रहे हैं और दूसरी ओर बहुत सी ऐसी योजनायें हैं जिनके लिए योग्य कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं हैं। इस पहेली को तभी हल किया जा सकता है जब हमारी शिक्षा जीवन-उपयोगी और रचनात्मक क्रियाकलापों से जोड़ दी जाय।

गांधीजी का ऐलान :

राष्ट्र की एकता को कायम रखने के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि हमारे शिक्षकों व विद्यार्थियों के जीवन में नैतिक मूल्यों को समुचित महत्व दिया जाय। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हमें बार-बार समझाते रहे कि पवित्र साध्यों को अपवित्र साधनों द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। हमारे उद्देश्य भले ही ऊँचे और शुद्ध हों, किन्तु उनकी प्राप्ति के साधन भी उतने ही शुद्ध होने चाहियें। आजादी की लड़ाई के वक्त भी गांधी जी ने बुलन्द आवाज से ऐलान किया था कि "मैं स्वराज्य के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के लिये तैयार हूँ, किन्तु सत्य और अहिंसा नहीं।" सन् १९२१ में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरीचौरा गाँव में जब आन्दोलनकारियों ने पुलिस के कुछ लोगों को जिन्दा जला दिया तो गांधी जी ने सारे देश का सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। इसकी वजह से हमारे कुछ नेताओं को बुरा भी लगा, किन्तु बाद में सभी ने महसूस किया कि गांधी जी का यह कदम सही था। यदि वे अहिंसा का इतना आग्रह न रखते तो अँग्रेजी साम्राज्य हमें अपने हिंसात्मक बल से बुरी तरह कुचल देता और हम कई दशकों तक अपना सिर ऊपर न उठा पाते।

इस समय भी देश पर हिंसा और विध्वंस के बादल घिरे हुए हैं और इस प्रकार की हिंसक प्रवृत्तियों में हमारी युवा-पीढ़ी अक्सर उलझ जाती है। अतः हमारे नौजवानों को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि दुनिया में हिंसा और असत्य से न कोई कार्य सिद्ध हुआ है, न हो रहा है और न भविष्य में होगा। हिंसा की वजह से प्रतिहिंसा होती है और फिर शासन उसे आसानी से दबा देता है। अगर इसी प्रकार की हिंसक कार्यवाइयाँ होती रहीं तो फिर राज्य 'फॅसिस्ट' बन कर एकाधिकार की ओर मुड जाता है। इसमे न व्यक्ति का भला है और न समाज और राष्ट्र का। यह विचार सिर्फ महात्मा गाधी का नही है, किन्तु ससार के सर्वस विद्वान इतिहासकार डा. आर्नोल्ड टॉयनबी ने भी यही बात बडे मार्मिक शब्दों में कही है। उनकी हाल ही मे प्रकाशित पुस्तक 'सरवाइविंग दी फ्यूचर' में नवयुवकों को सम्बोधित कर वे लिखते हैं :—

"Try to put yourselves in the other people's place and to see why they hold those opinions or do those things with which you so strongly disagree. Go on opposing the conservative-minded members of your parent's generation. Certainly try to resist them and to defeat them as far as their ideas and ideals seem to you to be mistaken, **but do this in the Gandhi spirit; do it without hatred.**"

मै आशा करता हूँ कि हमारे देश के विद्यार्थी व नवयुवक डा. टॉयनबी की इस मूल्यवान सलाह पर गहराई से चिन्तन करेंगे और उसी प्रकार अपना जीवन ढालेंगे।

भारत एक बहुधर्मी और बहुभाषी राष्ट्र है। उसमें विभिन्न जातियाँ, मजहब, भाषायें और राज्य हैं जो भारतीय सघ के अविभाज्य अग माने जाते हैं। इसलिये अगर हमे देश की एकता को मजबूत बनाना है तो प्रारम्भ से ही विद्यार्थियों में सर्व-धर्म-समानत्व की भावना जगानी होगी और देश की विभिन्न भाषाओं के प्रति आदर पैदा करना होगा। बडे राष्ट्र को कायम रखने के लिये हम सभी के दिल और दिमाग भी विशाल होने चाहियें। नही तो हमारा राष्ट्र टूटे बिना नही रहेगा और सदियों तक उसकी उन्नति मन्द पड जायगी। ऋग्वेद में ऋषियों ने 'विश्व-मानुष' का आदर्श पेश किया था और घोषणा की थी कि चारो ओर से हम शुभ-विचारो का स्वागत करेंगे :

'आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:'

भारत के गतिशील विकास के लिए आज भी ऋषियों की यह वाणी अत्यन्त कल्याणकारी सिद्ध होगी।

यदि हम अपनी शिक्षण-संस्थाओं को सच्चे अर्थ में ज्ञान और विज्ञान का केन्द्र बनाना चाहते हैं तो यह बिलकुल जरूरी है कि वे संकुचित राजनीति से अलग रहें। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस समय हमारी बहुत सी शिक्षण-संस्थाओं में भी राजनीतिक-दल घुस गये हैं और उन्हें अपने स्वार्थ सिद्धि का साधन बना लिया गया है। गांधी जी ने नवयुवकों को सलाह दी थी कि जब तक वे विद्यार्थी रहें तब तक उन्हें सत्य-शोधक बने रहना चाहिए, राजनीति के जाल में नहीं फँसना चाहिए। अपना अध्ययन पूरा करने के बाद वे किसी भी पार्टी में इच्छानुसार शामिल हो ही सकते हैं। विद्यार्थी-जीवन में उन्हें सभी विचारधाराओं का तटस्थ और निष्पक्ष ढंग से गहरा अध्ययन करना चाहिए। लेकिन दलगत राजनीति से दूर रहने में ही उनका व देश का भला है। यही बात शिक्षकों को भी लागू होती है। जिन संस्थाओं में शिक्षक और विद्यार्थी राजनीतिक पार्टियों के दलदल में फँस जाते हैं वे शिक्षा के मंदिर नहीं लेकिन दुनियादारी के अड्डे बन जाते हैं।

ऋषि विनोबा का सुझाव :

भाषा के प्रश्न को लेकर भी हमारे देश में बहुत से विवाद खड़े होते रहते हैं। अब यह सभी शिक्षा-शास्त्री मानते हैं कि हमारी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होना चाहिए। साथ ही सब विद्यार्थियों को राष्ट्रभाषा हिन्दी और कोई एक विदेशी भाषा का अध्ययन करना वांछनीय है। राष्ट्रभाषा माध्यमिक शालाओं में सिखाई जाय और विदेशी भाषाओं का ज्ञान विश्वविद्यालयों में दिया जाय। शिक्षा-मन्त्रालय ने भी इसी प्रकार का 'त्रिभाषी फार्मूला' सारे देश में लागू करने की सलाह दी है। किन्तु हमें शर्म के साथ यह स्वीकार करना होगा कि आज़ादी मिलने के २५ वर्ष बाद भी अँग्रेज भले चले गये हों किन्तु अँग्रेजियत नहीं गई है और अँग्रेजी भाषा के प्रति हमारा मोह घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। अभी हाल ही में नागपुर में 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' हुआ था जिसमें लगभग ३० विदेशों से हिन्दी के विद्वान पधारे थे। उनमें से कई ने अपने दिल का दर्द प्रगट किया कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने की कोशिश करने के पहले हमें उसे भारत में प्रतिष्ठित करना चाहिए। डेनमार्क के एक प्रोफेसर ने तो यहाँ तक कह डाला कि "पहले हिन्दी वाले ही हिन्दी को अपनावें।" उत्तर प्रदेश जैसे हिन्दी राज्य में ही हिन्दी का अपमान हो रहा है। बाजारों में चारों ओर अँग्रेजी के साइनबोर्ड देखे जाते हैं और दफ्तरों में अब भी अँग्रेजी का काफी चलन है। बोलचाल की भाषा भी हिन्दी-अंग्रेजी की खिचड़ी हो है। हिन्दी अखबारों की अपेक्षा

अँग्रेजी समाचार पत्रों का अधिक प्रभाव और प्रचलन बना हुआ है। इस कमी को शीघ्र दूर करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि हिन्दी के साथ यहाँ के विद्यार्थी कम से कम एक अन्य भारतीय भाषा का ज्ञान प्राप्त करें। यह कार्य आसान बन सकता है अगर सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी को एक अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। ऋषि विनोबा ने इस सुझाव को राष्ट्र के सामने पेश किया है और उसका समुचित स्वागत भी हो रहा है।

हमारी उच्च शिक्षा म एक विदेशी भाषा सीख लेना भी हितकर होगा। किन्तु यह जरूरी नही है कि हम सिर्फ अँग्रेजी ही सीखें। मेरा ख्याल है कि अँग्रेजी के अलावा हमें योरप की फ्रेंच, जर्मन और रूसी भाषायें तथा चीनी, जापानी, नेपाली जैसी कुछ एशिया की भाषायें भी सीखने की कोशिश करनी चाहिये। हमारे विश्वविद्यालयों में यदि पडोसी देशों की भाषाओं को सिखाने का प्रबन्ध किया जाय तो राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी होगा। हम अँग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं के विरुद्ध नही हैं। किन्तु मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के स्थान पर उन्हे शिक्षा का माध्यम बनाना बिलकुल गलत है।

आज का जमाना विज्ञान का युग कहलाता है। यह जरूरी है कि भारत के सभी क्षेत्रों में विज्ञान से उचित लाभ उठाया जाय। कृषि और उद्योगों के उत्पादन को बढाने के लिये विज्ञान का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु हमें यह नही भूलना चाहिये कि विज्ञान के साथ अध्यात्म या आत्मज्ञान का समन्वय अनिवार्य है। विज्ञान में गति है और शक्ति भी, किन्तु दिशा-दर्शन नही है। विज्ञान को यह दिशा-दर्शन केवल अध्यात्म दे सकता है। यदि विज्ञान के साथ अहिंसा को जोड दिया जाय तो दुनिया मे शांति और सर्वोदय स्थापित हो सकेगा। किन्तु यदि विज्ञान में हिंसा का समावेश हो गया तो फिर सर्वनाश निश्चित ही है। इस महत्वपूर्ण समन्वय का कार्य भारत को करना है। यही हमारे राष्ट्र का सच्चा मिशन है जिसे हमें पूरा करना ही होगा।

पश्चिम की नकल न करें !

कई वर्ष पहले जब मैं अमरीका की हर्वर्ड यूनिवर्सिटी देखने गया था तब वहाँ के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो शुमपीटर ने मुझ से पूछा "क्या आप अपने देशवासियों को मेरा एक सन्देश देंगे ?" थोडी देर रुक कर उन्होंने कहा "भारतवासियों से कहियेगा कि वे अमरीका का अनुकरण न करें।' जब मैंने उनसे कुछ स्पष्टीकरण मांगा तो वे समझाने लगे 'अमरीका आज दुनिया का सबसे समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र है, किन्तु हमारे पास आध्यात्मिक शक्ति नही है और हम भौतिकवाद मे बुरी तरह फँस गये हैं। भौतिक और अध्यात्म के समन्वय का दर्शन केवल भारत ही दे सकता है। अगर भारत ही अमरीका की नकल करने लगेगा

तो फिर हम मार्गदर्शन के लिये किस ओर देखेंगे ?" यह विचार आज भी हमारे सामने एक बडे प्रश्नचिन्ह के रुप में खडा हैं। हमें इसका केवल उत्तर ही नहीं देना हैं किन्तु अपने विश्वविद्यालयों द्वारा इसका एक नया जीवन-दर्शन भी उपस्थित करना हैं।

हमारे देश में 'सेक्युलर' शब्द के अर्थ से बहुत अनर्थ हुआ हैं। यद्यपि इस शब्द का प्रयोग भारतीय संविधान में किसी जगह नहीं किया गया हैं, फिर भी उसका उच्चारण हमारे नेताओं द्वारा निरन्तर किया जाता रहा हैं। अंग्रेजी में तो 'सेक्युलर' का अर्थ हैं ऐसा राज्य जिसमें किसी धर्म का स्थान न हो। किन्तु भारत में इससे 'सर्व-धर्म-समभाव' के अर्थ में लिया जाना चाहिये। आजाद हिन्दुस्तान मे सभी मजहबो को बराबरी का स्थान हैं और प्रत्येक नागरिक को यह पूरा अधिकार हैं कि वह अपने धर्म का पालन करे लेकिन उसे यह हक नही हैं कि वह दूसरे मजहबों के प्रति विद्वेष और घृणा फैलाये। हम चाहते हैं कि सभी शिक्षण-संस्थाओं मे विद्यार्थियो को यह विचार भलीभांति समझाया जाय ताकि वे अपने जीवन में धार्मिक मूल्यो को उचित स्थान दे और सभी धर्मो के प्रति समान आदर रखकर राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को अधिक दृढ बनाने में समर्थ हों। जिस राष्ट्र में धार्मिक और नैतिक मूल्यों को समुचित महत्व नही दिया जाता हैं, वे आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से कितने हीं समृद्धशाली बने, किन्तु उनकी नीव खोखली हो जाती हैं और वे अन्त में अवनति की ओर ही फिसलते जाते हैं।

भौतिकवादका तूफान :

इस समय भारत में भी भौतिकवाद का तूफान बह रहा हैं। प्रत्येक व्यक्ति अनुचित तरीको से धन-संग्रह के कार्य में लगा हुआ जान पडता हैं। समाज में नीति और अनीति का बहुत कम ध्यान रखा जाता है। सामान्य लोग इस प्रकार व्यवहार कर रहे हैं मानो मृत्यु के बाद वे अपना सारा धन बटोर कर परलोक ले जायेंगे। कुछ इसी प्रकार का वातावरण स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयो में फैलता जा रहा है। विलासिता, व्यसनप्रियता और भ्रष्टाचार दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं। इस दिशा मे आधुनिक फिल्में अग्नि मे घी डालने का काम कर रही हैं। यह सारा दृश्य देखकर हमें महाभारत के अन्त में उस श्लोक का स्मरण हो जाता हैं जिसमें ऋषि व्यास ने हाथ उठाकर मानव-मात्र को संबोधित करते हुए कहा हैं कि किसी भी अवस्था में धर्म का त्याग न किया जाय —

"न जानु कामात् न भयात् न लोभात्
धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतो।
धर्मो नित्य. सुखदु.खे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुर् अस्य त्वनित्य.।।"

अपनी किसी इच्छा की तृप्ति के लिये, भय से, लोभ से या प्राणों की रक्षा के विचार से भी धर्म न छोडना चाहिये। क्योंकि धर्म नित्य हैं और सुख-दु ख थोडे समय के हैं। आत्मा नित्य है, पर उसे बन्धन मे डालने वाला शरीर नश्वर है।

(५ फरवरी १९७५ को कानपुर विश्वविद्यालयमें दिया गया दीक्षान्त भाषण।)

समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन केन्द्रीय कानून १९५६ के ८ वें नियम के अनुसार अपेक्षित नयी तालीम से सम्बन्धित विवरण —

प्रपत्र ४

१ प्रकाशन का स्थान		सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र
२ प्रकाशन अवधि		प्रतिमाह की १४ तारीख
३	मुद्रक का नाम	श्री शकरराव लोढे
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा
४	प्रकाशक	श्री प्रभाकर
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	मन्त्री, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम, वर्धा
५	सम्पादक :	सर्वश्री श्रीमन्नारायण, श्री वंशीधर श्रीवास्तव, आचार्य राममूर्ति और श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता .	अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा
६. पत्र के मालिक का नाम व पता		अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा

मैं प्रभाकर यह घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही हैं।

ह० प्रभाकर
प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनाक १४-३-७५

समरबहादुर शाह :

नेपाल की आधार (बुनियादी) राष्ट्रीय शिक्षा :

(भारत के उत्तर में उसका सदियों से एक अत्यन्त मित्र और पड़ोसी देश नेपाल भारतीय विचारों और संस्कृति से गहराई से प्रभावित रहा है और जब भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ा तो खासकर गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का नेपाल पर भी बहुत प्रभाव पड़ा और वहाँ भी खादी, बुनियादी शिक्षा, जिसे यहाँ पर 'आधार-शिक्षा' कहा गया, और ग्रामोद्योगों के कई कार्यक्रम हाथ में लिये गये। नेपाल के गांधी कहे जानेवाले पूज्य तुलसी मेहर जी के नेतृत्व में यह काम कई साल तक चलता रहा है और वे अब भी इसका मार्ग दर्शन कर रहे हैं। नेपाल के वर्तमान महाराजा के पूज्य पिता स्व. महाराजाधिराज श्री महेन्द्र जब अपनी भारत यात्रा पर आये थे तो वे सेवाग्राम में बापू की कुटिया देखकर बहुत प्रभावित हुये थे और उन्होंने देश में वापस आकर फिर उस दिशा में काम आरम्भ कर दिया। गांधी जी के बुनियादी शिक्षा के विचार को तो नेपाल ने ठेठ सन् १९३८-३९ के जमाने से ही अपना लिया था। आज भी नेपाल की राष्ट्रीय शिक्षा नीति इसी पर आधारित है यह इस लेखमें बताया गया है।)

नेपाल में न केवल शिक्षा में ही अपितु राजनैतिक क्षेत्र में भी गांधी जी से ही प्रेरणा ग्रहण की है और वहाँ की दलविहीन पंचायत प्रणाली उन्हींकी स्थानीय आवृत्ति है। नेपाल की राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य भी इस प्रणाली के अनुरूप तेज व सक्षम नागरिक तैयार करना है। इस प्रणाली का उद्देश्य एक न्यायपूर्ण, शोषण विहीन सहकारी व स्वतन्त्र समाज की स्थापना करना है और शिक्षा का इन उद्देश्यों के अनुरूप काम करना होगा। यही राष्ट्रीय शिक्षा का काम होना भी चाहिये। नेपाल के शिक्षा शास्त्रियों का विचार है कि एक सम्यक् शिक्षा प्रणाली के विकास के बाद ही राष्ट्र के ये उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके लिये यह त्रिमुखी कार्यक्रम तैयार किया गया है —

(१) पंचायती प्रणाली के अनुकूल सक्रिय रहनेवाले नागरिक तैयार करना।

(२) राष्ट्र के हर क्षेत्र के काम के लिये योग्य कार्यकर्ता तैयार करना। और

(३) हर नागरिक में शरीरश्रम की निष्ठा तथा क्षमता, नैतिक, चरित्र, स्वावलम्बन और सृजन की प्रवृत्ति, वैज्ञानिक ढंग से काम करने की प्रवृत्ति, दूसरों के विचारों और भावनाओं का आदर करने की भावना, कला और कौशल तथा सौन्दर्य के प्रति अनुराग तथा विश्व बंधुत्व की भावना का विकास करना इस शिक्षा पद्धति का उद्देश्य है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को नीचे लिखी तहों या स्तरों में संगठित किया गया है —

(क) प्रथम तह या प्राथमिक शिक्षा — यह तह कक्षा १ से लेकर कक्षा ३ तक की है और इसका उद्देश्य सामान्य साक्षरता की शिक्षा प्रदान करना है।

(ख) द्वितीय तह या निम्न प्राथमिक शिक्षा — यह कक्षा ४ से लेकर ७ तक है और इसके लिए दक्ष तथा राजभक्ति की शिक्षा, चरित्र निर्माण और पूर्व व्यावसायिक शिक्षा की बुनियाद जमाना इसके उद्देश्य रखे गये हैं।

(ग) तृतीय तह या माध्यमिक शिक्षा — यह कक्षा ८ से कक्षा १० तक की है और इसका उद्देश्य व्यावसायिक तथा उत्पादक शिक्षा पद्धति के माध्यम से समाजोपयोगी कौशलों में हुनर प्राप्त नागरिक तैयार करना है।

(घ) चतुर्थ तह या उच्च शिक्षा — यह कक्षा १० से आगे की शिक्षा योजना है और यह भी फिर क्रमशः प्रमाणपत्र तह, डिप्लोमा तह और अनुसन्धान तह के तीन भागों में विभाजित है जो स्वयं अपने नाम से ही अपने उद्देश्य को प्रकट करते हैं। नेपाल की उच्च शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र के लिये योग्य कुशल देशभक्त और राजभक्त नागरिक तैयार करना है।

इस राष्ट्रीय शिक्षा योजना के कार्यान्वयन के लिये एक उच्चाधिकार प्राप्त राष्ट्रीय शिक्षा समिति का गठन किया गया है। समिति स्वयं श्री ५ सरकार की देखरेख में उनके ही द्वारा नियुक्त अधिकारियों के निर्देशन में काम करेगी। विश्व विद्यालय के लिये राज्य की ओर से स्पष्ट आदेश तथा नियमों की व्यवस्था की गई है और वे उनके ही माध्यम से काम करते हैं। विश्व विद्यालयों के लिये इन नियमों में विश्व विद्यालय के प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की, विश्व विद्यालय सभा के कर्तव्यों की प्राविधिक सम्मेलन फैकेल्टी बोर्ड तथा सेवा आयोग आदि की स्पष्ट व्याख्यायें की गई है।

प्रौढ या समाज शिक्षा :

शालेय या विश्व विद्यालयीय शिक्षा के अलावा व्यापक समाज शिक्षा या प्रौढ शिक्षा की भी एक समन्वित योजना तैयार की गई है। यह काम दो प्रकार से किया जा रहा है। एक तो सामान्य साक्षरता प्रसार का काम है जिसके मातहत प्रौढ़ों *को साक्षर करने का अभियान चलाया जाता है और विश्व विद्यालय के छात्र तथा* अध्यापक भी इसमें भाग लेते हैं। दूसरे कार्यमूलक प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम होते हैं जिसे

हम भारत में फंक्शनल लिटरेसी भी कहते हैं। इसके लिये एक अलग कार्यकर्ता समूह गठित किया गया है जो गावो के अन्दर रहता और काम करता है। प्रौढ़ शिक्षा के इस सारे कार्यक्रम का उद्देश्य साक्षरता के प्रसार के साथ साथ समाज में नागरिक जागरूकता पैदा करना और श्रम के प्रति निष्ठा पैदा करना भी है।

राष्ट्रीय विकास सेवा कार्यक्रम :

नेपाल की शिक्षा योजना की यह विशेषता है कि वहाँ पर शिक्षा को राष्ट्र के व्यापक विकास की प्रक्रिया के साथ जोड दिया गया है और छात्रो को कोई डिप्लोमा या डिग्री देने से पहले उन्हें एक निर्धारित समय तक समाज सेवा का प्रत्यक्ष काम करना अनिवार्य है। इस व्यवस्था का उद्देश्य शिक्षा को राष्ट्र की व्यापक समस्याओ से सम्बद्ध करने के साथ ही छात्रो और शिक्षको को राष्ट्र के दैनिक जीवन से इस कदर सम्बद्ध कर देना है कि वे राष्ट्र की समस्याओ से सीधे ही परिचित हो सकें और उनके हल के लिए भी प्रत्यक्ष भाग ले सकें। राष्ट्रीय विकास सेवा के काम में भाग लेना विद्यालयी या विश्व विद्यालयी शिक्षा का अनिवार्य अग बना दिया गया है और बिना इसके किसी को भी कोई डिग्री या प्रमाणपत्र नही मिल सकता है। इतना ही नही विदेश से शिक्षा प्राप्त कर नेपाल के अन्दर काम करने के इच्छुक व्यक्तियो को भी बिना राष्ट्रीय विकास सेवा कार्य के अन्तर्गत एक निश्चित समय तक काम किए वहाँ कोई नौकरी करने का अवसर नही है। इसने सभी शिक्षित व्यक्तियो को राष्ट्रीय जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिये एक प्रकार से विवश कर दिया है और आज नेपाल का शिक्षित वर्ग अपने सामान्य जन से उस प्रकार से कटा हुआ नही है जो कि अन्य विकसित राष्ट्रो की या विकासशील राष्ट्रो की आज एक विकट समस्या बनी हुई है। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज शायद नेपाल के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में कम से कम तनाव है।

इस राष्ट्रीय विकास सेवा कार्यक्रम का सगठन चार दलो मे किया गया है — पहला दल है शिक्षा सेवा दल। दूसरा दल है स्वास्थ्य सेवा दल। तीसरा है कृषक सेवा दल और चौथा है निर्माण सेवा दल। ये सभी दल एक दूसरे से परस्पर सम्बद्ध है और राष्ट्रीय समिति के ही अन्तर्गत काम करते है। इन सभी दलो के सदस्यो, छात्रो और शिक्षकों, को कम से कम एक साल के लिये गाँव मे काम करना होता है जिसके लिये सम्बन्धित मत्रालय उन्हें किये गए काम के लिये पारिश्रमिक भी देते हैं। इन दलो के लिये एक सामान्य आचार सहिता भी बनाई गई है जिसके अन्तर्गत उन सबको ही शारीरिक व्यायाम, व्यावसायिक तालीम, एक निर्धारित पोशाक और चिन्ह धारण करना अनिवार्य है। दलो के मार्फत समय समय पर विश्व विद्यालय और सम्बन्धित अधिकारियो के द्वारा मार्ग दर्शन और निरीक्षण भी होता है। कार्यक्रम के सचालनालय के रूप मे एक केन्द्रीय सचालन और निर्देशन समिति तथा निदेशालय

कायम किया गया है। महिलाओं को घर से अधिक दूर काम करने जाना न पड़े इसके लिए उन्हें घर के हो निकट काम करने की सुविधा दी जाती है। इसी तरह से नेपाल में रहने विदेशियों व शिक्षा पानेवाले का भी उनकी रुचि के अनुसार काम करनेकी सुविधा दी जाती है। नेपाल में यद्यपि सह-शिक्षा का सिद्धान्त मान्य किया गया है फिर भी महिलाओं और पुरुषों को अलग अलग ही संस्थाओं में काम करने की व्यवस्था की जाती है और जो लोग इस तरह से अलग व्यवस्था चाहते हैं उन्हें इसको लिये पूरी आजादी है।

अपंग लोगों के लिये भी इसी तरह से एक राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की योजना बनाई गई है जहाँ उन्हें उनके हालातों के अनुसार काम सिखाने और उन्हें स्थापित करने की व्यवस्था की जाती है।

कार्यान्वियन :

नेपाल में कुल ७२ जिले हैं। सारे देश के लिये इस योजना को लागू करने के लिये एक पचसाला योजना तैयार की गई है और कुल मिलाकर प्रयोगात्मक चरण, मध्यावधि चरण और स्थाई चरण के तीन चरणों में यह लागू की जा रही है। पहले प्रथम चरण के लिये दो जिले प्रयोग के तौर पर लिये गए थे। फिर इसे दूसरे साल १३ और जिलों में लागू कर दिया गया। फिर मध्यावधि चरण में तीसरे साल के लिये १५ जिले और चौथे साल के लिये २० और जिले लिये गए। इस प्रकार से अभी तक यह योजना कुल ५७ जिलों में लागू की जा चुकी है। योजना के अन्तिम और पाँचवे साल में बाकी २५ जिले भी सामिल कर लिये जायेंगे और इस तरह से आशा है कि यह योजना सारे देशमें लागू कर दी जायगी। इस काम में सरकार के अलावा अन्य निजी प्रयोगकर्ताओं को भी प्रयोग की पूरी सुविधा है और कुछ संस्थाये इस पर काम भी कर रही हैं।

इसके लिये प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता है अतः शिक्षक प्रशिक्षण का भी काम आरम्भ कर दिया गया है। योजना यह है कि काम इस तरह से चलाया जाय ताकि सन् १९७५ की मई तक सारे देश में 'गाऊ फर्क' (Back to the village) अभियान पूरे जोर के साथ लागू हो जाय। यह स्मरणीय है कि यह अभियान महाराजा वीरेन्द्र के स्व. पिताजी ने आरम्भ किया था जो आगे और जोर से लागू करने का निश्चय वर्तमान शासन ने लिया है। महाराजा वीरेन्द्र वीर विक्रमशाह जी देव चाहते हैं कि देश की सारी जनता राष्ट्र विकास के इस काम में प्रत्यक्ष भाग ले और उसके लिये सारी सुविधायें देने का राज्य का निश्चय है।

अखिल भारत गीता प्रचार सम्मेलन का निवेदन

परमधाम आश्रम, पवनार, दि. २५-२६ दिसम्बर, १९७४

[गत २५ व २६ दिसम्बर ७४ को पू० विनोबाजी के सानिध्य में आचार्य श्रीमन्नारायणजी की प्रेरणा से अ० भा० गीता सम्मेलन का आयोजन किया गया। दो दिन की चर्चा के बाद स्वीकृत निवेदन यहाँ दिया जा रहा है।]

गीता प्रतिष्ठान की ओर से पूज्य विनोबाजी के सान्निध्य में गीता जयन्ती के अवसर पर आमन्त्रित यह सम्मेलन कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण बन गया है। यह अपूर्व योग है कि गीता जयती के साथ-साथ ईसाइयो का धार्मिक पर्व ख्रिसमस व मुस्लिमोकी ईद भी एक साथ आ गए। जैनियो का भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव भी चल रहा है। परमधाम जैसे शात और पवित्र वातावरण में पूज्य बाबा का इसे मार्गदर्शन व उद्बोधन मिला, और उद्बोधन के बाद ही उन्होने एक साल का मौन लिया है। इस सम्मेलन में केन्द्रीय सरकार के वरिष्ठ मत्री श्री उमाशकर जी दीक्षित की उपस्थिति और उनका उद्बोधन भी प्राप्त हो सका है। देश के विभिन्न क्षेत्रोसे लगभग १०० गीता प्रेमी व गीता प्रसार का कार्य करने वाली सस्था के प्रतिनिधि, सर्व सेवा सघ के अनेक कार्यकर्ता, आश्रमवासिनी बहनें व भाई सम्मेलन म उपस्थित थे।

ससार के प्रबुद्ध विचारकों का मत है कि गीता व्यक्तिगत साधना में आध्यात्मिक व नैतिक विकास मे सहायक तो बनती ही है साथ ही सामाजिक राष्ट्रीय तथा विश्व की जटिल समस्याओ को सुलझाने का अमोघ उपाय बतान वाला महान् ग्रन्थ भी है। ससार आज विषमता, असन्तोष, सघर्ष, अन्याय अभाव व भ्रष्टाचार से पीडित है। दु ख व भय से त्रस्त मानवता को मुक्त करन की शक्ति गीता के सन्देश मे विद्यमान है।

यहाँ उपस्थित तथा अनुपस्थित मानव-कल्याण की कामना रखने वाले गीता प्रेमियों से सम्मेलनका अनुरोध है कि वे गीता-प्रसार के महान् यज्ञ में अपना योगदान दें।

गीता-प्रचार के काम में लगे हुए कार्यकर्ता गीता-दर्शन अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हुए उसका जनता जनार्दन में विनम्रतापूर्वक और सेवा-भावना से प्रसार करें।

अगले वर्ष युनाइटेड नेशन्स की ओर से महिला शक्ति जागरण वर्ष मनाने का सुझाव है। इसलिए निवेदन है कि महिला सस्थायें सन् १९७५ में अपने कार्यक्रम में गीता प्रचार को विशेष स्थान देने की योजना बनावें।

गीता का सदेश सिर्फ एक धर्म के लिये सीमित नही है— वह सारे ससार के लिये एक भव्य जीवन-दर्शन है। अत सम्मेलन का आग्रह है कि उस सभी शिक्षण-सस्थाओ के अभ्यास-क्रम में योग्य स्थान दिया जाना चाहिए।

इस महान तथा गुरुतर कार्यको सफल बनाने के लिये सभी सस्थाओ को एकत्र होकर योजना पूर्वक कार्य करना आवश्यक है। आज भी देश तथा विदेश में गीता-प्रचार का काम अनेक सस्थाओ तथा व्यक्तियो द्वारा हो रहा है। यदि यह बिखरी हुई शक्ति मिलकर योजनाबद्ध कार्य करे तो निश्चित ही इस कार्य में विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है। इसलिये यह सम्मेलन गीता प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण का अधिकार देता है कि वे विभिन्न सस्थाओ के प्रतिनिधियो की एक समन्वय समिति का गठन करे।

सम्मेलन की यह भी राय है कि इस तरह के सम्मेलन प्रति वर्ष विभिन्न क्षेत्रो मे होते रहे।

काशीनाथ त्रिवेदी :

कुमार मन्दिर टवलाई :

(श्री काशीनाथजी त्रिवेदी बुनियादी शिक्षा और साहित्य के जाने माने आचार्य हैं। उनकी देखरेख में चलने वाली म० प्र० की इस एकमात्र बुनियादी शिक्षा संस्था का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा में स्वावलम्बन साधना कितना सम्भव है यह इस प्रयोग से स्पष्ट होता है। क्या सरकारी शिक्षा तंत्र इस से कुछ प्रेरणा लेंगे?)

मध्यप्रदेश के धार जिले की मनावर तहसील के टवलाई गाँव में जनवरी, १९५५ में गाँववालों की ओर से आयोजित एक सर्वोदय विचार शिबिर के फलस्वरूप तत्कालीन मध्य भारत गांधी-स्मारक निधि ने टवलाई गाँव में 'ग्राम भारती' के नाम से अपना एक आश्रम स्थापित करने का निर्णय किया। ग्राम समाज की ओर से आश्रम के लिए निधि को ४२ बीघा जमीन मिली। ९ अगस्त, १९५५ को आश्रम की विधिवत् स्थापना हुई। इस शुभ अवसरपर योरियासाही कटक (उत्कल) के अपने पदयात्रा पड़ाव से पूज्य विनोबाजी ने आश्रम के संचालक के नाम जो सन्देश भेजा, उसमें आश्रम के काम की भावी योजना का स्पष्ट संकेत था। सन्देश यों था —

"आपने एक शुभारम्भ कर दिया। प्रथम बुद्धि लक्षण हो गया। अब कम से कम द्वितीय लक्षण जरूर सिद्ध होना चाहिए।

प्रारब्धस्य अन्त गमन द्वितीय बुद्धि लक्षणम्।

मैं आशा करूँगा कि आपके उस कार्यक्षेत्र में न कोई भूमिहीन रहेगा, और न भूमिका मालिक। सारा समाज खादी-वेशधारी बनेगा। अशुभ वस्त्र कोई नहीं पहनेगा। किसान और किसानेतर भेद मिट जाएगा। सब हाथसे काम करेंगे। और गीता-रामायणका पाठ पढ़ेंगे। जीवन और चिन्तन का मान ऊपर उठेगा।"

आश्रम की स्थापना के मूल में गांधीजी द्वारा सूचित 'समग्र ग्रामसेवा' का विचार रहा। इसके माध्यम के रूप में आश्रम ने बालशिक्षा से अपने काम का श्रीगणेश किया। व्यापक लोक-शिक्षण हमारा लक्ष्य रहा। विनोबाजी की भावना

ने हमें बल दिया। १९ अगस्त ६५ को आश्रम की ओर से ३ से ६ साल की उम्र के बालकों के लिये 'बालवाडी' का और ८-१० से लेकर १४-१६ साल की उमर के बालकों के लिए 'लोकशाला' का श्रीगणेश हुआ।

क्षेत्र परिचय :

टवलाई मध्यप्रदेश के धार जिले की मनावर तहसील में विंध्या और सतपुडा की श्रेणियों के बीच नर्मदा के उत्तर में बम्बई-आगरा मार्ग पर खलघाट से २० किलोमीटर दूर पश्चिम की दिशा में बसा एक आदिवासी गाँव है। गाँव की बस्ती तीन टोलों—अमरापुरा, खेडा, और रावतपुरा—में बसी है। टवलाई गाँव की कुल भूमि ९४९ एकड है। सन् १९७१ की जनगणनाके अनुसार गाँव में कुल १०४३ लोगों की बस्ती है। इनमें ८११ आदिवासी, ३९ हरिजन और बाकी के सवर्ण हैं। सन् ७२ में गाँव में कुल २४० व्यक्ति साक्षर थे।

कुमार-मन्दिर की स्थापना :

आश्रम की स्थापना के समय में टवलाई में सरकारी प्राथमिक विद्यालय चल रहा था। आश्रम ने तत्कालीन मध्यभारत शासन के शिक्षा विभाग से सम्पर्क करके टवलाई-क्षेत्र के ९ प्राथमिक विद्यालयों को बुनियादी विद्यालयों में परिवर्तित करवाया और उनमें बुनियादी शिक्षा में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति करवाकर उनके मार्गदर्शन का काम स्वयं सम्भाला। इसी के साथ आश्रम ने अपनी बालवाडी, लोकशाला और कुमार-मन्दिर का काम भी शुरु किया। बालवाडी आश्रमके आरम्भ से अब तक बराबर चल रही है। लोकशाला के आरम्भ के मूल में विचार यह था कि क्षेत्र के अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित किशोरों और युवकों को २ से ३ साल तक के लिये आश्रम में रखकर उन्हें आश्रमी वातावरण और दिनचर्या का लाभ दिया जाए और विविध रचनात्मक कामों की दृष्टि के साथ उनका प्रत्यक्ष शिक्षण देकर उन्हें अपने घर वापस भेजा जाए, जिससे वे घर में और गाँव में नई दृष्टि के साथ काम कर सकें और जी सकें। इस विचार के अनुसार शुरू में चार किशोरों को आश्रम में भरती किया गया। इसी तरह आश्रम के कुमार-मन्दिर में भी शुरू में ४ विद्यार्थी भरती किए गए और उन्हें उद्योग के माध्यम से शिक्षा देने की बात सोची गई। किन्तु इसी बीच गांधी-स्मारक-निधि की कार्य-नीति में हुए परिवर्तन के कारण आश्रम को लोकशाला और कुमार-मन्दिर का काम १९५५ के अन्त में ही बन्द कर देना पडा। दूसरी तरफ टवलाई-क्षेत्र की जिन बुनियादी शालाओं की देख-रेख का काम आश्रम ने अपने हाथ में लिया था, उसमें भी निश्चित और स्पष्ट अधिकार के अभाव में काम करना कठिन हो गया और बाद में जब १ नवम्बर, १९५६ को नये मध्यप्रदेश राज्य का निर्माण हुआ, तो शिक्षा विभाग की अनुकूलता के अभाव में आश्रम को यह काम भी छोड देना पडा।

सन् ५६ के आरम्भ से ५८ के अन्त तक आश्रम अपनी तरफ से केवल बालवाड़ी ही चलाता रहा। सन् ५८ को केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि ने आश्रम की मूल भूमिका को ध्यान में रखकर आश्रम में बुनियादी शिक्षा के कामको फिर शुरू करने की अनुमति दी। तदनुसार २६ जनवरी, १९५६ से कुमार-मन्दिर के नाम से फिर विद्यालय का काम शुरू हुआ। इसी बीच आश्रम ने टवलाई गाँव के लोगों की सहमति प्राप्त करके शासन से टवलाई में चल रहे उसके प्राथमिक बुनियादी विद्यालय को अपने हाथमें लेने की कार्यवाही शुरू की। फलस्वरूप अक्टूबर, १९५८ से शासकीय विद्यालय का काम आश्रम ने विधिवत् सम्हाला। और शासकीय विद्यालय का विधिवत् हस्तान्तरण हो जाने पर प्राथमिक विद्यालय को माध्यमिक तक विकसित करने की नीति बनाई गई। सन् १९६४ से आश्रम में ८ वीं कक्षा तक की पढ़ाई नियमित रूप से होने लगी। शासन के शिक्षा विभाग ने शुरू में ५ वीं तक की मान्यता के साथ अनुदान की अनुकूलता की। बाद में ७ वीं तक की पढ़ाई को भी शासकीय मान्यता मिली और अनुदान भी मिलने लगा। कुमार-मन्दिर को चलाने के पीछे हमारी दिशा और दृष्टि तो 'बुनियादी शिक्षा' (नई तालीम) की ही रही, पर हम आज यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि हम अपने कुमार मन्दिर को पूरी तरह बुनियादी शिक्षा की भावना के अनुरूप चला सके हैं। हमारे काम में कई कमियाँ और कमजोरियाँ रही हैं। हमें इसका भान भी है, पर अभी तक हम अपनी इन कमजोरियों और कमियों पर काबू नहीं पा सके हैं। आज की अपनी परिस्थिति के साथ समझौता करके ही हमें अपना काम चलाना पड़ रहा है।

कुछ प्रयोग

राष्ट्रभाषा हिन्दी का आग्रह और शासन की मान्यता :—

कुमार-मन्दिर के आरम्भ काल से ही हमने विचारपूर्वक अपनी यह नीति निश्चित की थी कि पहली से आठवीं कक्षा तक हम अपने विद्यार्थियों को विषय के रूप में अंग्रेजी नहीं पढ़ायेंगे। किन्तु उस समय शासन के शिक्षा विभाग ने माध्यमिक विद्यालयों में अंग्रेजी की पढ़ाई को अनिवार्य किया था। इस कारण वह हमारे कुमार-मन्दिर को ८ वीं तक की मान्यता दे नहीं रहा था। इसी बीच आश्रम से विद्यार्थियों का पहला दल ८ वीं पास करके निकला। इस दल के छात्रों को आगे की पढ़ाई के लिए दूसरे विद्यालयों में भेजा गया। वहाँ उनके सामने अंग्रेजी की समस्या आई और उन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस बीच बिना अंग्रेजी के भी ८ वीं तक मान्यता के लिए हम मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग से पत्र-व्यवहार करते रहे। जब मध्यप्रदेश सरकार ने हमारी बात नहीं मानी, तो हमने केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री को लिखा। उन्होंने हमारे निवेदन के औचित्य को माना और मध्यप्रदेश के शिक्षा

मन्त्रीजी को लिखा कि वे अँग्रेजी के अभाव में भी हमारे कुमार-मन्दिर को ८ वीं तक की शिक्षा के लिए मान्यता दें। फलस्वरूप लम्बी कोशिश के बाद हमें पहले शासकीय मान्यता मिली और बाद में ८ वीं तक की पढ़ाई के लिये अनुदान भी स्वीकार हुआ। इस सम्बन्ध में हमारा अनुभव यह रहा है कि ८ वीं तक अँग्रेजी न पढ़नेवाले छात्र मातृभाषा के रूप में हिन्दी पर काफी मेहनत कर लेते हैं और हिन्दी में अपने को व्यक्त करने की उनकी शक्ति काफी बढ़ जाती है। इस आत्म-विश्वास के कारण आगे ९ वीं कक्षा में अँग्रेजी की तैयारी करने में उन्हें अधिक कठिनाई नहीं होती और वे बिना रुके आगे की अपनी पढ़ाई जारी रख पाते हैं। कुमार-मन्दिर से निकलते हुए विद्यार्थियों ने दूसरे विद्यालयों में भरती होने के बाद वहाँ अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ किया है और अपनी योग्यता की भी अच्छी छाप डाली है।

सन् १९७३ के शिक्षा-सत्रसे मध्यप्रदेश सरकार ने फिर समूचे मध्यप्रदेशमें ६ वीं कक्षा में अँग्रेजी की पढ़ाई को अनिवार्य किया है, इसलिये हमारे सामने पुरानी समस्या फिर नई होकर खड़ी है।

स्वावलम्बन तथा समवाय :

कुमार-मन्दिर में उद्योग के माध्यम से सब विषयों की पढ़ाई का काम तो हम कर नहीं सके, फिर भी पढ़ाई के साथ हमने खेती और खादी के उद्योग को विचार-पूर्वक जोड़ा है। आश्रम की अपनी २२ एकड़ खेती है। सिंचाई के लिए दो कुएँ भी हैं। कुमार-मन्दिर के छात्रावास में रहनेवाले बालकों को खेती सम्बन्धी अनेक काम सीखने और करने के अवसर पूरे सत्र में मिलते रहते हैं और कई बालक इन कामोंकी मदद से थोड़ी कमाई भी कर लेते हैं।

जहाँ तक खादी का अर्थात् वस्त्र का प्रश्न है, छात्रावास के बालकों को कपास बोने से लेकर सूत कातने तक की सब क्रियाएँ स्वयं करने का अच्छा अनुभव और अभ्यास हो जाता है। छात्रावास के बालक कपास ओटने, रुई पीजने और सूत कातने तक की सब क्रियाएँ स्वयं करके १० महीनों के सत्रमें इतना सूत स्वयं कात लेते हैं कि जिससे अपनी जरूरत का पूरा कपड़ा उन्हें अपने ही श्रम से मिल जाता है। इसी के साथ बालक कताई का थोड़ा गणित भी सीख-समझ लेते हैं। राष्ट्र के और समाज के जीवन में खादी का और ग्रामोद्योगों का जो महत्वपूर्ण स्थान है, उसके बारेमें भी वे काफी कुछ पढ़, सुन और समझ लेते हैं।

हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि खेती और खादी के मामले में जो लाभ छात्रावास के बालकों को बराबर मिलता रहता है, वह लाभ कुमार-मन्दिर के उन सब बालकों को, जो अपने घरोंमें पढ़ने वाले हैं, नहीं मिल पाता। पालकों में से कई इस बात का विरोध करते हैं कि विद्यालयमें उनके बालकों से खेती-खादी के काम

कराये जाते हैं। बालकों के मन भी बहुत तैयार नहीं हैं। हम चाहते तो यही हैं कि पूरा विद्यालय-परिवार आठवीं तक खेती और खादी के अच्छे संस्कार और विचार लेकर निकले, किन्तु अभी इसके लिए लोक-मानस पूरी तरह अनुकूल हुआ नहीं है। हमारी कोशिश तो जारी है ही।

वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से हमने आश्रम-परिवार में गांधी-जयन्ती के निमित्त से एक निश्चित अवधि के लिए सामूहिक और अखण्ड-सूत्रयज्ञ की अच्छी परम्परा खड़ी कर ली है। उसके कारण शिक्षक, विद्यार्थी और कार्यकर्ता अपने लिए काफी सूत कात लेते हैं। पिछले चार वर्षों से हम आश्रम में प्रतिदिन दो घंटे के हिसाब से ७५ दिन का सामूहिक सूत्रयज्ञ और ७५ घण्टों का अखण्ड सूत्रयज्ञ चला रहे हैं। इसके अच्छे और उत्साहपूर्वक परिणाम प्रगट हुए हैं। छात्रावास के विद्यार्थियों के साथ ही शिक्षकों ने और कार्यकर्ताओं में भी वस्त्र-स्वावलम्बन की रुचि जागी है। नीचे आकड़े देखने से स्थिति अधिक स्पष्ट कर सकेंगे।

* सरणि न १ (पृष्ठ संख्या २९६ पर देखें)।

वस्त्र स्वावलम्बन के विषयमें भी हमारी एक बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे साथ कोई कुशल बुनकर परिवार जुड़ा नहीं है। हमें बुनकर परिवार की तलाश है।

कृषि-बागवानी प्रगति :

विद्यार्थियों ने वस्त्र विद्या के सन्दर्भ से कपास के जरिए खेती करने का अनुभव लेना शुरू किया। कपास के लिए खेत तैयार करना, खेतमें क्यारे बनाना, बीज बोना, निदाई-गुडाई करना, सींचना, पौधोंकी देखभाल करना, पौधोंके विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करना, उनका लेखा रखना, फसल तैयार होने पर कपास चुनना, उसे तौलना और सम्भालकर रखना आदि काम अपने गुरुजनों के मार्गदर्शन में उनके साथ विद्यार्थी करने लगे। इस प्रयोग के लिए शुरू में आश्रम की बाड़ी को थोड़ी भूमि ली गई थी। शुरू के कुछ सालों में खेती का यह प्रयोग ठीक चला, उत्पादन अच्छा हुआ, अनुभव भी उत्साह बढ़ानेवाला रहा, लेकिन बाद के वर्षों में इस प्रयोग की गति अनुभवी और जानकार शिक्षकों के अभाव में कम हो गई। पिछले वर्षों में विद्यालय की खेती का जो उत्पादन हुआ, उसकी जानकारी नीचे के आकड़ोंसे मिलेगी।

सरणि न २

कपास (मन)	सब्जी (मन)	मूँगफली (मन)	पपीता (कि)	मक्का (मन)
५३१	२२४	१२८०	२०५	४०

सरणि नं० १ (पृष्ठ संख्या २९५ परसे)

(कपास सफाई से वस्त्र-बुनाई तक)

सन	सफाई (किलो)	ओटाई (किलो)	तुनाई (किलो)	धुनाई (किलो)	कताइ (गुडी)	बुनाई (किलो)	वस्त्र (मीटर)
१९५६–६४	२५०	२१८	–	१८	७०६७	५५	१३८६
१९६४–६९	९७१.१४४	७१४.०७६	२८४.७२८	२८४.७२८	११६८६	३५७.६१०	२३३६
१९६१–७४ (अक्टूबर तक)	२५९.३६०	२५४.४०५	३८८.०८६	३१४.५८५	८९०१	३५४.३८०	८८५
योग—	१४८०.५०४	११८६.४८१	६४६.८४६	६१७.३१४	२७६५४	७६६.९९०	४६०७

इस सारे वस्त्र का मूल्य ४) प्रति मीटर भी माने तो कुल १८४२८) होता है।

इसके अलावा साबुन उद्योग भी चलता है और अभी तक शालाने कुल ७२६-७२) का साबुन तैयार किया है।

सामूहिक श्रम-यज्ञ के माध्यम से छात्र शिक्षक तथा अन्य कार्यकर्ता जो उत्पादन वृद्धि करते हैं वह इस श्रम के अतिरिक्त है। इसमें अब तक सामूहिक श्रम यज्ञ द्वारा जो उत्पादन किया गया उसका कुल मूल्य १९८८०-६८ रु होता है।

इससे स्पष्ट है कि हम अब भी पूर्ण स्वावलम्बन से काफी दूर हैं पर प्रगति पर हैं। हमने अब तक कुल ३,०६४८४-६६ का व्यय किया है। इसमें से हमें शासन से केवल ११८४६५-५० रु ही मिला और बाकी के १८८०१९-१६ की आय शाला-परिवार ने स्वय की मेहनत से ही की है। इस तरह हम लगभग ५०% स्वावलम्बन साध सके हैं?

कुमार-मन्दिर में हमने शुरू से ही प्रतिदिन एक घण्टा सामूहिक श्रमदान का कार्यक्रम रखा। इसका विधिवत् लेखा भी रखा जाने लगा। विद्यालय की खती में, आश्रम की खेती में, भवन निर्माण में, रास्ते तैयार करने में, अहाते की जमीन तैयार करने मे, कुएँ की खुदाई में, बाध बनाने में, आधा शीशी और पुंआडे जैसे पौधो के बडे बडे पडावों को साफ करने में विद्यालय ने अपनी श्रमशक्ति का व्यवस्थित उपयोग किया। पिछले वर्षों मे खेती और पथ निर्माण के अलावा सामूहिक श्रमदान से लोक-शाला के बच्चो और आश्रम के साथियोने मिलकर शिक्षक निवास तथा घर बनाने में मदद की। गैस प्लॅण्ट के निर्माण काम में भी सबका श्रमदान लगा। बालवाडी तिलक-भवन और पचायती राज प्रशिक्षण -केन्द्र की विशाल इमारतो के निर्माण की सभी प्रक्रियाओ में विद्यार्थियो और कार्यकर्ताओ के श्रमदान का पूरा योगदान रहा। पुस्त-कालय और वाचनालय भवन के निर्माण में भी सबका श्रमदान प्राप्त हुआ। आश्रम की बाडी के दो पुराने सूखे कुओ को विद्यालय के बालको न मिट्टी आदि स ऊपर तक भरा। आश्रम के पचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र के बालवाडी और तिलक भवन के लम्बे-चौड मैदानो मे रेत बिछान का और आश्रम के अन्दर के रास्तों तथा पुलियाओ के निर्माण का काम भी सबकी मिली-जुली श्रमशक्ति से हुआ।

स्वायत्त नागरिकता की तैयारी.

विद्यालय की व्यवस्था के लिए उसकी अपनी पचायत है। इस पचायत के गठन और सचालन का काम विद्यार्थी खुद ही करते हैं। विभिन्न कामो के लिए वे अपनी अलग अलग टोलियाँ बना लेते हैं और अपने हिस्से का काम पूरी जिम्मे-दारी से करना सीखते है। इस व्यवस्था के कारण विद्यार्थियो में लोकतन्त्र की कार्य-पद्धति को समझने की शक्ति और दृष्टि आती है और हमारा विश्वास है कि यही स्वायत्त नागरिकता की तैयारी है।

राष्ट्रीय सामाजिक और धार्मिक पर्वों और त्योहारों के अवसरों पर कुमार-मन्दिर के शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर नाना प्रकार के आयोजन करते हैं। विविध कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करना, नाटक प्रदर्शन आदि की तैयारी करना, गीत, भजन आदि तैयार करना, मिलन-गोष्ठियों और सभाओं की व्यवस्था करना, मेलों का आयोजन करना आदि काम बालक अपने गुरुजनों के मार्गदर्शन में करते रहते हैं। इनके कारण बालकों में सहज भाव से कला के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है और उनके विविध गुणों का विकास भी होता रहता है। सबके साथ मिल-जुलकर काम करने और शील-सौजन्य का विकास करने के अवसर बराबर मिलते रहते हैं। अपने अतीत के गौरवमय इतिहास को और अपनी पुरानी संस्कृति को समझने में इन कार्यक्रमों से बालकों को बड़ी मदद मिलती है।

बालकों का अपना स्वभाव सुधरे, आदतें सुधरें, और उनका जीवन नियमित और व्यवस्थित बने, इस दृष्टि से बालक नीचे लिखे काम बराबर करते रहते हैं —

१ डायरी लिखन, २ उद्योग के काम करना, और उसका हिसाब रखना, ३ सबके साथ शिष्टता का व्यवहार करना, ४ कक्षाओं में जाते-आते समय पंक्तिबद्ध होकर आना-जाना और सभा स्थान पर तथा कक्षा में कतार बाँध कर बैठना, ५ बीमार साथियों की सार-सम्हाल करना, ६ अतिथियों का स्वागत सत्कार करके उनकी आवश्यक सेवा करना, ७ आपस में एक-दूसरे को सम्मानपूर्वक बुलाना, (नाम के साथ भाई, बहन या जी जोड़कर बोलना) और ८ छात्रावास की और कक्षाओं की सफाई ध्यानपूर्वक करना आदि।

छात्रावास :

संस्कार निर्माण में छात्रावास का महत्व सर्वाधिक है। कुमार-मन्दिर के आरम्भ से ही उसके साथ एक छोटा छात्रावास जुड़ा रहा है। इस छात्रावास में अब तक अधिकतर आदिवासी बालक ही रहे हैं। बालकों की संख्या २० से ३० के बीच बनी रही है। इस समय छात्रावास में २१ छात्र हैं। एक को छोड़कर शेष सब आदिवासी हैं। सन १९६९-७० से छात्रावास के लिए भी शासन का अनुदान मिलने लगा है। किन्तु आज की बढ़ी हुई और बढ़ती जा रही महगाई के कारण अनुदान की रकम बहुत कम पड़ रही है।

छात्रावास में रहने वाले बालकों की दिनचर्या का आरम्भ सुबह की सामूहिक प्रार्थना से होता है। प्रार्थना के बाद सामूहिक सफाई का काम नियमित होता रहता है। विद्यार्थी अपने सब काम स्वयं ही करते हैं। कोठार की व्यवस्था उन्हीं के जिम्मे रहती है। रसोई बनाने के काम में भी वे मदद करते हैं। अपने निवास और आश्रम के सारे अहाते की सफाई के अतिरिक्त विद्यार्थी शिक्षक मिलकर प्रतिदिन शौचालय

और मूत्रालय की सफाई भी करते हैं। अपनी आवश्यकता का पानी स्वयं भर लेते हैं। भोजन के बाद अपने बरतन भी खुद ही माजते हैं। रसोई के बरतन माजने का काम भी बच्चे ही करते हैं। इस तरह छात्रावास जीवन के कारण विद्यार्थियों में स्वावलम्बन के साथ-साथ नियमितता, व्यवस्थितता, सुघड़ता और समय की पाबन्दी आदि के संस्कार पुष्ट होते रहते हैं।

शैक्षणिक प्रवास :

इसी प्रकार से शैक्षणिक प्रवास भी संस्कार निर्माण में सहायक होते हैं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण पिछले वर्षों में हम विद्यार्थियों को लम्बे शैक्षणिक प्रवास पर नहीं ले जा सके। शुरू के वर्षों में बालकों ने अपने शिक्षकों के साथ गुजरात और महाराष्ट्र की शैक्षणिक यात्रा की थी। इस यात्रा में वे सूरत जिले की राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को देख सके, साबरमती का आश्रम और गुजरात विद्यापीठ देख सके। बड़ौदा नगर की दर्शनीय जगह देखी और वर्धा-सेवाग्राम की यात्रा में वहाँ दर्शनीय स्थान देखें। आस-पास के दर्शनीय स्थानों में बालकों ने बाघ की गुफाएँ, माण्डव का किला, बड़वानी के निकट बावनगजा का स्थान और महेश्वर के घाट आदि के दर्शन किए हैं।

टवलाई के आसपास के गाँवों में और मनावर तहसील के पूरे क्षेत्र में लोक-सम्पर्क बनाये रखने की दृष्टि से हर साल आश्रम ३० जनवरी से १२ फरवरी तक के सर्वोदय पक्ष में पदयात्राओं का आयोजन करता रहा है। इन पदयात्राओं में आश्रम के कार्यकर्ताओं और शिक्षकों के साथ ऊँची कक्षाओं के बालक भी रहते हैं। पदयात्रा के चलते क्षेत्र के कई गाँवों से और वहाँ के लोगों से सीधा सम्पर्क होता है। गाँवों की कठिनाइयों और समस्याओं को समझने के मौके मिलते हैं और उनके हल खोजने के प्रसंग भी खड़े होते हैं। विद्यार्थियों को इन सब चीजों का सीधा परिचय होता है। उन्हें रोज रोज नया नया देखने, सुनने, समझने और करने के अवसर मिलते हैं। पद-यात्रा के दिनों में गाँवों में प्रभात फेरी और सायफेरी के कार्यक्रमों के चलते सामूहिक रूप से भजन धुन, गीत आदि गाने और नारे लगाने के कार्यक्रमों के साथ क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच बैठने, उन्हें कहानियाँ सुनाने और उनके साथ तरह तरह के देशी खेल खेलने के अवसर मिलते हैं। इससे विद्यार्थियों की कार्य-शक्ति के साथ विचार-शक्ति और अवलोकन-शक्ति का अच्छा विकास होता है। लोक-सभा के और विधान-सभाओं के चुनावों के दिनों में कुमार मन्दिर का परिवार टोलियों में बटकर आसपास के गाँवों में घूमता है। मतदाताओं को उनके अधिकार और कर्तव्य की बात समझाता है और निर्दोष तथा निष्पक्ष चुनाव के विचार गाँववालों के सामने रखता है। इस कारण राजनीतिक दलों के लोग प्रायः आश्रम से नाराज रहने लगते हैं।

सन् ६५ से ६९ तक मध्यप्रदेश में ग्रामदान प्राप्ति का जो तूफानी अभियान चला, उसमें भी कुमार-मन्दिर के शिक्षकों और विद्यार्थियों ने बराबर हिस्सा लिया। उन्होंने पदयात्राएँ कीं, सभाओं में ग्रामदान का विचार समझाया और गाँववालों के हस्ताक्षर प्राप्त करने का काम भी किया। इन कामों के कारण भी विद्यार्थियों का हौसला बढ़ा और उन्होंने ग्रामदान का तथा ग्राम-स्वराज्य का महत्व समझा।

लोक-सेवा भी लोक-शिक्षण का अंग है :

कुमार मन्दिर ने अपने आरम्भ काल से ही लोकसेवा को अपना विशेष कर्तव्य माना है। इसलिए जब जब टवलाई के आस पास के या तहसील के गाँवों पर कभी कोई मुसीबत आती है, तो आश्रम-परिवार के साथ कुमार-मन्दिर-परिवार भी उसमें पूरा योगदान करता है। आग लगने, बाढ़ आने, अकाल की हालत पैदा होने और बीमारियों के फैलने पर आश्रम-परिवार तुरन्त संकट में फंसे लोगों की मदद करने पहुँचा है। पिछले वर्षों में तीन बार नर्मदा में और आसपास-पड़ौस की नदियों में आई बाढ़ों के कारण गाँवों में भारी बरबादी हुई। संकट के इन अवसरों पर कुमार-मन्दिर परिवार के सदस्यों ने बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में जाकर संकट में फंसे लोगों की तुरन्त मदद की। उनके पास भोजन सामग्री पहुँचाई, उनमें दवा बाटी, बाढ़ से नष्ट हुए घरों का मलवा हटाया, नये घरों के निर्माण में मदद की और अन्न-वस्त्र वितरण का काम भी किया। इसी तरह टवलाई-क्षेत्र में हुए अग्निकाण्डों के अवसरों पर भी कुमार-मन्दिर-परिवार ने आग बुझाने से लेकर बरबाद हुए लोगों को बसाने तक की सेवाएँ कीं। टवलाई और मनावर-क्षेत्र के अलावा देश के अन्य प्रदेशों में आए संकटों के अवसरों पर भी यह परिवार अपनी शक्ति-भक्ति के अनुसार पीडितों की मदद करता रहा। पिछले वर्षों में राजस्थान और बिहार के अकाल-पीडितों के लिए, बंगला देश से आए शरणार्थियों के लिए, उड़ीसा के तूफान-ग्रस्त लोगों के लिए, पाकिस्तान से हुए युद्ध के दिनों में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए और ग्राम-स्वराज्य कोष आदि के लिए इस परिवार ने समय-समय पर भोजन त्याग कर और मेहनत-मजदूरी करके अर्थ-संचय किया और उसे पीडितों की सेवा के लिए भेजा।

कर्म-ज्ञान का समन्वय :

कर्म और ज्ञान का समन्वय साधने के इस प्रयास में हम कितने सफल हुए यह तो समय ही बताएगा किन्तु अभी तक हमारे छात्र सामान्य बौद्धिक स्तर में भी अन्य किसी भी समकक्ष कक्षाओंसे हमेशा आगे ही रहे हैं। यह इन आंकडों से पता चलेगा —

कुमार मन्दिर की कक्षा ८ वीं का वर्षवार मूल्यांकन

	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	कुल योग
परीक्षामें— प्रविष्ट—	२	२	९	२	३	४	३	३	६	११	९	५४
उत्तीर्ण —	२	२	८	२	३	४	३	३	६	११	९	५३
प्रतिशत —	१००	१००	८८	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	९८

सन १९६६ में ८ वीं की सम्भागीय बोर्ड से परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। ६६ में केवल १ को पूरक मिली था जो विद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

राष्ट्रीय ग्रामीण प्रतिभावान छात्रवृत्ति परीक्षा में भी विद्यालय के बालक सम्मिलित होते रहे हैं। और हर वर्ष उसमें छात्रों ने लाभ उठाया। इस परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को १००) प्रतिमाह के हिसाब से १० महीनों की छात्रवृत्ति मिलती है।

यह प्रगति कक्षा ८ तक के स्तर पर की है। अब इस साल से अगली दो कक्षायें और आरम्भ की गई हैं और हमारा विश्वास है कि यदि समाज व सरकार का उचित सहयोग मिलता रहा तो हमारी सफलता का प्रतिशत और भी अधिक होगा।

'नयी तालीम' के ग्राहकों, एजेन्टों व पाठकों के लिये विशेष सूचना

नयी तालीम पिछले २४ साल से मासिक के रूप में प्रकाशित होती रही है। किन्तु इधर कागज, छपाई आदि की अत्यधिक महंगाई के कारण 'नयी तालीम' का खर्च बहुत बढ़ गया है और वह कई हजार रु साल का घाटा सहन कर रही है। इस हालत में हम इसे या तो एकदम बंद करते या फिर कुछ कम घाटे पर चलाने की व्यवस्था करते। चूंकि यह बुनियादी शिक्षा की इस स्तर की हिंदी में देशकी एकमात्र पत्रिका है और पूज्य गांधीजी के ही समय से चली आ रही है अतः अ० भा० नयी तालीम समिति ने गत ९ फरवरी की अपनी बैठक में इसे 'द्विमासिक' करने का निर्णय लिया है। मूल्य १२ रु वार्षिक ही रहेगा और सामग्री तथा स्तर भी पूर्ववत रहेगा। ग्राहक, पाठक व एजेंट कृपया नोट कर लें। आशा है आपका सहयोग पूर्ववत नयी तालीम को मिलता रहेगा।

रपट :

हेमनाथ सिंह

आमूल परिवर्तन के लिए शिक्षा का दायित्व : शिक्षागोष्ठी के निष्कर्ष :

(गत ७, ८, ९ फरवरी ७५ को खादीग्राम में आमूल परिवर्तन के लिये शिक्षा के दायित्व के बारे में एक शिक्षागोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में बिहार राज्य भर से ७५ शिक्षकों ने भाग लिया। ये लोग विभिन्न विद्यालयों और विश्वविद्यालयों से आये थे। गोष्ठी को श्री जयप्रकाश नारायण तथा नयी तालीम के सम्पादक श्री आचार्य राममूर्ति जी का भी मार्गदर्शन मिला। तीन दिन की चर्चा के बाद गोष्ठी में कई महत्व के निर्णय लिये। उसकी रिपोर्ट खादी ग्राम से श्री हेमनाथ भाई ने हमें भेजी है। उसके मुख्य निष्कर्ष यहाँ दिये जा रहे हैं।)

बिहार में पिछले साल भर से आमूल समाज परिवर्तन का एक जोरदार आन्दोलन छिडा है। शिक्षकों का उसमें भारी योगदान है। असल में तो इसका आरम्भ ही शिक्षकों और छात्रों से हुआ था। इस आन्दोलन के दौरान लगभग २५० शिक्षक सरकारी कोप के भाजन भी हुये हैं। अत यह भी स्वाभाविक है कि अब समाज इन सभी शिक्षकों और छात्रों से पूछने लगा है कि आप शिक्षा में जिस तरह की क्रान्ति की बात कर रहे हैं उसका क्या रूप होगा। हम शिक्षा में क्रान्ति की बात तो बहुत करते हैं किन्तु उसका कार्यकारी रूप समाज के सामने नही देंगे तो फिर भ्रम भी हो सकता है। अत शिक्षा का वह कार्यकारी क्रान्तिकारी रूप क्या हो इस पर विचार करने के लिये राज्य भर के शिक्षकों और कुछ छात्रों की एक गोष्ठी खादी ग्राम में की गई। शिक्षा के बारे में तीन दिन तक विस्तार से चर्चा की गई और कई महत्व के निर्णय भी लिये गये। इस गोष्ठी में श्री जयप्रकाश नारायण जी भी स्वय उपस्थित थे और आचार्य राममूर्ति जी जैसे प्रसिद्ध सर्वोदयी शिक्षा शास्त्री का मार्गदर्शन भी इसे मिला।

मुख्य दिशाबिन्दु : समाज व शिक्षा अविभाज्य हैं :

(१) गोष्ठी में पहली बात यह मान्य की गई कि शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव का निर्माण करना है और यह नये समाज की रचना के द्वारा ही सम्भव है। जैसे एक व्यक्ति के सम्यक् विकास के लिये उसके शरीर के सभी अंगों का सम्यक् विकास होना आवश्यक है, वैसे ही समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रचना भी सही रूप से विकसित हुये बिना हम समाज की सही रचना नहीं कर सकते हैं। अत समाज और शिक्षा अविभाज्य बातें हैं। वर्तमान शिक्षा में इस दृष्टिकोण को नजरअंदाज कर दिया गया है। वह जीवन से एकदम कटी है। उसमें न तो जीवन की ही शिक्षा है न किसी रोजगार की हो। रोजगार मनुष्य के जीवन की धुरी है उसके बिना वह जीवन जी नहीं सकता। अत नयी शिक्षा का पहला काम यह होना चाहिये कि वह एक खास स्तर तक पहुँचने पर, जैसे कि माध्यमिक स्तर तक आने पर, मनुष्य को जीवन चलाने के लिये सम्यक् जीविका कमाने की योग्यता और क्षमता प्रदान कर सके।

शिक्षा-नीति व अर्थ-नीति का साम्य हो :

(२) इससे यह निष्कर्ष स्वभावत ही निकलता है कि शिक्षानीति का सम्बन्ध देश की अर्थ-व्यवस्था से अनिवार्यत जुड़ा होना चाहिए। भारत के जैसे कृषि प्रधान देश के लिये इस तरह की शिक्षा का क्या रूप हो यह महत्व का सवाल है। हमारे सामने अभी इसके लिये चीन के 'हाफ-हाफ स्कूल' की प्रणाली एक उदाहरण है। उस पर वे लोग काफी कार्य भी कर चुके हैं और जहाँ तक चीन का सवाल है लगता है वहाँ के लिये वह सही है। पर भारत में भी वह कहाँ तक ठीक होगी यह विचारणीय है। हमारे यहाँ पर उससे भी अधिक कारगर एक प्रणाली गांधी जी की 'बुनियादी शिक्षा' की थी। पर हमने उस पर कभी भी ईमानदारी से अमल ही नहीं किया। अभी तरुण शान्ति सेना ने एक नये नारे का भी आरम्भ किया है 'फीस के बदले काम।' यह असल में गांधी जी की उद्योग के माध्यम से स्वावलम्बी शिक्षा का ही दूसरा नाम है। पर इस पर भी कहीं अभी तक अमल नहीं किया गया है। अत हमें भारत के सन्दर्भ में तो गांधी जी के विचारों के अनुसार शिक्षापद्धति पर गम्भीरता से विचार करना ही होगा। चीन की शिक्षा चाहे जितनी अच्छी हो पर वह एक तो लोकतांत्रिक नहीं है दूसरे वह सत्ता की दासी है। हमें तो स्वायत्त लोक-तांत्रिक समाज के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। यह हमारा लक्ष्य साफ हो।

शिक्षा में भी विकेन्द्रीकरण हो,

(३) तीसरी बात यह है कि आज देश के १३५० करोड रुपये हर साल खर्च करके भी हम केवल ३० प्र श जनसंख्या को ही उससे लाभ दिला पा रहे हैं।

असल में तो आज की शिक्षा जन-विरोधी है क्योंकि यह प्रचलित वर्गभेदों को ही मजबूत करने का काम करती है। यह ऊपर के कुछ लोगों की सत्ता और सम्पत्ति के ही सरक्षण का वाहन है। अत शिक्षा की तीसरी आवश्यकता यह है कि उसे जनता के निचले स्तर तक ले जाना होगा। आज की प्रचलित शिक्षा के सन्दर्भ को बदले बिना हम अनिवार्य शिक्षा की बात नही सोच सकते है। हमारी अर्थ व्यवस्था इस बेकार के बोझ को उठा भी नही सकती है। अत शिक्षा को हमे किसी बधे बधाए पाठ्यक्रम, पाठविधि, पाठशाला, पेशेवर शिक्षक आदि के चगुल से मुक्त करके उसे एक तरह से मुक्त वातावरण मे सार्वजनीन बनाना होगा। इस सन्दर्भ मे 'एक घटे की पाठशाला' गाँव की धर्मशाला, नगरो में उद्योग शाला और कुशल कारीगरो के साथ शिक्षा की कोई ठोस योजना करनी होगी। यह हमारे समाजवादी और लोकतात्रिक राष्ट्रीय मूल्यो की दृष्टि से भी आवश्यक है।

शिक्षा व संस्कृति का निर्बाध संबंध :

(४) चौथी बात यह है कि देश की शिक्षा देश की संस्कृति से निर्बाध रूप से जुडी होनी चाहिये। भारत की सस्कृति सार्वजनीन सस्कृति है अत हमारी शिक्षा को ये मूल्य सामने रखने होग।

डिग्री से नौकरी का विच्छेद हो :

(५) इसके साथ ही परीक्षा प्रणाली मे आमूल सुधार, नौकरी का डिग्री से सम्बन्ध विच्छेद, और अंग्रेजीयत का बोलबाला जैसी बुराइयो के विरुद्ध भी हमें सघर्ष करना होगा। समाज की आज की बुराइयाँ इन्ही के कारण है।

नय-शिक्षा केन्द्र की स्थापना :

इन सब बातो को ध्यान मे रखकर यह निर्णय लिया गया है कि पटना में एक 'नवशिक्षा केन्द्र' कायम किया जाय जहाँ पर अभी ३०० छात्र लिये जाय। पहले खासकर वे ही छात्र लिये जायेगे जिन्होने जे पी के आवाहन पर स्कूल-कालेजो का बहिष्कार किया है। यह शिक्षा मे गाधी जी के बाद दूसरा क्रान्तिकारी कदम है। कल्पना यह है कि यह केन्द्र अवैतनिक कार्यकर्ताओ से आरम्भ किया जाय। ये लोग फिर क्षेत्र से सम्पर्क कर इसे आगे बढायेगे। इसमे भर्ती किये जानेवाले छात्र स्कूली शिक्षा प्राप्त १६ साल से ऊपर के हो यह भी तय किया गया है। इसमे शिक्षा 'बहु-प्रवेशीय' और 'बहुनिकाशीय' होगी। परीक्षा प्रणाली ऐच्छिक होगी और कार्य तथा उपस्थिति के अनुभवो का प्रमाण पत्र दिया जायेगा, कोई डिग्री नही दी जायेगी। शिक्षण के साथ आजीविका को भी सामिल करके छात्रो को विभिन्न तरह से जीविका के योग्य बनाने का भी प्रयास होगा। केन्द्र अपने आसपास के क्षेत्र से सक्रिय सार्थक सम्बन्ध भी कायम करेगा। ताकि क्षेत्र की जनता को वह अपने प्रयोग से अवगत किये रहे। इस

प्रयोग के बाद फिर योजना यह है कि ऐसे ही केन्द्र बिहार भर में कायम किये जाये।

क्रान्ति पहले घर से हो :

यह केवल अभी कल्पना ही है। यह सोचा गया है कि इस तरह से शिक्षक और छात्र बार बार मिलें और विचार विनिमय करें। अनुभवों के प्रकाश में फिर योजना करें और उस पर अमल करें। शिक्षा में परिवर्तन के लिये असल में शिक्षक और छात्र ही जब तक आगे नहीं आते तब तक शिक्षा में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। सरकार के भरोसे जो भी परिवर्तन होगा वह हमेशा ही सरकार के अनुकूल होगा और शिक्षा तथा जनता के विपरीत ही होगा। यह बात शिक्षकों और छात्रों को पहले ही समझ लेनी चाहिये।

समुदाय के नैतिक विकास में सबसे बड़ी बाधा तो यह गलत विश्वास है कि हमें पहले सिद्धान्त सीख लेने चाहिये और उन्हें व्यवहार में तो बाद में ही लाया जा सकता है। निष्क्रियता के इस सुगमतम बहाने को स्वीकारने का अर्थ है जीवन में अन्तर्विरोधी दृष्टि का स्वीकार। क्योंकि आदर्श समाज बनाने के लिये प्रत्यक्ष जीवन से पृथक कोई भी अन्य पूर्ण सिद्धान्त नहीं है। संक्षेप में 'काम करते हुये' ही मूल्यों की शिक्षा हो सकती है, केवल सैद्धान्तिक ज्ञान किसी काम का नहीं है।

—रिचार्ड हाउजर

प. बंगाल में बुनियादी शिक्षा की स्थिति :

(प० बंगाल नयी तालीम समिति ने उस राज्य में बुनियादी शिक्षा की स्थिति पर एक अध्ययनपूर्ण रिपोर्ट हमें भेजी है। उसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है। इससे पता चलेगा कि सारे देश की ही तरह प० बंगाल में भी सरकार की अस्पष्ट समझ ने बुनियादी शिक्षा के पनपने में बहुत कठिनाइयाँ पैदा कर दी हैं। फिर भी गैर सरकारी क्षेत्र लगन के साथ सक्रिय हैं। अगले अंकों में हम इस कार्य का कुछ परिचय देने का प्रयास करेंगे।)

देश के अन्य भागों की तरह से प० बंगाल में भी स्वतन्त्रता से पहले बुनियादी शिक्षा के लिये अत्यन्त उत्साह से काम आरम्भ किया गया था और उस समय की राय मिनिस्ट्री ने सार्जेन्ट कमेटी की सिफारिसें पूर्णतया स्वीकार करने की घोषणा की और उस पर अमल भी करने के लिये कदम उठाये गये। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद की कहानी तो अत्यन्त कष्टकर है और सरकार अपनी घोषित इच्छा और स्वीकृति के बावजूद भी बुनियादी शिक्षा के लिये कुछ अनुकूल नहीं कर सकी है। सरकार के शिक्षा विभाग की साल १९७० में प्रकाशित रिपोर्ट और वर्नीपुर के पोस्ट ग्रेज्युएट बेसिक ट्रेनिंग कालेज के द्वारा अभी हाल ही में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार भी आज प० बंगाल में बुनियादी शिक्षा की जो स्थिति है वह अत्यन्त ही प्रतिकूल है। नीचे दिये चार्ट से यह स्थिति साफ होती है —

सरणि नं. १ :

साल	जू बे स्कूलो की कुल सख्या	प्राइमरी स्कूलो की कुल सख्या	जू बे स्कूलो मे छात्र सख्या	प्राइमरी स्कूलो मे छात्र सख्या
१९५०–५१	८६	१४६९७	८८०३	४०७७२३
१९५५–५६	४९२	२२५०९	५९३२४	२११९७१३
१९५७–५८	८५६	२४५९०	९०२८८	२२७५३५१
१९५९–६०	१२९७	२५९१२	१३६९८०	२४१३०८३
१९६०–६१	१४९०	२६४८२	१५८९३३	२४७६०५६
१९६१–६२	१५९६	२९०४५	१८०९९०	२६६२३१२
१९६२–६३	१७४०	३०३४७	२०९१५२	२८८७३१३
१९६३–६४	१८०४	३०६३४	१३७६८३	३०४९३९३
१९७०–७१	२६८३	३२४०१	४२३६५८	३७३१२२६

इससे साफ है कि सरकार की शिक्षा नीति मे कोई तारतम्य नही रहता है। वह एक तरफ तो बेहिसाब प्राइमरी स्कूल खोलती जाती है, किन्तु उनके अनुकूल जू बे स्कूल नही खोलती। इस प्रकार से आज प० बगाल में हर १२ प्राइमरी स्कूलों के लिये केवल एक ही जू बे स्कूल है। यह भारी असतुलन पैदा करता है। व्यय भी फिर उसी असतुलित तरीके से बढता जाता है और साल ६३–६४ में सरकार का प्राइमरी स्कूलो पर कुल व्यय जहाँ साढ़े नौ करोड से भी ऊपर चला गया था वहीं वह जू बे स्कूलो के लिए केवल ८६ लाख के ही आसपास था। वही हालत शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र मे भी है। साल ६३–६४ मे प्रदेश में कुल ३३ जू बे ट्रेनिंग सस्थान थे जब कि गैर बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण सस्थानो की सख्या ४० थी। इसी तरह से साल ५५ में प्रदेश में कुल ४ बी टी कालेज थे पर साल ६४ में उनकी सख्या भी १२ कर दी गई। और यह क्रम अब भी बढता ही जा रहा है। इसके विपरीत प्रदेश भर मे साल १९४८ से गैर सरकारी क्षेत्र में चलने वाला पोस्ट ग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग कालेज बनीपुर मे १९६१ तक प्रदेश का एकमात्र कालेज था जब कि उस साल रहरा मे एक और कालेज खोला गया। शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में स्थिति नीचे दी गई सरणि न २ से स्पष्ट होती है —

सरणि न २ :

साल	प्रशिक्षण सस्थान		छात्र सख्या		व्यय	
	बुनि	गैर बुनि	बुनि	गैर बुनि	बुनि	गैर बुनि
१९५०–५१	–	४	–	२१५	–	२९१७१३
१९५५–५६	१	४	७९	४६५	१०८१५९	२८७३५०
१९५७–५८	१	८	१०३	८०२	१६५१३४	५३३१८०
१९५८–५९	१	१२	११०	१०५१	१६६९५७	७६८४६८
१९५९–६०	१	१२	१००	१२९४	१७३६५८	८५८८९४
१९६०–६१	२	१५	१३८	१५३३	१८४८४३	१०४८४४७
१९६१–६२	२	१३	१६६	१२०९	२१६९५६	९२८४९०
१९६२–६३	२	१२	२०६	१२२६	२९२७२२	११०४४२८
१९६३–६४	२	१२	२१५	१२९८	३०८९७२	१११००३६

इस से स्पष्ट है कि प० बगाल मे बुनियादी शिक्षा के लिये शिक्षक प्रशिक्षण पर कम से कम ध्यान दिया गया है कि जब कि परम्परागत शिक्षा के लिये निरन्तर बढती जा रही व्यय व्यवस्था की जा रही है। और अभी बी टी कालेजो की ही सख्या बढ़ाई जा रही है। अन उसमें खर्च भी बढता ही जा रहा है। साल १९६३–६४ में प्रदेश में कुल ३०३ सीनियर बेसिक स्कूल थे और ५ सीनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज

भी थे। किन्तु बाद को शीघ्र ही मे सारे सीनियर बेसिक स्कूल जू हा स्कूलों में बदल दिये गये। यह काम तत्कालीन सयुक्त मोर्चा सरकार ने किया। इसी प्रकार से सीनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज भी फिर स्वभावत ही जू बे ट्रेनिंग कालेजों में बदल दिये गये।

जू. बे. स्कूल बनाम प्राइमरी स्कूल :

अभी जो जू ब स्कूल के नाम से चलते भी हैं उनकी हालत सामान्य परम्परागत प्राइमरी स्कूल से किसी भी अर्थ में न तो भिन्न हैं और न बेहत्तर ही हैं। पहले पहल सरकार न यह तय किया था कि प्रचलित प्राइमरी स्कूलों और जुनियर हाईस्कूलो या मिडिल स्कूलो को वह शीघ्र ही क्रमश जूनियर बेसिक स्कूल और सीनियर बेसिक स्कूल में बदल देगी। इसके साथ ही वह और भी नये बेसिक स्कूल खोलेगी तथा प्रचलित प्राइमरी स्कूलों को बेसिक के ढाँचे के अनुसार परिवर्तित करेगी तथा धीरे धीरे जू बे स्कूलों को वह सीनियर बेसिक स्कूलों में बदल देगी। किन्तु इनमें से एक भी नीति पर अमल नहीं किया गया जैसा कि ऊपर दी गई सरणि से स्पष्ट है। पहले पहल सरकार के साथ ही शिक्षको और अभिभावको म भी बुनियादी शिक्षा के लिये अत्यधिक उत्साह था किन्तु सरकार की इस तरह की असगत नीति का देखकर बाद को शिक्षक और अभिभावक भी इस ओर से उदासीन हो गये। यह कहना गलत है कि देश की जनता बुनियादी शिक्षा का नहीं चाहती हैं जैसा कि कभी कभी सरकारी पक्ष से कहा जाता है। कम स कम प बगाल का अनुभव तो यह नहीं बताता। वहाँ आज भी कुछ उत्तम प्रकार के गैर सरकारी बुनियादी विद्यालय चल रहे हैं और उन्हें जनता का पूरा पूरा समर्थन और सहायता प्राप्त होती है। यदि सरकार और उसके नेता चाहते तो सारे प्रदेश में वे यह काम कर सकते थे। पर असल में उन्होंने कभी बुनियादी शिक्षा को मन स चाहा ही नहीं।

बिना पाठ्यक्रम के स्कूल :

आज इन जूनियर बेसिक स्कूलों की हालत भी अत्यन्त ही दयनीय स्थिति मे है। उनके पास आमतौर पर ६ बीघा भूमि होती है, जिसका उद्देश्य विद्यालय में खेती आदि उद्योगो के माध्यम को शिक्षा का आधार बनाकर काम करने का था। पर आज कही भी विद्यालय इस खेत पर कोई उत्पादन नही करते है। खेत या तो गाँव के किसानो को अधिया पर या वैसे ही खेती पर दे दिये गये हैं या फिर किराय के मजदूरो को लाकर उन पर कुछ बो दिया जाता है। इसी तरह से इमारत भी उनकी अच्छी नहीं होती और वे अक्सर ही टूटीफूटी हालत में रहती है। किसी भी जू ब स्कूल में चूँकि कोई छात्रावास की व्यवस्था नही होती अत विद्यालय की खेती, इमारत आदि की सुरक्षा, सभाल आदि का कोई देखनेवाला नही होता। सबसे मजे की बात

तो यह है कि इन जू वे स्कूलों के लिये कोई पाठ्यक्रम ही नही है और सामान्य प्राइमरी के लिये जो पाठ्यक्रम है वही यहाँ भी चलाया जाता है। फिर भी न मालूम क्यों इन्हें बेसिक' नाम दिया गया है। इस पाठ्यक्रम में उद्योग-शिक्षण का तो नाम भी नही होता और पाठ्यक्रम में क्राफ्ट के नाम पर केवल कुछ मिट्टी का काम, पत्तियोंसे चटाई बनाने का कुछ काम या फिर कुछ सामान्य चित्र कारी का काम किया जाता है। पूछने पर बताया जाता है कि चूँकि बालकों के द्वारा किये गये काम की कोई बाजार कीमत नहीं होती इसलिये यह सब करना व्यर्थ होता है। कताई-बुनाई का तो कही नामोनिशान भी नहीं है, क्योंकि शिक्षकों का कहना है कि बालक रुई की बरबादी ही करते है। यह बुनियादी शिक्षा के इनके दृष्टिकोण और प्रशिक्षण पर स्वयं ही अच्छी टिप्पणी है।

समवाय शिक्षण पर भी कोई ध्यान नही दिया जाता है। चूंकि ये सभी विद्यालय लगभग ग्रामीण क्षेत्र में ही स्थित होते हैं अतः इनसे आसपास के समाज के साथ जिस सम्पर्क की अपेक्षा की जाती है वह भी वही शायद ही हो। वहीं के सभी कुछ अवसरों पर ग्रामीण मेलों या अन्य सामाजिक अवसरों पर कुछ सामाजिक काम कर लेते हैं किन्तु वह उनके दैनिक शिक्षण का अंग नहीं होता। कुछ विद्यालयों ने छात्र-अभिभावक संघ जैसे कुछ संगठन कायम किये हैं और कभी कभी अभिभावकों को विद्यालय में बुलाकर कुछ कार्यक्रम अवश्य कर लेते हैं। किन्तु यह दिन अभिभावकों और छात्रों के लिये भी एक प्रकार से अवकाश का ही दिन-सा माना जाता है शिक्षण का नहीं। उत्तम वाचनालय या पुस्तकालयों की बात करना तो निरर्थक ही है। परीक्षायें भी प्रचलित किताब-मूलक ही होती है यद्यपि उनमें छात्र के काम की भी कुछ जाँच की जाती है। पर छात्र के सामाजिक या सांस्कृतिक कार्य का कोई रिकार्ड नही रखा जाता है। यह जाँच केवल शिक्षक की दृष्टि पर ही निर्भर है। बनीपुर के पोस्ट ग्रेजुयेट बेसिक ट्रेनिंग कालेज ने गत साल ७४ में एक सर्वे किया था उससे भी यही नतीजे प्रकट हुये हैं।

प्रशासनिक स्थिति :

ये सारे जू बेसिक स्कूल जिला शिक्षा बोर्ड के द्वारा चलाये जाते हैं और सिवाय कुछ बेसिक ट्रेनिंग कालेजों के प्रैक्टिसिंग स्कूल के सरकार और कोई जू बे स्कूल स्वयं नही चलाती है। आरम्भ मे बुनियादी शिक्षा के मामले में सरकार को सलाह आदि देने के लिये एक प्रदेश शिक्षा सलाहकार बोर्ड बनाया गया था किन्तु बोर्ड की सिफारिशों पर कभी सरकार ने गम्भीरता से विचार नही किया और धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों की ही तरह से प० बंगाल में भी यह बोर्ड लगभग समाप्त ही हो गया है। अभी इसका कोई नाम निशान नहीं है। फिर सरकार ने कुछ शिक्षा शास्त्रियों का एक सुपरवाइजरी बोर्ड भी बनाया था जिसका काम बेसिक ट्रेनिंग कालेजों के बारे में

सरकार को सलाह आदि देने का था। किन्तु सरकार की कृपादृष्टि से हमारा भी वही हाल हुआ जो कि शिक्षा सलाहकार बोर्ड का हुआ है। अब यह भी निष्प्राण ही है। पिछले आधी शताब्दी वर्ष में गैर सरकारी स्तर पर बुनियादी शिक्षा का जो कुछ भी काम प्रदेशमें हो रहा है उसे सही गति और दिशा प्रदान करने के लिये एक प० बंगाल बुनियादी शिक्षा बोर्ड की स्थापना की गई है जिसमें सभी गैर सरकारी बुनियादी शिक्षा संस्थाओं के प्रतिनिधियों के अलावा प्रदेश के कुछ अन्य शिक्षाविज्ञ भी हैं। सरकार से भी इस को सहयोग का दृष्टिकोण है।

पर समाज पीछे नहीं है :

प० बंगाल में बुनियादी शिक्षा का जो चित्र ऊपर दिया गया है वह अत्यन्त ही निराशा जनक है इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प० बंगाल में बुनियादी शिक्षा का कहीं स्थान ही नहीं है। जैसे कि सारे देश की स्थिति है जहाँ तक सरकार का सवाल है यहाँ भी उसका रुख हमेशा ही बुनियादी शिक्षा के प्रति प्रतिक्रियावादी रहा है किन्तु गैर सरकारी स्तर पर काम आज भी चल रहा है और हमारी कुछ संस्थाएं तो बहुत ही अच्छा काम कर रही हैं। इस तरह की गैर सरकारी बुनियादी शिक्षण संस्थाओं में हम ग्रामसेवक बलरामपुर बुनियादी शिक्षा भवन, बलरामग्राम शिक्षा निकेतन भोगीहरा जातीय बुनियादी प्रतिष्ठान, बुनियादी शिक्षा सम्स्थानिका बनीपुर क्षेत्र, एरगादा नित्यानन्द विद्यायतन और सोदपुर का बुनियादी शिक्षा केन्द्र इन ६ शिक्षण संस्थाओं का नाम गर्व के साथ ले सकते हैं। ये सभी संस्थायें अपने अपने क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा के काम को न केवल जीवित रखे हुए हैं अपितु उसे उत्तम ढंग से भी कर रहे हैं। इनमें बलरामपुर का केन्द्र तो असल में सन् १९४३ से ही झाडग्राम मिदनापुर में कायम हुए बुनियादी शिक्षा केन्द्र का ही विकसित रूप है। यहाँ पर इनका विस्तृत परिचय देना सम्भव नहीं है किन्तु प० बंगाल में इनका काम अन्य शिक्षा जगत के मुकाबिले हर अर्थ में उत्तम ही है।

इस काम में प० बंगाल के सभी सर्वोदय कार्यकर्ता लगे हुए हैं जो अपने अपने क्षेत्र में मान्य सेवक हैं। सरकार की सहायता भी हमारे इन केन्द्रों को मिलती रहती है पर वह काम के विस्तार के लिहाज से अत्यन्त ही कम होती है। इन संस्थानों का अधिकतम व्यय तो वे अपने ही श्रम से उत्पन्न करते हैं। हमारी इन संस्थाओं में हमने कहीं कहीं पर तो ७० प्र० श० से अधिक स्वावलम्बन साध लिया है। ये शिक्षा संस्थान न केवल शिक्षा के ही अपितु विकास और सामाजिक शिक्षण के भी माध्यम हैं।

(प० बंगाल नयी तालीम समिति की रिपोर्ट से संकलित)

ग्रंथ परिचय :

समणसुत्तं —संकलन कर्ता — श्री जिनेन्द्र वर्णी ; संस्कृत छाया — पंडित बेचरदास जी दोशी , हिन्दी अनुवाद — पंडित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री , प्रकाशक — सर्व सेवा संघ, प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१, उ. प्र. , पृष्ठसंख्या — लगभग ३५० , मूल्य — सजिल्द १५ रुपये, अजिल्द १० रुपये।

"मेरे जीवन में मुझे अनेक समाधान मिले हैं। उनमें आखिरी, अन्तिम समाधान, जो शायद सर्वोत्तम समाधान है, इसी साल मिला। मैंने कई बार जैनों से प्रार्थना की थी कि जैसे वैदिक धर्म का सार गीता में सात-सौ श्लोकों में मिल गया है, बौद्धों का धम्मपद से मिल गया है, जिसके कारण ढाई हजार साल के बाद भी बुद्ध का धर्म लोगों को मालूम होता है, वैसे ही जैनों का होना चाहिये। यह जैनों के लिये मुश्किल बात थी, इसलिये कि उनमें अनेक पन्थ हैं और ग्रन्थ भी अनेक हैं। अब आखिर सर्वानुमति से श्रमणसूक्तम्, जिसे अर्धमागधी में 'समणसुत्तं' कहते हैं, बना। एक बड़ा कार्य हुआ है जो हजार पन्द्रह सौ साल में हुआ नहीं था। उसका निमित्त मात्र बाबा बना। लेकिन बाबा को पूरा विश्वास है कि यह भगवान महावीर की कृपा है।"

पूज्य विनोबा जी ने इन शब्दों में गत २५ दिसम्बर को पवनार में गीता जयन्ती के दिन अपने उद्‌गार प्रकट कर पिछले डेड़-दो हजार साल के बाद भारत में धर्म के क्षेत्र में पैदा हुए एक महान्ग्रंथ के जन्म पर अपनी प्रसन्नता जाहिर की। जैनधर्म भारत का शायद प्राचीनतम धर्म है। अनेक विद्वान मानते हैं कि हड़प्पा और मोहनजोदारो की सभ्यता पर तत्कालीन श्रमण-संस्कृति का गहरा प्रभाव था, और यही श्रमण-संस्कृति जैनधर्म का पूर्वरूप थी। भगवान् पार्श्वनाथ से इसकी अविच्छिन्न परम्परा चली आई है और भगवान महावीर ने इसे, एक तरह से कह सकते हैं, पूर्णता प्रदान की। इस बीच के लगभग ३ हजार साल के समय में इस परम्परा में कई महापुरुष हुये, जिन्हें 'तीर्थंकर' भी कहा जाता है, जिनके उपदेश इस धर्म की जड़ों को सींचते रहे हैं। स्वभावतः ही इतना प्राचीन विचार और धर्म, जिसके इतने अनेक महापुरुष हो गए हों और फिर जिसकी मूल भित्ती ही समन्वय हो, उसमें अनेक विचार प्रवाहों का होना आवश्यक है और यही कारण है कि जैनधर्म में भी कई पंथ और कई ग्रंथ भी बन गये। जैनधर्म के यों तो मुख्य चार ही पन्थ माने जाते हैं, किन्तु उनमें भी फिर कई शाखाएँ बन गई हैं और हर शाखा का अपना अलग ग्रंथ भी है। इस तरह कुल ग्रंथ २५ से ऊपर हैं। इस प्रकार से एक ही धर्म की ये अनेक शाखायें अपने ही मूल से कई बार तो इतनी भिन्न बनती चली गई हैं कि मूल धर्म से ध्यान भी हटता जाता है और लोग इन शाखाओं को ही मूल मानने लगते हैं। यह अपने आप में गलत भी नहीं है किन्तु यदि मूल ही हमारी निगाह से ओझल हो जाय तो कलिकाल में उसके सूख जाने का भी खतरा रहता ही है और फिर इस हालत में शाखायें

कितने दिन चलेंगी यह सोचा जा सकता है। अत भारत के मूल स्वरूप को समझने और अनुभव करने वाले वर्तमान भारत-ऋषि विनोबाजी को यह बात बहुत समय से अनुभव होती थी कि अन्य धर्मों की ही तरह से यदि जैनधर्म का भी कोई एक सर्वमान्य ग्रंथ बन सकता तो बहुत बडा काम होगा। उन्होंने जैन विद्वानो के सामने अपना यह विचार रखा और कई बार रखा। कई जैन विद्वान भी इस आवश्यकता को अनुभव करते थे।

इस प्रकार से एक प्रयास आरम्भ हुआ और अब उसका सुफल हमारे सामने है। जनवरी ७३ से इस पर काम आरम्भ हुआ और अक्टूबर ७४ में ग्रंथ बनकर लगभग तैयार हो गया। इस प्रकार लगभग डेढ साल ग्रंथ बनने में लगा। इस बीच विद्वानो न कई बार परस्पर चर्चा की, उस पर से ग्रंथ की रूपरेखा बनाई, उस पर फिर से चर्चा की, फिर से ग्रंथ म परिवर्तन किये, फिर उस पर चर्चा हुई, विनोबाजी से भी चर्चायें की गई, उनके भी सुझाव लिए गए और अन्त मे फिर २९–३० नवम्बर १९७४ को दिल्ली मे एक संगीति बुलाई गई जिसमें देशभर से लगभग ५० जैन विद्वानो ने भाग लिया और दो तीन दिन तक गम्भीर चर्चाओ के बाद ग्रंथ को अन्तिम रूप दिया गया। वह फिर पूज्य विनोबा जी को बताया गया और उस पर उन्होंने अपनी स्वीकृति की मुहर लगाई। इस प्रकार से अत्यन्त सावधानी से, लगन के साथ ग्रंथ तैयार किया गया है। सबसे बडी बात यह है कि जैनधर्म के सभी पंथ और ग्रंथ इसमें शामिल हुये और अब यह जो ग्रंथ बना है वह जैनधर्म का सम्पूर्ण ग्रंथ बन सका है। आनेवाले हजारो साल तक अब यही जैनधर्म को प्रकाश देता रहेगा।

ग्रंथ का प्रकाशन सर्व सेवा संघ, प्रकाशन जैसी प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था ने किया है। मूल प्राकृत मे ७५६ गाथायें एक तरफ दी गई हैं, उनके साथ संस्कृत छाया दी गई हैं और फिर उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही दे दिया गया है। इस प्रकार से तीन भाषाओ मे ग्रंथ एक साथ एक ही जिल्द मे प्रकाशित हुआ है। ग्रंथ कुल चार खंडो मे विभक्त है। पहला खंड है, **ज्योतिर्मुखम्**। इसमें व्यक्ति मिथ्यात्व की निम्न भूमि से ऊपर उठकर रागद्वेष का परिहार आदि साधनाओ के द्वारा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों की भूमि में प्रवेश करता है। दूसरा खंड है, **मोक्षमार्ग**। इसके अन्तर्गत विभिन्न जैन पंथो और मार्गों के साधको के लिये मार्गदर्शक सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। तृतीय खंड है, **तत्व दर्शन**। इसमे जैन-दर्शन का विशद विवेचन है। और चौथा खंड है, **स्याद्वाद विषयक**। इसमे सर्व-धर्म-समन्वय की दृष्टि प्रधान रूप से दिखाई है। इस प्रकार से यह ग्रंथ जैनधर्म का परिपाक बन गया है और अब जैन साधको को एक ही स्थान पर सारी सामग्री मिलने की सुविधा प्राप्त हो गई है। सबसे बडी बात तो यह है कि हजारो साल के बाद एक ऐसा काम हुआ है जिसकी कीमत आने वाले सालो मे हमेशा बढती ही जायगी।

सभी प्रकार के पुस्तकालयो, विद्यालयो और विश्वविद्यालयो के रखने योग्य यह सर्वोत्तम ग्रंथ है।

—कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा

नयी तालीम : फरवरी मार्च '७५
पहिले से डाक-व्यय दिए बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

राज्य-शक्ति का भ्रमः

इस प्रकार से हम पुन निष्कर्ष पर आते हैं कि इससे बड़ा अंधविश्वास आज और कुछ नहीं है कि पार्लियामेंट या बहुमत के अधिकार सर्वोच्च होते हैं और वे उचित हैं यद्यपि, कहा जाता है कि लोगों ने राज्य के अधिकार के उस पुराने (दैवी) सिद्धान्त का त्याग कर लिया है किन्तु उन्होंने उस पर आधारित असीम राज्याधिकार पर अपना विश्वास कायम रखा है। आज का यह विश्वास किसी नयी स्थिति पर आधारित नहीं है। जनता के ऊपर निर्बाध शासनाधिकार, जो पहले किसी अर्ध भगवान (देव पुरुष) को विचार पूर्वक सौंप दिया गया था, आज एक शासक दल या समूह को भी उसी तरह से अर्ध भगवान जैसा ही मानकर सौंप दिया गया है और यद्यपि यह शासक दल या समूह उस व्यक्ति की तरह से वह खुलआम इस दैवी अधिकार का दावा तो नहीं करता पर चुपचाप उसका उपभोग खूब करता है।

—हर्बर्ट स्पेंसर

मुद्रक शंकरराव लाढे राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा

नयी तालीम

द्विमासिक

सच्ची सभ्यता क्या है ?

विज्ञान मनुष्य की मुक्ति का साधन बने :

लोकतंत्र का गतिशास्त्र :
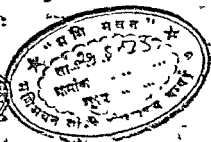
अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] अप्रैल–मई, १९७५ [अंक १

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं अन्य शिक्षाविदों के लिए

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २३
अंक : ८

भूदान यज्ञ की रजत जयन्ती

हम सभी के लिये यह हर्ष और संतोष का विषय है कि इस वर्ष १८ अप्रैल को भूदान-यज्ञ आंदोलन का पच्चीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। इस दिन १९५१ में आंध्र प्रदेश के पोचमपल्ली गाँव में ऋषि विनोबा द्वारा भूदान-गंगा का अवतरण हुआ था। विनोबाजी ने सारे देश में लगभग चालीस हजार मील का निरंतर पैदल भ्रमण किया और करीब ४४ लाख एकड़ जमीन भूदान में प्राप्त की। इस भूमि में से करीब १५ लाख एकड़ अभी तक बेजमीन लोगों में बँट चुकी है। भूदान-यज्ञ आंदोलन के फलस्वरूप विभिन्न राज्य सरकारों ने भी कई प्रकार के प्रगतिशील भूमि-सुधारों को प्रारम्भ किया और भारत ने यह सिद्ध कर दिखाया कि जमीन के वितरण जैसी कठिन समस्याएँ अहिंसक और शांतिपूर्ण तरीकों से सुलझाई जा सकती है। भूदान-यज्ञ आंदोलन का प्रभाव संसार के अन्य विकासशील देशों पर भी पड़ा और इस प्रकार गांधीवादी विचारधारा का व्यापक प्रचार हुआ।

बहुत अच्छा होगा यदि १८ अप्रैल, १९७५ से १८ अप्रैल १९७६ तक सारे देश में 'भूदान-यज्ञ रजत जयंती महोत्सव' मनाया जाय। इस अवधि में भूदान की बची हुई अधिक से अधिक जमीनों को भूमिहीनों में बाँट देने का प्रयत्न किया जाय। साथ ही साथ इस आंदोलन के अंतर्गत अधिक भूमि भी प्राप्त करने की कोशिश हो। अब जो नयी जमीन मिले उसे तुरंत ही भूमिहीनों में बाँट दिया जाय। हमें उम्मीद है कि यदि पूरा प्रयास किया जाय तो पिछली बची हुई भूमि में से कम से कम पाँच लाख एकड़ और बाँटी जा सकती है।

पाँच लाख एकड़ नई जमीन भूदान आन्दोलन के अन्तर्गत प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। इस प्रकार यदि रजत जयन्ती अवधि तक कुल पच्चीस लाख एकड़ जमीन वितरित की जा सके तो बहुत अच्छा होगा। अगर सभी कार्यकर्ता आपस में मिलकर इस शुभ कार्य को उठा ले तो यह लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ केवल एक आर्थिक समस्या का आन्दोलन नहीं है। जैसा पूज्य विनोबाजी ने बार-बार कहा है, भूदान-यज्ञ की बुनियाद नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है। पद-यात्राओं में उनका बुलंद नारा था 'एक बनो—नेक बनो।' इसलिए भूदान-यज्ञ की रजत जयन्ती मनाते वक्त हमें इस आध्यात्मिक धरातल को भूलना नहीं चाहिए।

शराब-बन्दी का आन्दोलन :

कई वर्षों से पूज्य विनोबाजी की यह हार्दिक इच्छा रही कि वर्धा जिले को देश का एक नमूनेदार जिला बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाय। इसे कई वर्षों तक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और आज भी वर्धा जिले में विभिन्न अखिल भारतीय रचनात्मक व शिक्षण संस्थायें कार्य कर रही हैं। अतः दूसरे रचनात्मक कार्यक्रमों को उठाने के पहले जिले में पूर्ण शराब-बन्दी हो यह आवश्यक है। इस दृष्टि से हमने पिछले वर्ष महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री श्री वसंतराव नाईक को एक पत्र लिखा और उनसे आग्रह किया कि पूज्य विनोबाजी व सभी सार्वजनिक संस्थाओं की इच्छानुसार एक अप्रैल, १९७५ से वर्धा जिले की सभी शराब की दूकानें बन्द कर दी जाय। किन्तु इस ओर श्री वसंतरावजी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

फरवरी में जब महाराष्ट्र के नये मुख्य मंत्री श्री शंकररावजी चव्हाण ने कार्यभार सम्भाला तब हमने उनका ध्यान भी इस ओर दिलाया। साथ ही दलगत राजनीति से परे रहकर 'वर्धा जिला शराब-बन्दी समिति' की स्थापना की गई। इस समिति में प्रारम्भ से ही जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, जिला परिषद के पदाधिकारी और वर्धा जिले की सभी प्रमुख म्युनिसिपल कमेटियों के सभापतियों को शामिल किया गया। जिले के संसद-सदस्य व विधानसभा के सदस्यों को भी इस समिति का सदस्य बनाया गया। हमारे आग्रह पर जिले की करीब सभी नगर परिषदों ने प्रस्ताव पारित किये कि इस जिले में शराब-बन्दी लागू की जाय। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि महाराष्ट्र शासन ने इस माँग को स्वीकार न किया तो फिर राष्ट्रीय सप्ताह के पहले दिन से यानी ६ अप्रैल से जिले भर में सत्याग्रह चालू किया जाएगा और शराब की दूकानों का शान्तिपूर्ण पिकेटिंग भी होगा।

हमें इस बात का संतोष है कि महाराष्ट्र शासन ने इस ओर ख्याल किया और सरकार के वर्तमान नियमों के अनुसार ही एक अप्रैल से वर्धा जिले भर में सभी

शराब की दूकानें बन्द कर दी गई हैं। कुछ ग्राम-पंचायतों के प्रस्ताव इसी राष्ट्रीय सप्ताह की अवधि में पारित कर दिये जायेंगे ताकि चालू नियमों के अनुसार भविष्य में कोई कठिनाई उपस्थित न हो।

— यह स्पष्ट है कि वर्धा जिले में पूर्ण शराब-बन्दी तभी सफल हो सकेगी जब सभी सार्वजनिक व शैक्षणिक संस्थायें आम जनता में व्यापक जन शिक्षण का कार्य करती रहें। केवल कानून से हमारा उद्देश्य पूरी तरह सिद्ध नहीं हो सकेगा। हाँ, महाराष्ट्र शासन को भी अपने कानून और नियमों का कड़ाई से पालन करना होगा, ताकि गैर-समाजी तत्व अपना सिर न उठा सके।

राजस्थानमें मद्य-निषेध के सिलसिले में श्री गोकुलभाई भट्ट के नेतृत्व में कई वर्ष से आन्दोलन चल रहा है। मई १९७२ में जब राजस्थान सरकार ने अपने पुराने वचनों का भंग किया तब श्री गोकुलभाई ने आमरण अनशन किया था। अनशन के चौदहवें दिन उनसे श्रीमती इंदिरा गांधी ने फोन पर बातचीत की और उन्हें आश्वासन दिलाया कि वे इस सम्बन्धमें योग्य कारवाई करेंगी। उनके इन शब्दों के आधार पर श्री गोकुलभाई ने अपना उपवास छोड़ दिया था। बाद में श्री राजबहादुर की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई, ताकि राजस्थान में पूर्ण मद्य-निषेध लागू करने के बारे में वह अपनी सिफारिशें कर सके।

इस कमेटी की रिपोर्ट भी संतोषजनक न मानी गई और श्री गोकुलभाई भट्ट ने फिर पूज्य विनोबा जी से आग्रह किया कि ३० जनवरी, १९७५ से उन्हें दुबारा आमरण अनशन करने की इजाजत दी जाय। उस समय थोड़ी चर्चा के बाद पूज्य विनोबा जी ने श्री गोकुलभाई को इस जिम्मेवारी से मुक्त किया और इस काम में मुझे 'युक्त' किया।

पूज्य विनोबाजी की इच्छानुसार हमने इस बारे में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री हरदेव जोशी व केन्द्रीय वित्त-मंत्री श्री सुब्रमण्यमजी से बातचीत की। तारीख तीन फरवरी को जयपुर में प्रदेश के सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं की एक सम्मिलित बैठक हुई जिसमें यह तय किया गया कि यदि ३१ मार्च तक राजस्थान शासन ने पूज्य विनोबा जी की इच्छानुसार एक अप्रैल, १९७७ से राजस्थान में पूर्ण शराब-बन्दी लागू करने की घोषणा न की तो फिर एक व्यापक जन-आंदोलन शुरू किया जाय और शराबकी दूकानों आदिका पिकेटिंग भी करने की योजना बनाई जाय। इस बैठक के बाद हम फिर श्रीमती इंदिरा गांधीजी से दिल्ली में मिले। उन्होंने इस मामले में गहरी दिलचस्पी दिखलाई और मुझे सूचित किया कि उन्होंने श्री सुब्रमण्यम से कहा है कि राजस्थान सरकार को केन्द्र की ओर आर्थिक सहायता देने पर विचार किया जाय। उन्होंने यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो हम सभी प्रकार की सहायता अन्य राज्यों को भी देना चाहेंगे जो मद्य-निषेध की ओर कदम बढ़ाना चाहते हैं।

तदनुसार तारीख तीन अप्रैल को दिल्ली में श्री सुब्रमण्यमजी के निवास स्थान पर ही एक संयुक्त बैठक आयोजित की गई जिसमें राजस्थान के मुख्य मंत्री और वित्त मंत्री भी शामिल हुए। पूज्य विनोबाजी की ओर से इस बैठक में मुझे भी आमंत्रित किया गया था। काफी चर्चा के पश्चात श्री सुब्रमण्यमजी ने जानकारी दी कि वे इस बात का पूरा प्रयत्न करेंगे कि समूचे राष्ट्र के लिए मद्य-निषेध सम्बन्धी एक योजना तैयार की जाय, ताकि भारत के सभी राज्योंमें शराब बन्दी लागू किया जाना सम्भव हो सके। चूंकि वे कई महीनों तक केन्द्रीय बजट सम्बन्धी मामलों में अधिक व्यस्त रहेंगे, इसलिए उन्होंने ही प्रस्ताव किया कि इस कामको पूरा करने के लिए उन्हें कुछ महीनों का समय दिया जाय। अखिल भारतीय मद्य-निषेध नीति सम्बन्धी अपना नोट वे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल व कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सामने भी पेश करेंगे और उनका यह भरसक प्रयत्न होगा कि आगामी गांधी जयन्ती के शुभ-दिन पर वे इस योजना को घोषित करावें। जो हो, कम से कम राजस्थान शासन की ओर से पूज्य विनोबा जी के सुझाव के अनुसार राजस्थान प्रदेश में एक अप्रैल, १९७७ से सभी शराब की दूकानें बंद कर देने के बारेमें दो अक्टूबर को घोषणा कर दी जाएगी।

हम आशा करते हैं कि प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और वित्त-मंत्री श्री सुब्रमण्यम के प्रयत्नों से अगली गांधी जयन्ती के पुण्य अवसर पर सारे देश में मद्य-निषेध लागू करने की एक योजना प्रकाशित हो सकेगी। केवल कुछ जिलों या प्रदेशों में मद्य-निषेध का कार्य करना बहुत कठिन है। इसलिए यह बिलकुल आवश्यक है कि यह कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर किया जाय। यदि यह सम्भव न हुआ तो कम से कम राजस्थान में तो सरकार के पूर्व वचनों के अनुसार और ऋषि विनोबा के सुझावों के अनुरूप पूर्ण मद्य निषेध को कार्यान्वित करना ही है।

हम मद्य निषेध को केवल एक नैतिक या धार्मिक सुधार नहीं मानते हैं। उसका आर्थिक पहलू बहुत महत्व का है, क्योंकि शराब की मार सबसे अधिक गरीब जनता पर ही पड़ती है। अमीर लोग अपने व्यसन की तृप्ति के लिए परमिट लेकर मद्य-पान करते रहें तो हमें अधिक चिन्ता नहीं है। लेकिन बेचारे गरीब हरिजन, आदिवासी और मजदूर तो इस व्यसन से बिलकुल बर्बाद हो जाते हैं। इसलिए हमने यह बार-बार कहा है कि मद्य-निषेध को भारतका विकास-योजनाओं का अविभाज्य अंग मानना चाहिए। प्रधान मंत्री इंदिराजी ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि शराब-बन्दी के बिना 'गरीबी हटाओ' का अभियान सफल नहीं हो सकता। हम तो अब स्पष्ट शब्दों में यह भी कहना चाहेंगे कि यदि हमारे सिपाहियोंऔर सैनिकों में शराब का चलन अधिक फैल गया तो फिर हमारे राष्ट्रकी सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी और हम धीरे धीरे भारत की आजादी भी खो बैठेंगे।

भगवान् महावीर की जयंती के शुभ-अवसर पर तारीख २४ अप्रैल को ऋषि विनोबा के वरद हस्तों से जैन-धर्म-सार रूपी 'समणसुत्त' ग्रन्थ का पवनार आश्रम में विमोचन हुआ। इस पुस्तक में जैन-धर्म के विभिन्न पन्थों का निचोड सर्वानुमति से सकलित किया गया है। कई वर्षों पहले यह प्रेरणा पूज्य विनोबाजी ने ही दी थी। इस सूचना का स्वागत जैन-धर्म के सभी आचार्यों, मुनियों तथा विद्वानों ने किया और उसीके फलस्वरूप यह पुस्तक एक राय से तैयार की गई। उसमें कुल मिलाकर ७५६ गाथायें सम्मिलित की गई हैं। जो कार्य ढाई हजार वर्ष तक नहीं हो सका वह इस वर्ष ऋषि विनोबा की प्रेरणा से परिपूर्ण हुआ। यह एक महान् ऐतिहासिक घटना ही मानी जायेगी।

'समणसुत्त' का प्रकाशन सर्व सेवा सघ द्वारा हुआ है। इस शुभ कार्य के लिए हम संघ को हार्दिक बधाई देना चाहते हैं।

विनोबा की हस्तलिपि में 'विष्णु-सहस्रनाम'

हमें इनका भी बहुत खुशी है कि तारीख एक मई को पवनार आश्रम में ही पूज्य विनोबा की हस्तलिपि में लिखे गये 'विष्णु सहस्रनाम' का प्रकाशन हुआ। पूज्य माता जानकीदेवी बजाज के आग्रह पर विनोबा जी ने 'विष्णु-सहस्रनाम' में से ३६० नामों को अपने हाथ से उनके अर्थ व सचित्र व्याख्या सहित लिखा। सभी नामों के सचित्र ब्लाक बनवाकर यह अमूल्य पुस्तक सस्ता साहित्य मंडल व सर्व सेवा सघ ने प्रकाशित की है। साधारण जिल्द की कीमत केवल पाँच रुपये है।

हम आशा करते हैं कि ऋषि विनोबा भविष्य में 'विष्णु-सहस्रनाम' के शेष ६४० नामों की भी सचित्र व्याख्या करने का समय निकाल सकेंगे, ताकि उनके सूक्ष्म और गहन चिन्तन का लाभ केवल भारत को ही नहीं, किन्तु सारे विश्व को प्राप्त हो सके।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि ऋषि विनोबा 'विष्णु-सहस्रनाम' का सकीर्तन 'सर्व-धर्म-समभाव' की दृष्टि से ही करते है। रोज सुबह ठीक साढ़े दस बजे जब यह संकीर्तन पवनार के ब्रह्म विद्या मंदिर में किया जाता है उस समय सर्व-धर्म-समानत्व का वातावरण चारों ओर फैलता रहता है। विनोबाजी तो गणितशास्त्र के प्रखर चिन्तक रहे हैं। इसलिए उन्होंने बारीकी से गिनकर यह हिसाब भी लगा लिया कि इन हजार नामों में किस धर्म के कितने गुण शामिल हो जाते हैं।

हम आशा करते हैं कि इस प्रकाशन का भी सर्वत्र स्वागत होगा।

—श्रीमन्नारायण

राष्ट्रपतिजी की नेक सलाह :

अभी हाल ही में दिल्ली में जामिया मिलिया विश्व विद्यालय में "परम्परागत मूल्यों और समय की चुनौतियों" पर एक सेमिनार हुआ। सेमिनार का उद्घाटन स्वयं राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद जी ने किया। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण में एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बात की ओर राष्ट्र का ध्यान खींचा है। राष्ट्रपति जी ने कहा है कि "भारत ने, जो कि मूलतः एक ग्राम-संस्कृति-युक्त देश है, अपने विकास के लिये पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों की नकल करने का मार्ग पकड़ कर भारी भूल की है। ग्राम-संस्कृति से युक्त परम्परा और भूमिका वाले भारत जैसे देश को पश्चिमी तर्ज के की औद्योगिक-सभ्यता के ढांचे में फिट बिठाने का प्रयास करते रहने से आज राष्ट्र में मौलिकता और सृजनात्मकता का ह्रास हो गया है और पश्चिमी संस्कृति की इस अंधी नकल का यह नतीजा हुआ है कि हम *अभी तक भी अपनी समाजगत आवश्यकताओं के अनुरूप मध्यवर्ती तकनीकी,* शक्ति के देशी साधनों और प्रबन्ध पद्धति तक का विकास नहीं कर सके हैं।"

पश्चिम की यह नकल आज के भारत के तथाकथित बुद्धिवादी वर्ग के लिये एक प्रकार के सांस्कृतिक गौरव की वस्तु बन गई है किन्तु राष्ट्रपति जी ने इस वर्ग को चेतावनी देते हुए कहा है कि "वह पश्चिम के प्राचुर्यवादी समाज की अत्यधिक उपभोग की जीवन पद्धति का शिकार न बने।' देश के इस सांस्कृतिक पतन का आरम्भ ब्रिटिश साम्राज्य ने अत्यन्त सुनियोजित प्रयास से किया था किन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि स्वतन्त्रता के बाद भी भारत के नेताओं और सरकारों ने इसे न केवल जारी ही रखा है अपितु इसे हर तरह का प्रोत्साहन भी दिया है। वे आज भी यह काम जारी रखे हुए हैं। यह बात उनके पक्ष में पड़ता है कि राष्ट्र सांस्कृतिक दृष्टि से इतना पंगु बना रहे कि वह हमेशा के लिए नेताओं और सरकारों का मुहताज बना रहे। किन्तु स्वयं राष्ट्र के अस्तित्व और भविष्य के लिए यह बात अत्यन्त ही हानिकर है। इससे आज भारत का राष्ट्रत्व ही खतरे में पड़ गया है। राष्ट्रपिता ने तो हमें इस खतरे के प्रति बहुत पहले ही आगाह किया था पर हमने उनकी बात पर कहाँ ध्यान दिया। इसका नतीजा आज भारत के इस पतन के रूप में सामने है। क्या अब भी समय रहते हम राष्ट्रपति की इस सलाह पर विचार करेंगे? हमें यह बात याद रखनी होगी कि सरकारें राष्ट्रों का भविष्य बनाती नहीं, बिगाड़ती ही हैं अतः उन्हें उनकी औकात से अधिक सम्मान और उत्तरदायित्व देना हानिकर है। भारत को 'भारतीय' जन को प्राथमिकता देनी होगी तभी यह भारत के रूप में विकास कर सकेगा।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

गांधीजी

सच्ची सभ्यता क्या है?

सभ्यता आचार व्यवहार की वह रीति है जिससे मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करे। कर्तव्य पालन और नीति पालन एक ही चीज है। नीति पालन का अर्थ है अपने मन और अपनी इन्द्रिय को बस में रखना। यह करते हुए हम अपने आपको पहचानते हैं। यही सुधार यानी सभ्यता है। जो कुछ इसके विरुद्ध है वह कुधार है, असभ्यता है।

सभ्यता की इस परिभाषा के अनुसार तो भारत को किसी से कुछ सीखना नहीं है। वास्तव में है भी यही बात। अनेक लेखकों ने भी यह बात मानी है। हम देखते हैं कि मनुष्य की वृत्तियाँ चंचल होती हैं, उसका मन यहाँ से वहाँ भटकता रहता है। शरीर का यह हाल है कि उसे जितना दो वह उतना ही और माँगता रहता है। अधिकार पाकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा और भी बढ़ती जाती है, । इसी से तो हमारे पुरखों ने उसके लिए एक हद बाँध दी थी। बहुत सोच विचार के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे थे कि सुख दुख का कारण हमारा मन है। अमीर न अमीर होने के कारण कोई सुखी होता है और न गरीब गरीब होने के कारण दुखी होता है। अक्सर ही अमीर दुखी और गरीब सुखी दिखाई देता है। फिर करोड़ों आदमियों को तो गरीब ही रहना है। यही देखकर हमारे बुजुर्गों ने हमें भोग-वासना से मुक्त रहने की बहुत कोशिश की। हजारों साल से जिस हल से हमने काम लिया उसी से आज तक हम काम चलाते रहे हैं। हजारों साल पहले जैसे झोंपड़ों में हमने गुजर किया वैसे ही आज तक कर रहे हैं। पढ़ाई-लिखाई का भी वही हजारों साल पहले का तरीका चलता रहा। आज की इस सत्यानाशी प्रतियोगिता को तो हमने अपने पास नहीं फटकने दिया, सब अपना अपना धंधा करते और वही रिवाजसे पैसा लेते रहे। हमें नये नये कल कारखाने और कल पुरजे बनाना न आता हो सो बात नहीं थी। पर हमारे बुजुर्गों ने देखा कि मनुष्य यन्त्रों के जाल में फँसा तो फिर वह उनका भी गुलाम ही हो जायेगा और फिर नीति से हाथ धो बैठेगा। इसलिए उन्होंने बहुत सोच विचार के बाद यहाँ तक कहा कि तुम्हारे हाथ-पाँव से जितना हो सके उतना ही करो, हाथ-पैर से काम लेने में ही सच्चा सुख और स्वास्थ्य है।

लघु-समुदाय का महत्व

हमारे बुजुर्गों ने यह भी सोचा कि बड़े बड़े शहर बसाना बेकार का ही झंझट है। उनमें रहकर लोग सुखी न होंगे। वहाँ तो चोर डाकुओं के दल जुड़ेंगे, पैसे वाले लोग गरीबों को चूसेंगे और केवल सफेद गलियाँ ही आबाद होंगी। इसलिए ही हमारे पुरखों ने छोटे छोटे गाँवों से ही संतोष किया। उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी

तलवारों से तो नीति और धर्म का बल कहीं अधिक बलवान होता है अतः उन्होंने नीतिवान् पुरुषों, ऋषियों, मुनियों और साधु सन्तोंका दरजा राजाओं से कहीं अधिक ऊँचा रखा और राजा का दरजा उनसे छोटा माना। जिस राष्ट्र का विधान ऐसा हो वह तो दूसरों को ही सिखाने का अधिकारी है उनसे सीखने का नहीं।

आधुनिक सभ्यता : एक रोग :

किन्तु आज ससार और खासकर पश्चिम जिस सभ्यता के चक्कर में है उसे तो स्वय पश्चिम के ही विचारक अब रोग कहने लगे हैं। पर अभी वहाँ लोग इस बात पर विचार करने के लिए तत्पर नहीं दिखाई देते हैं। जो आधुनिक सभ्यता की मोहिनी से मोहित हो वह भला उसके विरुद्ध कैसे कुछ कहने या सुनने लगे। वे तो उल्टी ऐसी दलीलें देंगे कि जिससे इसका समर्थन ही हो। वे जानबूझ कर यह कहते हो, यह बात नहीं है। वे जो लिखते हैं वैसे मानते भी हैं। सोता हुआ आदमी अपने सपने को सही मानता है। अपनी भूल का पता उसे तभी चलता है जब उसकी नींद टूट जाती है। यही हाल आज की इस सभ्यता के फन्दे मे फसे हुये आदमी की होती है।

आज की इस सभ्यता की पक्की पहचान तो यह है कि उसकी गोद में पले हुए लाग बाहर की खोज और शरीर के सुख को ही जीवन की सार्थकता मानते हैं और परम पुरुषार्थ समझते हैं। पहले के मुकाबिले अच्छे घरों में रहना, जानवरों की खाल और साधारण कपड़े के बजाय तरह तरह के बढ़िया कपड़े पहनना, पुराने भाले बरछे के स्थान पर पिस्तौल और बदूकों को अच्छा और उन्नत मानना, पहले के साधारण हल से कम जमीन पर कास्त करने के बजाय अब अच्छे कलो व पुरजो से हजारो एकड भूमि को हथिया लेना, पहले के मुकाबिले बहुत कम और केवल आवश्यकता के लिये अच्छी पुस्तक लिखने के बजाय अब जो चाहे सो छापने के लिए पुस्तक छापते जाना, और इस प्रकार से लोगों को बहकाते जाना, तेज वाहनों से कम समय मे ही लम्बी दूरियों पार कर लेना, हाथ पाँव के बजाय बस बिजली का बटन दबाकर और कल पुरजा के बल पर कम से कम काम करके अधिक से अधिक आराम प्राप्त करने का प्रयास करना, खुली हवा के बजाय मशीनो के शोरगुल और धुएँ तथा सकरी बदबूदार जगहो पर लोगों को काम करने के लिये विवश करना, पहले मारपीट कर लागों को गुलाम बनाये रखने के स्थान पर अब पैसे और उसके लालच के बल पर गुलाम बनाये रखना, नये नये इलाजो के नाम पर तरह तरह की अनजानी अनसुनी बीमारियों को पैदा करते और बढ़ाते जाना, पहले कोई खास बात ही कहनी हो तो आदमी भेजना होता था, पर अब उसके स्थान पर केवल एक कार्ड पर ही दूर गालियाँ देने की सुविधा पैदा करना, आदि कई ऐसी बात हैं जिन्हें आज की इस सभ्यता की कसौटी माना जाता है और इन बातो के विरुद्ध कहने या विचारने वाले को तो निपट अनाड़ी ही माना जाता है।

इसका अर्थ यह न लगाया जाय कि मैं मनुष्य के लिये शारीरिक सुख-सुविधाओं का विरोधी हूँ। पर ऊपर जो बातें कही हैं उनमें, यह तो स्पष्ट ही है कि नीति के लिये कोई भी स्थान नहीं है। शरीर को सुख कैसे मिले बस इसी बात के फेर में पड़े रहना और नीति की परवाह न करना कभी सच्चा सुख नहीं दे सकता।

यह अधर्म है :

यह सभ्यता अधर्म है। पर अभी यह सारे यूरोप और पश्चिम पर छा रही है। वे लोग अभी इसके पीछे पागल हो रहे हैं। उनमें सच्चा शारीरिक बल नहीं है। वे तो अपनी शक्तिको नशे पर ही टिकाये रहते हैं। अकेले में उनसे रहना भयंकर लगता है। यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज रखें तो इसकी लपटमें आये हुये लोग अपने ही हाथों सुलगाई हुई आग में झुलसें और जलकर मरे बिना नहीं रहेंगे। हजरत मुहम्मद की सीख के अनुसार तो यह सभ्यता शैतान का राज्य मानी जायेगी। हिन्दु-धर्म इसे घोर कलियुग कहता है। यह सभ्यता नाश करने वाली और नाश होने वाली है। इससे बचे रहनेमें ही हमारी भलाई है।

सच्ची सभ्यता

यह सवाल किया जा सकता है कि फिर सच्ची सभ्यता किसे कहें और *क्या आज हम भी मशीन आदि की इस सभ्यता को एकदम नकार सकते हैं?* किन्तु इस सवाल का जवाब देना मेरे लिये जरा भी कठिन नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तान ने जिस सभ्यता का नमूना दुनिया के सामने पेश किया है, दुनिया की कोई भी सभ्यता उसका मुकाबिला नहीं कर सकती है जो बीज हमारे पुरखों ने बोया था उसकी बराबरी कर सकने वाली कोई चीज मेरे देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया। यूनान नाम भर का रह गया है। मिश्र के ऊपर फरऊनों की बादशाही आज विदा हो गई। जापान पश्चिम का दास बनकर रह गया। चीन का क्या तो कहने के ही लायक नहीं रह गई है। पर हिन्दुस्तान ठोकर खाकर गिर गया है फिर भी अभी उसकी जड़ मजबूत है।

रोम और यूनान आज अवनति के गर्त में पड़े हैं। फिर भी यूरोप के लोग उन्हीं की पुस्तकों से ज्ञान ले रहे हैं। वे सोचते हैं कि रोम यूनान ने जो गलतियाँ कीं उनसे हम बच जा सकते हैं। जब उनकी ऐसी हीन दशा है तो हिन्दुस्तान अपनी जगह पर अटल है। यही उसका गौरव है। भारत पर यह दोष लगाया जा सकता है कि यहाँ के लोग इतने असभ्य, अज्ञान और आलसी हैं कि कोई फेरफार उनसे कराया ही नहीं जा सकता है। पर यही आरोप हमारा गुण है दोष नहीं है। अनुभव भरी कसौटी पर जिन बातों को हमने ठीक पाया उनमें फेरफार क्या किया जाय। हमें अक्ल देनेवाले तो बहुतेरे आया जाया करते हैं, पर भारत अडिग ही रहता है। यही उसकी खूबी है, यही उसका लंगर है।

किन्तु यह बात नही भूलनी होगी कि यदि हम भारत की अपनी सम्यता को ऊँची मानते हो और उसे हर समय ऊंचा ही बनाये रखना चाहते हो तो फिर अपनी शिक्षा पद्धति पर विचार करना होगा। शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान नही होता क्योंकि उसका तो सदुपयोग या दुरुपयोग दोनो हो सकता है। आज हम देख रहे है कि आज लोग अपने अक्षर ज्ञान का तो अधिक दुरुपयोग ही कर रहे है। हमारे इस तरह के अक्षर ज्ञान से तो दुनिया को हानि ही हुई है। पश्चिम के प्रवाह में पडकर हमने यह तो मान लिया कि सबको पढना लिखना सिखा देना चाहिये किन्तु हमने उसके हानि लाभ पर कभी विचार नही किया। हमारी ऊँची से ऊँची शिक्षा की आखिर असल पहचान क्या होगी। मैंने भूगोल पढा, खगोल पढा, बीजगणित सीखा, भूमिति का ज्ञान भी लिया, भूगर्भ विद्या के गर्भमे भी प्रवेश किया। पर इस सबसे मैंने अपना या अपने आस पास के लोगो की कौन-सी भलाई की है। मैंने यह सारा ज्ञान किसलिये प्राप्त किया है। आज असल में हम सब झूठी शिक्षा के पंजे में फँसे हुये है। मैं मानता हूँ कि मैं तो अब उसमें से छूट गया हूँ और अब अपने अनुभव का लाभ समाज का भी देना चाहता हूँ। जो शिक्षा मैंने पाई है उसका इसमें मैं उपयोग करके समाज को इस शिक्षा पद्धति की बुराइयाँ दिखाने का प्रयास कर रहा हूँ।

मैकाले ने इस देश में जिस शिक्षा की नींव डाली वह सच पूछिये तो हमारी गुलामी की नींव थी। कम से कम उसका नतीजा तो यही निकला। हम यदि स्वराज्य की बात करते हो तो क्या वह पराई भाषा में हो सकती है ? हमने तो अँग्रेजो के द्वारा त्यागी गई शिक्षा को अपना श्रृंगार बना लिया है। हमारे उच्चतम विचारो की वाहिका आज अँग्रेजी है। कांग्रेस की सारी कार्यवाही अँग्रेजी में होती है। हमारे सबसे अच्छे अखबार अँग्रेजी मे निकलते है। मेरा पक्का विश्वास है कि यदि यह तरीका कुछ अधिक दिन आगे चलता रहा तो फिर आनेवाली पीढियाँ हमें कोसेंगी, धिक्कारेंगी और उनका शाप हमारी आत्माओ को लगेगा। हमे जानना चाहिये कि अँग्रेजी पढे लिखे लोगो ने ही भारत को गुलाम बनाने का काम किया है। इससे देश में ढोंग ढकोसला अत्याचार आदि खूब बढे है। अँग्रेजी पढे लिखे हुये भारतीयो ने साधारण भारतीयो को ठगने और उन्हे डरवाने में कोई कसर नही छोडी है।

असल बात यह है कि आज की इस सभ्यता के रोग ने हमे बुरी तरह से जकड लिया है। हमारा विश्वास है बन गया है कि बिना अँग्रेजी के हमारा काम ही नही चल सकता। शिक्षा का साधारण अर्थ तो अक्षर ज्ञान होता है, किन्तु हमें समझना होगा कि हम एक साधारण भारतीय किसान को जो दिनरात खेत पर काम कर रहा है, इस प्रकार का अक्षरज्ञान कराकर उसका क्या हित कर रहे है। यह हमारी शिक्षा पद्धति की कसौटी है।

('हिन्द स्वराज्य' के आधार पर)

विनोबा :

विज्ञान मनुष्य की मुक्ति का साधन बने :

विज्ञान में वस्तु की ओर देखने का दृष्टिकोण मुख्य है। विज्ञान की विशेषता यह है कि वह मनुष्य को वैज्ञानिकता और शास्त्रीय दृष्टि प्रदान करता है। हमारा दृष्टिकोण जब वैज्ञानिक (साइंटिफिक) और शास्त्रीय होगा तब हम जीवनके हर विषयमें खोज करने लगेंगे। जीवन का प्रत्येक व्यावहारिक अंश शास्त्रीय ढंग से होना चाहिए।

वैज्ञानिक जीवन याने सादा जीवन

जीवन जब वैज्ञानिक बनता है तो सादा होता है। बहुतों का विचार है कि विज्ञान से जीवन जटिल बनेगा। लेकिन यह विचार गलत है। विज्ञान के बढ़ने से मनुष्य आकाश का महत्त्व समझेगा। अब मनुष्य रात-दिन कपड़ा पहन रहता है, शरीर के कुछ हिस्सेको सूर्य-किरणों का स्पर्श तक नहीं होने देता। इससे शरीर जीर्ण बनता है और प्राण, शक्तिहीन होता है। यह विज्ञान समझाता है और मनुष्य यदि विज्ञान की इस बात को समझ ले तो फिर वह वस्त्रों का उपयोग कम करने लगेगा और इस तरह से जीवन सादा बनेगा। विज्ञान के जमाने में कोई भी मनुष्य यदि दस दस तल्ले वाले मकान बनाता है, तो यही माना जायगा कि वह विज्ञान को नहीं समझता है, क्योंकि एक तल्ले वाला मकान अच्छा है और वह भी ऐसा कि जिसमें हवा और प्रकाश अन्दर आ सके, आसपास भी खुली जगह हो।

विज्ञान की भूमिका मन से ऊपरकी भूमिका है

विज्ञान की भूमिका मन के ऊपर की भूमिका है। विज्ञान आपको अपनी इसी भूमिका से ऊपर उठने को मजबूर कर रहा है। पहले के जमाने में भी यह मालूम था कि विज्ञान की भूमिका मन से ऊपर की भूमिका है। उपनिषदों में कहा गया है कि 'प्राण ब्रह्मेति'। फिर कहा है कि 'मनो ब्रह्मेति'। उसके बाद 'विज्ञान ब्रह्मेति'। प्राण की भूमिका प्राणियों की है, मन की भूमिका मनुष्यों की है और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। इस तरह उस युग में विज्ञान की भूमिका मालूम तो थी, किन्तु उसकी मानव पर पकड़ जबर्दस्त नहीं थी। वैयक्तिक विकास के तौर पर कोई मनुष्य अपना

विकास करते करते विज्ञान की भूमिका पर पहुँचा था। लेकिन वह सारा व्यक्तिगत विकास या विचार था।

किन्तु आज विज्ञान ने ही इस तरह की लाचारी सी पैदा कर दी है कि अब यदि कोई महापुरुष ऐच्छिक तौरपर विज्ञानकी भूमिका प्राप्त करना चाहे तो वह इस युग में नहीं चलेगा। बल्कि अब तो अनिवार्यतः सभी लोगों को विज्ञान की भूमिका पर आना होगा। विज्ञान सृष्टि के सामने मन का गौण समझता है, और आत्मज्ञान की भी यही दृष्टि है। दोनों ही मन को गौण मानते हैं। आध्यात्मिकता कहती है कि मनको 'उन्मन' बनना चाहिए। विज्ञान भी यही कहता है।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय :

विज्ञान सृष्टिमें, प्रकृति मे, जो धर्म चलते हैं उनके कानून का शोध करता है। पानी, हवा आदि पदार्थों के क्या क्या धर्म है, ये किस तरह काम करते हैं, उनका नियम या व्यवस्था क्या है, आदि बातो का वह चर्चा करता है। किन्तु तत्वज्ञान या अध्यात्म विज्ञान से भिन्न है। तत्वज्ञान। व है जो सृष्टि-रचना की चर्चा करते है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इनका स्वरूप क्या है, सृष्टि की रचना कैसी है, इन सबका परस्पर सम्बन्ध क्या है, ईश्वर और जीव का क्या सम्बन्ध है— क्या स्वरूप है, ये सारी चर्चायें तत्वज्ञान करता है। 'क्या?' का तत्वज्ञान हल करता है और 'कैसे?' का उत्तर विज्ञान देता है।

मानव एक प्राणी है किन्तु उसमे और अन्य प्राणियों में आज तक कुछ न कुछ फर्क रहा है। आखिर वह फर्क क्या है? दूसरे प्राणी 'प्राण-प्रधान' हैं जब कि मानव 'मन प्रधान' है। इस तरह स्पष्ट है कि मनुष्यों को भी प्राण की प्रेरणा होती है, परन्तु वह प्राण-प्रधान नहीं मन-प्रधान है। किन्तु मनुष्य को अपना सम्यक् विकास करने के लिए मन से ऊपर उठकर ही काम करना होता है यह बात विज्ञान भी कहता है और अध्यात्म भी। असल मे तो विज्ञान और अध्यात्ममें इस तरह का कोई भेद भी नहीं है। आजकल लोग अक्सर भौतिक और आध्यात्मिक जैसे भेद करते हैं पर ये भेद काल्पनिक हैं।

मनुष्यके दो पंख :

इसलिये मानना होगा कि जैसे कोई पक्षी अपने दो पंखों से ही आकाश में उड सकता है वैसे ही मनुष्य भी आत्मज्ञान और विज्ञान नामके दो पंखोंसे ही सही उडान भर सकता है। विज्ञान नीति निरपेक्ष है। वह न नैतिक है न अनैतिक ही है। इसीलिए उसका मूल्योंकी आवश्यकता है। उसे यदि गलत मार्ग-दर्शन मिला तो विज्ञान नरक का द्वार बन जाता है और यदि सही मार्ग-दर्शन मिला तो वही स्वर्ग का द्वार भी खोल देता है। विज्ञान को यह मार्ग-दर्शन केवल आत्मज्ञान ही दे सकता है।

आत्मज्ञान है आँख और विज्ञान है पाँव। इसलिए संसार का काम न तो विज्ञान के बिना ही चल सकेगा और न आत्मज्ञान के बिना ही चल सकेगा।

इसलिए बाबा ने कई बार कहा है कि अब धर्म और राजनीति का युग बीत गया है और अध्यात्म और विज्ञान का युग आया है। यदि हम विज्ञान को बढने देना चाहते हैं, और बाबा की हार्दिक इच्छा है कि वह बढे, तो फिर उसके साथ अहिंसा-को रखना ही होगा। तभी दुनिया का भला हो सकेगा। विज्ञान और अहिंसा दोनो का योग हो तो दुनिया में जमीन पर स्वर्ग उतर आएगा, लेकिन अगर विज्ञान का सहयोग हिंसासे हुआ तो फिर दुनिया बरबाद हो जाएगी। हमारा अहिंसा पर इसीलिए इतना जोर है कि हम चाहते हैं कि विज्ञान बढे। हिंसा के साथ विज्ञान बढ ही नही सकता है। विज्ञानकी तरक्की के लिये भी उसके साथ अहिंसा का रखना होगा। आप यदि हिंसा को कायम रखना चाहते हो तो फिर विज्ञान को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए।

विज्ञान की सीमायें :

यह समझनेकी बात है कि विज्ञान में शक्ति तो है पर उसमें दिशा का भान नहीं है। विज्ञान की शक्ति भी पुन दोहरी है। वह विनाश भी कर सकता है और निर्माण भी। अग्निनारायण की खोज हुई तो उससे रसोई भी बनाई जा सकती है और आग भी लगाई जा सकती है। अब उसका क्या उपयोग करना है, यह अक्ल विज्ञानमें नहीं है यह अक्ल तो उसे केवल आत्मज्ञान ही दे सकता है। किस समाजमे, किस कालमें, किस प्रकार के विज्ञान या तत्रशास्त्रका उपयोग करना होगा यह बात विज्ञान तय नहीं कर सकता है। यह बात तो केवल अध्यात्म ही तय करेगा। विज्ञानकी प्रगति की सीमा नहीं है, वह जितना आगे बढ सके उतना ही अच्छा है पर उसकी दिशा क्या हो यह तय करने का अधिकार आप अध्यात्म को देंगे तो ही विज्ञान से संसार को लाभ हो सकेगा।

भारत और विज्ञान :

विज्ञान के युग मे भारत को जीना है तो क्या क्या करना होगा।? पहली बात तो यह है कि मानवकी समस्यायें अहिंसक शक्ति, नैतिक-शक्ति से ही हल करने का निर्णय लेना होगा। फिर विज्ञान का उपयोग केवल रक्षा के साधन बनाने मे ही किया जाय, सहार के साधन बनाने में हरगिज न किया जाय यह तय करना होगा। और तीसरे विज्ञान को हम बडे बडे यत्र बनाने की अनुमति दें या न दें यह समय की परिस्थिति को देखकर ही तय करेंगे यह नीति तय की जाय। भारत इन कुछ बातों को ध्यान में रखकर काम करेगा तो वह विज्ञान से बहुत लाभ ले सकेगा।

मैं तो विज्ञान को बहुत पसन्द करता हूँ। किन्तु आज तो विज्ञान बिक रहा है। आज वैज्ञानिक विनाशक शस्त्रास्त्र बनाने में लगे हैं। वे इतने अक्लवाले होने पर भी पैसे से खरीदे जा सकते हैं और आज उन्हें इस बात की कम फिक्र है कि फिर उनकी खोज से दुनिया खत्म होती है या बनती है। उन्हें तो बस पैसे चाहिए। यह इसलिए होता है कि विज्ञान पर आज राजनीति का कब्जा है। राजनेता वैज्ञानिकों को आदेश देते हैं और वे उसके अनुसार काम करते हैं। यदि वैज्ञानिक इतना प्रण, करें कि वे किसी के पैसे से नहीं खरीदे जायेंगे और ध्वंसात्मक हथियार बनाने में तो हरगिज हो सहयोग नहीं करेंगे, संहार की किसी चीज की खोज में वे नहीं लगेंगे तो फिर दुनिया बच जायगी।

आज तो विज्ञान के कारण ही कई समस्यायें पैदा हो रही हैं। लोग कहते हैं कि आज के अमरीका में भी अब तरह तरह की बीमारियाँ बढ़ रही हैं। वहाँ और अब तो अन्यत्र भी वायु, जल आदि के प्रदूषण की (पोल्यूसन की) समस्या दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही है। ऐसी औषधियाँ बनती आ रही हैं कि वातावरण दूषित हो रहा है। इससे मनुष्य के जीवन में भी अनेक तरह की बीमारियाँ होती हैं। समुद्र का भी दूषण बहुत अधिक बढ़ गया है और हजारों मील तक मछलियाँ मर रही हैं। यह सब विज्ञान के गलत उपयोग के कारण हो रहा है। विज्ञान पर जब तक राजनीति का अधिकार रहेगा तब तक यही होने वाला है। राजनीति का गुलाम विज्ञान हमेशा ही दुनिया को नाश की बात करेगा। आइन्सटीन भी कहते थे कि विज्ञान ने पालिटिक्स की गुलामी स्वीकार कर ली है। अतः आज वैज्ञानिकों के लिये पहली बात तो यही है कि वे पालिटिक्स की गुलामी से अपने को मुक्त कर लें। विज्ञान को स्पीच्युअलीटी के मार्गदर्शन में काम करना होगा, पालिटिक्स के नहीं।

आज कई लोग मानते हैं और अक्सर कहते भी हैं कि भारत में अध्यात्म-विद्या तो थी पर विज्ञान नहीं था। पर यह बात सही नहीं है। यह बात सही है कि आज के युग में अमरीका आदि में विज्ञान कुछ आगे बढ़ा है पर भारत में भी विज्ञान था और मूलतः यहीं था। गणित, भूगोल आदि का विकास भारतमें ही हुआ। बीच में भारत सो गया। वह भी विज्ञान में ही नहीं सोया बल्कि अध्यात्म में भी सो गया। पाँच सौ साल सोया। अब वह कुछ जाग रहा है और आशा करता हूँ कि अब वह आगे बढ़ेगा।

इसलिये भारत में विज्ञान भारत की परम्परा के अनुसार ही बढ़ना चाहिये। भारत ने अहिंसा का अपना आदर्श माना हो तो फिर विज्ञान को कहना होगा कि हम ऐसे ही यन्त्र बनायेंगे जो कि साधारण किसान के काम के हों। हम किसान को हाथ से काम करने वाले औजार देंगे ताकि वह अपनी स्वतन्त्रता भी कायम रख सके

और विज्ञान का उपयोग भी कर सके। मकान इस तरह के बने जो हवालदार हो और जहाँ सूर्य-किरणें सहज जा सके। वेद कहते हैं कि घर घर में 'सप्त-रत्न' होने चाहिए। क्या हैं वे सप्त रत्न? उसका जिक्र वहाँ नहीं हैं पर हम मानते हैं कि उत्तम अन्न, उत्तम कपडा, उत्तम रहने के लिये मकान, उत्तम आरोग्य, उत्तम शिक्षण, उत्तम औजार और उन्नत मनोरंजन ये ही सप्त-रत्न हैं। हमारे विज्ञान को ये चीजें सबके लिये सहज सुलभ करने का प्रयास करना होगा।

विज्ञान की सबसे बडी समस्या अमानवीयकरण :

आज हम क्या देखते हैं? जैसे जैसे विज्ञान बढता जाता है वैसे वैसे उसका "डी-ह्यूमनाइजिंग इफेक्ट," (अमानवीयकरण करने का प्रभाव) बढता जाता है। यह आज विज्ञान की सबसे बडी समस्या है। यह कैसे रुके। यह सवाल है। अरब का तेलास्त्र चला तो इंग्लैण्ड में चार दिन की छुट्टी करनी पडी। कुल दुनिया जब एक बनेगी तभी मसले हल होंगे। दुनिया धीरे धीरे उधर जा रही है। आज जब ध्यानमें आया कि लडने से नुकसान है तो मेल बढाने की सोच रहे हैं। इसलिये विज्ञान को बढाना हो तो फिर राष्ट्रवाद को कम करना होगा। अन्यथा हिंसा और विज्ञान मिलकर सर्वनाश लायेंगे। अहिंसा के साथ विज्ञान बढेगा तो सर्वोदय होगा।

ग्राम स्वराज्य विज्ञान-युग की मांग.

इसलिये बाबा ने ग्राम-स्वराज्य का नाम उठाया है। सब मिलकर उसके लिये काम करें। भला बुरा करने की सारी सत्ता गांव वालों के अपने हाथ में हो, वे चाहे तो वहाँ अपनी करेंसी भी चला सकें, अपनी योजना बनाने और उस पर अमल करने में भी वे स्वतंत्र हो। ग्राम-ग्राम में स्वायत्तता हो और जिला उनके बीच केवल कडी बनाने के लिये ही हो। सत्ता ऊपर जाते जाते कम होती जाय और केन्द्र की सत्ता कम से कम हो। आज की पालिटिक्स तो बहुत पिछडी हुई है। उसके ही कारण से राष्ट्रवाद आता है। यह पालिटिक्स मिटेगा तो ही दारिद्र्य मिटेगा और आज के देश कल के प्रांत बनेंगे। प्रांत जिले होंगे, जिले गाँव होंगे और गाँव परिवार बनेंगे तो ही नया समाज बनेगा। यह सब विज्ञान के युग की बात है। वैज्ञानिक लोग इस पर विचार करें।

(भारत के कुछ विख्यात् वैज्ञानिकों से हुई बातचीत के आधार पर।)

धीरेन्द्र मजूमदार :

लोकतंत्र का गतिशास्त्र :

[कहते हैं शब्द में कल्पनातीत शक्ति होती है। पिछले डेढ़ दो सौ सालों में शब्दों ने निस्संदेह विश्व को अनेक मोड़ दिये हैं। किन्तु लगता है शब्द की भी एक उम्र होती है, सीमा होती है जिसके बाद वह अपना तेज खो देता है। कम से कम 'क्रांति' के बारे में यही लगता है। आज इसका सर्वाधिक उपयोग, किन्तु अनेकार्थी, हो रहा है। लोकतंत्र ऐसा ही एक दूसरा शब्द है। यहाँ इस सन्दर्भ में सर्वोदय के प्रख्यात विचारक धीरेन्द्र मजूमदार जी के विचार पठनीय हैं।

— सम्पादक]

पिछले कुछ समय से देश में लोकतंत्र की चर्चा पुनः एक नये संदर्भ में होने लगी है। यद्यपि हमारे देश में भी संसार के हर अन्य देश की ही तरह से, लोकतंत्र का 'लोक' सरकारतंत्र और दाजारतंत्र के मिलेजुले शोषण और दमन का शिकार हो गया है किन्तु इधर पिछले साल डेढ़ साल से, जब से जयप्रकाशनारायण जी ने अपना एक अभिनव आन्दोलन आरम्भ किया है देश में इस घुटन के प्रति कुछ जागरूकता विकसित होती दीखती है और ऐसा लगता है कि देश का सामान्य नागरिक भी अब इन सवालों पर विचार करने लगा है। मैं मानता हूँ कि यह शुभ लक्षण है।

बुद्धिभेद किस लिए

आज भारत का हर विचारशील नागरिक अक्सर इस बात की चर्चा करता दीखता है कि देश में लोकतंत्र कमजोर पड़ता जा रहा है और धीरे धीरे किन्तु शायद निश्चित रूप से एक या दूसरा प्रकार की तानाशाही की ओर बढ़ रहा है। कुछ लोग इसके लिये श्रीमती इन्दिरा गांधी को भी दोष देते हैं तो कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कि श्री जयप्रकाश नारायण जी के आन्दोलन को ही इसके लिये दोष दे रहे हैं। इस प्रकार से देश में गहरा बुद्धिभेद पैदा हो रहा है और पनप रहा है, किन्तु मुझे लगता है कि इस प्रकार का बुद्धिभेद हम जरा कुछ गहराई से विचार करेंगे तो, होना नहीं चाहिए। क्या कि एक तो बात यह है कि हमने पिछले पच्चीस साल में कभी इस सवाल पर विचार ही नहीं किया कि असल में हम किस प्रकार का लोकतंत्र

चाहते हैं। गांधीजी ने तो इस सवाल को अत्यन्त महत्व का माना था अतः वे स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भी इस पर बार बार कहते और लिखते रहते थे। आजादी आने के बाद तो उनका इस दिशा में चिंतन मुख्य विषय बन गया था और वे कहने लगे थे कि अब भारत को 'सही लोकतंत्र' के लिये काम करना होगा। यह बात बहुत लोग आज नहीं जानते हैं कि गांधीजीने पश्चिमी ढंग के दलीय लोकतंत्र को यद्यपि भारत के लिये 'फिलहाल' मान्य तो किया था पर वे बराबर कहते थे कि यह हमारे लिये उपयुक्त नहीं है और हमें इसका कोई न कोई विकल्प ढूंढना ही होगा। उन्होंने अपने ग्राम-स्वराज्य के विचार में उस विकल्प का कार्फी संकेत भी कर दिया था। वे अपने विचार को और स्पष्टता के साथ देश के सामने रख सकते कि तभी हमने उन्हें अपने बीच से हटा दिया। गांधी जी के बाद फिर कभी किसी ने भी इस सवाल को विचार योग्य नहीं माना। सरकार और उसके नेताओं ने तो कम यही मान लिया, और वे आज भी यही मानकर काम कर रहे हैं कि हमने जो 'दलीय लोकतंत्र' की प्रणाली अपनाई यानें नकल की है वही हमारा एकमात्र मार्ग है और अब इसके बारे में हमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए वे जब कभी भी इस सवाल पर विचार करने की बात कहते भी है तो उनका मतलब केवल इतना ही होता है कि इस 'दलीय प्रणाली' को और अधिक अच्छा, कारगर कैसे बनाया जाय। जो लोग सरकार के विरोधी हैं वे भी इस प्रश्न को सरकार से भिन्न नजर से नहीं देखते हैं और अमल में तो सरकार या विरोधी दल इस सवाल पर एकमत मालूम पड़ते हैं कि हमारे लिये मार्ग तो यही 'दलीय-लोकतंत्र' का है पर इस पर अमल कैसे हो बस इस पर उनमें परस्पर कुछ भेद हैं।

दूसरी बात यह है कि बहुत कम लोग इस परिस्थिति पर तटस्थ विचार करते मालूम होते हैं कि जहाँ तक सरकार चलाने की दलीय प्रणाली यानि लोकतन्त्र के आज के स्वरूप का प्रश्न है तो यह दिखाई देगा कि आज संसार में जहाँ कहीं भी इस प्रणाली से सरकार चलाई जा रही है उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे में और उनसे भिन्न प्रणाली वाले यानें तानाशाही प्रणाली वाले देशों की इन अन्य व्यवस्थाओं में अब कोई बहुत तात्विक अन्तर नहीं रह गया है। सब जगह यही दिखाई दे रहा है कि पहले तो कहीं भी सही ढंग के लोकतन्त्र का कभी विकास हुआ ही नहीं है, वहाँ भी नहीं जहाँ पर इसको ही लेकर तथाकथित क्रान्तियाँ तक की गई है, जैसे कि ब्रिटन या फ्रान्स में। इन देशों में भी सक्षम सरकारें हैं जो समय समय पर शासन करने के लिये जनता से 'मान्यता' प्राप्त कर लेती है। किन्तु सर्वत्र ही तेजी से परिस्थिति इस तरह की बनती जा रही है कि जनता मत दे या न दे सरकार तो शासन करेगी ही और जनता की इच्छा के अनुसार नहीं अपितु अपनी इच्छा के अनुसार करेगी। जनता उसको मान तो ठीक न माने तो भी अब जनता तेजी से इस स्थिति में पड़ती जा रही है कि वह अब अपनी सरकारों पर कोई अंकुश लगाने में दिन व दिन

कमजोर होती जा रही है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हम देखते हैं कि आज हर जगह एक या दूसरी किस्म की तानाशाही आती जा रही है। यह सब लोकतन्त्र के नाम पर ही हो रहा है और आखिर में तो चीन के माओ ने साफ साफ कह दिया है कि तानाशाही भी लोकतान्त्रिक होती है, होनी चाहिए। 'लोकतान्त्रिक तानाशाही' नाम ही माओ ने दिया है। इसलिये आज विश्व में चाहे शासन करने का स्वरूप कुछ भिन्न भले ही दिखाई दे रहा हो किन्तु असल में तो आज का सभी सरकारों का मूल रूप एक ही है। इस सवाल पर कभी भी भारतीय मानस ने विचार नहीं किया है। इसलिये आज हम भले ही लोकतन्त्र के लिये चिन्ता दिखा रहे हों किन्तु असल सवाल यह नहीं है कि हमारे लोकतन्त्र का स्वरूप एक दलीय हो या द्विदलीय हो या बहुदलीय हो। मेरे विचार में इन सवालों का लोकतन्त्र से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

सवाल का असल रूप यह है

इसलिये मेरे विचार में हमारे सामने असल सवाल तो यह होना चाहिये कि जनता की व्यवस्था करने के लिये क्या 'जन-निरपेक्षता' की यह प्रणाली, जो आज लोकतन्त्र या तानाशाही के नाम से चल रही है समयानुकूल है और इसका कोई विकल्प क्या हो सकता है? अब इस सवाल का महत्व समाप्त हो गया है, हो जाना चाहिये, कि हमारे शासक हमारे ऊपर लद गये हों या हमने ही उन्हें चुनकर अपने ऊपर लादा हो। यह सवाल अब मध्ययुगीन हो गया है और पिछड़ा हुआ सवाल है। आज का राजनैतिक चिंतन अब इससे काफी आगे बढ़ गया है। अब तो मुख्य सवाल यह हो गया है कि जनता अपना शासन कैसे करे। हम इससे अब भ्रम पैदा नहीं करना चाहिए कि जनता के चुने शासक जनता पर ऊपर से लादे शासकों से अच्छे होते हैं। असल में तो हम हमेशा ही जनता और शासकों में फर्क को समझना होगा। शासक चाहे जिस जाति के हों, वे हैं मूलतः जनता से अलग जाति के और उन सबका असल उद्देश्य चाहे जनता की तथाकथित स्वेच्छा से या जबरदस्ती से जिस भी तरह हो जनता पर शासन करना ही होता है। अतः अब सवाल यह खड़ा हो गया है कि जनता और शासन का अंतिम फैसला कैसे हो। यानि जनता पर शासन कैसे समाप्त हो। मेरे इस सम्बन्ध में अपने कुछ विचार हैं पर अभी मैं उन पर यहाँ विचार नहीं करूँगा। मैंने केवल सवाल को खोलकर सामने रख दिया है।

कहाँ गलती हो रही है

अभी तो मैं इसी सवाल पर विचार करना चाहता हूँ कि आज इस दलीय लोकतन्त्र का, जो निश्चय ही राजाशाही या सेनाशाही से तो कुछ अच्छी चीज है ही, ह्रास क्यों हो रहा है? आज यह लोकतन्त्र भी पराजित होता दिखाई दे रहा है। भारत में चारों ओर निगाह डालें तो यही दिखाई देता है और अब भारत में भी शायद वह

प्रक्रिया चालू हो गई है। हम भी शायद अब 'संसदीय तानाशाही' की ओर बढ़ रहे हैं। मेरे इस विचार से चौंके नहीं। मैंने इसे संसदीय तानाशाही नाम दिया है क्योंकि यह संसद की स्वीकृति से कायम हो सकती है और मैं उसके चिन्ह भी अब साफ देख रहा हूँ। अतः पहले सवाल यह है कि हमें या अन्य किसी को भी इस दिशा में ले जाने की जिम्मेदारी किसकी है। यह राजनैतिक नेता की सत्तापिपासा का परिणाम है या कि फिर लोकतंत्र के नाम पर इस सन्दर्भ में पिछले दो ढाई सौ साल से जो गलत मान्यता, धारणा और पद्धति चली आ रही है उसका ही यह अनिवार्य नतीजा है। मेरा मानना यह है कि यह किसी व्यक्तिगत सत्ताधीश की सत्ता पिपासा का ही परिणाम नहीं है अपितु उससे कहीं अधिक यह पिछले दो ढाई सौ साल से लोकतंत्र के नाम पर चलने और का जाने वाली कार्यविधियों का सीधा परिणाम है। अब मैं जरा अपनी बात और साफ करूँ।

चेतना बनाम पद्धति का संघर्ष :

आज विकास का मानव के सनातन आकांक्षा ने एक नया मोड़ लिया है और विज्ञान ने इसमें सबसे बड़ा योगदान किया है। पहले मानव की चेतना का विस्तार आज जैसा नहीं हुआ था। इसका अर्थ यह न माना जाय कि मानव की मानवता का विस्तार की बात मैं कह रहा हूँ। यह तो भिन्न सवाल है। मैं केवल मानव की एक दूसरे को जानने समझने और प्रभावित कर सकने की क्षमता और उसकी प्रतीति की बात कह रहा हूँ। यह आज विस्तृत है। इसलिये आज का मानव शायद अधिक 'आत्म-जागृत' है और उसमें स्वाभिमान की भावना अधिक हुई है। आज का मानव अब किसी भी प्रकार का दबाव सहन करने के मूड में नहीं है। आज से दो ढाई सौ साल पहले मानव की इस नया मानसिक स्थिति ने अपना परिचय देना आरम्भ किया था जब कि उसने हजारों साल की राजतंत्र की परम्परा के विरुद्ध पहला सफल अभियान किया। उसने राजतंत्र के दबाव से मुक्ति के लिए साम्य, मैत्री और स्वतंत्रता की मोहक घोषणायें की। इन घोषणाओं के मूल में 'दबाव' के स्थान पर 'मनाव' याने 'कोअरसन' के स्थान पर 'कन्सेन्ट' को स्थापित करने की भावना थी। समाज दबाव के बजाय मनाव के आधार पर चले यह उस समय की क्रान्तियों का मूलमंत्र था। इस आधार पर कई देशों में सफल क्रान्तियाँ भी की गई थीं।

किन्तु इन क्रान्तियों की कार्य प्रणाली में ही एक अन्तर्विरोध निहित था जिसने फिर आगे चलकर इन क्रान्तियों को भी बजाय मुक्ति के पुनः 'दासता के नवीनीकरण' का ही एक साधन बना डाला। यह अन्तर्विरोध क्रान्ति के नेताओं की कार्यप्रणाली में था। वे विज्ञान के इस सामान्य नियम से अनभिज्ञ थे कि भौतिक विज्ञान की ही तरह से समाज विज्ञान में भी पावर और टेक्नालाजी में साम्य होना आवश्यक है। हम कोयले का इंजिन डीजल से नहीं चला सकते हैं। इसी तरह से

राजतंत्र की पद्धति से लोकतंत्र नहीं चलाया जा सकता है। पर नेताओं ने यही करने का प्रयास किया और यह प्रयास आज भी वैसे ही चालू है। राजतंत्र दबाव से चलता था और उसमें जनता की, मनाव की शक्ति का कोई प्रयोग नहीं होता था। तो जब हमने राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र का स्वीकार किया था तो फिर उसका चालक शक्ति के रूप में भी हमें फर्क करना था और सचालन या दबाव शक्ति के स्थान पर हमें स्वावलम्बन को रखना था। पर हमने यह नहीं किया और हम समाज को राजा की ही भांति से स्वयं कुछ लोग मिलकर जनता के नाम पर समाज का सचालन करने लगे। याने प्रत्यक्ष समाज-क्रिया में कोई फर्क हमने नहीं किया।

इस फर्क की ओर जरा सफाई से समझना होगा। दबाव शक्ति हमेशा ही शस्त्र पर आधारित शक्ति होती है। जब कि स्वावलम्बन की शक्ति हमेशा ही सहकार पर आधारित होती है। सहकार फिर दबाव से नहीं, कोअर्सन से नहीं बल्कि वह मनाव या कन्सेन्ट से ही काम कर सकता है। यही कारण था कि गांधीजी हमेशा ही सामाजिक परिवर्तन के लिये साध्य-साधन की एकता पर इतना जोर देते थे। इस तथ्य को लोकतंत्र के नेता या तो समझे नहीं या फिर वे अपने इरादों में ईमानदार नहीं थे। कारण चाहे जो रहा हो पर आज इसी गलती का यह नतीजा है कि आज भी हम लोकतंत्र के सचालन में फिर उसी तरह से सैनिक शक्ति, नौकरशाही आदि के तंत्र को प्राधान्य पाते हुये देखते हैं इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आज हमारा तथाकथित लोकतंत्र भी राजतंत्र या अब नयी नामावलि में तानाशाहीमें बदलता जा रहा है।

किन्तु दूसरी तरफ परिस्थितिमें परिवर्तन आता गया है। विज्ञान की प्रगति ऊपर कही गई सामाजिक राजनैतिक परिस्थिति से नितान्त भिन्न तरीके और दिशा में हुई है। इन पिछले दो ढाई सौ सालों में हुए परिवर्तनों की यह एक विशिष्टता ही कही जायेगी कि वे समाज और समाज की चेतना में भिन्न भिन्न तरीके और भिन्न स्तरों पर हुये हैं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया पहले भी दीखती थी पर किन्तु अब यह अधिक मुखर हुई है। विज्ञान के कारण से मानव-चेतना में अत्यधिक विस्तार हुआ है और इसलिए आज के मानव में दिन ब दिन बेचैनी बढ रही है और वह अब अधिकार को ही चुनौती देने लगा है। पहले यह चुनौती छोटे से दायरे में थी पर अब यह भी विश्व-व्यापी हो रही है। अब हम एक प्रकार की रस्साकशी-सी साफ देख सकते हैं। जैसे जैसे जनता अपनी अधिकार-चुनौती की वृत्ति में विस्तार करती जा रही है त्यो त्यों अधिकारी भी अपने अधिकार को और अधिक कसते जा रहे हैं। यह एक प्रकार की रस्साकशी सी चल रही है जो दिन ब दिन अधिक से अधिक तेज होती जा रही है। विश्व भरमें आज यह सघर्ष तीव्रतर होता जा रहा है। आज की तरुण पीढ़ी इस तनाव की सबसे अधिक शिकार है और उसे नियत्रण में रखना किसी भी सरकार के लिये

दिन व दिन कठिन होता जा रहा है। आज सरकारों की मारक शक्ति, यह किसी भी तरह की सरकार पर बराबर लागू होती है, अपने इतिहास में सबसे अधिक है और वे इसे दिन व दिन बढ़ाती ही जा रही हैं। इस सबका स्वाभाविक नतीजा यह हुआ है कि आज संसार भर में जनता बनाम सरकार आमने-सामने आ कर खड़े हो गये हैं। इसलिये आज जिन कुछ मित्रों को यह लगता हो कि लोकतंत्र का तिरोधान होता जा रहा है और तानाशाही पनपती जा रही है तो उन्हें यह समझना होगा कि यह स्थिति तो विश्व भरमें पिछले दो ढाई सौ साल से चली आ रही नीतिका ही स्वाभाविक परिणाम है। मैं मानता हूँ कि भारत के तरुण मित्र खासकर इस स्थिति का जरा निकट का और तटस्थ अध्ययन करेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि इसका हल भी हम परम्परागत विरोध के तरीके से नहीं कर पायेंगे।

प्रतिकार भी नवीन हो

अंत में कहना चाहता हूँ कि हमें प्रतिकार की टेकनिक भी अब सर्वथा नयी खोजनी होगी। गांधीजी का यही प्रयास था पर हमने उनकी प्रतिभा का सही मूल्यांकन नहीं किया। क्या मित्रों, तरुणों ने प्रतिकार की गांधीवादी टेकनीकका अध्ययन किया है? किया होगा तो वह मेरी बातको सरलता से समझ लेगा। वस्तुतः हर देश की वस्तुस्थिति और मनःस्थिति द्वारा परस्पर निर्माण होता है और जब ऐसा होता है, तभी क्रान्तिके लिये सबसे अनुकूल अवसर होता है। इस अवस्था में हम विचार करें कि क्या भारत का आज का मन और परिस्थिति इस तरह की क्रान्तिके लिये तैयार है? हर देश की यह परिस्थिति और मनःस्थिति भी पुनः उस देश की परम्परा, इतिहास संस्कृति और उसके प्राकृतिक सन्दर्भ से युक्त होती है अतः किसी भी देश की टेकनीक का नकल कहीं नहीं की जा सकती है न क्रान्ति का आयात ही हो सकता है। इसलिए भारत के तरुणों को भारत की परम्परा, इतिहास, संस्कृति और उसके प्राकृतिक परिवेश का गहरा अध्ययन करना होगा तब आज की परिस्थिति का वे सही अदाज कर सकेंगे। बिना इस तरह के अध्ययन के कोई भी प्रयास केवल ऊपर ऊपर का प्रयास ही होगा। हमारे और बंगला देश के बीच या फिर पाकिस्तान के बीच इस दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है, तो वहाँ पर जो घटनायें घट रही हैं हमें उनसे सबक लेने में सरलता होगी। गांधी का अध्ययन इस सन्दर्भ में करना ही होगा और उसके बिना हम कहीं भी नहीं पहुँच सकते हैं यह मैं अपने तरुण मित्रों से कहना चाहता हूँ। क्या वे इस तरह की विचार सरणि के लिये तैयार हैं? हैं तो क्या वे फिर आज की सस्ती चकाचौंध से दूर जाकर चुपचाप कहीं जाकर गड़ने को तैयार हैं? इसका जवाब वे जिस तरह से देंगे उसी पर हमारी क्रान्ति का भविष्य निर्भर है।

एस. वैद्यनाथन् ऐय्यर :

चीनी शिक्षा-पद्धति :

[चीन ने गत २५ सालों में ही जो आशातीत सफलतायें अपने राष्ट्र निर्माण के काम में प्राप्त की हैं उनका रहस्य उसकी नयी शिक्षा-प्रणाली में है। चीनी नेताओं ने अपने 'राष्ट्रीय-व्यक्तित्व' को आधार बनाकर काम आरंभ किया था। चीन भी भारत की तरह ही ग्राम-संस्कृति प्रधान प्राचीन देश है, इससे चीनी नेताओं ने भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों पर भी गंभीरता से ध्यान दिया। वे खासकर बापू जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों से काफी दूर तक प्रभावित हुये। यह बात शायद अधिक लोगों को न मालूम हो कि इस सदी के तीसरे दशक के लगभग माओ ने भावी चीन की शिक्षा-व्यवस्था पर एक पुस्तक लिखी थी जो उन्होंने गांधीजी को समर्पित की थी। यदि चीन की हिंसा-पद्धति को छोड़ दें (यद्यपि इससे ही बुनियादी फर्क पड़ जाता है) तो हम कह सकते हैं कि यह शिक्षा, अर्थ-नीति आदि में गांधी-पथ पर चल रहा है। भारत के लिये चीन की नकल करना किसी भी प्रकार से उचित नहीं होगा। किन्तु अपने राष्ट्रीय-व्यक्तित्व को विकास का आधार बनाने के उसके इस सफल प्रयास से हम काफी सबक ले सकते हैं।

— सम्पादक]

आज संसार का अन्य कोई भी देश इस हद तक अपने को समतावादी नहीं बना पाया है जितना चीन बन सका है। और यह चीन की शिक्षा पद्धति के कारण संभव हो सका है। यही चीनी शिक्षा-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है। पश्चिमी आलोचक अक्सर यह शिकायत करते हैं कि चीनी शिक्षा पद्धति अत्यन्त ही कठोर और अतिवादी (एक्सट्रीम) है। यह बात सच हो सकती किन्तु इसी ने फिर प्रत्येक चीनी नागरिक के लिये आज यह संभव करने में सफलता पाई है कि वह ज्ञान प्राप्त करने और अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुसार काम पाने में सुगमतर अवसर प्राप्त कर सका है।

अनुकरण अवांछनीय

इस कथन में सचाई है कि चीनी शिक्षा-पद्धति का अनुसरण अन्य देशों में अवांछित है। क्योंकि इसे अपनाने का अर्थ उक्त देश के समाजार्थिक ढांचे में आमूल परिवर्तन करना होगा। इसके लिये फिर अपने ध्येय के प्रति आत्म-विश्वासपूर्ण निष्ठा और जन-सेवा के प्रति सच्चे कार्य कर्ताओं की बड़ी फौज की भी आवश्यकता होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके लिये हमें अपने दृष्टिकोणों, व्यवहारों, आदर्शों और वास्तवमें जीवनके अपने सम्पूर्ण ढांचे में ही आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे।

केवल १६ साल की अवधि में ही चीन ने देश से निरक्षरता का समूल नाश कर दिया है। यह काम अन्य कोई भी पूँजीवादी देश नहीं कर सका है और चीनियों के लिये यह उनके स्वातन्त्र्य-युद्ध का एक अनिवार्य अंतरंग भाग रहा है। सन् १९४९ की चीनी क्रान्ति का उद्देश्य सब प्रकार के वर्गों का निरसन करना रहा है। उससे पहले बुर्जुआ परिवारों के बालक ही केवल उस समय की उच्च शिक्षा उसके सभी कठिनाइयों के साथ प्राप्त कर सकते थ। गरीब न केवल इसकी ऊँची कीमत के कारण इसे पाने में असमर्थ थे किन्तु असल में शिक्षा का समूचा ढांचा ही जानबूझ कर इस तरह का रखा गया था कि वे ज्ञान पाने से वंचित रह जाय। यह तत्कालीन सामंती-समाज के हित में था और इससे देश की प्रगति काफी लंबे समय तक रुकी रही। लोगों को उनके अपने इतिहास और उनकी नियति के प्रति जागरूक करने के लिये पहला कदम यह उठाया गया कि वे अपनी मानसिक दासता से मुक्त हो जाय। चीनियों के लिये शिक्षा का अर्थ न केवल 'मानवीय विनियोग' है पर साथ ही सामंती समाज के तथाकथित पद, प्रतिष्ठा, सजावट, शौक मौज और वंशगत ऐश्वर्यों को समाप्त करने का एक प्रबल साधन भी है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष माओ त्से तुंग ने इसलिये युवकों में 'बात करने, विचार करने और अमल करने का साहस' पैदा करने का नारा दिया। यह पहले के सामंतवादी समाज से हर अर्थ में एक बिदाई थी।

हथियार नहीं विचार बल.

किन्तु माओ के निरक्षरता मिटाने के पीछे सबसे बड़ी प्रेरणा तो उनका यह विश्वास रहा है कि किसी भी भयानक तम हथियार से कहीं अधिक बलवान् विचार होते हैं। जनता में यदि कोई देश राजनैतिक चेतना पैदा कर सके तो फिर उसे कोई भी अन्य साम्राज्यवादी देश, सैनिक या वैचारिक, दृष्टिसे कभी भी गुलाम नहीं बना सकता है। इस प्रकार से माओ का 'सत्तर करोड आलोचकों, 'सत्तर करोड विचारों' और 'सत्तर करोड राजनीतिज्ञों' का स्वप्न आज लगभग पूरा हो गया है। श्रीमती हान सू इन ने अपनी पुस्तक 'सन् २००१' में लिखती हैं कि "सन् १९४९ से पहले चीन एक ऐसा सामंतवादी देश था जहाँ पर जमीन के भारी

बड़े भाग पर एक छोटे से जमीदार वर्गका स्वामित्व था और जिसमें से एक ऐसी शिक्षा-पद्धति विकसित हुई जो चीनी साम्राज्यवाद के लिये केवल 'सेवक प्रशासक' पैदा करती थी। इस जमीदार वर्ग में शरीर-श्रम के प्रति एक घृणा का भाव था, क्योंकि विद्वान को 'काम करने के लिए' विवश' नहीं किया जा सकता था।" समाज में इस वर्ग की जड़ इतनी गहरी है कि आज भी कभी कभी नयी शिक्षा पद्धति के १७ साल बाद भी कभी भी यह सामंती नौकरशाही सिर उठाने का प्रयास करती दिखाई देती है और इसका समूल नाश करना कितना कठिन होता है, यह आभास सहज ही होता है। सन् १९६६ में आरम्भ की गई 'सांस्कृतिक क्रान्ति' असल में इस तरह की प्रतिगामी प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक जबर्दस्त आन्दोलन थी और आज भी वहाँ जो 'कन्फ्यूशियस विरोधी' अभियान चल रहा है वह भी उन्ही पुरानी आदतों, विचारों और व्यवहारों, जो कि अब भी चीनी जनता को जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं, के विरुद्ध भारी प्रयास है।

शैक्षिक-क्रांति के लिए खतरा :

इस सन्दर्भ में चीन के 'हर मजदूर छात्र है और हर छात्र मजदूर है' इस नारे का अर्थ सहज ही स्पष्ट हो जाता है। यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है कि चीनी समाज में भी अभी सुगम काम करने की वह पुरानी आरामशयी बुद्धिवादी प्रवृत्ति प्रचुर रूप से मौजूद है। अतः माओ की दृष्टि से इस क्रान्ति विरोधी पुरानी, शरीरश्रम से विद्वेष करनेवाली प्रवृत्ति के विरुद्ध हमें संघर्ष तो करना ही होगा और इसका निराकरण भी करना होगा। वे कहते हैं कि "यदि हम सरकार और पार्टी को नायकों और सत्ताधनवादियों के पुराने विचार वालों के हाथ जाने से नहीं बचायेंगे और यदि हम नये शिक्षण और प्रशिक्षण की अवहेलना करेंगे और अपनी युवापीढ़ी को पुराने बुर्जुआ सत्ताधनवादियों के द्वारा भ्रष्ट होने देंगे तो फिर हमारी क्रान्ति 'अर्ध-मार्ग' में ही खत्म हो जायगी और समाजवादी क्रान्ति चुपके से फिर पूंजीवादी क्रान्ति में बदल जायेगी।" इस प्रकार से चीन से निरक्षरता समाप्त करने के पीछे माओ के दो उद्देश्य रहे हैं। एक तो यह कि जनता को वह शिक्षा दी जाय जिससे वह पहले रचित रखी गई है तथा साथ ही युवा पीढ़ी को वैचारिक दृष्टि से मजबूत और संगठित कर इस तरह से तैयार किया जाय ताकि वह पूंजीवादी प्रवृत्तियों का मुकाबिला कर सके और साथ ही अज्ञान जन्य खतरे के प्रति भी जागरूक रह सके। इसलिए देश को एक करने की दृष्टि से हाथ और दिमाग के काम के बीच का भेद समाप्त करने के लिये, जो कि चीन की शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य है, चीन के शहरी लोगों को, बुद्धिवादियों और छात्रों को, देश के निर्माण के कामों से जोड़ दिया गया है। किन्तु पुरानी आदतें मुश्किल से मरती हैं इसलिये इन पुरानी आदतों, विचारों

परीक्षा की विदाई :

इस नयी शिक्षा पद्धति में परीक्षा प्रणाली को सम्पूर्णतः समाप्त कर दिया गया है। अब सीनियर मिडिल स्कूल के छात्र को कुछ साल पहले से मजदूरों, किसानों और सिपाहियों के साथ काम करना होता है और उसमें उसकी लगन, चरित्र और प्राप्तियों के आधार पर ही आगे विश्व विद्यालय के लिये उसकी रुचि का अंदाज किया जाता है। 'किताबी-कीड़े' मात्र पैदा करनेवाली परीक्षा पद्धति समाप्त हो गई है। अब तो सर्वहारा रुचि' दिखाने वाला छात्र ही आगे की शिक्षा के लिये चुना जाता है। इस तरह से सदियों पुराने 'तांग वंश' के द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा पद्धति सन १९६६ में समाप्त कर दी गई है।

आज के चीन की शिक्षा का मुख्य काम लोकतंत्र चलाने के लिये चेतना पैदा करने के बजाय युवकों को भावी साम्यवादी नेतृत्व के उत्तराधिकारी के रूप में तैयार करना ही अधिक है। चीनी कहते हैं कि 'हम केवल अपने ही लिये काम नहीं कर रहे हैं अपितु हम तो दो तिहाई दुनिया की उस आजादी के लिये भी काम कर रहे हैं जो कि आज भी सदियों पुरानी दासता में पड़ी हुई है।' इस तरह से आज का चीनी युवक भावी समाज के लिये अच्छी बुनियाद पर खड़ा किया जा रहा है।

(संकलित)

मैं मनुष्य को दूर नहीं करना चाहता—

गांधीजी का एक तरीका था। जो विरोधी होता था उसे वे अपनी समिति में ले लेते थे। मैंने पूछा कि आप यह क्या करते हैं? तो कहा कि 'उसे दूर रखूंगा तो वह और भी दूर चला जायगा, पास रखूंगा तो कम से कम आँख की शरम तो वह भी रखेगा ही, आखिर मनुष्य है न! मैं मनुष्य को दूर नहीं करना चाहता हूँ।

—दादा धर्माधिकारी

उड़ीसा में बुनियादी शिक्षा :

सुश्री अनपूर्णा महाराणा :

उड़ीसा उन पहले प्रदेशों में से रहा है, जहाँ पर सन् १९३८ में ही, जब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा का अपना विचार देश के सामने रखा तो तुरन्त उसे अपनाया और आगे बढ़ाने का काम हाथ में लिया। १९३८ में ही वहाँ कांग्रेसी मंत्री मंडल बना तो श्री गोपबन्धु जी चौधरी के नेतृत्व में पहले पहल एक 'बोर्ड आव बेसिक एज्यूकेशन' का गठन किया गया। इसके द्वारा चुने गये सरकारी और कुछ गैर सरकारी शिक्षकों और अधिकारियों को शिक्षण के लिये वर्धा भेजा गया था। इन प्रशिक्षित लोगों ने फिर कटक जिले में रामचन्द्र पुर में एक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय और एक प्रेक्टिसिंग स्कूल खोला गया। इसमें पहले पहल २८ छात्र अध्यापकों का प्रवेश दिया गया है।

शिक्षकों का त्याग-यज्ञ

किन्तु शीघ्र ही दूसरा विश्व युद्ध आरम्भ हो गया और सारे देश की ही तरह से उड़ीसा में भी कांग्रेस मंत्री मंडल ने भी स्तीफा दे दिया। पर राज्य में फिर भी बुनियादी शिक्षा का यह प्रयोग चालू रहा और राज्य सरकार ने ही रामचन्द्रपुर के आसपास के क्षेत्र में ही बुनियादी विद्यालय कायम किये। किन्तु सन् १९४१ में अचानक सरकार ने यह प्रयोग बन्द करने का निश्चय कर लिया। सरकार के इस निर्णय के विरोध में बुनियादी शिक्षा के विशेष अफसर और उसके साथ लगभग १२ शिक्षकों ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वयं के बल पर वे बुनियादी शिक्षा के अपने प्रयोग को चालू रखने के लिये कटिबद्ध हुये। उड़ीसा में बुनियादी शिक्षा के इतिहास में यह अध्याय अत्यन्त उजागर है और सर्व श्री कृष्णचन्द्र साहू, गोपीनाथ दास, मधुसूदन मिश्र, ब्रह्मानन्द साहू, कान्हुचरण जेना, रामचन्द्र मिश्र, सदाशिव मिश्र, श्यामसुन्दर पाणिग्रही, गोलकचन्द्र नायक, नारायण मिश्र, महर्षि बेहरा, मधुसूदन जेना, और शरतचन्द्र महाराणा इस प्रभावकारी त्यागयज्ञ के पहले पुरोहित बने। पूज्य गांधीजी ने अपने आशीर्वाद से इन्हें सुशोभित किया। इस सबका नतीजा यह हुआ कि आचार्य हरिदास जी की अध्यक्षता में 'उड़ीसा मौलिक शिक्षा मंडल' का गठन हो गया। इस परिषद के अन्तर्गत ९ बुनियादी शालायें आरम्भ कर दी गई। बापू जी, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ और गाँव वालों की आर्थिक सहायता

हमें मिली और हमारे ये शिक्षक मात्र १५ रु. का वेतन लेकर काम करते रहे। शैक्षणिक मार्ग दर्शन देने के लिए स्व श्री आर्यनायकम् तथा श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् अक्सर रामचन्द्र पुर आया जाया करते थे।

१९४२ का आन्दोलन आया तो हमारे ये सारे शिक्षक भी जेल चले गये। स्वभावत ही हमारे ये सारे विद्यालय बंद हो गये। १९४४ में जब ये लोग जेल से बाहर आये तो फिर शिक्षका का यह प्रयोग पुन आरम्भ हुआ। अब की बार पूज्य ठक्करबापाजी का सहयोग हमें मिला। इस बार फिर रामचन्द्र पुर के साथ साथ अनगुल, गुडिगुडिया और कुरियापाल में भी बुनियादी शिक्षा की शालायें आरम्भ कर दी गई। इसमें श्रीमती मालतीदेवी चौधरी, श्री नीलाम्बर दास और श्री मधुसूदन मिश्र ने मिलकर बहुत काम किया। १९४७ में तो देश आजाद हो गया और आशा बनने लगी कि अब हमारा यह प्रयोग और भी तेजी से आगे बढ़ेगा। तत्कालीन शिक्षा-मंत्री पंडित लिंगराज मिश्र ने उदारता से सरकारी मदद भी अब इन विद्यालयों को देनी आरम्भ कर दी। किन्तु इसका असर आश्चर्य जनक ढंग से शीघ्र ही प्रकट होने लगा और हमारी संस्थायें अपना तेज खोने लगी।

सरकारी कार्य :

सरकार ने निश्चय तो किया कि राज्य में शीघ्र ही बेसिक शिक्षा का प्रसार कर दिया जाय और इसलिए उसने १९५१ में तुरन्त 'उडीसा बेसिक एज्युकेशन एक्ट' भी पारित किया जिसके मातहत फिर एक 'बेसिक शिक्षा बोर्ड' का भी गठन कर दिया गया। सरकारी अधिकारियों, शिक्षकों और कुछ गैर सरकारी कार्यकर्ताओं को शिक्षण और प्रशिक्षण के लिये सेवाग्राम भेज दिया गया। राज्य में भी ६ बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल तथा एक बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज भी खोल दिया गया। १९६१ तक राज्य में कुल ३५१ जूनियर बेसिक स्कूल, २५ सीनियर बेसिक स्कूल और ६ पोस्ट बेसिक स्कूल कायम कर दिये गये। किन्तु ये संस्थाओ कोई असरकारी काम न कर पाई। सरकार ने बेसिक शिक्षा के शीघ्र प्रसार की जो उतावली की उसके क्रम में सरकार ने तुरन्त ही सारी प्राइमरी शालाओं के लिये पहले से चले आ रहे पाठ्यक्रम को लेकर उसे बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के अनुकूल करने के लिये एक मिलेजुले पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसे तुरन्त लागू भी कर दिया गया। यह सिलसिला लगभग देश भर में चला। इससे न तो बेसिक शिक्षा ही बढ सकी न पहले की ही पद्धति में कोई फर्क पडा। असल में सरकार ने बिना बेसिक शिक्षा के दर्शन को समझे और मान्य किये अपने लिये सुविधाजनक तरीके से काम करने की दृष्टि से यह सब खिचडी पकाई। चाहो तो उसका यही नतीजा स्वाभाविक था। उसने बिना शब्द का अर्थ समझे ही इसे 'समग्र शिक्षा क्रम' (इन्टीग्रेटेड कोर्स) का भी नाम दे दिया जब कि असल में इसमें इन्टीग्रेसन के बजाय तो डिस-इन्टीग्रेसन का ही काम अधिक किया गया। सरकारी नौकरशाही का काम करने का यही तरीका होता है।

फिर ६८ के बाद तो यह फर्क और भी तेज होता गया और बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज अब नहीं हैं। बेसिक शिक्षा बोर्ड भी समाप्त कर दिया गया है जो जूनियर या सीनियर बेसिक स्कूल्स हैं उनमें खेती को उद्योग के रूपमें रखा तो अब भी है पर उनमें खेती न तो की ही जाती है न उसके लिये कोई उपकरण ही वहाँ हैं। हर राज्य में बुनियादी शिक्षा के साथ लगभग यही बर्ताव किया गया। सरकार ने नाम के लिये यहीं कहीं पर वर्क एक्सप.रियेन्स के नाम पर कुछ नये प्रयोग करने का दम भरा है पर उसमें वह स्वयं नहीं जानती कि इस क्षेत्र में क्या करना है। अभी उडीसा में सरकार की शिक्षा नीति बिल्कुल ही नकारात्मक और अस्पष्ट है और उसे अपने काम के उद्देश्य की कोई प्रतीति नहीं है।

गैर सरकारी प्रयास :

गैर सरकारी स्तर पर अब भी हम कुछ प्रयास कर रहे हैं। १९५४-५५ में रामचन्द्रपुर कम्प्लेक्स के सभी बुनियादी विद्यालयों के शिक्षक आदि कार्यकर्ता भी भूदान ग्रामदान के काम में चले गये अतः वह काम भी तब से लगभग बंद हो गया है। अनगुल में चम्पन्नी मुण्डा पोस्ट बेसिक स्कूल अब भी श्री नवकृष्ण चौधरी जी के मार्ग दर्शन में चल रहा है।

हमारे अनुभव और समस्यायें

गैर सरकारी तौर पर काम करने का हमने जितना प्रयास उडीसा में किया उतना शायद ही गुजरात को छोड़कर और कहीं किया गया है, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। हमारे इस प्रयोग से में बुनियादी शिक्षा की कुछ विशेषतायें और समस्यायें भी हमारे ध्यान में आई हैं। उदाहरण के लिये बुनियादी शालाओं में हम जो छात्र सभायें गठित करते हैं और छात्र मन्त्रीमंडल बनाकर कई तरह के काम उन पर ही छोड़ देते हैं उससे छात्रों में जिम्मेदारी से काम करने की भावना और पद्धति का सहज विकास हो जाता है। छुटपन से ही जिम्मेदारी की भावना का यह विकास अत्यन्त ही लाभ दायक होता है और हमने देखा कि हमारे ये छात्र चाहे जिस स्थिति में जहाँ भी हो पर वे कभी समस्याओं से न तो घबराते हैं न काम से जी ही चुराते हैं। रचनात्मक काम के प्रति उनमें एक प्रकार का लगाव सा पैदा होता है जो आगे चलकर फिर समाजके प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण जागृत करने में उनके लिये सहायक होता है। सामुदायिक जीवन का शिक्षण हमारी शालाओं में छात्रों का सहज मिलता था और हमने देखा कि वे इसे फिर व्यापक समाज में भी समुदाय के प्रति जिम्मेदार और लगाव की प्रेरणा से काम करते हैं। कताई बुनाई खेती आदि उद्योगों में उन्हें जो शिक्षण हमारे यहाँ दिया जाता था हमने यह भी देखा कि वह उनके ग्रामीण जीवन के लिये बाद को लाभदायक सिद्ध होता था हाँ जो लोग केवल नौकरी के लिये हमारे पास आते थे उन्हें जरा दिक्कत अवश्य होती थी।

हम भी इस समस्या के प्रति जागरूक रहे हैं कि सीनियर बेसिक स्कूलोंमें फिर छात्र संख्या घटती जाती है और कहीं कहीं वह ३० प्रतिशत तक गिर जाती है। इसका एक मुख्य कारण मेरे विचार में यह है कि भारत जैसे गरीब देश के बालक तो दस बारह साल की ही उम्र से परिवार का कमाऊ सदस्य बन जाता है इसलिये उसके लिये फिर स्कूल जाना सम्भव कम रह जाता है। गांधीजी ने बहुत पहले 'हरिजन' में लिखा था कि जब हम शिक्षा योजना के बारे में विचार करते हैं तो देश के करोडो बच्चो की शिक्षा का स्तर कैसे ऊँचा उठे जिससे समूचे देश के ज्ञान का भी स्तर उठे इस पर हमें ध्यान देना होगा। पर हमने इस पर ध्यान देना बंद कर दिया है और हम शिक्षा को बालक के प्रत्यक्ष जीवन से सम्बद्ध न कर पाए हैं। स्कूल जाना याने उसके दैनिक जीवन से उसका कट-सा जाना है। तब फिर हमारी शिक्षा का विकास कैसे हो सकता है। स्कूल का विषय-क्रम, समय-क्रम आदि जिस तरह का आज है वह हमारे सामाजिक जीवन के प्रतिकूल है। अभी हम लोग शिक्षा के बजाय शिक्षा की बाहरी व्यवस्था पर ही अधिक विचार करते हैं और मान लेते हैं कि हम सही काम कर रहे हैं। जैसे हम यह सोचते हैं कि स्कूल की इमारत अच्छी हो, शिक्षक को वेतन आदि कुछ अच्छा मिले, स्कूल में कुछ खेल कूद भी हो। यह सब अच्छा है और आवश्यक है। किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक जो है उस पर हमने कोई ध्यान ही नहीं दिया। जैसे कि हमने यह नहीं सोचा कि स्कूल का विषयक्रम क्या हो जो कि बालक के दैनिक जीवन में उसकी मदद करे। फिर हमने स्कूल के समय-क्रम को भी उसकी दैनिक जीवन की आवश्यकता के अनुकूल कभी नहीं बनाया। खेती प्रधान देश में किस प्रकार का समय-क्रम और विषय-क्रम हो इस पर लगभग विचार ही नहीं किया जाता है। विनोबा जी ने इसके लिये एक घंटे की शाला का सुझाव दिया था। उस पर हमने कभी सोचा नहीं।

अब अखिल भारत नयी तालीम समिति है। यह इन सब समस्याओं पर विचार करके कुछ मार्ग दर्शन करे तो ठीक है। पर क्या इसकी आज देश में कुछ कीमत मानी जाती है? यह सवाल है। इसकी कीमत कैसे बढे इस पर सोचना मुख्य है। हमने एक सिलेबस कमेटी और ग्राम-स्वराज्य-शिक्षण समिति भी बनाई है। हम सोचें कि हम जिस तरह की शिक्षा आज चाहते हैं उसके लिए देश में भूख कैसे पैदा हो तब तो हमारे पाठ्यक्रम पर लोगों का ध्यान जायेगा नहीं तो यह सब व्यर्थ होगा। नयी तालीम समिति अब भी बडी सेवा कर सकती है यदि इसमें बुनियादी शिक्षा पर विश्वास करनेवाले और उसके जानकार लोग काम करें।

के. मुनियाडी

लोक शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग :

भारत दुनिया का सबसे बडा लोकतंत्र हैं। इसके मतदाताओं की संख्या लगभग २५ करोड से भी अधिक हैं। भारत का जनसंख्या आज लगभग ५६ करोड तक पहुँच गई हैं। किन्तु इस विशाल जनसंख्या का लगभग ७६% भाग आज भी निरक्षर हैं। आजादी के २८ साल बाद भी, जब कि कहा जाता है देश ने बहुत प्रगति की है। ५६ करोड की आबादी में ४०-४५ करोड का निरक्षर रहना अत्यन्त चिंता का विषय है राष्ट्र के भविष्य के लिये यह भयावह स्थिति है। इस लिये जिन लोगों की अपने राष्ट्र और लोक तंत्र के हित में जरा भी रुचि है तो उनके लिये यह आवश्यक है कि वे इस चुनौती को स्वीकार करें और युद्ध स्तर पर इसके निराकरण का उपाय करें।

सहज लोक-प्रतिभा

निरक्षरता का अर्थ यह नहीं है कि हमारे लोग अनजान हैं। उनके आसपास के जीवन और घटनाओं का तथा उनके फलितार्थों का उनका ज्ञान काफी गहरा होता है। अपने पडोसी और सामान्य मानव समुदाय के साथ व्यवहार सम्बन्धी रीति-नीति का भी उन्हें अच्छा ज्ञान रहता हैं। अपने हाथ-पाँव का अपनी हुनर के साथ लगन और परिश्रम पूर्वक उपयोग करना भी वे खूब जानते हैं। उन्हें रामायण और महाभारत की सांस्कृतिक विरासत प्राप्त है उन्हें इसके प्रति लगाव हैं और अपने देश की प्राचीन सभ्यता पर वे गर्व का भी अनुभव करते हैं। किन्तु आज की तेजी से बदलने वाली दुनिया में उन्हें ज्ञान प्राप्ति के लिये भी स्वावलम्बी होने की आवश्यकता हैं। यदि वे थोडा बहुत लिखना पढ़ना जान ले तो अपनी इस विरासत के साथ वे इस आधुनिक दुनियामें रहने लायक जीवन का विकास कर सकेंगे यह तो स्पष्ट ही है कि भारत जैसे विशाल देश में इतनी विशाल निरक्षर जनता को मात्र साक्षर भी बनाना हो तो भी यह संस्थागत औपचारिक शिक्षा के बूते की बात नहीं है।

गांधीजी कहा करते थे कि भारत उसके लाखों गांवों में बसा हुआ है। यह बात सही है। भारत के लोग आज भी अपनी अथवा दूसरों की जमीन पर काश्त करते हैं कई लोग बढ़ाईगिरी चमडे का काम बुनाई का काम और अन्य ऐसे ही

अनेक छोटे मोटे अहिंसक धंधो मे लगे हुए हैं। भारतीय देहातो में ये परम्परागत धंधे अत्यन्त प्राचीन काल से व्यापक समुदाय का जीवन प्रदान करते रहे हैं। और सबसे महत्व की बात तो यह है कि भारत की इस सहज, किन्तु संस्कृति परक, अर्थ व्यवस्था में आज कल की जैसी विनाशकारी होड और उसके दुष्परिणामो का अभाव रहा है। क्या भारत के शिक्षाशास्त्रियो ने कभी इस बात पर विचार किया है कि भारतीय शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्र की परम्परा को अधिक सक्षम और उद्देश्य-परक बनाने में मदद कर सके ?

कार्य-परक पाठ्यक्रम :

किसी एक गाँव के बढई अथवा लोहार का उदाहरण लें। अपनी हाथ की कुशल कारीगरी के कारण ही तो वह हमारे इस परम्परागत समाज का स्वीकृत और प्रभावी सदस्य बना रह सका है। हमने अपने 'गांधी निकेतन' के शिक्षा-प्रयोगों मे प्रत्यक्ष देखा है कि गाँव के दस्तकारो के बच्चे किसानों के बच्चों के मुकाबले अधिक चतुर और चीजो की तेज पकड रखने वाले होते हैं। अब यदि हम कोई ऐसा पाठ्यक्रम तैयार कर सके जिसमें इस प्रकार की दस्तकारियों की उनके सामाजिक परिवेश के साथ साथ संगठित करने का प्रयास किया गया हो और जिसके कारीगरो के खाली समयों में उनके रहने के स्थान पर ही किसी एक सामान्य उठने बैठने की जगह पर उनके साथ कुछ गपशप, कुछ प्रत्यक्ष कार्य करते हुए क्रियान्वित किया जा सके तो हम पायेंगे कि एक ग्रामीण दस्तकार तुरन्त ही अपने को स्वयं सिखाने की कला में दक्ष हो जायेंगे। इस से उनका शब्द भंडार बढ जायेगा और परस्पर विचार विनिमय में, जो की उनके दैनिक जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्ध होने के कारण वास्तविक और प्रभावकारी होगा, उनकी भागीदारी भी बढ जायेगी। इस लिये मेरे विचार मे आज इस बात की सबसे बडी आवश्यकता है कि हम ग्रामीण धंधो को लेकर कोई एक सरल पाठ्यक्रम तैयार करें और इसके लिये सामान्य पढ़े लिखे लोगो की मदद प्राप्त करें।

खादी ग्रामोद्योग आयोग का प्रयोग :

अभी इस दिशा में 'खादी ग्रामोद्योग आयोग' ने एक अच्छा प्रयास किया है। उसने स्थानीय संस्था की सहायता से देश भर मे कोई लगभग एक हजार 'ग्रामीण टैक्सटाईल सेंटर' कायम किये हैं। प्रत्येक केन्द्र में २९ स्त्रियां और ५ पुरुषों को नये सुधरे हुए धातु के चर्खों पर काम दिया जाता है। ये लोग आमतौर पर अनपढ अथवा बहुत कम पढे लिखे १४ से ३० साल के बीच के लोग होते हैं। अपनी क्षमता के अनुसार वे लगभग आठ घंटे रोज काम करते हैं और २ से लेकर २॥ रुपया रोज तक कमा लेते हैं। केन्द्र पर आते ही वे पहले सफाई और पीने के ठंडे पानी की व्यवस्था करते हैं। फिर वे अपनी जाति अथवा गाँव के रिवाज़ के मुताबिक रंग अथवा कुकुम से आंगन और

o

फर्श की सजावट करते हैं। उनका काम विभिन्न धर्मों से ली गई एक समन्वित सामूहिक प्रार्थना से आरम्भ होता है। दोपहर को मध्यान्तर में उन्हें देश-विदेश की घटनाओं से परिचित कराने के लिये अखबार पढ़ कर सुनाया जाता है। दीवारों पर मोटे मोटे अक्षरों में लगे समाचार पत्र उन्हें फिर पढ़ने के लिये भी प्रेरित करते हैं। काम समाप्त होने पर वे अपने अपने काम का लेखा जोखा करते हैं और अपनी रद्दी को तौल कर जमा कर देते हैं। घर लौटने से पहले वे पुन: काते हुए तारों की गिनती करके अपनी डायरी में उसको लिखने का प्रयास करते हैं और समूह-गानके साथ प्रार्थना करने के बाद घर चले जाते हैं।

लोक-शिक्षण के इस नये कार्य की प्रभावोत्पादकता का अंदाज इसी से लग सकता है कि तामिलनाडु में इस प्रकार के केन्द्रोंके सभी 'श्रापट सुपरवायज़रों' का शिक्षण ऐसे ही सम्पन्न हुआ है। उन्हें आरम्भ में प्रौढ़ों को सिखाने की एक सामान्य प्रक्रिया के साथ साथ समाज शिक्षा में एक सप्ताह की ओरियेंटेशन ट्रेनिंग दी गई। इससे उनमें कत्तिनों को सह-भागी कार्यकर्ता के रूपमें देखने और कुछ ठोस मनोवैज्ञानिक तरीकों से निरक्षरता से उत्पन्न कठिनाइयों में उनकी मदद करने की क्षमता का भी विकास हुआ। इस कार्यक्रम के अध्यक्ष और तामिलनाडु के प्रसिद्ध गांधीवादी शिक्षा-शास्त्री श्री के अरुणाचलम् ने इन नवसाक्षरों के लिये अपने साथियों की मदद से तमिल भाषा में चार अच्छी पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार की हैं। पहली पुस्तक में उनके काम आनेवाले चर्खेके विभिन्न हिस्सों का वर्णन है। दूसरी पुस्तक में हमारे शरीर और उसके विभिन्न अंगों का जिक्र है जो कि स्वयं में एक सुन्दर किन्तु जटिल मशीन है। तीसरी पुस्तक में उपकरणों के काम करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित, जैसे कि लिवर पद्धति में यंत्रों आदि के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का सरल भाषा में वर्णन किया गया है। चौथी पुस्तक में इस कार्यक्रम और संगठन की व्यापक राष्ट्रीय भूमिका का सरल वर्णन है। ये पुस्तकें सुन्दर और सचित्र हैं तथा नव-साक्षरों को सहज पकड़ में आ सकें ऐसे मोटे अक्षरों में छपी हैं। हमने देखा है कि 'गांधी निकेतन' में काम करनेवाले अनेक ऐसे युवकों ने, जिन्हें पढ़ने का अवसर नहीं मिला या जिन्होंने शुरू में ही पढ़ना छोड़ दिया, उन्हें यह व्यवस्था अपनी पुन: पढ़ाई जारी करने में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई है। केन्द्रों में काम करनेवाले थोड़ा बहुत पढ़-लिख सकने वाले कत्तिनों ने इन पुस्तकों की मदद से 'प्रत्येक एक को सिखाये, इस शिक्षा-सिद्धान्त पर अमल करने में काफी सफलता प्राप्त की है। इसके अलावा अनुभवी रचनात्मक कार्यकर्ता हर १५ दिन में एक बार केन्द्र पर जाकर गांधी-विचार-दर्शन और कार्यक्रम के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, नैतिक और धार्मिक आदि अनेक पहलुओं पर चर्चा करते हैं। गाँव की स्वभाव से शर्मीली लड़कियां अब समूहों में बैठकर अपनी निजी और

गाँव की समस्याओं पर खुल कर चर्चा करती हैं और कुछ हल भी निकालती हैं। जन जन तक शिक्षा पहुँचाने में रुचि रखने वाले लोगों के लिये यह अनुकरणीय उदाहरण है।

एक सुझाव :

मेरे विचार में यदि इन केन्द्रों का कोई छात्र अपनी किताब की पढ़ाई पूरी कर लेता है तो उसकी मौखिक और कुछ लिखित परीक्षा लेना भी शायद उचित होगा। फिर केन्द्र चलाने वाली संस्थाओं को छात्र की योग्यता के आधार पर प्रमाण पत्र देना उचित होगा। इस से इन नव-साक्षरों को सरकार के द्वारा चलाई जाने वाली अथवा मान्य शिक्षा संस्थाओं में अपनी पढ़ाई आगे बढ़ाने की सुविधा संभव हो सकेगी। शिक्षा शास्त्री इस पर विचार करेंगे ताकि हम भारत माता के ऐसे करोड़ों लोगों की सेवा कर सकें।

सरला देवी

स्वस्थ जीवन

रोग क्यों और कैसे ?

नियमों के ताड़ने पर रोग क्या और कैसे पैदा होते हैं, इस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता है। यदि हम पशुओं का निरीक्षण करें, तो ध्यान में आयेगा कि अस्वस्थ अवस्था में वे पानी में लेटते हैं, गीली मिट्टी में लेटते हैं, कुछ विशेष प्रकार की घास खा कर उलटियाँ शौच द्वारा अपना पेट साफ कर लेते हैं, खाना छोड़ देते हैं। ये सब बातें खयाल करने लायक हैं। पशुओं का दैनिक कार्यक्रम भी गौर करने लायक होता है। रात होते ही यानी अंधेरा होते ही वे सो जाते हैं, उजाला यानी सुबह होते ही उठ जाते हैं। उठते ही शौच कर लेते हैं, फिर घूमने-चरने चले जाते हैं— यानी कसरत और श्रम करने जाते हैं। दोपहर में थोड़ा सो कर— यानी आराम कर फिर उठते हैं। उठते ही मल-विसर्जन करते हैं और घूमने चरने चले जाते हैं। रात-अंधेरा होते ही सो जाते हैं। शिकारी जानवरों का कार्यक्रम ठीक उल्टा होता है, पर बराबर नियमित होता है। इस प्रकार नियमित जीवन के द्वारा पशु स्वस्थ रहते हैं, बीमार होने पर खाना छोड़कर प्राकृतिक साधनों द्वारा फिर स्वस्थ हो जाते हैं। पशुओं की और एक बात गौर से देखने की है। खुराक भी स्वाद के लिये नहीं, अपनी प्रकृति के अनुसार खाते हैं। और मनुष्य की हालत क्या है ? मनुष्य अब प्रकृति की दृष्टि से नहीं स्वाद के लिये तरह-तरह के कृत्रिम पदार्थों को खाने लगा है, श्रम से बचकर बैठ-बैठे जीवन व्यतीत करने की कोशिश करता है। पहले पहले वह ठंडी पद्धति से तैयार की हुई खुराक खाता था— हाथ से पीसा आटा, अब वह गुड़ के बदले चीनी, मिल में तैयार किया अनाज— तेल इत्यादि खाने लगा है, जिसमें पौष्टिक तत्त्व बहुत कम मिलते हैं और संरक्षक तत्त्व बिलकुल ही खतम हो जाते हैं।

जब से खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखकर खाने का रिवाज बन गया है, तब से इन पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये भिन्न भिन्न दो-दो, तीन-तीन बार रासायनिक तत्वों का उपयोग होने लगा है और वे एक-दूसरे से बढ़ कर ज्यादा विषैले होते हैं। ये रासायनिक पदार्थ काफी संख्या में कार्सिजेनिक (यानी कैन्सर पैदा करने-वाले) होते हैं। अब अमरिका में कैन्सर, हृदय रोग, मधुमेह तथा टी बी का फैलाव बहुत तेजी से हो रहा है। अमरीका में जीवन की आशा (एक स्पेक्टशन ऑफ लाईफ) काफी तेजी से घटने लगी है।

वास्तव में मनुष्य का पेट उसके सब रोगों की जड़ है। श्रम, आराम और विश्राम का नियम तोड़कर वह ज्यादा से ज्यादा अनियमित जीवन व्यतीत करने लगा है। अनियमित खाना खाने लगा है। इससे हाजमे के बदले बदहजमी होने लगती है। जो कूड़ा शरीर फौरन निकलना चाहिये, वह काफी समय तक शरीर में बंद रहता है। इससे खून गंदा रहता है शरीर में कार्बनडायआक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और पाचन-संस्थान के साथ संचार-संस्थान (सरकुलेटरी सिस्टम) तथा श्वास-संस्थान (रेस्पिरेटरी सिस्टीम) यानी फफड़ों पर ज्यादा जोर पड़ने लगता है। ये अपनी सफाई का काम अच्छी तरह पूरा नहीं कर पाते हैं, और इसलिये गंदगी और कीटाणु शरीर में रहने लगते हैं और रोग प्रारंभ हो जाता है।

इन रोगों से बचने के लिये मनुष्य ने कई प्रकार के विचार किये हैं। पश्चिम में पुराने जमाने में 'लीचिंग' यानी शरीर पर जोंक लगाकर खून निकालने का रिवाज था। लेकिन धीरे-धीरे पश्चिम में एलोपथी के "विज्ञान" का विकास शुरू हुआ। उसका विकास अब बहुत तेजी से हो रहा है। इस शास्त्र का मुख्य सिद्धान्त यह है कि मनुष्य के शरीर में रोग तब पैदा होता है, जब उसमें विजातीय किटाणु प्रवेश करते हैं। इसलिये उन किटाणुओं को मारना चाहिये— यानी यह हिंसा का सिद्धान्त है। शत्रु कीटाणुओं के साथ-साथ मित्र-कीटाणुओं का नाश, उतकों (टिशुओं) का नाश भी हो सकता है, इसमें फर्क वे नहीं करते। बाद में टॉनिकों (शक्ति-वर्धक दवाइयों) के द्वारा उसकी पूर्ति हो जाती है। चीरफाड़ के विज्ञान का भी काफी विकास हुआ है— यहाँ तक कि मनुष्य के शरीर में कृत्रिम संस्थानों या मृत शरीर से निकले हुए संस्थानों को लगाने का रिवाज बढ़ रहा है। अब हर रोज नयी नयी औषधियों का अविष्कार हो रहा है। तथा ज्यादा से ज्यादा प्राण-विरोधी औषधियों का उपयोग हो रहा है।

आयुर्वेद का मुख्य सिद्धान्त यह है कि हमारे शरीर में तीन मुख्य तत्व रहते हैं— कफ, पित और वात। ये तत्व समतोल में रहते हैं तब शरीर स्वस्थ रहता है। जब उनका परिमाण बिगड़ जाता है तब मनुष्य बीमार पड़ता है। इसलिये बिगड़े हुए परिमाण को फिर संतुलित करने की कोशिश करनी चाहिये। यानी शरीर की आरोग्य शक्ति को बढ़ाना चाहिये।

बारह क्षारों (बायोकेमिक्स) के सिद्धान्त में मानते हैं कि शरीर में बारह क्षार हैं। जब ये शरीर में संतुलित परिणाम में रहते हैं तब मनुष्य स्वस्थ रहता है। अतः उन्हें संतुलित करने से मनुष्य की आरोग्य शक्ति बढ़ती है।

होमियोपथी के सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है कि जिन्हीं औषधियों को स्थूल रूप में खाने से जो लक्षण पैदा होते हैं, सूक्ष्म रूप में उस औषधी का सेवन करने से ये लक्षण मिट जाते हैं। मरीज की प्रतिक्रियाओं पर काफी ध्यान दिया जाता है।

चाहिये, आत्म प्रकटन, कलात्मक प्रकटन तथा आध्यात्मिक विकास का मौका चाहिये। क्योंकि वह प्रकृतिका एक अंश है, इसलिये उसे प्रकृति की स्पर्श की आवश्यकता है। तथा उसको साथ-साथ उत्पादक काम के रूप में व्यायाम की आवश्यकता है।

प्रारम्भिक अवस्था के समाजों के विकास और व्यवस्था में मनुष्य को यह मौका मिलता था— और आज भी वैसे समाज में यह मौका मिलता है। सभ्यता किसे कहा जाय ? अपने वंश के संरक्षण के लिये, मनुष्य धीरे-धीरे प्रकृति के ऊपर उठकर अपनी प्राकृतिओं पर (इंस्टिंक्टस्) काबू रखता है, तब वह सभ्यता की ओर बढता जाता है। वह अपने गुस्से को काबू में रखता है, गुस्सा आने पर अपने हाथ को काबू में रखता है, भूखा होने पर भी अपनी परोसी हुई थाली ज्यादा भूखे आदमी को दे देने में आनन्द पाता है, यानी अपने वंश के लाभ के लिये उसके व्यवहार में संयम आने लगता है। लिंग सम्बन्धी मामला में वह स्वैराचार को छोड़ कर जिंदगी भर के लिये एक साथी कर लेता है, और जैसे-जैसे वह ऊँचा उठता जाता है, वैसे-वैसे उस साथी के साथ उसका शरीर-संपर्क गौण होता जाता है। भावनात्मक और आध्यात्मिक संपर्क दृढ होने लगता है। उस विकास में वह एक सर्वशक्तिमान शक्ति का अस्तित्व महसूस करता है। और सारे ब्रह्माण्ड में आध्यात्मिक एकता का अनुभव करने लगता है। संयम के साथ-साथ उसकी कल्पना-शक्ति, संकल्प-शक्ति, दूरदृष्टि, विवेक इत्यादि का विकास होता है। जैसे-जैसे वह प्राथमिक मानवीय संस्थाओं की परिस्थिति से ऊँचा उठता है, वैसे-वैसे उसे स्वतन्त्रता की आवश्यकता महसूस होती है, ताकि उसके व्यक्तित्व का विकास हो सके उस स्वतन्त्रता को कायम रखने की जिम्मेवारी का भान हो जाता है, उसका संरक्षण करने की भावना भी पैदा होती है। मतलब सिर्फ अपनी ही नहीं, और लोगों की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व के विकास की भावना पैदा होती है। उनके लिये आदरभाव भी पैदा होता है। मतलब मनुष्य के पूरे विकास के लिये एक स्थायी समाज की आवश्यकता होती है।

आजकल पश्चिम के लोग अनुत्पादक समाज (परासिटिक सोसायटी) की ओर बढ रहे हैं, उससे सभ्यता का विकास नहीं हो रहा है, ह्रास हो रहा है। बल्कि सदियों के विकास-क्रम में मनुष्य ने जो सभ्यता धीरे धीरे कायम की थी, जो मूल्य उसने कायम किये थे उनका ह्रास हो रहा है, दो विश्व-युद्धों की विभत्सता ने तथा यंत्र की गुलामीने मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है, और मनुष्य एक ऐसी आर्थिक, औद्योगीक, राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था की ओर बढ गया है, जिसने इन आवश्यक भावनाओं का ह्रास हुआ है।

आजकल कई देशोंमें शरणार्थियों की परिस्थिति ही इस अस्थायित्व का एक मुख्य प्रतीक है। किसी न किसी संघर्ष के कारण से उन्हें अपने देश को छोडना पडा है। रिचर्ड ग्रेग लिखते हैं कि "तेज संख्यावृद्धि तथा यातायात (माईग्रेशन)

से इस दुनिया में दुःख और असरक्षण और पारस्परिक संघर्ष बढ़ा है।" अब तक मानव-जाति को कभी ऐसी भयानक परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा है। यह जागतिक दुर्घटना सभ्यता के जो कुछ थोड़े अवशेष अपने-आपमें इस दुनिया में बाकी रहे हैं, उन्हें खतम करने की शक्ति रखती है। लेकिन यह एक विचित्र बात है कि इस समाज की आम नीतियों पर इस बात का कितना कम प्रभाव पड़ा है।

अमरिका में सिर्फ पंद्रह प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो उसी मकान में रहते हैं जिसमें उनका जन्म हुआ था। आज कल लोग बहुत तेजी से अपने गाँवों के मकानों को छोड़कर शहर की ओर बढ़ रहे हैं। नगरपालिकाएँ उनके लिये गगन चुंबी मकान बनाती हैं, जिसमें हर सहूलत उपलब्ध रहती है लेकिन उनके पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट जाते हैं, पारस्परिक सामाजिक संरक्षण की भावना के अभाव में लोग टूट जाते हैं। विघटन (डिप्रेशन) होता है, आखिर में ये गगनचुंबी मकान खाली हो जाते हैं और इन्हें तोड़ना पड़ता है। लेकिन जो लोग बगैर किसी सार्वजनिक सहूलियत के झुग्गी झोपड़ियों में रहते हैं उन्हें एक दूसरे के साथ अपनी व्यवस्था करनी पड़ती है, उनके संबंध कायम रहते हैं। यह अनुभव सिर्फ अमरिका में नहीं, भारत में भी मद्रास जैसे शहरोंमें आया है।

हमारा आधुनिक समाज

१८८७ में विलियम मोरिस ने लिखा था—"क्या मैं आपको बताऊँ कि आधुनिक योरप में विलासिता का क्या फल आया है? हमारे सुन्दर हरे खेत गुलामों की झुग्गी-झोपड़ियों के बीच दब गये हैं। हमारे वृक्ष तथा पुष्पों का नाश विषैले धुयें के द्वारा हुआ है। हमारी नदियाँ मल-नल बन गई हैं। ब्रिटेन के बहुत सारे भागों में साधारण लोग भूल गये हैं कि खेती क्या चीज है, पुष्प क्या चीज है। शराब की दुकान या थिएटर में वे सौन्दर्य पाते हैं। औद्योगिकरण इस बात को ठीक समझता है, है, वह उन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देता है।"

ग्रेन ने लिखा है— "तकनीकी समाजमें हिंसा की समस्या तब हल होगी, जब मतलब से आक्रमणों का प्रोत्साहित करनेवाली शक्तियों का जोर कम किया जाय, और जब उन शक्तियों को पोषित किया जाय, जो प्रयोजन (परपज) तथा सामाजिक स्वीकृति (सोशल अॅक्सेप्टन्स) को प्रोत्साहन देती हैं। सिर्फ एक ऐसा समाज, जो छोटी इकाइयोंमें बटा हुआ है और जो परिवार के नमूनेपर है, गम्भीर रोगों से बच सकता है। कुंठित व्यक्तित्व को समालन की आवश्यकता होती है, अपर्याप्त (इनअॅडिक्वेट) अभिभावकों को सहायता तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। लेकिन मुख्य बात तो शिक्षा ही है। शिक्षा की मुख्य तकनीकी, जीने की शिक्षा, समाज का सदस्य बनने की शिक्षा तथा अपनी संभावनाओं का पूरा विकास करने की शिक्षा होनी चाहिये।

इवान इलिच लिखते हैं— "यदि हम हिंसा के सामने तकनीकी समाज का संरक्षण करना चाहते हैं तो हमें तकनीकी समाज की व्यवस्था ही बदलनी पड़ेगी।"

शूमाखर लिखते हैं— 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियों की तेजस्विता या हमारे महानगरों की भद्दी शक्ल, बढ़ता हुआ अपराध, स्टेशनों पर अश्लील साहित्य की भरमार, चिकित्सा-विज्ञान में प्रगति या हमारे भरे पड़े चिकित्सालय? दाँत के डॉक्टरों की कुशलता या हमारे जल्दी सड़ने-गलनेवाले दाँत? यातायात के साधनों में तेजी या अपने व्यावसायिक स्थान तक पहुँचने में लगनेवाला लंबा समय और असुविधा?'

लगभग चालीस वर्ष पहले जी. टी. रेंचे ने लिखा—"यदि कोई सभ्यता मिट्टी का बरबाद करती है तो मिट्टी का नहीं, बल्कि उस सभ्यता का ही सर्वनाश होता है।"

प्रभावी नागरी जीवन (डॉमिनंट सिटी लाइफ) का युग मनुष्य के प्राकृतिक स्वास्थ्य में बाधक है। उसका सिद्धान्त यह नहीं है कि इस जीवन में यदि हम स्वस्थ उपलब्धियाँ पाना चाहते हैं, तो हमें उतनी ही मात्रा में देना भी पड़ेगा। बल्कि, उसका सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को चाहिये कि वह सस्ते से सस्ते दामों पर खरीदकर महँगे से महँगे दामों पर बेचने का प्रयत्न करें। इससे हमारी मनुष्यता (मैनहुड) में तथा हमारी साधारण स्थिति (नॉर्मालिटी) में बहुत पतन आया है। उसके इलाज का उपाय कृषि के पुनरुद्धार से, उसके साथ साथ किसानों की शक्ति बढ़ाने से और उनके नव निर्माण से प्राप्त होगा। मनुष्य के सच्चे संरक्षण (कॉन्ज़रवेशन) से ही किसानों की शक्ति बढ़ सकती है। मनुष्य का सही संरक्षण यानी मिट्टी का संरक्षण। मिट्टी वह जैविक (ऑरगॅनिक) बुनियाद है, जिस पर मनुष्यरूपी इमारत खड़ी है। यदि वह जीवंत बुनियाद स्वस्थ नहीं है यदि मिट्टी की उर्वराशक्ति कम हुई है, जिससे कि किसान पर्याप्त सादी समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है, तो उस पर खड़ी हुई मानवीय इमारत की ऊपरी रचना (सुपर स्ट्रक्चर) भी स्वस्थ नहीं हो सकती है। वर्तमान व्यवस्था में अपने को सुधारने के लिये जो कुछ प्रयत्न किये जायेंगे, वे पुनः समायोजना (रिअॅडजेस्टमेन्ट) के सिवा और कुछ नहीं हो सकते हैं। वे मूलभूत (फंडामेन्टल) सुधार नहीं होंगे। केवल खंडवत् (फ्रगमेंटरी) सुधार ही होंगे। मनुष्य की किसी भी कृति से किसी भी सुधार से सफलता नहीं मिल सकेगी, जब तक कि वे मानव के व्यक्तिगत तथा सामाजिक अस्तित्व की जीवंत बुनियाद पर प्रारम्भ नहीं होते हैं। मिट्टी की सृजनात्मक (क्रीएटिव) शक्ति का रूपान्तर मनुष्य के कल्याण के लिये कैसे हो, यह मुख्य बात है। वह यह अविनाशी तत्त्व है जिस पर उसकी संस्कृति तथा सभ्यता निर्भर है। मानव जीवन को टिकाने के लिए यह जरूरी है।

जी. रामनाथन्

शिक्षा में नयी पद्धतियों की खोज

(श्री जी रामनाथन् दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रियों में गिने जाते हैं। बुनियादी शिक्षा पर उनकी निष्ठा है और वे उसे विवेचनात्मक दृष्टिसे भी *अभी और आगे की श्रेष्ठ पद्धति मानते हैं।* इस लेख में उन्होंने कार्यानुभव से जो अपेक्षा की है वह बुनियादी शिक्षा की दृष्टिसे तो निसन्देह बडी है जिसमे कार्यानुभव उत्तीर्ण नहीं हो सकेगा, फिर भी इस पर निष्ठापूर्वक अमल करने की रामनाथन् की अपील पर शिक्षा विचारक ध्यान देंगे यह आशा है। हम नयी तालीमके पाठकों से इस विषय पर और विचार आमंत्रित करते हैं।

—— सम्पादक)

कार्यानुभव की धारणा जो कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट के संदर्भ में अभी हमारे देश के शिक्षकों और प्रशासकों के दिमागों को उद्वेलित किये हुए है, एक विश्वव्यापी परिस्थिति से उद्भूत हुई है। भारत में महात्माजी जो कि बुनियादी शिक्षा के विचारों का दार्शनिक निचोड कहा जा सकता है। यह भी कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर कार्यानुभव की धारणा ही है। यह सही है कि गांधीजी के बाद के लेखों और शिक्षाशास्त्रियों के विचार विनिमय के फलस्वरूप बुनियादी शिक्षा का विचार प्राथमिक शिक्षा की सीमाओं से आगे बढकर एक व्यवस्थित शिक्षा-विचार ही बन गया है। इसमें इस लेखक का भी थोडा बहुत भाग है। किन्तु यह भी सही है कि बुनियादी शिक्षा अपने विकसित रूप में कम से कम जैसा मैंने उसको समझा है, कार्यानुभव से कुछ भिन्न चीज है। पर बुनियादी शिक्षा की मूल कल्पना ८ से १४ साल के बालकों के लिये प्रत्यक्ष काम के माध्यम से शिक्षा देने की थी और कार्यानुभव की धारणा इसी विचार का व्यावहारिक कथन है।

कार्यानुभव में मेरी दिलचस्पी असल में बुनियादी शिक्षा में मेरी लम्बी दिलचस्पी के कारण ही है। मैं जानता हूँ कि बुनियादी शिक्षा लगभग मर चुकी है। मात्र संग्रहालयकी वस्तु बन चुकी है। इसीलिये कोठारी कमीशन के द्वारा कार्यानुभव के विचार के रूप में मृत इस विचार के पुनर्जागरण से प्रसन्नता ही हुई। कुछ समय पहले मुझे बम्बई में एक भाषण माला के अन्तर्गत बोलने का अवसर प्राप्त हुआ था, जब मैंने कहा था कि कोठारी कमीशन ने बुनियादी शिक्षा का नाम न लेते हुये भी कार्या-

नुभव के रूप में उसे फिर से जीवन दान देकर आज के विश्व शिक्षा-चिंतन में ला खडा कर दिया है। अभी मैं दुनिया में तब से हुए परिवर्तनों और गलतियों के सन्दर्भ में अपने देश के लिये कार्यानुभव के क्रियान्वियन के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। मैं पहले यह स्पष्ट कर दूँ कि कार्यानुभव क्या है। कोठारी कमिशन की रिपोर्ट के आधार पर इसके चार पहलू गिनाये सकते हैं।

कार्यानुभव क्या है :

१ किसी भी अच्छी और उद्देश्यपूर्ण शिक्षा में कार्यानुभव का अर्थ चार बातों का समावेश होना चाहिए। साक्षरता, गणित, कार्यानुभव और समाज-सेवा।

२ कार्यानुभव का अर्थ वास्तविक जीवन की परिस्थितियों मे, स्कूल में, घर में किसी कारखाने म, किसी यन्त्र शाला मे, किसी खेत पर अन्य किसी उत्पादक स्थितिमे उत्पादक कार्य म भागीदारी है।

३ शैक्षिक कार्यक्रम तकनीकी, उद्योगीकरण और खेती सहित अन्य उत्पादन प्रक्रियायें व्यवहार मे विज्ञान से जुडी होनी चाहिये।

४ कम से कम माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं मे कार्यानुभव का नतीजा छात्र के लिये कुछ कमाई में भी होना चाहिये।

अब यदि हम पिछले १०० साल मे शैक्षिक विकास के इतिहास पर एक नजर डालें तो एक आश्चर्य जनक तथ्य सामने आता है कि हमारे ये सारे नये नये प्रयास हमारी परम्परागत शिक्षा प्रणाली पर जरा भी असर डालने मे असमर्थ रहे हैं। सिद्धान्त और व्यवहार में एक स्थाई चौड़ी खाई अभी भी विद्यमान है। एक तरफ तो शिक्षा को अत्यधिक उच्च बौद्धिक स्तर प्रदान करने वाले अनेक नये प्रतिभाशाली विचार है, शिक्षा को एक उच्चस्तरीय शास्त्रका स्तर प्रदान करने वाला साहित्य है जो कि आज ससार के मान्य विश्वविद्यालयों मे स्थान पा चुका है, अनेक अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त नयी नयी शोधों और तज्जनित विवादों को फैलाने वाली शैक्षिक पत्र-पत्रिकायें हैं, और ये सब बातें केवल एक कल्पना लोक मे रहने वाले दिमागों की दार्शनिक अनुभूतियाँ मात्र नही हैं बल्कि इसके विपरीत इन्हे व्यवहारिक कार्यक्रमों में बदलने मे भी सफलतायें मिली हैं। इनसे नीति निर्धारण करने और उनके क्रियान्वयन के लिये मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप मे उनकी उपादेयता भी सिद्ध हुई है। किंडर गार्डन, मोंटसरी पद्धति, डाल्टन योजना, प्राजेक्ट पद्धति आदि प्रयोग तुरन्त ही इस दृष्टि से नजर के सामने आते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान और खासकर शैक्षिक-परिमाप के क्षेत्र में प्राप्त की गई उपलब्धियाँ तो अत्यन्त महत्व की हैं ही।

क्रिया या ऊसरपन -

यह सब उन दो विशाल धाराओं मे से, जिनके मिलन को ही शिक्षण कहते हैं, एक धारा है। लेकिन आज य दोनो धारायें कही मिलती दिखाई नही देती। दूसरी धारा उन हजारों लाखों स्कूलों कालेजो और उनमे इकट्ठे किये गये लाखो करोडो

बच्चों और शिक्षकों की है जिन्हें हम सुबह ९ या १० से शाम ३ या ४ बजे तक किसी एक इमारत के बंद कमरे में इकट्ठा कर देते हैं और उन्हें कुछ समूह में बाँटकर एक प्रौढ़ की निगरानी में देकर ४–५ घंटे की इस कैद में उन्हें कुछ यह चीज सिखाने की कोशिश करते हैं, जिसे ज्ञान कहा जाता है किन्तु जो कि असल में भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और ऐसी ही अन्य चीजों का एक 'कबाब' जैसा ही होता है। यह विशाल शिक्षा यन्त्र ऐसे लम्बे कारवां की तरह, जो अपने आसपास होनेवाले परिवर्तनों से एकदम बेखबर है, यत्न पूर्वक आगे बढ़ता जा रहा है।

रचनात्मक विचार के इस अभाव के साथ साथ क्रिया के क्षेत्र में व्याप्त उसरपन की यह स्थिति अत्यन्त भयावह है। इसका क्या कारण है कि इस तरह के अनेक नये शिक्षा विचार भी परम्परागत शिक्षा धाराको प्रभावित करने में असफल रहे हैं? शिक्षा में प्रत्येक नवीन खोजों का एक ही इतिहास रहा है। हर नवीन विचार को शैक्षिक परिवर्तनों का स्वर्ण काल बताकर स्वागत किया गया। कुछ समय तक फिर कक्षाओं में शिक्षक उत्साहपूर्वक उसका प्रयोग करते रहे किन्तु धारा जल्दी ही मंद पड़ गई। और इस प्रकार धरती को हिला देने वाला यह भूचाल एक मामूली झटके में परिणित हो गया, और हमारा शिक्षा-शकट पुनः उसी लीक पर चलता रहा और हम फिर से पुराने स्वप्न को याद करते रहे। आज इस तरह के सपने कहीं कहीं लगन शील कार्यकर्ताओं के कारण कुछ शिक्षा प्रयोगों के रूप में जारी भी हैं। आज हम कहीं कहीं कोई आदर्श मोंटेसरी विद्यालय पाते हैं। यद्यपि यदि फिर स्कूलों में विशाल समूह पर नजर डालें, जाद तो वहाँ मांटेसरी का कोई चिन्ह भी नहीं मिलेगा। २०–२५ साल पहले केरल और मद्रास में, और वस्तुतः सारे देशमें, बुनियादी शिक्षा का एक गौरवपूर्ण युग आरम्भ हुआ था।

शैक्षिक नखलिस्तान - तैयार तकनीकी की आवश्यकता

किन्तु आज वह भी मात्र नाम पर ही बाकी रह गया है। कुछ संस्थाएँ, जैसे कि 'गांधी ग्राम', आज भी अपने निष्ठावान कुछ कार्यकर्ताओं को लेकर एक सही लगन के साथ काम पर लगी हुई हैं, यद्यपि उन पर भी विश्वविद्यालयी ढाँचे की सीमायें लाद दी गई हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी मानव जाति की असफलताओं के बावजूद भी अभी कुछ आशा बाकी है। असल में कोई भी नवीन शिक्षा विचार अभी दुनिया से मर नहीं गया। और अभी भी रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह कुछ ऐसी जगहें हैं जहाँ समस्त रेगिस्तान को हरियाली में बदलने का प्रयास जारी है। हमको इन प्रयासों का मूल्य नहीं आँकना चाहिये। कुछ स्थानों पर इस प्रकार से उल्लेखनीय अच्छा काम हो रहा है। किन्तु व्यापक स्तर पर शिक्षा में व्याप्त इस जड़ता और खाई का मूल कारण क्या है हम इसकी खोज करनी चाहिये।

ऐसे कुछ चंद लोग प्राप्त और एकत्र किये जा सकते हैं, जिन्हें कुछ साधन और सुविधा देने पर वे कुछ अच्छा काम कर सकते हैं। किन्तु हजारों स्कूलों में लाखों

बच्चा और युवको को इस तरह की शिक्षा और प्रेरणा देनेवाले लोग काफी तो नहीं मिल सकते। इसलिये हम किसी भी नये विचार को अधिकतम संख्या में शिक्षको को पचन लायक फार्मूले के रूपमे रखना होगा। बिना ऐसा किये उन्हे केवल सिद्धान्त देकर, उन्हे प्रशिक्षण मे कुछ शास्त्रीय पद्धतियाँ सिखाकर आप उनसे ऊँचे स्तर की प्रतिभा की अपेक्षा नही कर सकते। ऐसी प्रतिभायें सीमित हैं। इसलिये उन्हे तैयार तकनीकें उपलब्ध करनी चाहिये। उदाहरण के लिये जान डयूई जीवन-परक शिक्षा का मसीहा है। किन्तु यदि आप किसी एक सामान्य प्राथमिक शिक्षक का डयूई की किताबों से कुछ तक देकर कहे कि उसे प्रत्यक्ष जीवन के माध्यम से शिक्षा देनी चाहिये तो वह क्या करेगा। डयूई के अनुयाइयो ने इस प्रकार के अनेक बचकाने प्रयास करके उसके समस्त सिद्धान्तो का ही अनादर किया है। इन असंख्य अनुयाइयो मे, किलपैट्रिक ही ऐसा था जिसने उन सिद्धान्तो मे से एक कोई बोधगम्य शकल—प्रौजक्ट-पद्धति के रूप मे तैयार करने में सफलता प्राप्त की। यह पद्धति अभी भी थोडी बहुत मानी और चलाई जाती है किन्तु यह भी पर्याप्त किलपैट्रिक के अभाव में अब लगभग भुलाई जाने लगी है। किसी एक प्राजक्ट की खोज और उसको सफलता पूर्वक क्रियान्वित करके आप शिक्षको को उसकी उपयोगिता समझा सकते हैं। आप किन्तु उनमें से प्रत्येक को अपनी कक्षा के लिये एक नया प्राजक्ट तैयार करने योग्य नही बना सकते। इसके लिये विशेष प्रशिक्षण प्राप्त तज्ञो का एक अलग समूह ही चाहिये। बुनियादी शिक्षा के ह्रास का एक कारण यह भी था कि उसमें हर शिक्षक को उद्योग के साथ शिक्षण का समवाय करने को कहा गया। इसके विपरित कक्षा में पढाने की हरबट पद्धति इसलिये सफल हो गई (और असल मे तो आज उसकी सफलता एक प्रकार का खतरा भी बन गई है) क्योंकि उसे सामान्य समझने योग्य पाँच कदमो के एक फार्मूले के रूप में रखा गया।

कार्यानुभव की समस्या

शैक्षिक प्रवर्तनो को यदि प्रयोगशाला की वस्तु मात्र न रखकर उन्हे शिक्षा के वास्तविक स्थान यानि कक्षाओ मे लाखो शिक्षको व विद्यार्थियो तक पहुँचाना हो तो फिर उन्हे लाखो शिक्षको द्वारा काम मे लाये जा सकने वाले उपयुक्त उपकरणोस युक्त किट्स अथवा बक्सो के साथ कार्यकारी पद्धतियो में बदलना होगा। शिक्षा की ये नवीनतायें विभिन्न प्रकार की हैं, उनमे से कई आज विश्व चिन्तन की मुख्य धारा हैं। उसी प्रकार कार्यानुभव की धारणा भी है। मोटे तौर पर इसका इतिहास दूसरे नये विचारो के ही समान है। विभिन्न देशो में विभिन्न लोग कार्यानुभव पर प्रयोग कर रहे हैं। किन्तु विश्व भर में कोई भी आदमी प्रचलित शिक्षा धारा के साथ इसके समन्वय की समस्या का हल नही ढूँढ पाया है। यहाँ भारत मे इस असफलता से हमे निराश नही होना चाहिये और न ही विदेशो मे प्राप्त तथा कथित सफलता से

अभिमुख ही होना चाहिए। यह नहीं है कि कुछ विदेशित देश कुछ मामलों में, खासकर शोध अथवा बौद्धिक शिक्षा में ऊँचे स्तर में निश्चित तौर पर हमसे आगे हैं। किन्तु कार्यानुभव के मामलों में वे भी अभी अंधेरे में टटोल रहे हैं। हाँ। उनमें और हममें एक फर्क अवश्य है कि वे निष्ठापूर्वक मार्ग खोजने में लगे हुये हैं, जब कि हमारी सारी शक्ति बातें करने में खतम होती है। किन्तु असल में हमें कार्यानुभव की उपयोगिता पर बहस करने में समय नष्ट नहीं करना चाहिये। हम यह मान लें कि यह अच्छी चीज है और हमें इसकी आवश्यकता है। हम हमारे प्रयासों में असफल हो सकते हैं इस प्रतीति के साथ हम बैठें और मिलकर कोई योजना करें। किन्तु हमारी यह निष्ठा दृढ़ हो कि हमारी समस्याओं का यही एक मात्र हल है। राष्ट्र-निर्माण के प्रयासों में हमारी असफलता का एक बड़ा कारण यह भी है कि बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनको हम जानते ही नहीं। किन्तु अपने अज्ञान का हम स्वीकार करने को तैयार नहीं। शिक्षा का क्षेत्र भी हमारी इस बुराई का एक शिकार है। शिक्षा के पंडित अभी तक केवल ऐसे ऊँचे लगने वाले शब्दों अथवा वाक्यों, जो या तो नितांत निरर्थक हैं या स्वयं बोलने वाले ही जिन्हें ठीक ठाक नहीं समझते, द्वारा किसी प्रकार एक भ्रम बनाये रखे हैं। फिर भी मैं यहाँ विचार के लिये कुछ सुझाव रखना चाहता हूँ।

कुछ सुझाव

कार्यानुभव के किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि कार्य में लगा प्रौढ़ समुदाय उसमें सहभागी हो और उसकी विद्यालय में व्यवस्था हो। यदि आप स्कूल में ही कोई वर्कशाप, कोई उद्योग अथवा फार्म खड़ा कर दें तो उससे कार्यानुभव नहीं सध सकता। छात्र और शिक्षक यदि कार्यानुभव साधना चाहें तो उन्हें स्कूल से बाहर समुदाय के प्रत्यक्ष काम में सहभागी बनना होगा। यह हम बिना किसी बाहरी मदद के भी कर सकते हैं। एक छोटे पैमाने पर किन्तु नैरन्तर्य में काम शुरू करें। यह मानकर चलें कि आरम्भ में सभी शिक्षकों और छात्रों का सहयोग नहीं मिलेगा। हम पहले स्कूल के निकट रहने वाले उन छात्रों और शिक्षकों का सहयोग मांगेंगे जो इस प्रोजेक्ट के लिये अपना अतिरिक्त समय दे सकते हैं। इन सबकी एक सहकारी समिति रजिस्टर की जाय जिसमें शिक्षक हिस्सेदार नहीं होंगे, सभाओं में बोलने और बैठने के अधिकारी, मत न देने वाले सदस्य के रूप में रहेंगे। प्रोजेक्ट का काम समिति की जिम्मेदारी माना जाय। कार्यकारी खर्च वहन करने के लिए सोसायटी की शेयर पूंजी से काम चलाया जा सकता है। हमारे अधिकांश स्कूल देहातों में हैं इसलिए उनका कार्यानुभव का कार्य भी खेती अथवा किसी मुख्य स्थानीय धंधे पर आधारित हो। उदाहरण के लिये केरल के लिये टपीओका (एक प्रकार का कंद) की खेती की जा सकती है। इसके लिये स्कूल की खेती लगाकर किसानों से लीज पर जमीन ली

जा सकती है। जिसे छोटे छोटे हिस्सों में अलग अलग छात्र-टोलियों में बाँट दिया जाय। उपज का एक भाग भूमि मालिक को लगान के रूप में दिया जा सकता है और उससे अनुरोध किया जा सकता है कि वह अपने वाले टुकड़े को, खासकर रात को थोड़ा रखवाली भी कर लिया करे। ऐसे सब किसानों को स्कूल सोसायटी को कार्य समिति में मत न देने वाले सदस्य के रूपमें रखा जा सकता है।

किन्तु शहरों में समस्या कुछ टेढ़ी है। कार्यानुभव के संकुचित और विस्तृत दोनों अर्थ हैं। संकुचित अर्थ में इसका मतलब वस्तु-उत्पादन में भागीदारी है। किन्तु व्यापक अर्थ में इसका मतलब समाज-सेवा में भागीदारी होता है। समाज सेवा का मतलब केवल गंदी बस्तियों (स्लम) में अथवा सहायतार्थी के घर जाकर कुछ मदद करना मात्र नहीं है। इसका मतलब व्यवस्थित और स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए कुछ संगठन सेवायें, जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, यातायात डाक सेवायें, पुलिस अथवा व्यापारिक सेवायें आदि करना भी है। इसलिए यद्यपि इनमें से कई क्षेत्र छात्रों की सीमा से बाहर पड़ते हैं किन्तु यहां वे निश्चित सेवा-क्षेत्र हैं जहाँ कुछ बड़े, जैसे कि हाईस्कूल आदि के, अपनी और कुछ समाज की भी उपयोगी सेवा कर सकते हैं। सम्भव है पुलिस-सेवा का काम छात्र न कर सकें किन्तु यातायात के नियमन का कार्य वे अब कर सकते हैं। व्यापार में तो तौलना मापना गांठें बनाना आदि अनेक काम हैं जो कि छात्रों पर पूरी तरह छोड़ जा सकते हैं। इसी तरह से सार्वजनिक निर्माण कार्य में, जैसे सर्वे नापतौल का काम और पोस्ट आफिस का काम भी छात्र बखूबी कर सकते हैं। इसके लिए अधिकारियों की अनुमति और जनता का स्वैच्छिक सहयोग मिल जाय तो विद्यार्थियों को इस तरह के कामों में लगाना कोई कठिन नहीं होगा। इस तरह जो छात्र काम करने लगेंगे उसके लिए उन्हें पारिश्रमिक भी दिया जायगा जो सोसायटी की आमदनी होगी।

अन्य विकल्प : विदेशी तकनीकी का आयात नहीं

इस कार्यक्रम में अगर कोई कठिनाई हो तो इसका विकल्प भी है। हम स्कूल में ही समाजपयोगी वस्तु निर्माण करने का वर्कशाप खड़ा कर सकते हैं। यह विद्यालयों में आज कल चलायी जाने वाली वर्कशाप से भिन्न होगी। हमारी फैक्ट्री मन चाही वस्तु न बना कर समाज की माँग पर वस्तु-निर्माण करेगी। इसमें यद्यपि समुदाय का कार्य प्रत्यक्ष सहकार्य तो नहीं हो सकेगा फिर भी औजार से पूर्ति के लिए आर्डर प्राप्त करने के लिए किए गए सम्पर्कों से काफी सन्तोष जनक सहकार प्राप्त किया जा सकता है। ये सारे प्रयोग करने पड़ेंगे। विदेशों से बनी बनाई शैक्षिक तकनीकी का आयात यहाँ नहीं किया जा सकता है। हम उनसे लाभ ले सकते हैं। जैसे ब्रिटेन में कार्यानुभव वाले एक एक

सेकन्डरी स्कूल में नगरपालिका समिति से एक पुराने मकान की मरम्मत करने का काम लिया, किन्तु शीघ्र ही ट्रेड युनियन की तरफ से इसका विरोध हुआ और अन्त में इस शर्त पर स्कूल को काम करने दिया गया कि वह भविष्य में एसा कोई काम नहीं लेगा। ट्रेड युनियन के विरोध का कारण यह था कि यदि स्कूलो से इस प्रकार के प्रशिक्षित श्रमिक काम करने लगेंगे तो बहुत सारे मजदूर बेकार हो जायेंगे। किन्तु श्रम क्षेत्र के अलावा भी कार्यानुभव के कार्यक्रम का विरोध हो सकता है। इसलिए सावधानी से योजना बनाने की जरूरत है। ब्रिटेन में अब १९७३ में एक ऐसा कानून बनाया गया है जिसमे सकन्डरी स्कूल के अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियो को कुछ कार्यानुभव प्राप्त करने के लिए कार्य देने का प्रावधान है। इसलिए हम यह न मान लें कि कार्यानुभव कोई सरल चीज है या हम विदेशो से इसकी सहज नकल कर सकते हैं। असल में तो यह बुनियादी शिक्षा से भी अधिक जटिल समस्या है।

पुनः गांधी विचार ही विकल्प

इन सब समस्याओ पर विचार करते-करते शिक्षा-शास्त्री एक विचार तक पहुँचे हैं। अब यह नयी शिक्षा विचार स्थाई शिक्षा या जीवन भर की शिक्षा' कहा जा रहा है। गांधीजी ने भी सन १९४५ में भी बुनियादी शिक्षा की यही परिभाषा की थी। आज कनाडा स्वीडन युनस्को ई सी सो ऊँची शिक्षा पर कार्नेगी कमीशन उन सबने इसी नये विचार पर जोर देना आरम्भ कर दिया है। इसकी मुख्य बात है कि शिक्षा को जीवन के पहले १५-२० सालो तक ही सीमित करने के बजाय अनेक विकल्पो और मध्यान्तरो के साथ जीवन भर सीखने की प्रक्रिया में बदला जाय। यह किस प्रकार हो अभी इस पर बहस हो रही है। कार्यानुभव के लिए इस नय शिक्षा-दर्शन का अति महत्व है। कार्यानुभव को परम्परागत शिक्षा के साथ समन्वित (इन्टीग्रेटेड) करने में असफल होने पर अब लोगों ने क्रम से काम और शिक्षा को वैकल्पिक क्रम में बिठाने की व्यवस्था पर चिन्तन करना आरंभ कर दिया है। पहले वे सोचते थे कि कार्यानुभव और शिक्षानुभव को यदि साथ किया जा सके तो उसमे से शिक्षा का उद्दिष्ट एक आदर्श मिश्रण, पैदा होगा। किन्तु अब वे सोचते हैं कि काम करने और सिखाने के वैकल्पिक क्रम लागू करने से भी वे ही नतीजे आएँगे। शैक्षिक-शोध की महायात्रा में लगे हुए प्रतिभाशाली लोगो के लिए अब यही अगला पडाव है।

युग-युग से बहती धारा !

—मदालसा नारायण

युग-युग से बहती धारा है
मानव समाज का शुभ चरित्र
यह महिमा अपरम्पार है।
युग-युग से......
ये सूर्य चन्द्र का उदय अस्त
नभ तारकगण मुस्कान मस्त
हँसना ही सार असारा है!
युग-युग से ......
पंछीगण नित कलरव करते
आसमान में विचरण करते
रंग रूप न पारावार है
युग-युग से ......
यह उच्च हिमालय की महिमा
भारत के गौरव की सीमा
जो चढ़ आया वो हारा है
युग-युग से ......
ये कीट पतंग भृंग मकरी
हैं असंख्य जीव गली संकरी
फिर भी तो प्राणाधारा है
युग-युग से ......
पशु छोटे और बड़े भारी
गज सिंह अश्व की असवारी
जय हिंद जगत् से न्यारा है
युग-युग से ....
दो गोलाओं का एक बना
हो आपस में विश्वास घना
जय जगत हिन्द का नारा है
युग-युग से ......
ये राष्ट्र गगन की दिव्य ध्वजा
ये सुभग तिरंगा सजा धजा
लहराता भाग्य सितारा है
युग-युग से ......

रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं० ५

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

द्विमासिक

नयी तालीम और ग्रामीण जनता से सम्बन्ध

तेजस्वी विद्या

रचनात्मक-कार्यक्रम में समग्र दृष्टि

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २३] जून-जुलाई, १९७५ [अंक : [illegible]

मिठास में वृद्धि होती रहे। उसमें जरा भी कटुता का अंश शामिल न हो जाय। यह सावधानी रखना हम सभी के लिये नितान्त आवश्यक है।

इस दृष्टि से जून के प्रारम्भ में उत्तर भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का जो सम्मेलन कौसानी (जिला अल्मोडा) में हुआ था वह बहुत उपयोगी रहा। इस सम्मेलन में उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर के लगभग ५० चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ता शरीक हुए थे। वे 'अनासक्ति आश्रम' में चार दिन तक उसी स्थान पर रहे जहाँ जून सन् १९२९ में दस दिन रहकर महात्मा गांधी ने गीता के अनुवाद को अन्तिम रूप दिया था और एक महत्वपूर्ण भूमिका भी लिखी थी। सुबह और शाम की प्रार्थना के पश्चात् चार दिनों तक गांधीजी के 'अनासक्ति योग' का सामूहिक पाठ भी किया गया। 'अनासक्ति आश्रम' के सात्विक व आध्यात्मिक वाता- वरण में कई विषयों पर गहन चर्चायें हुई और कुछ मतभेद होते हुए भी अन्त में सर्वानुमति से एक 'निवेदन' पारित किया गया जो इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है। इस निवेदनमें समग्र-दृष्टि व अन्त्योदय के लक्ष्य पर विशेष बल दिया गया है। हम आशा करते हैं कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ता इसे ध्यान से पढ़ेंगे।

मध्यप्रदेश शिक्षा सम्मेलन

गत तारीख २४ और २५ मई को गांधी भवन, भोपाल में मध्यप्रदेश का पहला राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था। दो दिन तक सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों पर विस्तृत चर्चा की और सर्व सम्मति से एक वक्तव्य स्वीकृत किया गया जिसे इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

पाठकों को स्मरण होगा कि इस प्रकार के राज्य-स्तरीय शिक्षा सम्मेलन पहले ही तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात और हरियाणा में हो चुके हैं। हमें खुशी है कि मध्यप्रदेश शासन ने भी इस काम में दिलचस्पी दिखाई। यह सम्मेलन यद्यपि मध्यप्रदेश गांधी स्मारक निधि व आचार्यकुल के संयुक्त तत्वावधान में किया गया था, फिर भी मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग के सभी प्रमुख अधिकारियों ने उसमें बड़ी लगन से हिस्सा लिया। उसमें राज्य के शिक्षा-मंत्री श्री अर्जुनसिंह अस्वस्थ होने के कारण न आ सके, किन्तु मुख्य मंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी ने सम्मेलन के अंतिम अधिवेशन में शामिल होकर अपने विचार प्रगट किये और आश्वासन दिलाया कि सभी सिफारिशों पर गम्भीरता से विचार किया जायेगा।

हम आशा रखते हैं कि इस सम्मेलन के सुझावों पर मध्यप्रदेश शासन द्वारा शीघ्र ही अमल किया जायगा, ताकि राज्य की शिक्षण संस्थाओं में कुछ क्रांतिकारी कदम शीघ्र उठाये जा सकें।

'रैगिंग' की कुरीति

हमें समाचारपत्रों में पढ़कर बहुत संतोष हुआ कि भारत सरकार ने सभी राज्य शासनों को आदेश दिया है कि शिक्षण-संस्थाओं में रैगिंग की भयंकर बुराई

को बड़ी सख्ती से रोका जाय। हमने हाल ही में यह भी पढ़ा था कि रैगिंग के कारण खड़कवासला की डिफेंस एकेडमी में एक विद्यार्थी की मृत्यु हो गई। यह कुरीति हमारे कालेजों और युनिवर्सिटीयों में काफी मात्रा में फैल चुकी है और अब उसे जड़ से उखाड़ फेंकना बिलकुल जरूरी है।

भारत सरकार ने अपने आदेश में इसका भी संकेत किया है कि यदि आवश्यक हो तो रैगिंग करनेवाले विद्यार्थियों को 'मीसा' के अन्तर्गत सजा दी जाय। जो हो, हम आशा करते हैं कि राज्य सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी, ताकि कालेजों और विश्वविद्यालयों में शुरू होने वाले नये सत्र के अवसर पर इस तरह की शर्मनाक घटनायें न हों। यह कुरीति भयानक है और उसका अन्त होना ही चाहिए।

आन्ध्रप्रदेश शासन की चेतावनी।

*हमें यह जानकर खुशी हुई कि आन्ध्रप्रदेश के शिक्षा-मन्त्री ने सभी शिक्षण-*संस्थाओं को गम्भीर चेतावनी दी है कि छात्रों को प्रवेश देते समय गैर-कानूनी ढंग से चन्दा लेनेवाली संस्थाओं के विरुद्ध कड़ी कार्यवाई की जाएगी और यदि आवश्यकता हुई तो 'मीसा' के प्रावधान का भी उपयोग किया जाएगा। हमारे शिक्षा-क्षेत्र में यह बुराई भी काफी प्रमाण में फैल गई और उसे बन्द करना जरूरी है। कई मेडिकल कालेजों में तो हजारों रुपये लेकर ही प्रवेश दिया जाता है। अगर शिक्षण-संस्थाओं में ही भ्रष्टाचार ने घर कर लिया तो फिर सार्वजनिक जीवन से भ्रष्टाचार को मिटाना असम्भव हो जाएगा।

हमें उम्मीद है कि आन्ध्रप्रदेश की तरह अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार की हिदायतें दी जायेंगी, ताकि कम से कम शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह का भ्रष्टाचार पनपने न पावे।

सम्पादक–मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २३
अक १०–११
प्रति अकका मूल्य २ रु प्रति

अनुक्रम

जून–जुलाई, '७५

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी सख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

आपसी हृदय-भेद न हो :

वर्ष : २३
अंक : १०-११

हम देख रहे हैं कि पिछले कुछ महीनों में कई कारणों से रचनात्मक कार्यकर्ताओं में भी आपसी हृदय-भेद पैदा हो रहा है। यह सचमुच बहुत ही दुःखद व शोचनीय घटना है। जिस समय देश के राजनीतिक दल, सार्वजनिक संस्थायें व धार्मिक संगठन भी पारस्परिक मतभेद के कारण टूट रहे हों, उस समय कम से कम गांधी परिवार के सदस्यों को तो एकता व प्रेम-भाव अधिक मजबूत बनाना चाहिये, ताकि देश में सहयोग व सद्भावना के वातावरण का निर्माण किया जा सके। लेकिन अगर सर्वोदय आन्दोलन के कार्यकर्ता ही आपसी द्वेष व मन-मुटाव के शिकार बन जायें तो इससे अधिक रंज की बात और क्या होगी ?

ऋषि विनोबा ने बार-बार समझाया है कि हमें मुक्त मन से चिन्तन करना चाहिये और आपसी मतभेदों को दूर करने की दृष्टि से खुली चर्चा कर लेना भी हितकर है। लेकिन शर्त यह है कि इस गम्भीर और मुक्त चर्चा के साथ आपसी प्रेम व आदर बढ़ता जाय, घटे नहीं। इस सिलसिले में विनोबाजी अकसर होमियोपैथी की दवाओं का उदाहरण देते हैं। इन दवाओं को जितना बारीकी से पीसा जाय उनकी शक्ति या पोटेन्सी उतनी ही बढ़ती ही जाती है। लेकिन दवा घोटते समय उसमें शक्कर मिलाना बिलकुल जरूरी होता है। अगर यह शक्कर न मिलाई जाय तो दवा अमृत के बजाय जहर बन जाती है। इसी तरह हम विभिन्न विषयों पर खुले दिल और दिमाग से चर्चा अवश्य करें, लेकिन विचार-विनिमय करते समय हमारी आपसी

मिठास में वृद्धि होती रहे। उसमें जरा भी कटुता का अंश शामिल न हो जाय। यह सावधानी रखना हम सभी के लिये नितान्त आवश्यक है।

इस दृष्टि से जून के प्रारम्भ में उत्तर भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का जो सम्मेलन कौसानी (जिला अल्मोड़ा) में हुआ था वह बहुत उपयोगी रहा। इस सम्मेलन में उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर के लगभग ५० चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ता शरीक हुए थे। वे 'अनासक्ति आश्रम' में चार दिन तक उसी स्थान पर रहे जहाँ जून सन् १९२९ में दस दिन रहकर महात्मा गांधी ने गीता के अनुवाद को अन्तिम रूप दिया था और एक महत्वपूर्ण भूमिका भी लिखी थी। सुबह और शाम की प्रार्थना के पश्चात् चार दिनों तक गांधीजी के 'अनासक्ति योग' का सामूहिक पाठ भी किया गया। 'अनासक्ति आश्रम' के सात्विक व आध्यात्मिक वातावरण में कई विषयों पर गहन चर्चायें हुई और कुछ मतभेद होते हुए भी अन्त में सर्वानुमति से एक 'निवेदन' पारित किया गया जो इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है। इस निवेदनमें समग्र-दृष्टि व अन्त्योदय के लक्ष्य पर विशेष बल दिया गया है। हम आशा करते हैं कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ता इसे ध्यान से पढ़ेंगे।

मध्यप्रदेश शिक्षा सम्मेलन

गत तारीख २४ और २५ मई को गांधी भवन, भोपाल में मध्यप्रदेश का पहला राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था। दो दिन तक सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों पर विस्तृत चर्चा की और सर्व सम्मति से एक वक्तव्य स्वीकृत किया गया जिसे इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

पाठकों को स्मरण होगा कि इस प्रकार के राज्य स्तरीय शिक्षा सम्मेलन पहले ही तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात और हरियाणा में हो चुके हैं। हमें खुशी है कि मध्यप्रदेश शासन ने भी इस काम में दिलचस्पी दिखाई। यह सम्मेलन यद्यपि मध्यप्रदेश गांधी स्मारक निधि व आचार्यकुल के संयुक्त तत्वावधान में किया गया था, फिर भी मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग के सभी प्रमुख अधिकारियों ने उसमें बड़ी लगन से हिस्सा लिया। उसमें राज्य के शिक्षा-मंत्री श्री अर्जुनसिंह अस्वस्थ होने के कारण न आ सके, किन्तु मुख्य मंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी ने सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन में शामिल होकर अपने विचार प्रगट किये और आश्वासन दिलाया कि सभी सिफारिशों पर गम्भीरता से विचार किया जायेगा।

हम आशा रखते हैं कि इस सम्मेलन के सुझावों पर मध्यप्रदेश शासन द्वारा शीघ्र ही अमल किया जायगा, ताकि राज्य की शिक्षण-संस्थाओं में कुछ क्रांतिकारी कदम शीघ्र उठाये जा सकें।

'रैगिंग' की कुरीति

हमें समाचारपत्रों में पढ़कर बहुत संतोष हुआ कि भारत सरकार ने सभी राज्य शासनों को आदेश दिया है कि शिक्षण-संस्थाओं में रैगिंग की भयंकर बुराई

को बड़ी सख्ती से रोका जाय। हमने हाल ही में यह भी पढ़ा था कि रैगिंग के कारण खड़कवासला की डिफेन्स एकेडमी में एक विद्यार्थी की मृत्यु हो गई। यह कुरीति हमारे कालेजों और युनिवर्सिटीयों में काफी मात्रा में फैल चुकी है और अब उसे जड़ से उखाड़ फेंकना बिलकुल जरूरी है।

भारत सरकार ने अपने आदेश में इसका भी संकेत किया है कि यदि आवश्यक हो तो रैगिंग करनेवाले विद्यार्थियों को 'मीसा' के अन्तर्गत सजा दी जाय। जो हो, हम आशा करते हैं कि राज्य सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी, ताकि कालेजों और विश्वविद्यालयों में शुरू होने वाले नये सत्र के अवसर पर इस तरह की शर्मनाक घटनायें न हों। यह कुरीति भयानक है और उसका अन्त होना ही चाहिए।

आन्ध्रप्रदेश शासन की चेतावनी।

हमें यह जानकर खुशी हुई कि आन्ध्रप्रदेश के शिक्षा-मंत्री ने सभी शिक्षण-संस्थाओं को गम्भीर चेतावनी दी है कि छात्रों को प्रवेश देते समय गैर-कानूनी ढंग से चन्दा लेनेवाली संस्थाओं के विरुद्ध कड़ी कार्यवाई की जाएगी और यदि आवश्यकता हुई तो 'मीसा' के प्रावधान का भी उपयोग किया जाएगा। हमारे शिक्षा-क्षेत्र में यह बुराई भी काफी प्रमाण में फैल गई और उसे बन्द करना जरूरी है। कई मेडिकल कालेजों में तो हजारों रुपये लेकर ही प्रवेश दिया जाता है। अगर शिक्षण-संस्थाओं में ही भ्रष्टाचार ने घर कर लिया तो फिर सावजनिक जीवन से भ्रष्टाचार को मिटाना असम्भव हो जाएगा।

हमें उम्मीद है कि आन्ध्रप्रदेश की तरह अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार की हिदायतें दी जायेंगी, ताकि कम से कम शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह का भ्रष्टाचार पनपने न पावे।

शिक्षा में अपव्यय :

केन्द्रीय शिक्षा शोध और प्रशिक्षण संस्थान ने राष्ट्रीय जन सहयोग और बाल विकास के अन्तर्गत एक पुस्तिका प्रकाशित की है जिसमें इस तथ्य की घोषणा की गयी है कि भारत में ६० प्रतिशत से अधिक बच्चे चार अथवा पाँच वर्ष की जूनियर प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पहले ही स्कूल छोड जाते हैं। प्रत्येक १०० छात्रों में से जो कक्षा १ में प्रवेश करते हैं, आधे से भी कम लडके ही कक्षा ५ या ६ में प्रवेश कर पाते हैं और केवल २४ विद्यार्थी कक्षा ८ की अर्थात् जूनियर हाईस्कूल (सीनियर बेसिक) की शिक्षा समाप्त कर पाते हैं। बालिकाओं के सम्बन्ध में यह संख्या और भी कम है। कक्षा १ में प्रवेश करने वाली १०० बालिकाओं में केवल ३० लडकियाँ कक्षा ५ में प्रवेश कर पाती हैं।

इस क्षति के अनेक कारण हैं, परन्तु निश्चित रूप से सबसे बडा कारण आर्थिक है। इस क्षति का लगभग ६५ प्रतिशत कारण पालकों की गरीबी है।

इस रिपोर्ट में लिखा गया है कि शहरों की बस्तियों में (स्लम एरिया) रहने वालों में यह प्रतिशत सर्वाधिक है। अकाल पीडित गाँवों में भी यह प्रतिशत सबसे अधिक है। इन बस्तियों में रहनेवाले अधिकांश हाथ से काम करने वाले मजदूर, कारीगर, भंगी, मेहतर, धोबी आदि होते हैं, जिनके बच्चों को घर के धन्धों में लगना पडता है, जिससे वे बार-बार गैर हाजिर होते हैं और धीरे धीरे स्कूल ही छोड देते हैं। तथ्य तो यह है कि अच्छी मजदूरी पाने वाले व्यक्ति के लिये भी अपने बच्चे को स्कूल भेजना बहुत खर्चीला सिद्ध होता है। यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क है फिर भी मजदूरों को अपने बच्चों के पहनने और खाने का और किताब-कापी का खर्चा तो देना ही पडता है। अगर ये बच्चे घर के काम में माँ-बाप का हाथ बटाते हैं अथवा शहरों के छोटे मोटे होटलों में अथवा दूकानों पर काम करते हैं अथवा घरों में चौका बर्तन, झाडू पोंछे का काम करके कुछ पैदा कर लेते हैं तो इससे कुटुम्ब के बजट में ऐसा इजाफा होता है जिसे नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। इस अतिरिक्त आय के बिना कुटुम्ब का काम नहीं चलता। अत लडकों को स्कूल भेजना बन्द कर दिया जाता है। कक्षा १ में प्रवेश करने के बाद ज्यों ज्यों लडके हाथ-पैर चलाने में अधिक सक्षम होते जाते हैं, स्कूल छोडने वालों की संख्या में वृद्धि होती

जाती है। और कक्षा ४ या ५ में पहुँचते पहुँचते यह संख्या ६५ प्रतिशत तक पहुँच जाती है।

अगर बाहर काम न भी करें तो भी मजदूर-किसान के लड़कों को घर पर ही काफी काम रहता है। शहरों में मजदूरों के लड़के आटा पिसाते हैं, दूकान से राशन लाते हैं बाजार हाट करते हैं, दूध लाते हैं पानी भरते हैं, चौका-बर्तन में माँ-बाप का हाथ बटाते हैं। गाँवों में किसानों के लड़के खेत पर नाश्ता पानी और दोपहर का भोजन ले जाते हैं पिता-माता की यह एक प्रकार की आर्थिक सहायता ही है। यह सब बन्द करके डेढ़-दो मील पैदल चल कर स्कूल में पढ़ना-लिखना सीखने जाना जिसका उपयोग संदिग्ध है, इन श्रमिकों को व्यर्थ मालूम पड़ता है।

अभी उत्तर प्रदेश की कानपुर नगर महापालिका में रहने वाले तीन सौ ऐसे परिवारों का सर्वेक्षण भी किया गया है जो नित्य काम करके अपनी रोटी-रोजी कमाते हैं। रोज कुआं खोदना और पानी पीना। उत्तर प्रदेश में कानपुर एक ऐसा नगर है जहाँ सबसे पहले, अ.ज से लगभग ४० वर्ष पहले, नि:शुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना प्रारम्भ की गई थी। सर्वेक्षण से पता चला है कि तीन सौ परिवारों में से मुश्किल से ६९ *परिवारों ने नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा योजना से किसी प्रकार* का लाभ उठाया है। इन परिवारों के चारों ओर नगर महापालिका द्वारा सचालित प्रारम्भिक स्कूलों के अलावा पूर्व प्रारम्भिक नर्सरी स्कूल मान्टेसरी स्कूल और किंडर गार्टन स्कूल हैं। परन्तु इन परिवारों ने इन स्कूलों के प्रति एक प्रकार की घृणा का भाव विकसित कर लिया है। पूछने पर सर्वेक्षण वालों से उन्होंने साफ साफ कहा कि बच्चों के पढ़ने लिखने का कोई लाभ उनको नहीं मिलता। इनके पढ़ने-लिखने से उनकी एक पैसे भी आमदनी नहीं बढ़ती। स्कूल में जाने से जो समय नष्ट होता है उतने समय तक अगर वे घर पर कुछ काम करें तो चार पैसे की आमदनी होगी। ३७ अभिभावकों ने तो सर्वेक्षण करने वालों से यह भी कहा कि जब हम देखते हैं कि पड़ोस के शास्त्री नगर और दर्शनपुरवा के पढ़े-लिखे लड़के बेकार घूम रहे हैं तब तो यह पढ़ाई लिखाई हमें और भी बेकार लगने लगती है। सच पूछिये तो पढ़ाई-लिखाई से हमारा विश्वास उठ गया है।

इन दोनों सर्वेक्षणों से एक बात साफ होती है कि अगर प्रारम्भिक शिक्षा पर खर्च होने वाले अरबों रुपये के इस भयंकर अपव्यय को रोकना है और प्रारम्भिक शिक्षा को सफल बनाना है, तो प्रारम्भिक शिक्षा को जीवन की यथार्थता को सामने रख कर चलना होगा। प्रारम्भिक शिक्षा का ढाँचा ऐसा बनाना होगा कि इस ढाँचे के भीतर ही छात्र पढ़ाई करते हुए अपने माँ-बाप को कुछ आर्थिक सहायता कर सकें और पढ़ाई लिखाई के कारण किसी भी तरह उन पर बोझ न बनें। इस दिशा में सबसे पहला काम यह करना होगा कि प्रारम्भिक स्कूल के बच्चों को ऐसा कला-कौशल

की, ऐसे हुनर की शिक्षा देनी होगी जिसका उनके और उनके अभिभावकों के जीवन में तत्काल उपयोग हो। भारत के जीवन की यथार्थता को गांधीजी से अधिक किसी दूसरे ने नहीं समझा था और इसीलिए इन्होंने बेसिक शिक्षा में जिस दिन से बच्चा स्कूल जाता है उसी दिन उसके लिए एक दस्तकारी की, एक समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग की, शिक्षा को अनिवार्य ही नहीं रखा था--बालक की सारी शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु रखा था। गांधी जी की इस शिक्षा-पद्धति को छोड़कर देश के कर्णधारों ने बहुत बड़ी भूल की है। और यदि हम प्रारम्भिक शिक्षा के अपव्यय की समस्या का हल चाहते हैं तो हमको बेसिक शिक्षा को ईमानदारी से लागू करना चाहिये--- सारी शक्ति लगाकर लागू करना चाहिये। माता पिता की गरीबी उनके बच्चों की कानूनी दासता का कारण बन रही है। अतः हमको अगर इस दासता से छुटकारा पाना है तो बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा देनी होगी जिसे पाकर वे अपने पालकों के आर्थिक बोझ को कुछ हल्का कर सकें--- कम से कम अपने पढ़ने-लिखने के खर्च की चिन्ता से तो उन्हें मुक्त कर ही सकें।

इस समस्या से ही सम्बन्धित एक दूसरी पते की बात प्रसिद्ध सर्वोदय विचारक श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने आज से बीस वर्ष पहले कही थी। उन्होंने कहा था कि अगर तुम प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना चाहते हो यानी चाहते हो कि इस देश के गरीब बच्चे भी पढ़ें तो तुमको भैंस की पीठ पर स्कूल चलाने की योजना बनानी पड़ेगी। गरीब किसानों के लड़के गाय भैंस चराना बन्द नहीं कर सकते और उसे बन्द करके आज की निकम्मी शिक्षा की बात तो छोड़िये वे बेसिक शिक्षा भी लेने नहीं जायेंगे। अतः कुछ ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि लड़कों के पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध स्कूल की चहारदीवारी के बाहर किया जा सके। अर्थात् स्कूल में दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा के स्थान पर अनौपचारिक शिक्षा की योजना बनानी होगी। आज इस अनौपचारिक शिक्षा की बहुत अधिक चर्चा है और लोग अनुभव करने लगे हैं कि अगर इस देश के सभी लड़कों को अनिवार्य निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देनी है तो स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त उनके लिए अनौपचारिक पार्ट-टाइम शिक्षा का प्रबन्ध भी करना होगा और स्कूलों में प्रवेश के नियम को अधिक लचीला बनाना होगा। बच्चों को वहीं पढ़ाने लिखाने का प्रबन्ध भी करना होगा जहाँ वे काम करते हैं। जब तक ऐसा नहीं होता समस्या का हल नहीं होगा।

दोनों सर्वेक्षणों से जो एक बात साफ हुई है वह यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कुछ इस प्रकार का बनाना होगा कि लड़के अपने अभिभावकों की सहायता में लिये जो काम कर रहे हैं उसे करते हुए वे पढ़ें लिखें और उनकी पढाई-लिखाई से परिवार को आर्थिक सहायता बन्द न हो। आज देश में विकास के अनेक काम हो रहे हैं। बच्चों को इन कामों में लगाने की योजना बनानी चाहिये और यदि आव-

श्यकता हो तो इसके लिए उनको थोड़ा प्रशिक्षण भी दिया जाय। बच्चों से उनकी क्षमता के अनुसार काम भी कराया जाय और उन्हें पढ़ाया लिखाया भी जाय। इस प्रकार कुटुम्ब की आय भी नहीं रुकेगी और बच्चे पढ लिख भी जायेंगे। इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये और देश की प्रारम्भिक शिक्षा को देश के विकास के काम के साथ जोड़ना चाहिये।

एक विकासशील देश में जहाँ बहु-संख्यक लोग गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे हैं, प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या (प्रारम्भिक की क्यों सारी शिक्षा की ही समस्या) रोटी-रोजी की समस्या से जुड़ी हुई है और जब रोटी-रोजी की समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जाता प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या का भी यथार्थवादी हल नहीं ढूंढा जा सकेगा।

--श्री वंशीधर श्रीवास्तव

अेकला चलो रे !

चल अकेला ही!
यदि तेरी पुकार सुन कोई न आये, तब चल अकेला ही!
यदि कोई बात न करे, अरे ओरे ए अभागे,
यदि सब रहें मुंह फेर, सभी करें भय
तब साहस से

ओ तू, मुंह खोल अपने मन की बात कह अकेला ही!
यदि सब जायें लौट, अरे ओरे अभागे,
यदि दुर्गम पथ चलते-चलते मुड़कर न ताके कोई
तब पथ के कांटे

ओ तू, रक्तरंजित चरण-तलों से रौंद अकेला ही!
यदि दीप ना दिखायें, अरे ओरे अभागे,
यदि झड़ी बरसती अधरात में द्वार बंद हों सबके
तब वज्र अनलसे।

---रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गाधीजी :

नयी तालीम और ग्रामीण जनता से सम्बन्ध :

(कु शाता नारुलकर ने देश, विदेशो में उच्च शिक्षा पाकर सेवाग्राम में बापू के पास बुनियादी शिक्षा का बरसों तक कार्य किया। बापू ने उन्हे सेवाग्राम में नयी तालीम का कार्यक्रम शुरू करने का आदेश दिया। कु शान्ता नारुलकर ने नयी तालीम शिक्षा सम्बन्धी बापू से हुयी चर्चा अपने डायरी में लिखी, डायरी के कुछ अश प्रस्तुत है। —सपादक)

ता ७-२-१९४५ की सुबह ६-३० का समय था। सेवाग्राम की कुटी में बापू अपने बिस्तरे पर बैठे थ। मैं मेरे साथियो के साथ बापू के सामने बैठ गयी।

बापू न पूछा, 'सेवाग्राम मे प्रौढ शिक्षा की शुरूवात कैसे करोगी ?

मैंन कहा, "सेवाग्राम के नौजवान को हाथ में लेना है। उनसे सबध बढाना है। उनम जागृति पैदा करनी है। यह सब करने के लिये गाँव में मैं किस तरह प्रबध करूँ ?'

बापू ने कहा ' घर घर जाकर बीमारा को देख। और गाँव की सफाई भी कर। नयी तालीम का यह हिस्सा है। जीवन का एक भी विभाग ऐसा नहीं है जो कि नयी तालीम म नहीं आता। सब चीजो पर उसका कब्जा है। जहाँ तक हो सके तू डॉक्टर भी बनगी और नैसर्गिक उपचार पर भरोसा हो तो डॉक्टर की जरूरत नहीं होगी। मरीजो को देखना भी तेरा काम है। परन्तु अभी तेरी हैसियत नहीं है। शिक्षक के गुण यह होने चाहिये कि जो विश्वास हो वही करे। लोगो को हम कह और व वैसा करने लगें यह शक्ति हमम आनी चाहिये। जितने बच्चे तुम्हारे पास आवेंगे वे सस्कार पाकर घर जावेंग और माँ-बाप को सिखावेंग।"

आगे चलकर बापू न कहा, ' मैं शिक्षक हूँ और देहात के नव-युवको से काम लेता हूँ, बिगर पैसे से। वैसे तो उनसे परिचय बातचीत से शुरू करना। जब

एकाद से परिचय हो जाय तब उसके घर से ही शुरुआत करना। परिवार में कितने व्यक्ति हैं' जायदाद के बारे में पूछना, बैल आदि जानवरों की जानकारी प्राप्त करना, उनके साथ व्यवहार कैसा है और जानवरों को खाना-खुराक क्या मिलता है, इसकी जानकारी रखना। गाँववाला को बताना है कि बैल के साथ प्रेम से व्यवहार करें। लाठी में आर नहीं लगाना है। वे कहेंगे कि बैल चलते नहीं यह ठीक जवाब नहीं है। जानवरोंपर जैसी सख्तियाँ हिन्दुस्थान में होती है वैसी कहीं नहीं होती।

"सेवाग्राम मे दो-चार जगह ऐसी होनी चाहिए— जैसे बगीचे, मैदान आदि। वही पहली तालीम होगी। नवयुवकों से वहीं बातें करें और उन्हें कहें कि अपने साथ अड़ोसी-पड़ोसियों को लेते आवें। बातचीत में ही उन्हें इतिहास, भूगोल का ज्ञान दे सकते हैं। उसी स्थान पर एक बोर्ड रखोगे। अक्षर ज्ञान का प्रचार करने की इच्छा हो तो इकट्ठा होनेवाले के नाम परिचय के रूप में बोर्ड पर लिखें और थोडा मजाक भी करें। इस तरह गांव का परिचय बढ़ावें। युवकों को इकट्ठा करें उन्हें सहयोग की बात सिखानी है। हम खेती सिखायेंगे सहयोग से। बैलों का भी सुधार हो सकता है। मैं तो बताता चला जाता हूँ। जितना लें सकोगे उतना लें और अपने सुविधा के अनुसार समझबूझकर काम करें।"

कु. शान्ता नारूलकर ने पूछा, "सेवाग्राम में अलग अलग संस्थाओं के काम चल रहे हैं। उनके कार्यों में कहाँ तक मेरी जिम्मेवारी होगी? उनके प्रति मेरा कर्तव्य क्या होगा?

बापू ने कहा, 'सेवाग्राम की सब संस्थायें मेरा ही काम करती हैं। वे सब अहिंसा मार्ग के काम है। हम सब को एक साथ चलना है। शान्ति और मोहब्बत से काम करना है। "सबका मिलाना" इसमें ही नयी तालीम की नींव डाली गयी है। अहिंसा से सबको सिखाना है कि सब को साथ लेकर काम करना है। अकेला आदमी सब काम नहीं कर सकता। पहले दर्जे का काम उसी समय हो सकता है, जब उसके साथ याने सबके मार्फत काम लेने की शक्ति हम में आ जाय। हम अलग अलग ककर जैसे है। मगर हमें एक साथ मिलकर ईंट की तरह बनना होगा, जिससे फिर घर बनाना है। हमें गाँव के सामने एक आदर्श हाजिर दिखाना है कि अनेक संस्थाओं के सहयोग से काम चलाना है। इस तरह हम करेंगे तो गाँववाले भी उसे देखकर सहयोग से काम करेंगे। नयी तालीम का काम अदृश्य है। किसी को पता नहीं चलेगा यह क्या चीज है, लेकिन नयी तालीम होती ही रहेगी।"

कु. शान्ता नारूलकर ने पूछा—"सेवाग्राम के कुएँ काफी गंदे हैं। इसलिये आरोग्यप्रद पानी का इन्तजाम किस तरह किया जाये?"

बापू ने कहा, "पहली बात यह है कि पानी को उबालकर ही पीना है। जो गंदे कुएं हैं उन्हें साफ करना होगा। इस काम में खर्च करेंगे। क्योंकि ये कुएं बीमारी के घर हैं। गांव में ज्यादा कुएं हो और उन सबकी जरूरत नहीं हो, तो कुछ बंद करने होंगे। आम कुओं के साफ करने का खर्च जनता को ही देना होगा। निजी कुआं मालिक सुधारे नहीं तो वह मालकी छोड दे। बाद में पब्लिक फंड से कुआं सुधारा जाय। इस तरह गांव के सब कुएं हमारे हाथ आ जावें, और देहात के लिये देहाती वाटर वर्कस् बन जावे। ये कैसे हो यह सोचने की बात है। सेवाग्राम का आदर्श सब के लिये हो और खर्चे का भी न हो। इस तरह सात लाख देहात के लिये नमूना पेश करना है।"

बीच में पारनेकर ने कहा, 'कि देहात के वाटर वर्कस् में इलेक्ट्रीसिटी का उपयोग कर सकते हैं।

उत्तर में बापू ने कहा, "इलेक्ट्रीसिटी के बारे में मैंने कहा है कि मुझे बांधो मत। पहले तो कह दो कि सारे हिन्दुस्थान में यह हो सकता है तब मुझे लगेगा कि इतनी पावर वाटर वर्कस के लिये लेनी होगी। ऐसे काम के लिये गांव का पब्लिक फंड जमा करना होगा। हमें तो लोगों को तालीम देनी है।

कु. शान्ता नारुलकर ने पूछा, "सेवाग्राम की आबादी बढ गई है। नये बसनेवाले घरोंकी व्यवस्था कैसी हो?"

बापू ने कहा, 'नया सेवाग्राम बसाना हो तो जगह हम देंगे। लेकिन लोग अपने घर आप बनायें। यदि घर बदलना पडे तो, जो दूसरा उसमें आये वह उसमें लगा हुआ पैसा देकर घर ले लेगा। जमीन पर उनका हक नहीं होगा।

हमारे हाथ राजसत्ता नहीं है और न तो आचार-विचार का जोर ही डाल सकता हूँ। यदि लोग मुझे समझ लेंगे तो मेरा स्वप्न स्वप्न नहीं रहेगा। अपने खेतोंको उजाड दूँगा और लोगों को बसने के लिये जगह दे दूँगा। वे आज ही हमारे यहाँ आ जावें। लेकिन वे यह करने को तयार नहीं हैं। वे चाहेंगे जमीन उन्हें मिल जाय, लेकिन इसके लिये मैं तयार नहीं हूँ। मकान का मालिक मैं रहूँ (स्टेट रहे)। इसको वे नहीं मानेंगे, वे जमीन मांगते हैं।"

कु. शान्ता बहन ने फिर पूछा, "गांव में दो तरह के आदमी हैं। एक तो वे हैं जिन के पास जमीन नहीं, लेकिन पैसा और श्रम दोनों लगाकर मकान बनाना चाहते हैं। दूसरे वे लोग हैं जिन के पास जमीन है लेकिन पैसा नहीं है। ऐसे लोगोंकी मदद कैसे की जा सकती है?"

इससे उनका मन साफ हो जायेगा। हमें भी पता लग जायेगा कहाँ तक लोग हमारा साथ देने वाले हैं। सच्ची मेहनत ही पैसा है।"

कु. शान्ता बहन ने पूछा, "पैसा लौटाना है तो फिर स्वार्थ क्या ?"

बापू ने कहा, "पैसे का लेन-देन जहाँ भी रहता है वहाँ स्वार्थ की बू रह ही जाती है।

कु. शान्ता नारूलकर ने पूछा, "स्त्रियों की शिक्षा किस तरह शुरू करें ?"

बापू ने कहा, "घर घर जाकर स्त्रियों के सुख-दुख देखो। उन्हें पहिचानो और उनके दुखों को दूर करो। उन्हें समय का उपयोग करना सिखाना है। वे खुद नहीं जानतीं कि झाड़ू कैसे लगाना, घर कैसा रखना आदि भी बतलाना और सिखाना होगा। स्त्रियाँ पुरुषोंकी शिक्षिका हैं। मेरी ऐसी तालीम तो मौखिक होगी। स्त्री अपने पतिके लिये ही नहीं, देहात के लिये भी है। यह बात घर घर में, पड़ोसियों में और फिर देहात में समझाना है। बाद में समझ से काम लेना। आर्थिक मदद में कम पड़े वे स्त्रियाँ स्वार्थ की बातें करेंगी, उससे बचना पड़ेगा। जो भूखे मरते हैं उन्हें कमाई कैसे करना, यह सिखाना होगा।

पहले शारीरिक व्याधियाँ आवेंगी और फिर सफाई सम्बन्धी तथा आर्थिक, नैतिक और राजकीय कठिनाईयाँ भी आवेंगी। मेरी निगाह में राजकारण तो आखिर में आवेगा। खाली आर्थिक मदद ले बैठने से नहीं चलेगा। डाक्टर का काम अलग है, खाली दवाई देना है। परन्तु शिक्षिका का काम अलग है। वह जिम्मेदारी है। उनका बजट देखना और बनवाना तथा उसमें से कितना कमाया और कितना खर्च किया आदि को देखकर उनके आय-व्यय का अनुमान निकालना है। उन्हें दूसरे धन्धों की जानकारी सिखानी है। वे तो हमारे रिश्तेदार, सहकारी और साथी हैं। हमें समझना होगा कि उनके साथ कैसे चलें।

ब्रेड लेबर

" 'ब्रेड लेबर' का सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता उसे खाने का अधिकार नहीं है। हम भोजन के मूल्य के बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगत में दिखाई देती है वह दूर हो जाय।

एक आलसी दो भूखों को मारता है, क्योंकि उसका काम दूसरे को करना पड़ता है।"

—टालस्टाय

विनोबा :

तेजस्वी विद्या :

जब मैं अपने को विद्यार्थियों में पाता हूँ तो मुझे बहुत खुशी होती है। इसका कारण यह है कि आपकी और मेरी जाति एक है। आप विद्यार्थी हैं और मैं भी विद्यार्थी हूँ। हर रोज कुछ-न-कुछ नया ज्ञान हासिल कर ही लेता हूँ।

युनिवर्सिटी में रहकर आप लोग कुछ ज्ञान कमाते हैं और समझते हैं कि यह ज्ञान आपको अपने भावी जीवन में लाभ पहुँचायगा। वास्तव में जहाँ युनिवर्सिटी का ज्ञान खतम होता है, वहीं विद्या का आरम्भ होता है। युनिवर्सिटी का अध्ययन पूरा करने का अर्थ इतना ही है कि अब आप अपने प्रयत्न से विद्या प्राप्त कर सकते हैं। आप निजाधार बनें, निराधार न रहें।

आप बाल्यावस्था में हैं। बाल-पदवी आपको प्राप्त है। बाल तो वह होता है जो बलवान है, जो मानता है कि यह सारी दुनिया मेरे हाथ में मिट्टी-जैसी है, उसकी जो भी चीज मैं बनाना चाहूँगा बना लूँगा। सारांश यह कि आपको अपनी बुद्धि स्वतंत्र रखनी चाहिए।

विद्यार्थियों के बारे में मेरी यह शिकायत है कि उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक किसी बात पर सोचने कहीं नहीं दिया जाता। आज तक हर हुकूमत (स्टेट) की यह कोशिश रही है कि बने बनाये विचार विद्यार्थियों के दिमाग में ठूँस दिये जायँ, फिर चाहे वह स्टेट सोशलिस्ट (समाजवादी) हो, कम्युनिस्ट (साम्यवादी) हो, कम्युनलिस्ट (साम्प्रदायिकतावादी) हो या और भी कोई इष्ट या अनिष्ट हो। लेकिन यह तरीका गलत है। एक जमाना था जब हमारे गुरु विद्यार्थियों को पूरा विचार-स्वातन्त्र्य देते थे। वे अपने शिष्यों से कहते थे कि हमारे दोषों का नहीं, अच्छी बातों का ही अनुकरण करो। गुरु को तो अपने उस शिष्य पर अभिमान होना चाहिए, जो सोच-समझकर विचार-पूर्वक गुरु की बात मानने को इन्कार कर देता है। आज

कल तो जो उठना है, अपनी ही बात मनवाना चाहता है। विद्यार्थियों के लिए यह एक बहुत बड़ा खतरा है। मानो ये लोग विद्यार्थियों का यन्त्रीकरण ही करना चाहते हैं। आपको ऐसे किसी यन्त्र का पुरजा नहीं बनना चाहिये। आपको सन्त बनना है, पथ नहीं बनना है। सन्त वह है जो सत्यका उपासक होता है और पथ वह है जो किसी बने बनाये पथपर जडवत् चलता है। आप लोग अलग-अलग युनियनें बनाते हैं। इन युनियनों में रहने के लिए एक खास विचार प्रणालीका अनुसरण जरूरी होता है? मैं आप से पूछता हूँ, शेरोंका कभी कोई युनियन बनती है क्या? युनियन तो भेडो का बनता है। मेरा मतलब यह नहीं है कि दूसरोंके साथ आपको सहकार ही नहीं करना है। अच्छी बातों में सहकार जरूर करना है। लेकिन विचारो को स्वतंत्र रखना है और सत्य-दर्शन के लिए उसमें आवश्यक परिवर्तन करने को सदा तैयार रहना है। इसे ही सत्यनिष्ठ कहते हैं और बलवान बनने का यही रास्ता है।

बलवान बनने के लिए एक और जरूरी बात है संयम। मैं इन्द्र हूँ। ये इन्द्रियां मेरी शक्तियां हैं। उस पर मेरा काबू होना चाहिए। विद्यार्थी अवस्था में आपको संयम की महान् विद्या सीख लेनी है। जब आप संयम की शक्ति का संग्रह कर लेंगे तो एकाग्रता भी, जो जीवन की एक महान शक्ति है, पा लेंगे।

आप आँख और पाँव का भेद समझें। आँख सारी दुनिया की निरीक्षण के लिये खुली होनी चाहिए। उसकी स्वैर-संचार की पूरी आजादी होनी चाहिए। लेकिन पाँव तो नियत मार्ग पर चलने चाहिए। तभी प्रवास होगा। बारिश का सारा पानी अलग-अलग दिशाओं मे जहाँ-तहाँ बह जाय तो नदी नहीं बनेगी। नदी बनने के लिए नियत दिशा चाहिये। संयम की शक्ति इस दृष्टान्त से समझ लीजियेगा।

एक बार मुझे विद्यार्थियों के 'तरुण उत्साही' मंडल में जाना पड़ा। मैंने कहा कि उत्साही मंडल तो बूढ़ों के होने चाहिये। जिस राष्ट्र को अपने विद्यार्थियों का उत्साहित करने की जरूरत पडती है, वह राष्ट्र तो खत्म ही हुआ समझिये। तरुणों को धृति की आवश्यकता है। उसी से उत्साह टिकता और कारगर होता है। जैसे गीता में कहा गया है कि धृति और उत्साह मिलकर कर्मयोग बनता है। आपको कर्मयोगी बनना है।

एक सवाल हर वक्त पूछा जाता है कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं। विद्यार्थियों का आत्मनीति में प्रवीण बनना है। हर बात में उनको जागृत रहकर अपनी नीति निश्चित करनी है। राजनीतिक विद्यार्थी साक्षी और अध्यक्ष बनकर रहें। हम अध्यक्ष उसे कहते हैं कि, जिसकी आँख सारी दुनिया पर रहती है। विद्यार्थी दशा में आप जगत् में सम्बन्धित सारे प्रश्नों पर अध्यक्ष की

भूमिकासे निरीक्षण-परीक्षण करते रहें और अपने निर्णय बनाते रहे। समय आनेपर उन पर अमल करें।

कर्मयोगी बनने के लिये विद्यार्थियों को कुछ-न कुछ निर्माण-कार्य करते रहना चाहिये। निर्माण के बिना निःसशय ज्ञान भी नहीं होता। प्रयोग से प्राप्त ज्ञान ही निःसशय ज्ञान होता है। मैं विद्यार्थियों से पूछता हूँ, आप लोग रोटी बनाना जानते हैं? वे कहते हैं "नहीं, हम तो सिर्फ खाना जानते हैं। रोटी पकाना तो लड़कियों का काम है।" रोटी पकाना अगर लड़कियों का काम है तो रोटी खाना भी लड़कियों का काम रहने दीजिए। अपने लिए ज्ञानामृत भोजनम् रख लीजिये। जिन लोगों ने लड़कियों और लड़कों के कार्यों को इस तरह विभाजित किया, उन्होंने दोनों को गुलाम बनाने का तरीका ढूंढ निकाला है और ज्ञान को पुरुषार्थ-हीन बनाया है।

श्रीकृष्ण बचपन में हाथों से काम करता था, मेहनत-मजदूरी करता था। इसलिए गीता में इतनी स्वतंत्र प्रतिभा का दर्शन हमें होता है। हमें ढेर की ढेर विद्या हासिल नहीं करनी है। तेजस्वी विद्या हासिल करनी है। जिस विद्या में कर्तव्य शक्ति नहीं, स्वतंत्र रूपसे सोचने की बुद्धि नहीं, खतरा उठाने की वृत्ति नहीं, वह विद्या निस्तेज है। मैं चाहता हूँ कि आप सब तेजस्वी विद्या प्राप्त करने की वृत्ति रखें।

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"

यह लोकमान्य तिलक का दिया हुआ मंत्र है। स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी है, क्योंकि राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य किये बिना स्वराज्य असंभव है। लोकमान्य के मंत्रको सिद्ध करने के लिये उनमें जो त्याग-वृत्ति थी और अपने कर्तव्य में वे जैसा अटल रहते थे, हमें भी स्वराज्य के लिये त्याग और तपश्चर्या करनी होगी। इस मंत्र की शक्तिका विचार करने पर मैंने निश्चय किया कि उनके स्वदेशी का अर्थ खादी है।

—मो क गांधी

रचनात्मक-कार्यक्रम में समग्र दृष्टि :

केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा कौसानी के अनासक्ति आश्रम में दिनांक ५, ६, ७ और ८ जून को आयोजित रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधि-कार्यकर्ता-शिविर में जम्मू-काश्मीर, पंजाब-हरियाणा-हिमाचल प्रदेश, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधियों द्वारा आमंत्रित लगभग ५० कार्यकर्ताओं ने श्री श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षता में निम्न विषयों पर विस्तृत चर्चाएँ कीं—रचनात्मक कार्यकर्ताओं का व्यक्तिगत विकास, संस्थाओं के आंतरिक गठन में सुधार की आवश्यकता, समाज-परिवर्तन के कार्य में संस्थाओं का योगदान, कार्यकर्ताओं के ज्ञानवर्धनके लिए शिविर-परीक्षा आदि तथा संस्थाओं के सामने प्रस्तुत समस्यायें।

श्री श्रीमन्नारायणजी ने प्रारम्भिक भाषण में कहा कि गांधीजी द्वारा अहिंसक समाज-रचना के लिए कार्य करने हेतु रचनात्मक संस्थाओं का गठन उनके समय में हुआ था। उनके जाने के बाद और भी आगे बढ़ा। उसके बारे में बार-बार हम इस कसौटी पर कसने की आवश्यकता है कि क्या हम अपनी उद्दिष्ट दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इसके लिए आवश्यक है कि सर्वोदय के सिद्धान्त को लागू करने का सतत प्रयास हो और हमारे विभिन्न काम जो इस हेतु हो रहे हैं परस्पर पूरक बनकर समग्र परिवर्तन लाने वाले बनें। इसके लिये सभी कार्यकर्ता अपने-अपने काम को साथ समग्रता से दूसरे रचनात्मक कामों से अपने को जोड़ें। शिविर की दूसरी महत्व की बात यह है कि दूरगामी दृष्टि लिए जानेवाले रचनात्मक कामों के साथ-साथ यदि हमारा तात्कालिक और स्थानीय समस्याओं से कोई सम्बन्ध न आयगा तो भी हम निस्तेज बनेंगे। अतएव सेवा के क्षेत्र में नई समाज रचना के मूल्य प्रस्थापन के साथ-साथ सामान्य जन की समस्याओं के समाधान में भी हमारा योगदान होना आवश्यक है। इन समस्याओं को सुलझाने में यदि ऐसी स्थिति अनिवार्य आती है कि सत्याग्रह अथवा आन्दोलन आवश्यक हो जाता है, तो उससे भी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। यदि हम रचनात्मक संस्थाओं के स्वधर्म को पहचानें और उसपर अमल करने में आनेवाली कठिनाइयों के निराकरण के बारे में यहाँ बैठकर चार दिन में सफाई प्राप्त कर सकें तो हमारा यह शिविर उपयोगी सिद्ध होगा।

उपरोक्त आधार पर जो चर्चायें हुई उनके निष्कर्ष स्वरूप मुद्दे, जिन पर शिविर में सर्वसम्मति हुई तथा जो क्रियान्वयन की दृष्टि से सभी रचनात्मक संस्थाओं के लिए दिशासूचक सिद्ध हो सकते हैं, निम्नानुसार हैं —

१–अंत्योदय :

हमारे कार्यों की कसौटी हमेशा यह रहनी चाहिये कि उसका लाभ समाज के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचे। इसलिये संस्थाओं में जो भी काम होता है उसका इस दृष्टि से समय-समय पर मूल्यांकन किया जाय।

२–समग्रता :

संस्थाओं में एक समग्र दृष्टि हो इसके लिये सभी कार्यकर्ताओं को अपने-अपने निश्चित कार्यक्रम के साथ-साथ दूसरी सभी संस्थाओं और अहिंसक रचनात्मक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में पूरक दृष्टि रखनी चाहिये। जहां एक ओर यह आवश्यक है कि बौद्धिक दृष्टि से संपूर्ण अहिंसक समाज-रचना का चित्र उनको स्पष्ट हो, दूसरी ओर इस दिशा में अमल के लिए यह भी जरूरी है कि संस्थायें आपस में मिलकर समाज-परिवर्तन हेतु जन-शक्ति जागृति के सम्मिलित कार्यक्रमों को आयोजित करें। इस प्रकार समग्रता और सहयोग इन दोनों भावनाओं का साथ-साथ बढ़ाये बिना हमारे कार्यों द्वारा सम्मिलित शक्ति नहीं बन पायगी और समाज-परिवर्तन के काम में हमें सफलता नहीं मिल पायगी।

३–दलमुक्त दृष्टि

–संस्थाओं के कार्य और गठन का सामान्य स्वरूप सभी के साथ सहयोग की भावना से काम करने का बना रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि जब संस्थायें जन-समस्याओं तथा अन्याय-असत्य के निराकरण में सक्रियता से भाग लें। कार्य की पद्धति ऐसी रखें कि किसी एक वर्ग, दल या पक्ष के प्रति अधिक झुकाव और दूसरे किसी के प्रति विरोध की भूमिका न बने। कार्यक्रम-विशेष को लेकर तात्कालिक रूप से जो स्थानीय विरोध या साथ अनिवार्य हो, वह स्थायी भाव लेने वाला न बने। अर्थात् दलगत तथा सत्ता की राजनीति में रचनात्मक कार्यकर्ताओं को न पड़ना चाहिए। इस हेतु केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि की कार्यकारिणी द्वारा निरूपित निम्न सिद्धान्त का औचित्य है —

"जिस किसी कार्यक्रम में विरोध की भूमिका आवश्यक हो जाती है उस सम्बन्ध में संस्था को अपनी कार्यकारिणी में पूरी तरह चर्चा-विचार करना चाहिए। यदि कार्यक्रम के बारे में सब सदस्य एक राय रखते हों तो संस्था और कार्यकर्ता दोनों सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से उस कार्यक्रम को अपना सकते

है। पर यदि उसके सम्बन्ध में सदस्यो में मत-वैभिन्य हो तो ऐसी परिस्थिति में ऐसे कार्यक्रम को सस्था के अपने कार्य के रूप में न उठाया जाय। नीति यह रखी जाय कि व्यक्तिगत रूप से कार्यकर्ताओ को अपने विवेकानुसार उसमें भाग लेने की स्वतत्रता दी जाय। परन्तु उसमे सस्था के पदाधिकारी न लगें क्योंकि ऐसा करने से सस्था की कार्यनीति के बारे में जनभ्रम पैदा हो सकता है। अतएव वैसी स्थिति में यदि कोई पदाधिकारी ऐसे कार्यक्रम में हिस्सा लेना अपना कर्तव्य माने तो उसे अपने पद से हटकर ही वैसा करना उचित होगा।"

४–प्रतिरोध के पथ्य :

सामाजिक न्याय-प्राप्ति तथा अन्याय-असत्य-प्रतिरोध के सभी कामो में पूरी कोशिश सहयोग, समन्वय और समाधान से हल निकालने की आशा रहते हुए भी यदि सब प्रयासो के बावजूद किसी अवसर पर अहिंसक विरोध करना आवश्यक हो जाय तो ऐसे स्थानीय मामलो मे कार्यकर्ता को अपनी प्रादेशिक सस्था का मार्गदर्शन प्राप्त कर लेना उचित होगा। इसी प्रकार यदि कोई प्रान्तव्यापी अथवा विस्तृत कार्यक्रम हो तो उस सम्बन्ध मे राष्ट्रीय स्तर पर सलाह मशविरा किया जाना श्रेयस्कर होगा। छोटी इकाई द्वारा अपनी बडी इकाई से सम्पर्क, सम्बन्ध और सलाह लेने की इस पद्धति को अपनाने से अहिंसक शक्ति के विकास मे सहायता मिलेगी तथा कार्य में सैद्धान्तिक दिशाभ्रम होने की गुंजाइश नही रहगी। दृष्टि यह है कि जब हम चाहते है कि सस्थायें इस क्षेत्र मे अधिक सक्रिय हो और इस दिशा मे सजग प्रयास हो तो यह आवश्यक है कि उचित ढग की पद्धति अपनाने में सब की सलाह-विचार का लाभ लिया जाय और ऐसे कदम सम्मिलित सहकार्य से उठाये जाय। ऐसे कार्यक्रम विशिष्ट मुद्दों को लेकर ही हो तथा उनको दलगत राजनैतिक रूप प्राप्त न हो जाय इसका ध्यान रखा जाय।

५–शासन से समन्वय :

रचनात्मक सस्थायें सभी प्रकार की कठिनाइयो को सहती हुई गाधीजी के विचारो के अनुसार समाज-रचना के विभिन्न कार्यक्रमो में लगी हुई हैं। उनको जहाँ एक ओर जनता का हर प्रकार का सहयोग अपने कार्यक्रम में प्राप्त हो यह आवश्यक है। साथ ही शासन की ओर से भी अनुकूलतायें प्राप्त होनी चाहिये। शासन के साथ इस सम्बन्ध में समन्वय आवश्यक है। सत्ता और दलगत राजनीति से अलग रहकर समाज-सेवा और नव-समाज-रचना के कामो में लगी सस्थाओ की कठिनाइयो को दूर करने के लिये राज्यो के मुख्यमन्त्रियो तथा प्रधानमत्री के साथ बीच-बीच मे चर्चा-विचार का क्रम बनना चाहिये जिससे दोनो ओर से परस्पर स्पष्टता हो और सहयोग से साथ काम बढाने में सुविधा हो। इसके लिये केन्द्रीय तथा प्रदेश की गाधी स्मारक निधियाँ उपयुक्त कदम उठायें।

६–व्यवहार-शुद्धि :

सस्थायें राजनीति के बारे में बेलाग और अपने स्वय के कामो में बेदाग रहें इसकी देख-रेख और इस सम्बन्ध में परस्पर सहायता के लिये कुछ ऐसी व्यवस्था सोची जाय जिसमे रचनात्मक सस्थाओ का परिवार एक-दूसरे के प्रति एक सामूहिक जिम्मेदारी महसूस करे। इसके लिये आवश्यक है कि कही भी कोई सैद्धान्तिक कमजोरी दिखाई दे तो व्यक्ति या सस्था-विशेष की ही यह जिम्मेदारी है ऐसा न माना जाय बल्कि जब भी और जहाँ भी सस्था के कामो में कोई कमजोरी जिस किसी की निगाह में आये इसकी जानकारी वह अपने वरिष्ठ साथियो के सामने लाये जो उस सम्बन्ध में योग्य कार्यवाई करें। इस स्वयगठित व्यवहार-शुद्धि व्यवस्था को हर प्रान्त में बनाने के प्रयास और प्रयोग किये जायें। यह रचनात्मक कार्यक्रम के विकास और प्रभाव के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

७–रचनात्मक कार्य।

हर प्रदेश में कार्यकर्ताओ के बारे में परस्पर जानकारी रहे इसके लिये सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओ की सूची और कार्य की जानकारी एकत्रित हो और प्रकाशित हो इसकी आवश्यकता है। इससे पारस्परिक सामूहिकता बढेगी। इसी प्रकार प्रदेश में काम करने वाली सस्थाओ और विभिन्न प्रयोगो तथा केन्द्रों की 'डायरेक्टरी' भी समय-समय पर अद्यतन बनाई जाने की व्यवस्था की जाय। यदि सभव हो तो प्रदेश मे सभी रचनात्मक कामो की वार्षिक रिपोर्ट सम्मिलित रूप से प्रकाशित की जाय इससे समग्र कार्य के दर्शन भी होगें और उस ओर बढने में मदद भी मिलेगी। इस काम में प्रदेश गाधी स्मारक निधियाँ अगुआई करें।

८–कार्यकर्ता प्रशिक्षण :

रचनात्मक कामो में लगे सेवाभावी कार्यकर्ताओं की नीव पर ही समाज-परिवर्तन सम्भव है। अतएव उनके गुण, विकास और प्रशिक्षण के सम्बन्ध में पर्याप्त ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इस हेतु सस्थायें अपने यहाँ ऐसे शिविर आयोजित करें जिसमें गाधी-विचार की रूपरेखा समझाई जाय इसमें गाधी-निधि द्वारा सचालित 'सर्वोदय विचार' परीक्षाओ का आयोजन एक उपयोगी कदम है, उसका पूरा लाभ लिया जाय। उनके पाठ्यक्रम ऐसे शिविरो में लिये जाय। सभी कार्यकर्ता इन परीक्षाओ में बैठें तथा अन्य लोग भी इस ओर आकर्षित हो इसका प्रयास हो। इसके लिये योजना बनाकर हर प्रदेश में काम किया जाय। इसी प्रकार अन्य व्यवस्थायें भी कार्यकर्ताओं के ज्ञान और गुण विकास हेतु की जानी चाहिये तथा इसी काम की ओर सस्थाएँ अपना विशेष ध्यान दें।

९—स्वास्थ्य स्वावलम्बन :

विचारों के साथ-साथ शरीर के स्वास्थ्य का महत्त्व भी कम नहीं है। कार्यकर्ताओं के जीवन में स्वास्थ्य स्वावलम्बन के विचार को पुष्ट करने में प्राकृतिक चिकित्सा का गांधी विचार बहुत महत्त्व रखता है। अतएव संस्थाओं का अपने कार्यकर्ताओं को इस पद्धति का ज्ञान तथा उसके उपयोग की सुविधा देने के बारे में योग्य कदम उठाने चाहिये। यह भी आवश्यक है कि चिकित्सा पद्धति का विकास उस दिशा में हो जो उसे गरीब और कमजोर वर्ग के लिये ग्राह्य बना सकें।

१०—मुक्त सेवक

समाज परिवर्तन के लिये सेवाभावी, सद्गृहस्थ और रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की शक्ति उपयोगी होती है। परन्तु उस दिशा में नये रास्ते खोजने के अधिक सक्रिय काम के लिये उन कार्यकर्ताओं की शक्ति की आवश्यकता होगी जो संपूर्ण समय और शक्ति समाजार्पित भाव से देते हुए मुक्त रूप से जनाधार पर स्वतंत्र कार्य कर सकें। ऐसे उत्साही लोग सामने आयें इसके लिये रचनात्मक क्षेत्र के साथियों को जागरूकता से प्रयास करना चाहिये और संस्थाओं और उनमें लगे साथियों के लिये ऐसे प्रयोगवीरों को प्रोत्साहन तथा उनके कामों में योगदान तथा सहायक होना चाहिए। संस्थामुक्त समाज सेवकों की श्रेणी बढ़े यह वाछनीय है।

११—क्षेत्रीय शिविर

केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि ने कोसानी के इस शिविर की भांति क्षेत्रीय आधार पर रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधि कार्यकर्ताओं का शिविर हर वर्ष दक्षिण के लिये बंगलोर में (दिसम्बर में), पूर्व के लिये गोहाटी (फरवरी में), पश्चिम के लिये पूना या साबरमती में (सितम्बर में), तथा उत्तर के लिये कोसानी में (जून में) किये जाने का जो विचार किया है वह स्वागत योग्य है। इस आयोजन से रचनात्मक संस्थाओं की व्यावहारिक समस्याओं के निराकरण और सैद्धान्तिक प्रश्नों के दिग्दर्शन में योग्य सहायता मिलेगी।

श्री वंशीधर श्रीवास्तव :

शिक्षा जगत की अनिवार्यता : ग्रामाभिमुख शिक्षा :

खेती के आविष्कार के बाद यदि कोई दूसरा आविष्कार मानव-बंधन और मानव-मानव में अलगाव का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ है, तो वह लिखने-पढ़ने का आविष्कार है। दास-प्रथा का जन्म उस दिन हुआ जिस दिन मनुष्य ने खेती करना सीखा। उस दिन मनुष्य के उस स्वर्ण-युग का, उस आदिम साम्यवाद का अन्त हो गया, जिसका विस्मरण वह आज भी नहीं कर सका है। जिस दिन स्वर्ग के आगन में उन्मुक्त विचरते हुए 'आदम' ने 'ईव' के कहने से गेहूँ का दाना खा लिया (खेती का आविष्कार स्त्री ने किया है), उसी दिन उसका वह स्वर्ग खो गया, जिसे वह आज तक प्राप्त नहीं कर सका है। आदम की सन्तान उसी दिन से भटक रही है, उस स्वर्ग-युग को पुनः प्राप्त करने के लिए।

खेती के आविष्कार ने मनुष्य को पहले से अधिक अवकाश के क्षण प्रदान कर जहाँ एक ओर मानव-संस्कृति की प्रगति को आश्चर्यजनक त्वरा प्रदान की, वहीं दूसरी ओर सहकारिता मूलक भाई-चारे के आधार पर पशु-जगत् से भिन्न उसने जिस "सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।"— मूलक मानव-संस्कृति का विकास कर लिया था उसमें पहली बार एक दरार पड़ी— एक ऐसी दरार जो बढ़ती गयी और जो आज भी कायम है। इस दरार ने कई छद्म रूप धारण किये— कभी साम्राज्य-वाद का, कभी सामन्तवाद और अर्द्ध-सामन्तवाद का, कभी पूँजीवाद का, कभी फासिज्म और कभी दक्षिण-पंथी प्रतिक्रियावाद का।

इस दरार को बढ़ाने का काम किया लिखने-पढ़ने के आविष्कार ने। लिखने-पढ़ने का आविष्कार और अभ्यास हुआ और लिखने-पढ़ने वालों का एक अलग वर्ग बन गया— पंडितों और बुद्धिजीवियों का वर्ग। पढ़ने लिखने की कला का अधिकारी यह वर्ग ज्ञान-विज्ञान का निरन्तर विकास करता हुआ दर्शन और धर्म की नित-नवीन व्याख्या करता हुआ, विशिष्ट बनता गया और उन निरक्षरों से कटता गया जिनके उत्पादन पर वह पलता था। दास प्रथा ने जिस शोषण-मूलक संस्कृति को जन्म दिया था, पढ़ने-लिखने के आविष्कार ने उसकी नींव को और भी दृढ़ बनाया। और इसके बाद की मानव-सभ्यता के विकास का इतिहास, साक्षरतामूलक शिक्षा द्वारा शोषण-मूलक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बनाये रखने और इस समाज के प्रच्छन्न

हिंसक कृत्यों को स्वीकृति प्रदान करने का इतिहास है। शिक्षा भारत में ही नहीं विश्व भर में असमानता, वर्ग-भेद और बौद्धिक ढग को बढ़ाने का सबसे बड़ा साधन रही है। शोषक वर्ग द्वारा आम जनता के शोषण को उसने तर्क और दर्शन की वाणी दी है— धर्म और भगवान का, स्वर्ग और नरक का अफीम खिला कर उसकी चेतना को कुंठित किया है।

बुद्धिजीवी वर्ग धरती से कटा :

कृषि के आविष्कार के बाद दास प्रथा के कारण मानव मानव में जो अन्तराल उत्पन्न हुआ था, उस अन्तराल में और उस अन्तराल में जो लिखने-पढ़ने के बाद पड़ा एक मौलिक अन्तर था। दास प्रथा की नींव पर शोषण मूलक एक नयी मानव सभ्यता का तीव्र गति से निर्माण करने वाला अभिजात्य वर्ग धरती से कटा नहीं था लेकिन साक्षरता मूलक शिक्षा ने जिस बौद्धिक वर्ग को जन्म दिया वह वर्ग धरती से कट गया। जब कि एक दिन हमारे ऋषियों ने कहा था— (पुत्रोऽहम् पृथिव्या) पृथ्वी हमारी माता है— हम पृथ्वी के पुत्र हैं। पढ़ा-लिखा पंडित पृथ्वी-पुत्र नहीं रह गया। प्रकृति के उन्मुक्त जीवन से हट कर वह धीरे धीरे मठों, गिरिजाघरों, मंदिरों, मस्जिदों, विद्यालयों, स्कूलों और कालेजों के सकीर्ण प्रागण में सिकुड़ता हुआ जीवन की यथार्थता से एक दम छिन्न हो गया। शिक्षा बौद्धिक विलास का पर्याय बन गयी— केवल मस्तिष्क का व्यायाम— दिमाग की कसरत। हाथ के काम की ठोस भूमि पर उसके पैर नहीं रहे।

नगरीय संस्कृति और शिक्षा :

इस प्रकार यथार्थ जीवन की व्यावहारिकता से दूर बौद्धिक ढग के अपने शीशमहल में बैठे हुए बुद्धिजीवी वर्ग ने एक ऐसी नगरीय संस्कृति का विकास किया जो उस संस्कृति से भिन्न थी जिसे मनुष्य ने गाँवों में रह कर विकसित किया था। यह नगरीय संस्कृति गाँवों के शोषण पर आधारित हुई। जंगल के कानून को खत्म कर मनुष्य को प्रेम, करुणा और सहकार के आधार पर जब शांति के साथ एकस्थान पर बसने और रहने की आवश्यकता महसूस हुई तो गाँव बने और उस संस्कृति का विकास हुआ जिसे हम ग्रामीण संस्कृति कहते हैं। यह संस्कृति कृषि लघु उद्योग मूलक उत्पादक संस्कृति थी। इसके विपरीत विज्ञान और टेक्नालाजी के आविष्कार के कारण औद्योगिक कारखानों के इर्द गिर्द उस नगरीय सभ्यता का विकास हुआ जिसके मूल में सत्ता और संपत्ति का केन्द्रीयकरण है और जिसकी निष्पत्ति 'शोषण' है। इसीलिए गांधी जी ने साफ साफ कहा— "कारखानों की सभ्यता पर हम अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते। स्वावलम्बी गाँवों की बुनियाद पर ही वह किया जा सकता है। ग्रामीण आर्थिक रचना की मेरी कल्पना में शोषण बिल्कुल समाप्त हो

जाता है और शोषण तो हिंसा का सार है। इसीलिए अगर हमको अहिंसक बनना है, शोषण विहीन समाज का निर्माण करना है तो ग्रामीण वृत्ति वाला बनना होगा। *अहिंसा पर आधारित समाज गाँवों में बने हुए समुदायों का ही हो सकता है।"*
(हरिजन जनवरी १९४०)

मानव-मुक्ति के लिए शिक्षा

पढ़ने लिखने वाले बुद्धिजीवियों द्वारा नगरीय संस्कृति के विकास को बल मिला और ग्रामीण संस्कृति का ह्रास हुआ और इस प्रकार साक्षरता-मूलक शिक्षा ने वर्ग भेद को दृढ़तर बनाया और एक ऐसी शोषण प्रधान संस्कृति का निर्माण किया जो आज मानवता का सबसे बड़ा संकट बन गई है। शिक्षा मानव-मुक्ति का नहीं मानव-बंधन का कारण बनी है। इसलिए हम अगर एक ऐसी शिक्षा-पद्धति की तलाश में हैं जिससे मानव का कल्याण हो तो हमें उसे ग्रामाभिमुख बनाना होगा और शिक्षा का एक ऐसा प्रारूप प्रस्तुत करना होगा जो ग्राम-मूलक हो और जिसमें शोषण की वृत्ति को पनपाने वाली प्रवृत्तियों का अभाव हो। तभी वह शिक्षा मानव के बंधन के स्थान पर उसकी मुक्ति का साधन बन सकेगी।

शोषण-विहीन स्वावलम्बन मूलक शिक्षा

इस शिक्षा की सबसे बड़ी शर्त यह होगी कि वह शोषण विहीन स्वावलम्बन मूलक हो। आखेट युग में मिल-जुल कर शिकार करने और आपस में बाँट कर खाने के कारण जिस आदिम साम्यवाद का विकास हुआ था कृषि-युग की दास प्रथा के कारण उसका ह्रास हो गया और शोषण की प्रवृत्ति का विकास हुआ। कृषि ने संग्रह और संचय की प्रवृत्ति को भी जन्म दिया जिसकी विकृति अस्तेय और परिग्रह में हुई। इन्हीं कारणों से शोषण की प्रवृत्ति उभरी और आदिम मानव का सहकार और अपरिग्रह समाप्त हुआ। लिखने-पढ़ने की कला के आविष्कार के बाद शोषण की इस प्रवृत्ति को और बल मिला क्योंकि लिखने-पढ़ने वाला बुद्धिजीवी हाथ के काम से जैसे-जैसे कटता गया वैसे-वैसे दूसरों के शोषण पर चलने की इसकी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। **शोषण की प्रवृत्ति जन्मी थी स्वयं उत्पादन न करके दूसरों से पैदा करा करके उपभोग करने की प्रवृत्ति से।** अतः अगर शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना है, तो सब अनिवार्यतः उत्पादन करें—ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करें जिससे मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है—इस प्रवृत्ति का सृजन करना होगा। **यह तभी सम्भव होगा जब समाज में जो शिक्षा-पद्धति चले वह उत्पादन मूलक हो और हाथ का उत्पादन के काम शिक्षण की प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु बन जाय।** नहीं तो समाज का एक वर्ग, किसान मजदूर वर्ग, जहाँ उत्पादन के काम में लगा रहेगा, वहीं शिक्षा पढ़े-लिखे लोगों का एक ऐसा वर्ग तैयार करती रहेगी जो समाजोपयोगी

उत्पादन की कला से अनभिज्ञ होने के कारण, अपने नित्य प्रति की आवश्यकता के लिए परमुखापेक्षी बनकर दूसरों का शोषण करता रहेगा। अत: समाज का हर एक बच्चा पढ़ने-लिखने के साथ (पढ़ना-लिखना इसलिए कि मानव-विकास के इस बिन्दु पर पढ़ना लिखना छोड़ना मानव सभ्यता को पीछे ले जाने वाला कदम होगा) हाथ का समाजोपयोगी उत्पादक काम सीखे जिससे शोषण विहीन अहिंसक समाज-रचना के लिए जिस शोषण की प्रवृत्ति को मिटाने की आवश्यकता है, वह मिटे। जिस व्यक्ति को किसी समाजोपयोगी काम करने की शिक्षा नहीं मिली है, वह अपनी शोषण की प्रवृत्ति का दमन नहीं कर सकता। इतना ही नहीं वह दूसरों के शोषण की क्रियाओं का अप्रत्यक्ष— प्रच्छन्न समर्थन भी करता ही रहेगा। इसलिए गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा में इस बात पर जोर दिया था कि जिस दिन से बालक विद्यालय में आता है, उस दिन से और जब तक वह विद्यालय में रहता है, उस दिन तक, उसे एक समाजोपयोगी धंधे को वैज्ञानिक ढंग से सिखाना और उसी के माध्यम से पढ़-लिख कर अपने व्यक्तित्व का संस्कार और विकास करना सिखाया जाय। ऐसा होगा तभी शोषण की प्रवृत्ति मिटेगी। अत: यदि हम चाहते हैं कि एकांगी शिक्षा के कारण शोषण की जो प्रवृत्ति पनपी है वह मिटे और एक बार फिर सहकार-मूलक उस ग्रामीण-संस्कृति का उदय हो जिसके मूल में अशोषण हो, तो समाजोपयोगी उत्पादक धंधे को शिक्षा-पद्धति का केन्द्र बिन्दु बनाना होगा। आज की नगरीय संस्कृति के परित्याग में ही विश्व का कल्याण है क्योंकि अहिंसक समाज-रचना के लिए ग्रामों का उदय जरूरी है तो फिर ग्रामों के उदय के लिए यह भी अनिवार्य होना चाहिए कि प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक प्रत्येक विद्यार्थी राष्ट्र में चलने वाले उत्पादन के कामों से सतत संलग्न रहे। ऐसी शिक्षण-व्यवस्था करनी होगी कि प्रत्येक विद्यार्थी नियमित रूप से राष्ट्र के उत्पादन केन्द्रों में— खेतों और खलिहानों में, कारखानों और दूकानों पर— अनिवार्य रूप से अपनी पढ़ाई लिखाई की आधी अवधि तक काम करे। ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिये कि जो आज किसी कारण वश पढ़-लिख नहीं रहे हैं, वे उत्पादन की समाजोपयोगी प्रक्रिया में लगे रहने के साथ-साथ पढ़ें लिखें। जब तक इस दोहरे आक्रमण-नीति का उपयोग नहीं किया जाता शिक्षा मानव-मुक्ति का कारण नहीं बनेगी।

शोषण बनाम स्वावलम्बन :

स्वावलम्बन की प्रवृत्ति शोषण की विरोधी प्रवृत्ति है। उत्पादक धंधा में सतत लगे रहने से स्वावलम्बी प्रवृत्ति का उदय होता है और जब स्वावलम्बन प्रवृत्ति संस्कार बन जाती है तो शोषण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। हमको यह भी नहीं भूलना चाहिये कि हाथ का काम जब बौद्धिक विलास बन कर रह जाता है जैसा आज कल, मान्टेसरी या किंडर गार्डन स्कूलों में होता है, तो उससे स्वावलम्बन की

प्रवृत्ति पुष्ट नहीं हो पाती। अतः शिक्षा को ग्रामाभिमुख बनाने के लिये जो भी शिक्षा-पद्धति विकसित की जाय वह प्रभावपूर्ण तब तक न मानी जायगी जब तक कि वह विद्यार्थियों में आत्म निर्भरता की प्रवृत्ति का पोषण न करे। शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने में व्यक्ति में आत्म-निर्भरता की प्रवृत्ति का सृजन अधिक महत्व का है। मूल प्रश्न व्यक्ति में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का सृजन है। इससे दो हेतु सिद्ध होंगे। एक ओर तो ग्रामीण संस्कृति में दास प्रथा के कारण शोषण के जो तत्त्व प्रविष्ट हो गये थे वे समाप्त होंगे और दूसरी ओर शिक्षा ऐसे आत्म निर्भर व्यक्तित्व का सृजन करेगी जिसमें अपने पैरों पर खड़े होने का आत्म-विश्वास पैदा होगा। शिक्षा की जिस पद्धति से विद्यार्थी आत्म-निर्भर बन सके वही शिक्षा की उत्तम पद्धति है। 'किसी राष्ट्र का कोई चीज इतना कमजोर नहीं बनाती जितना यह कि हम श्रम का तिरस्कार करना सीखे" (यंग इंडिया— सितम्बर १९ १) भारत ही नहीं संसार के कल्याण के लिए आज ग्रामीण संस्कृति के पुनरुद्धार की आवश्यकता है और यह संस्कृति जिस शिक्षा-पद्धति से मजबूत बनेगी वह श्रम- आधारित, उत्पादन-मूलक होगी।

संक्षेप में इस प्रकार की शिक्षा की रूप-रेखा निम्न प्रकार की होगी —

(१) समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग का वैज्ञानिक शिक्षण सबके लिए, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर, अनिवार्य हो जिससे समाज का प्रत्येक नागरिक समाज की उत्पादक इकाई बने। शिक्षा का लक्ष्य उपभोक्ता-समाज के स्थान पर उत्पादक-समाज का सृजन हो।

(२) बौद्धिक शिक्षा के साथ हाथ के काम की शिक्षा का समन्वय होना चाहिए। अध्ययन और काम को निरन्तर अनुबंधित करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(३) गाँव के सामुदायिक जीवन की सामान्य प्रवृत्तियाँ शिक्षा का अभिन्न अंग हों, जिससे छात्र के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास हो।

(४) आज जिसे सामान्य शिक्षा कहते हैं, उसका क्षेत्र इतना व्यापक बना दिया जाय कि उसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक, टैकनीकल, व्यावसायिक सभी प्रकार की शिक्षा आ जाय। इस शिक्षा से व्यक्ति और समुदाय की अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

(५) और ग्रामीण संस्कृति की पुनः स्थापना और विकास के लिए जिन उन्नत कृषि प्रणालियों और लघु अथवा माध्यमिक उद्योगों का संचालन किया जाय उनके कार्यान्वयन के लिए जिन भी योग्यताओं और क्षमताओं की आवश्यकताएँ हैं, वे इस शिक्षा प्रणाली का अनिवार्य अंग हों।

ग्राममूलकता—ग्रामाभिमुखता

इस शिक्षा का दूसरा अनिवार्य तत्व होना चाहिए— ग्राम-मूलकता ग्रामाभिमुखता। आज की शिक्षा-पद्धति नगरोन्मुख है। कुछ इने गिने नगर-वासियों को सुख-सुविधाएँ पहुँचाना और जो सुख सुविधाएँ उन्हें प्राप्त है, उन्हें बनाये रखना ही इस शिक्षा-पद्धति का लक्ष्य है। इसलिए आज के कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने इस पद्धति को 'हिंसक' कहा है— 'शोषण' अर्थात 'अप्रत्यक्ष हिंसा' के कृत्या का प्रश्रय देने वाली कहा है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री इवान इलिच अपने अविद्यालयीकरण (डी-स्कूलिंग) के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए कहते है— "संस्थाओं की चहार-दीवारी में बँधी इस शिक्षा प्रणाली से आज के युग की सार्वजनिक शिक्षण की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होगी। अपने वर्तमान रूप में आज की विद्यालयी शिक्षा हमारे समाज के लिए अपर्याप्त ही नहीं हानिप्रद भी है। मैं विद्यालयी शिक्षा से व्यक्ति की मुक्ति चाहता हूँ। इसीलिए मैं अविद्यालयीकरण (डी-स्कूलिंग) की माँग करता हूँ। आज शिक्षा स्कूली शिक्षा का पर्याय हो गई है और विद्यालय के बाहर हम व्यक्ति की शिक्षा की कल्पना ही नहीं कर पाते। यह धारणा गलत है।' वे एक दूसरी जगह लिखते है— शिक्षा-संस्थाओं के कमरों में बंद आज की विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को अगर आज के युग के आकांक्षाओं के अनुरूप बनाना है, तो हमें वर्तमान शिक्षा पद्धति के ढाँचे में आमूल परिवर्तन करना होगा। इस समय जो काम स्कूल करते है उनमें से अधिकांश काम समुदाय के उत्पादन केन्द्रों को करना चाहिए। समुदाय में स्थित खेतों-खलिहानों फार्मों और कारखानों का प्रयोग विद्यार्थियों के प्रशिक्षण केन्द्रों के रूप में होना चाहिए। आज के विद्यार्थियों को एक साल में नौ महीने स्कूलों में बिताना पड़ता है। इस टाइम-टेबुल को बदल कर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उन्हें स्कूल के भीतर २ घंटे से अधिक व्यतीत न करना पड़े। विद्यार्थी जीवन के २५–३० वर्षों के समय का वितरण इसी हिसाब से किया जाय। संक्षेप में इवान इलिच साक्षरतामूलक एकांगी बौद्धिक शिक्षा को विद्यालयों के कैदखानों से मुक्त करके समुदायोन्मुख बनाना चाहते है जिससे वह किंचित सुविधा-सम्पन्न व्यक्तियों के हाथ में समाज के उपेक्षित जनों (अंडर प्रिविलेज्ड) के शोषण का साधन न बन कर आम जनता की मुक्ति का साधन बने।[1]

इलिच ही नहीं दुनिया में शिक्षा का नया विचार यह जानने लगा है कि विद्यालय की चहार-दीवारी के भीतर बन्द एकांगी बौद्धिक शिक्षा आज के युग के सार्वजनिक शिक्षण के लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकती। और शिक्षा को अधिकाधिक समुदायोन्मुख बनाना आज की शिक्षा में आमूल परिवर्तन का नया महत्वपूर्ण आयाम होगा।

आज से तीस साल से भी पहले जब गांधी जी ने कहा था कि साक्षरता शिक्षा नहीं है और वह न तो शिक्षा का प्रारम्भ है और न अन्त तो वे इसी प्रकार का क्रान्तिकारी विचार प्रकट कर रहे थे। और जब उन्होंने बुनियादी शिक्षा के मूल में ग्रामोद्योग रखा और कहा कि बालक की सारी शिक्षा इन उद्योगों के इर्द-गिर्द हो, तो वे शिक्षा को समुदायोन्मुख बनाने की ही बात कर रहे थे। चूंकि भारत गावों में रहता है अतः उन्होंने साफ-साफ कहा कि उनकी बुनियादी शिक्षा वास्तव में दस्तकारियों के माध्यम से ग्रामीण राष्ट्रीय शिक्षा है।

जाकिर हुसैन समिति द्वारा तैयार किये 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' नामक पुस्तक के दूसरे संस्करण के लिये लिखी हुई भूमिका में वे कहते हैं— "जिसे जाकिर हुसैन समिति ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा कहा है— उसका ज्यादा सही वर्णन होगा— दस्तकारियों द्वारा ग्रामीण राष्ट्रीय शिक्षा। ग्रामीण शब्द में तथाकथित उच्च अंग्रेजी तालीम का निषेध हो जाता है। राष्ट्रीय शब्द का अर्थ है 'सत्य और अहिंसा' और देहाती दस्तकारियों का मतलब है कि ऊपर से लदे हुए प्रतिबन्धों और हस्तक्षेपों से मुक्त वातावरण में कुछ चुनी हुई दस्तकारियों के जरिये बालकों की तमाम शक्तियों को बाहर लाया जाय। इस तरह सोचें तो यह योजना देहाती बच्चों की शिक्षा में एक क्रान्ति है। यह किसी भी अर्थ में पश्चिम से लायी हुई चीज नहीं है।"

बुनियादी शिक्षा की इस क्रान्तिकारी संकल्पना में गांधी जी ने निम्नांकित बातें कही हैं जो —

(१) उन्होंने साक्षरतामूलक एकांगी बौद्धिक शिक्षा का निषेध किया है— क्योंकि इस शिक्षा ने वर्गभेद की खाई को बढ़ाया है, आज भी आम जनता के शोषण का बहुत बड़ा साधन है।

(२) उन्होंने इस शिक्षा पद्धति को राष्ट्रीय कहा है, यानी इस शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के रूप में अपनाने की वकालत की है। राष्ट्रीय इसलिए कहा है कि चूंकि वे चाहते थे कि भारत की राजनीति सत्य और अहिंसा पर आधारित हो जिसमें एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण पूर्णतः समाप्त हो जाय, इसी-लिए वह यह भी चाहते थे कि भारत की शिक्षा-नीति भी ऐसी हो जो शोषण की प्रवृत्ति का उन्मूलन करे इस प्रकार अहिंसा और सत्य पर आधारित हो।

(३) इस प्रकार की शिक्षा-नीति की सफलता के लिए ये दो बातें आव-आवश्यक हैं —

(क) एक तो यह कि वह ऊपर से लादे हुए प्रतिबन्धों और हस्तक्षेपों से मुक्त वातावरण में दी जाय। "परम्परागत शिक्षा का प्रमुख कार्य सुविधा-सम्पन्न सामाजिक व्यवस्था का पोषण और संरक्षण रहा है और वह इस तथ्य से परिचालित

रही है कि केवल थोडे ही लोग शिखर तक पहुँच सकते हैं। यह शिक्षा पद्धति इन्ही 'थोडे से लोगों' के हितों की दृष्टि में रखकर निर्मित हुई थी अत यह ऐसे प्रतिबन्धों का जाल फैलाती है जिससे यह यह नियमन कर सके कि कौन सुविधा-सम्पन्न लोगो की कतार में शामिल हो और कौन अकिंचन बन कर, पीछे खडे रहें।" बडी सख्या के हितो का अपहरण कर केवल थोडे से व्यक्तियो के धन और ताकत पैदा करना, दूसरो का तरक्की के रास्ते मे भरसक दूर रखना, इस लडाई के दौरान अपने अन्य साथियो का भरसक हराते रहना, रास्ता पडौसी के खून से कितना भी फिसलन भरा बन गया हो, तो भी इस बात की तनिक भी परवाह किये बिना सबसे ऊँची जगह पर पहुँचने के लिए दूसरे लोगों पर हावी रहना, ये सभी इस शिक्षा की सफलता के प्रतीक हैं। और इस सफलता के लिये परम्परागत शिक्षा नाना प्रकार के प्रतिबन्धों का सृजन करती है—पाठ्यक्रम के रूप में, परीक्षा पद्धति के रूप मे, शैक्षिक प्रशासन के रूप मे आदि-आदि। इस प्रकार शिक्षा एक हिंसक और प्रतिस्पर्धात्मक समाज-व्यवस्था के निर्माण मे अपनी भूमिका अदा करती है। इसीलिए गाधीजी ने सत्य और अहिंसा पर आधारित शिक्षा के लिए ऊपर से लादे हुए प्रतिबन्धो और हस्तक्षेपो से मुक्त रहने की बात कही है।

(ख) दूसरी बात जो इस शिक्षा-नीति के लिए आवश्यक है वह यह है कि सारी शिक्षा दस्तकारियो के माध्यम से दी जाय। दस्तकारियो का मतलब है छोटे और माध्यमिक स्तर के ग्रामोद्योग अथवा कुटीर उद्योग। दस्तकारियो कहकर गाधीजी ने 'भारी उद्योगो' का निषेध किया है। 'भारी उद्योग' यंत्रीकरण और केन्द्रीकरण को— सत्ता और सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को— बढावा देते हैं और "मुट्ठी भर आदमियो का लाखो की पीठ पर सवार, होकर उनके शोषण का अधिकार देते हैं। भारी उद्योगो का चलाने के मूल में मनुष्य का लोभ है, धन की तृष्णा है, जन-कल्याण की भावना नही है।" (गाधीजी—'नवजीवन २ सितम्बर, १९२४) ग्रामोद्योग की सकल्पना केन्द्रित औद्योगीकरण की विरोधी सकल्पना है। वह अति यन्त्रिकता की भी विरोधी है। केन्द्रीयकरण और अति यान्त्रिकता दोनो ही मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिये अभिशाप हैं। दोनों मे ही प्रच्छन्न हिंसा है और दोनों ही मानव-व्यक्तित्व का अमानवीकरण करते हैं। शैक्षिक प्रशासन की दृष्टि से विकेन्द्रित समुदायोन्मुख उत्पादन-मूलक शिक्षा से ही इस अमानवीयकरण से और प्रच्छन्न हिंसा से बचा जा सकेगा। अगर अहिंसा मूलक नये समाज का निर्माण करना है तो इस शिक्षा-नीति को अपनाना होगा और यह समझ लेना चाहिये अगर इस तरह के अहिंसामूलक नये समाज का निर्माण नहीं हुआ तो विश्व का विनाश निश्चित है।

सक्षेप में ग्रामाभिमुख शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा है, जिससे वह वर्गभेद मिटे जो पढे लिखे और बे पढेलिखो के बीच आ गया है, वह शोषण मिटे जो

शिक्षा के बल पर थोड़े से नगर वाले गाँव वालों का कर रहे हैं, और उससे भी बड़ी बात होगी वह भेद मिटे जो उत्पादक समाज और उपभोक्ता समाज के बीच आ गया है।

अत जब हम ग्रामीण संस्कृति के पुन विकास के लिए आज की शिक्षा का विकल्प ढूँढते हैं तो हम शिक्षा के उस रूप की कल्पना करते हैं जो न साक्षरता का पर्याय मात्र हैं और न मनुष्य के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष का विकास मात्र। देखा जाय तो पशु से भिन्न मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली संस्कार, प्रेम, करुणा, अहिंसा, अपरिग्रह आदि वृत्तियो के यहाँ तक कि 'साहित्य-संगीत-कला' आदि वृत्तियों के विकास के लिए भी लिखने-पढने का ज्ञान अनिवार्य नहीं है। लिखने पढ़ने के आविष्कार के पहिले की पूरी मानव-सभ्यता इस बात की साक्षी है। अत ग्रामीण शिक्षा कहने से तो हम एक ऐसी 'शिक्षा' की कल्पना करते हैं, जो इन मानवोचित प्रवृत्तियो का पोषण तो करेगी ही और ऐसी नयी वृत्तियो को भी पनपायेगी जिनका विकास लिखने-पढ़ने के आविष्कार के बाद ही मुमकिन हो सका है। यह तभी सम्भव होगा जब 'शिक्षा' मात्र बौद्धिक शक्ति का विकास करने और सुविधा-सम्पन्न समाज की यथाशक्ति को कायम रखने के बजाय मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे और उन सारी प्रवृत्तियों का परिहार करे जो हिंसा और शोषण को प्रोत्साहन देती है। ऐसा तभी होगा जब शिक्षा समुदाय में चल रही उन समस्त उत्पादन की क्रियाओं से जो 'पूंजी' और अति यांत्रिकता का सहारा लेकर दूसरों का शोषण करती है, अलग रह और समुदाय में चल रही उत्पादन और निर्माण की उन समस्त क्रियाओं-प्रक्रियाओं के साथ एकाकार हो जाय जो आम जनता के विकास और प्रगति के लिए चल रही है। जाहिर है कि इन क्रियाओं का रूप उन 'उद्योगों' का होगा जिन्हें गांधी ने 'दस्तकारी' कहा है और इस शिक्षा का क्षेत्र ग्रामीण समुदाय होगा। गांधी जी के साथ लोगों को समझ लेना होगा कि "अगर भारत को सच्ची आजादी हासिल करनी है और भारत के जरिये संसार को भी, तो आगे पीछे लोगों को यह समझना होगा कि लोगों को गाँवो में ही रहना है, शहरों में नहीं। कारखानो की सभ्यता पर हम अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते, अहिंसा का निर्माण तो स्वावलम्बी गाँवों की बुनियाद पर ही किया जा सकता है। और अगर अहिंसक समाज निर्माण नही तो मानव-संस्कृति का विनाश निश्चित है। आज की शिक्षा का लक्ष्य अहिंसक स्वावलम्बी ग्राम समाज का निर्माण होना चाहिए।

काकासाहब कालेलकर :

शिक्षा-शास्त्री गांधीजी :

गांधीजी का और मेरा प्रत्यक्ष प्रथम परिचय श्री रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन में हुआ था। वहाँ गांधीजी ने मेरा शिक्षा का कार्य नजदीक से देखकर मुझे अपने आश्रम में बुलाया। धीरे-धीरे आश्रम का शिक्षा-विभाग उन्होंने मुझे सौंपते हुए कहा कि "भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार किस तरह हो यह सोचनेका काम और हमारी शिक्षा-पद्धतिका प्रभाव भारत पर डालने का काम आपका है।" इतना बडा मिशन अपने सिर पर लेने की मेरी तैयारी नहीं थी, लेकिन गांधी जी के विचार समझकर प्रयोग के द्वारा उन्हें आत्मसात् करने का संकल्प मैंने किया।

स्वयं एक शिक्षा शास्त्री होने का दावा करते हुए मैंने गांधीजी को बहुत नजदीक से देखा।

शिक्षा-शास्त्री (एज्युकेशनिस्ट) किसे कहें ? जीवन के विकास के लिये जो-जो साधना की जाती है, वह सारी शिक्षा ही है। इस व्याख्या में जीवन का अर्थ पूरा-पूरा व्यापक मानना चाहिये। केवल व्यक्तिगत जीवन में भी माँ-बाप से पाये हुये पारिवारिक संस्कार, वंश-परम्परागत आई हुई संस्कृति और पूर्वजन्मसे उतरे हुये दैवी और आसुरी तत्व सबका विचार करना पडता है। और हम तो व्यापक जीवन में व्यक्तिगत जीवन के अलावा पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और जागतिक मनुष्य-जीवन का अन्तर्भाव करते हैं, और आगे जाकर स्वीकार करते हैं कि मनुष्य जीवन भी जीव सृष्टि का एक अंश ही है। जीवन मीमांसा और जीवन-साधना जीवसृष्टि के विकास के अन्दर ही पनप सकती है।

इस दृष्टिसे शिक्षा-शास्त्री वही हो सकता है जिसके सामने जीवन-सृष्टिके विकासशील सामंजस्य का व्यापक चित्र खडा हो और जिसके पास अपने जमाने की जीवन-साधना के स्वरूप का भी स्पष्ट ख्याल हो।

गांधीजी ने व्यापक, विशाल, सनातन जीवन-क्रमका एक चित्र अपने सामने खडा किया था। उस जीवन विकास की दिशा का साक्षात्कार उन्हें हुआ, ऐसे जीवन के रहस्य को वे सत्य और अहिंसा, संयम और सेवा इन चार शब्दों के द्वारा व्यक्त करते थे। इन चार तत्वों का उनके मनमें कितना गहरा अर्थ था। इसका उनके साथियों को भी पूरा पता नहीं है, और मैं मानता हूँ कि अपने विशाल साहित्य के द्वारा भी वे अपने साक्षात्कार को पूरी तरह से प्रकट नहीं कर सके थे। उनसे अगर पूछा जाता तो वे कहते कि, "सत्य और अहिंसा का साक्षात्कार करने की कोशिश मैं अपने चिन्तन और जीवन के द्वारा अखण्ड और उत्कट ढंग से कर रहा हूँ। सत्य और अहिंसा का साक्षात्कार दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, लेकिन कह नहीं सकता कि मेरा ऐसा साक्षात्कार पूर्णता तक पहुँच गया है।" वे यह भी कहते कि "सत्य ही ईश्वर है और अहिंसा ही उसे पाने की साधना है। इसलिए ये दोनों अनन्त हैं। साधना अन्तकाल तक चलेगी ही। उसका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है यानी 'विश्वमोक्ष।"

गांधीजी ऐसे शब्दों में शायद नहीं कहते, लेकिन उनका भाव तो यही होता।

गांधीजी की सारी प्रवृत्ति आज की संस्कृति की मर्यादाएँ समझकर मनुष्य जाति को विश्वमोक्ष की तरफ ले जाने की थी। आस्तिक और श्रद्धावान होने के कारण वे अपनी प्रवृत्ति बिलकुल सादे किन्तु शुद्ध ढंग से छोटे पैमाने पर शुरू करते थे। वे जानते थे और कहते भी थे कि हेतु शुद्ध और व्यापक होने पर प्रवृत्ति चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो अगर वह उत्कट हो तो उसे व्यापक करते देर नहीं लगती, कठिनाई नहीं होती।

ऐसी व्यापक और "ठोस बुनियाद" वाली जीवन-दृष्टि के बल पर उन्होंने अपना जीवन-कार्य शुरू किया था, और देशसेवा और समाज-सेवा करते हुए "आॅइडियल्स ऑफ एज्युकेशन" शिक्षा को वे तय करते थे और इन आदर्शों को लोग आसानी से समझ सके ऐसा सादा रूप उन्हें देते थे।

शिक्षाशास्त्री का प्रथम कार्य है शिक्षा के आदर्श तय करना। गांधीजी की सारी जीवन-फिलासफी जीवन के प्रयोगों द्वारा ही अपना रूप लेती रही। इसलिए उन्होंने अपने जीवन के आदर्शों को और शिक्षा के आदर्शों को बिलकुल व्यावहारिक रूप दिया था।

आइडियल्स ऑफ एज्युकेशन के बाद आना चाहिये — कंटेण्ट्स ऑफ एज्युकेशन शिक्षा-क्रम में क्या-क्या सिखाना चाहिये, कौन-कौन-सी शक्तियों का विकास करना चाहिये। जीवन-साधनामें सफलता प्राप्त करने के लिये कौन-कौन-से कौशल्य आवश्यक हैं, कौन-कौन-सी जानकारी बुनियादी है, यह सब देखकर, सोचकर

शिक्षा का स्वरूप तय करना चाहिये। यह काम केवल शिक्षा-शास्त्री का नहीं है, जीवन-साधक, लोक-नेता, युग-पुरुष को ही शिक्षा-शास्त्री बनकर यह सब तय करना पड़ता है।

मानव-जाति ने अपने इतिहास-काल में क्या-क्या भूलें कीं, कौन-कौन से नुकसान सहन किये और उत्पात मचाये और आखिरकार सच्चा रास्ता कौन-सा है, उसके लिए क्या-क्या करना चाहिये— यह सब सोचने की और अपने जमाने की मर्यादाओं से ऊपर उठने की जिसमें ताकत है वही यह काम कर सकता है। उसकी दृष्टि चाहे जितनी जीवन-समृद्ध हो, भूत काल का महत्त्व वह चाहे जितना समझता हो और इस बात का कैसा भी पूरा ख्याल उसे क्यों न हो कि भूत काल मरा नहीं होता बल्कि वर्तमान-काल में अन्दर पर-काया-प्रवेश शक्ति के द्वारा निरन्तर अपना काम करता रहता है, युग पुरुष का ध्यान और उनकी दृष्टि भविष्य काल की ओर ही केन्द्रित रहती है। भूत काल एक तरह की पूंजी है, वर्तमान काल कीमती से कीमती साधन है, किन्तु अन्तिम साध्य तो भविष्य काल ही है— ऐसे दृढ़ विश्वास से सच्चा जीवन-शास्त्री शिक्षा का चिन्तन करता है।

गांधीजी में ये सब तत्त्व सूक्ष्म रूप में पाये जाते थे। ठीक इसी ढंग से उन्होंने भले ही चिन्तन न किया हो, लेकिन उनका चिन्तन इसी ओर चल रहा था इसमें शक नहीं।

मध्यम वर्ग की और उच्च वर्ग की प्रतिष्ठा को तो वे सम्भालते ही थे, किन्तु उससे प्रभावित होकर नहीं, बल्कि अहिंसक कारुणिकता के कारण। उनका सारा प्रयत्न दबे हुए, हारे हुए और निराशा तक पहुँचे हुए लोगों में आत्म-विश्वास और आत्म शक्ति जाग्रत करने का ही था, और भगवान ने भी उनको दक्षिण अफ्रीका में भारत के गिरमिटिया मजदूरों की सेवा करने का ही काम सबसे पहले सौंपा।

जब मनुष्य को गरीबों की सेवा करनी होती है, तब उच्च जीवन के नखरों को वह महत्त्व नहीं देता। जहाँ पेट भर पौष्टिक आहार ही नहीं मिलता वहाँ तरह-तरह के व्यंजनों, स्वादिष्ट वस्तुओं, फूलदानके फूलों और मधुर संगीत के प्रबंधका मनुष्य विचार ही नहीं करेगा। गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि से यह सारा असर दीख पड़ता है। मतलब की बातों को प्रधानता देने में वे कभी चूकते नहीं थे।

"आइडिअल्स ऑफ एज्युकेशन" और "कंटेण्ट्स ऑफ एज्युकेशन" के बाद बारी आती है "मेथड्स ऑफ एज्युकेशन" की इसी में शिक्षक की सारी कला प्रकट होती है। और आज कल "शिक्षा-शास्त्री" तो उसी को कहते हैं, जो इस कला में निपुण हो। शिक्षण अथवा अध्यापन एक सुन्दर और प्रभावशाली कला है। इसमें शक नहीं है कि आत्मा के विकास के लिये इस कला का सर्वोच्च विकास होना चाहिये।

आज का युग इस कला के पीछे ही पड़ा है और उसने इसमें अच्छी सिद्धि भी पाई है। लेकिन साथ-साथ कहना पड़ता है कि यह सारा कुछ छिछला और एकांगी हो रहा है। आज कल के शिक्षा-शास्त्रियों को स्वतन्त्रता का कुछ साक्षात्कार हुआ है सही, परन्तु पूरा नहीं। जीवन के बारे में जब शुद्ध, गहरी और सम्पूर्ण दृष्टि उन्हें मिलेगी तब "मेथड्स ऑफ एज्युकेशन" में शिक्षा-पद्धति में— बहुत कुछ सुधार होगा और अध्यापकों को भी अपने जीवन में काफी मौलिक सुधार करने पड़ेंगे।

यह तब होगा जब अध्यापक-गण समझ जायेंगे कि उनके उपदेश, उनकी अध्यापन-कला और उनका निर्मित किया हुआ बाह्य वायुमंडल— इन तीनों की अपेक्षा उनके जीवन का ही उनके शिष्यों पर अधिक और प्रधान असर होने वाला है।

मैं नहीं मानता कि गांधीजी ने अध्यापन-कला का गहरा अध्ययन किया था। अविभक्त कुटुम्ब पद्धति के पारिवारिक वायुमंडल में उनका बचपन व्यतीत हुआ था— इसलिए बड़ों के प्रति आदर और सद्भाव उनमें काफी मात्रा में था। और समवयस्कों तथा छोटों के प्रति प्रेम और आत्मीयता होने के कारण उनके विकास की चिंता और जिम्मेवारी वे महसूस करते थे। इस कारण उनमें अध्यापन-कला का जो विकास हुआ होगा वही उनकी पूँजी थी।

मैं नहीं मानता कि उनके निजी शिक्षण के दरमियान उनको किसी आदर्श अध्यापक का सम्पर्क प्राप्त हुआ था। विलायत में कानून के अध्यापकों का चंद सामाजिक नेताओं का और धर्मोत्सुक मिशनरी लोगों का सम्पर्क उन्हें मिला। उनके बारे में उन्होंने 'आत्मकथा' में लिखा ही है।

दक्षिण अफ्रिका में अपने विशाल आश्रम परिवार के बच्चों को पढ़ाते हुए उन्हें अध्यापन-कला का जो अनुभव मिला उसको वे अत्यधिक महत्त्व देते थे। वहाँ पर उनका आदर्श "मानवता का सम्पूर्ण विकास करने का" नहीं था बल्कि "चारित्र्य सम्पन्न एकनिष्ठ नम्र और आदर्श सेवक तैयार करने का था। यह आदर्श काफी ऊँचा था सही। एक आदमी की तो क्या, एक पूरे जमाने की सारी शक्ति लगा कर भी इस आदर्श तक पहुँचना आसान नहीं है।

तो भी इस आदर्श के साथ उन्होंने अध्यापन-कला का जो अनुभव किया उसमें कला गौण बन गयी, और उन्हें अल्पसंतोषी बनना पड़ा। अध्यापन-कला में विद्यार्थियों को और उनके पूर्व संस्कारों को पहचानने की जो आवश्यकता होती है, वह गांधीजी में पूरी-पूरी प्रगट हुई थी। उनमें मनुष्य को पहचानने की शक्ति अद्भुत थी, लेकिन वे मनुष्य को कार्यकर्ता के रूप में ही पहचानते थे। बाकी बातें उनके मन गौण थी।

अपने साथियों के जीवन विकास में गांधीजी ने काफी मदद की है। तो भी गुरु में जितनी शक्ति होनी चाहिए उतनी उन्होंने प्राप्त की थी, ऐसा मेरा अनुभव नहीं है। अध्यापन-कला के निष्णात के तौर पर मैं उन्हें कभी मान नहीं सका। उनमें जो कुछ भी अध्यापन कला प्रगट हुई वह उनके अमर्याद प्रेम के कारण और अहिंसा की साधना के कारण थी। ये दो तत्व किसी भी अध्यापक के दोषों को जलाने के लिए काफी है। अध्यापन कला इन दो तत्त्वों से ही प्रगट हुआ है। इसलिये गांधीजी कुछ हद तक सफल अध्यापक हुए सही, किन्तु अध्यापन-कला का चिंतन और अनुशीलन प्रयत्न पूर्वक करते तो शिक्षा शास्त्री के तौर पर एक अद्वितीय ऋषी और आचार्य बनते। लेकिन उन्हें एक डूबते हुए राष्ट्र को बचाना था और जीते-जी लोकोत्तर काम करना था। उसी में वे एक मार्गदर्शक शिक्षा शास्त्री बने। यही है हमारा अहोभाग्य।

श्रीमन्नारायण :

बुनियादी शिक्षा की अनिवार्यता :

[मध्यप्रदेश शिक्षा सम्मेलन, भोपाल में मई २४–२५ को सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री एवं गांधी-विचारक डा० श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें सरकारी तथा गैरसरकारी सभी शिक्षा-विशेषज्ञोंने उत्साह के साथ भाग लिया। फलस्वरूप शिक्षा सम्बन्धी कुछ ठोस सुझाव दिये। आशा है कि मध्यप्रदेश शासन इन सुझावों पर निकट भविष्य में अमल करेगा।

— संपादक]

सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ श्रीमन्नारायण ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि राष्ट्रपति से लेकर साधारण शिक्षक और नागरिक तक सभी यह स्वीकार करते हैं कि आजादी मिलने के बाद भी हमारी शिक्षाप्रणाली अधिकतर पुराने ढर्रे पर ही चल रही है और गरीबी व बेकारी की बुनियादी समस्याओं को हल करने में असफल साबित हुई है। फिर भी यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि पिछले २८ वर्षों में केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। १५ अगस्त, १९४७ के पुण्य पर्व पर ही आचार्य विनोबा ने एक बड़े मार्के की बात कही थी— "स्वराज्य मिलने पर जैसे हमारा झंडा बदल गया है, वैसे ही हमारी शिक्षा भी शीघ्र ही बदल जानी चाहिए।" इस देश में अंग्रेजों ने शिक्षा की पद्धति को अपने स्वार्थ के अनुरूप ढाला था और राष्ट्र के नवयुवकों को अपनी नौकर-शाही का ढाँचा मजबूत रखने के लिये शिक्षित किया था। किन्तु अब तो हमें अपने नौजवानों को देश के सर्वांगीण निर्माण व विकास के लिये प्रशिक्षित करना है। इस महत्वपूर्ण कार्य में अधिक देरी करना स्वतंत्र भारत के लिये बड़ा खतरनाक सिद्ध होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन पर विचार :

यह सतोष का विषय है कि अक्तूबर १९७२ में सेवाग्राम में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसका उद्घाटन स्वयं प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। इस सम्मेलन में करीब सभी राज्यों के शिक्षा-मंत्री,

लगभग २० चुने हुए विश्वविद्यालयों के कुलपति और देश के बहुत से प्रमुख शिक्षा-शास्त्री व बुनियादी तालीम के शिक्षक शामिल हुए थे। तीन दिन की गम्भीर चर्चाओं के बाद सम्मेलन की ओर से एक 'वक्तव्य' प्रकाशित किया गया था जिसे अब 'शिक्षा-सुधार के राष्ट्रीय चार्टर' के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। योजना आयोग द्वारा पाँचवी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में भी सेवाग्राम सम्मेलन की करीब सभी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया है। तामिलनाडु, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, राजस्थान गुजरात, पश्चिम बंगाल व हरियाणा की राज्य सरकारों ने भी इन सिफारिशों का अपने-अपने क्षेत्र में लागू करने का निश्चय कर लिया है। हमें उम्मीद है कि मध्य-प्रदेश शासन भी अब इस शुभ-कार्य में अन्य राज्यों से पीछे न रहेगा।

सेवाग्राम सम्मेलन की मुख्य सिफारिशें क्या थी? सबसे पहले, इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि हर स्तर पर हमारी शिक्षा सामाजिक दृष्टि से उपयोगी और उत्पादक क्रियाकलापों द्वारा आर्थिक विकास से सम्बद्ध रहकर ग्रामीण और नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में प्रचलित की जाय। जब तक हमारे शिक्षण का सीधा सम्बन्ध विकास योजनाओं से जोड़ा नहीं जाएगा और सभी विद्यार्थियों को आसपास की आर्थिक परियोजनाओं में शामिल होकर उत्पादक-श्रम करने की सुविधायें न दी जायेंगी तब तक हमारे स्कूल और कालेज राष्ट्रीय-जीवन से अलग थलग रहकर केवल बेकारी फैलाने के कारखाने बनकर रह जायेंगे। हम देखते है कि एक ओर तो हजारों लाखों नवयुवक नौकरियों की तलाश में दिन रात निराशा के वातावरण में भटक रहे हैं, और दूसरी ओर ऐसी बहुत-सी योजनाएं हैं जिनके लिये योग्य कार्य-कर्ता उपलब्ध नहीं है। इस विचित्र पहेली को सफलतापूर्वक तभी सुलझाया जा सकता है जब हमारे शिक्षा-केन्द्र विभिन्न योजनाओं के अनुरूप कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करें और उन्हें देश के नवनिर्माण में सक्रिय भाग लेने का सुअवसर दें। इस दृष्टि से हमारी शिक्षा पद्धति ऐसी हो जो विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता, आत्म-विश्वास और श्रम प्रतिष्ठा के मूलभूत गुणों का विकास करे और सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमों में शिक्षकों व छात्रों के सहयोग द्वारा सामाजिक सेवा की भावना जाग्रत करें।

बुनियादी शिक्षा की अनिवार्यता –

इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ३८ वर्ष पहले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा योजना देश के सामने प्रस्तुत की थी और इस बात पर बहुत जोर दिया था कि प्रत्येक विद्यार्थी को समाज उपयोगी और उत्पादक-श्रम द्वारा अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करने का अवसर देना चाहिये। यह हमारा दुर्भाग्य है कि अभी तक इस बुनियादी शिक्षा या 'नयी तालीम' की पद्धति को देश भर में सचालित करने का सकल्प नहीं किया गया है।

यह कहना बिलकुल गलत होगा कि 'बुनियादी शिक्षा' पद्धति असफल रही है। सच बात तो यह है कि उसे ठीक तौर से लागू करने का मौका ही नहीं दिया गया है। जो हो, इस समय तो अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को 'बसिक एज्युकेशन' की संज्ञा ही दी जा रही है और यह सब दृष्टि से उचित होगा कि भारत में भी इस प्रकार की शिक्षा को 'बुनियादी शिक्षा' कहा जाय। बहुत वर्ष पहले जब मैं न्यूयार्क में वर्तमान शिक्षा के अग्रदूत प्रा० जोन डयूई से मिला था और गांधीजी का शिक्षा-सम्बन्धी साहित्य उन्हें भेंट किया था तब उन्होंने ये उद्‌गार प्रगट किये थे—"मुझे दुःख है कि गांधीजी की बुनियादी शिक्षा के बारे में मुझे अभी तक समुचित जानकारी प्राप्त न हो सकी। अब इस बुढ़ापे में मेरे लिये नये प्रयोग करना सम्भव नहीं है। किन्तु मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि गांधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार मेरी पद्धति से भी कई कदम आगे हैं और उनमें असीमित सम्भावनायें निहित हैं।"

किन्तु मैं देखता हूँ कि हमारे कई शिक्षा-शास्त्रियों को बुनियादी तालीम से कुछ चिढ़ या 'एलर्जी' हो गई है और वे 'बसिक' नाम से ही खिन्न हो जाते हैं। हो सकता है कि कुछ बुनियादी शालाओं में अब तक जो प्रयोग किये गये उनमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हों। किन्तु इसी कारण समूची पद्धति को अशास्त्रीय कहना सर्वथा अनुचित होगा। फिर भी मैं नहीं चाहता कि हम किसी नाम के झगड़े में अपनी शक्ति का अपव्यय करें। यदि उत्पादक-श्रम आधारित समाज उपयोगी शिक्षा को हम कोई दूसरा नाम देना चाहते हैं तो खुशी से दें। लेकिन इसका पूरा ध्यान रखा जाय कि नाम बदलने के साथ हम कहीं बुनियादी सिद्धान्तों को ही तिलांजलि न दे बैठें।

नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना :

हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले "सा विद्या या विमुक्तये" का मूल-मंत्र दिया था। इसका यह अर्थ नहीं है कि विद्या द्वारा हमें परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी। इस मंत्र का सच्चा अर्थ यही है कि हमारी शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थियों को पराधीन और निस्सहाय बनाने के बदले उन्हें विमुक्त, स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनाने में सहायक हो। यह तभी हो सकता है कि जब हमारे विद्यालयों में श्रम-प्रतिष्ठा, राष्ट्र-सेवा, आत्मविश्वास और नैतिक मूल्यों का परिवेश स्थापित किया जाय। यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे देश में आर्थिक विकास के साथ आध्यात्मिक विकास भी हो, और सभी शिक्षण-संस्थायें 'सर्व धर्म-समभाव' का वातावरण चारों ओर फैलानें का निरन्तर प्रयत्न करें। भारत एक बहुभाषी और बहुधर्मी राष्ट्र है। उसकी सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये यह बहुत जरूरी है कि प्रत्येक नवयुवक अपने धर्म के बुनियादी सिद्धान्तों को जानने के अलावा दूसरे मजहबों के

सामान्य तत्वो से भी परिचित हो और उनके प्रति आदर व श्रद्धा रखे। इस प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता के बिना भारत की एकता को मजबूत बनाना सम्भव नहीं होगा और हमारी स्वतन्त्रता ही खतरे में पड जायगी।

समूची शिक्षा योग, उद्योग व सहयोग पर आधारित हो :

सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन ने इस बात पर भी बहुत बल दिया था कि हमारे पाठ्यक्रमो में भारत की समन्वित सास्कृतिक परम्परा की जानकारी, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सक्षिप्त इतिहास, अहिंसा, लोकतन्त्र और समाजवाद तथा अन्तर-राष्ट्रीय सहयोग के मूल सिद्धान्तो का समावेश हो। माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तरो पर अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयो के पाठ्यक्रमो में गाधी-विचारधारा के अध्ययन का भी आरम्भ किया जाना चाहिये। हमारे शिक्षा-केन्द्रो मे व्यापक राष्ट्रीयता के साथ विश्व-बन्धुत्व और 'जय जगत्' का दर्शन जाग्रत होना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी को यह भली भाँति समझना चाहिये कि हमारे सविधान की नीव लोकतन्त्र, समाजवाद और सर्व धर्म-समभाव पर आधारित है। इस प्रकार की समाज-व्यवस्था सत्य, अहिंसा और सयम के गुणो द्वारा ही विकसित की जा सकती है। यदि व्यक्तिगत या सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिये हिंसा और तोडफोड की प्रणाली का सहारा लिया जायेगा तो हमे भले ही तात्कालिक सफलता मिलने का आभास हो, किन्तु अन्त में इस प्रक्रिया से सभी की बरबादी होगी यह अटल सत्य है। ससार के सुविख्यात इतिहासकार डा टायनबी ने हाल ही में दुनिया के नौजवानो को सबोधित करते हुए कहा है—"तुम असत्य और अन्याय का अवश्य प्रतिकार करो, यदि तुम अपने बुजुर्गो के विचारो से असहमत हो तो उनका भी विरोध करो। किन्तु याद रखो कि यह प्रतिकार गाधी-भावना से ओतप्रोत हो, अर्थात् उसमें हिंसा और विद्वेष का अश न हो।" प्रत्येक शिक्षा-केन्द्र के हर विद्यार्थी को यह विचार समझाने का सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये।

ऋषि विनोबा ने सेवाग्राम सम्मेलन के अवसर पर एक मौलिक सूत्र प्रदान किया था— "हमारी समूची शिक्षा योग, उद्योग व सहयोग पर आधारित होनी चाहिये।" इस सम्यक् सूत्र म सब कुछ समा जाता है। 'नई तालीम' के सभी शिक्षकों व प्रशासकों को विनोबा के इस त्रिसूत्री मत्र पर निरन्तर चिन्तन करना बहुत हितकर व प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा :

जहाँ तक शिक्षा के माध्यम का प्रश्न है, अब यह सभी विद्वान स्वीकार करते है कि प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा मातृभाषा के माध्यम द्वारा दी जानी

चाहिये। संतोष की बात है कि यह सुझाव देश की लगभग सभी राज्य सरकारों व बहुत-से विश्वविद्यालयों ने मान्य कर लिया है और इस ओर कुछ ठोस कदम भी उठाये गये हैं। फिर भी हम देखते हैं कि भारत में अँग्रेजी भाषा का प्रयोग घटने के बजाय कुछ बढ़ ही रहा है। इस समय भी काफी स्कूल अँग्रेजी माध्यम द्वारा संचालित किये जा रहे हैं और उनमें प्रवेश की भीड़ लगी रहती है। विश्वविद्यालयों में भी अँग्रेजी माध्यम का प्रचलन काफी मात्रा में विद्यमान है। भारत से अँग्रेजी राज्य जरूर चला गया, लेकिन अँग्रेजियत नहीं गई है।

अँग्रेजी द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के मोह का एक बड़ा कारण यह है कि भारत सरकार की सभी सिविल और मिलिटरी प्रवेश परीक्षायें अँग्रेजी माध्यम द्वारा ही चलाई जा रही हैं। यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक माँ-बाप इच्छा रखे कि उसका पुत्र ऊँची-से-ऊँची सरकारी सेवा में प्रवेश पाकर अपने जीवन को समृद्ध बनावे। इसीलिए अँग्रेजी माध्यम की शालाओं की ओर उनका आकर्षण बढ़ता जा रहा है। अब यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकारी-सेवा परीक्षायें प्रादेशिक भाषाओं में संचालित की जाय। पिछले २५ वर्षों की प्रवेश संख्या के आधार पर हरेक राज्य का कोटा निश्चित किया जा सकता है जिसके अनुसार प्रतिवर्ष वहाँ के नवयुवकों को इन सेवाओं के लिये चुना जाय। मातृभाषा माध्यम द्वारा यह चुनाव होने के बाद देश के नौजवानों को हिन्दी तथा अँग्रेजी का आवश्यक ज्ञान दिया जा सकता है। यदि ऐसा शीघ्र न किया गया तो प्रादेशिक भाषाओं का विकास सीमित होता जायगा और अँग्रेजी भाषा की प्रतिष्ठा जरूरत से ज्यादा बनी रहेगी। हम अँग्रेजी भाषा के विरुद्ध नहीं हैं। लेकिन अब उसे, उच्च तकनीकी शिक्षण को छोड़कर, सामान्य ज्ञान का माध्यम बनाये रखना सर्वथा अनुचित होगा। हाँ, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अँग्रेजी या किसी एक अन्य विदेशी भाषा को अनिवार्य रूप से एक विषय की तरह पढ़ाया जा सकता है।

नया आकृतिबंध कैसा हो ?

कोठारी कमीशन की सिफारिश के अनुसार अब देश के करीब सभी राज्यों में शिक्षा का ढाँचा १०+२+३ क्रम के अनुसार निश्चित किया जा रहा है। माध्यमिक शिक्षा की १० वर्ष की पढ़ाई के पश्चात् दो वर्ष के ऐसे अनेक डिप्लोमा-पाठ्यक्रम होने चाहिये जिनके द्वारा छात्र रोजगार के अवसर प्राप्त कर सकें। विभिन्न सरकारी विभाग भी अपनी आवश्यकता के अनुसार कई तरह के डिप्लोमा-कोर्स प्रारम्भ कर सकते हैं। हमारा यह पूरा प्रयत्न हो कि दो वर्ष के इस तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षण के बाद लगभग ७० फी सदी विद्यार्थी अलग-अलग कामों में लगकर अपना जीवन शुरू कर सकें। विश्वविद्यालयों में ऐसे ही नवयुवकों को प्रवेश

मिलना चाहिये जिनमें उच्च शिक्षा के लिए विशेष योग्यता पाई जाय। यदि इस प्रकार की व्यवस्था की गई तो फिर कालेजों में प्रवेश पाने की इच्छा रखने वाले नवयुवकों की भीड़ अपने आप कम हो जायगी। किन्तु यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि दो वर्षों के डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद यदि कोई भी छात्र भविष्य में उच्च अध्ययन करना चाहे तो उसका मार्ग पूरी तरह खुला रहना चाहिए।

हम देख रहे हैं कि कई राज्यों में यह नया शिक्षण क्रम लागू तो कर दिया गया है, किन्तु १० वर्ष के माध्यमिक शिक्षण के बाद दो वर्ष के पाठ्यक्रम पुराने ढंग पर ही जारी है। अगर इन दो वर्षों के पाठ्यक्रम को व्यावसायिक और टकनीकल रूप न दिया गया तो फिर यह नया ढाँचा बिलकुल बेकार साबित होगा। महाराष्ट्र जैसे कुछ राज्यों में तो इस नये क्रम के कारण विद्यार्थियों को एक वर्ष अधिक पढ़ाई करनी होगी और इस प्रकार उनके पालकों पर आर्थिक बोझ बढ़ेगा। अतः यह आवश्यक है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण व्यवस्थित ढंग से किया जाय और इन दो वर्षों को पुराने 'इन्टरमीजिएट' वर्ग ही न बना दिया जाय। नहीं तो अर्थ का अनर्थ ही होगा।

परीक्षाओं के वर्तमान ढंग में भी आमूल परिवर्तन करने की सख्त जरूरत है। इस समय तो इन परीक्षाओं द्वारा छात्रों की सिर्फ बौद्धिक क्षमता और विशेषकर स्मरण-शक्ति की जाँच की जाती है। फलतः स्कूलों और कालेजों की परीक्षाओं में नकल करने की व्यापक बुराई फैलती जा रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन, उत्पादक-श्रम व समाज-सेवा आदि प्रवृत्तियों का मूल्यांकन होता रहे। इस दिन प्रति दिन के आंतरिक मूल्यांकन का रेकार्ड ठीक ढंग से रखा जाना चाहिये ताकि यदि जरूरत हो तो उच्च-अधिकारी का मुआयना कर सकें और कोई भी शिक्षक विद्यार्थियों के प्रति अपनी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर अन्याय न कर सके।

डिग्रियाँ और नौकरी का सम्बन्ध विच्छेद किया जाय

सेवाग्राम सम्मेलन की यह भी एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश थी कि सार्वजनिक या निजी क्षेत्रों की नौकरियों के लिए यूनिवर्सिटी डिग्रियों का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाय। इससे विश्वविद्यालयों में प्रवेश की भीड़ और परीक्षाओं में आचारहीनता काफी कम हो सकेगी। इस उद्देश्य से विभिन्न राज्यों की सेवाओं में भर्ती के नियमों में संशोधन करना होगा। उदाहरण के लिए यदि सामान्य सरकारी नौकरियों के प्रवेश के लिए १९ या २० वर्ष की उम्र निश्चित कर दी जाय तो फिर बहुत से विद्यार्थी कालेज में प्रवेश पाने का मोह छोड़कर दो वर्ष के डिप्लोमा पाठ्यक्रमों में उत्तीर्ण होने की अधिक कोशिश करेंगे।

शिक्षकों की महत्ता :

हमारे प्राचीन आचार्यों ने 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव' आदर्श का उच्चारण किया था। इस क्रम के पीछे केवल शाब्दिक काव्य नहीं है, किन्तु एक निश्चित जीवन-दृष्टि है। मनुस्मृति में तो इसका गणित भी बतला दिया गया है — १० उपाध्याय बराबर एक आचार्य, १०० आचार्य बराबर एक पिता और हजार पिता एक माता के बराबर माने गये हैं। बहुत-से महापुरुषों की जीवनियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी जिन्दगी पर उनकी माताओं का गहरा असर पड़ा था। इसी दृष्टि से सेवाग्राम सम्मेलन ने यह सुझाया था कि शिक्षा-सुधार के कार्य में माता-पिता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना जरूरी है। प्रत्येक विद्यालय और कालेज में शिक्षक पालक मंडलों की स्थापना होनी चाहिये। वास्तव में प्रत्येक परिवार को सही अर्थ में बुनियादी शिक्षा की इकाई के रूप में विकसित होना चाहिये। किसी भी शिक्षा-पद्धति में आचार्यों का महत्व स्पष्ट ही है। किन्तु पालकों और विशेषकर माताओं के सहयोग के बिना वे छात्रों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने में समर्थ न हो सकेंगे। यह भी जाहिर है कि शिक्षण-सुधार की प्रक्रिया में विद्यार्थियों का सहकार्य प्राप्त करना कई दृष्टि से हितकर होगा। छात्र-संघों का उपयोग विद्यार्थियों में आत्म-संयम लागू करने और अधिक जिम्मेवारी की भावना जाग्रत करने की दृष्टि से किया जा सकता है।

विश्वमानव की ओर .

अन्त में, हमें ध्यान रखना होगा कि सभी शिक्षण-संस्थाओं में भारत की समन्वित संस्कृति का दर्शन हो। भारतीय परम्परा संकुचित नहीं, किन्तु एक विशाल और व्यापक जीवन-दृष्टि पर आधारित रही है। हजारों वर्ष पहले ऋग्वेद में भी 'विश्व-मानुष' संज्ञा का निर्देश किया गया है। हमारे ऋषियों ने सदा यही उपदेश दिया कि विश्व की सभी दिशाओं से प्रवाहित होने वाले कल्याणकारी विचारों का स्वागत किया जाय — 'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः'। भारतीय संस्कृति में सभी धर्मों और भाषाओं का सुन्दर समन्वय है। उसमें विज्ञान और आत्म-ज्ञान का भी संतुलित मिश्रण है। उपनिषदों ने स्पष्ट शब्दों में समझाया है कि केवल धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती — 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'। यदि हम इन बुनियादी विचारों और आदर्शों को विद्यार्थियों के दिल और दिमाग में अच्छी तरह

बैठाने का प्रयत्न न करें तो फिर हमारी शिक्षण-संस्थायें भारतीय कहलाने योग्य न रहेंगी। इन संस्थाओं में जो सामूहिक प्रार्थनायें आयोजित की जाय उनमें इस मंत्र का अवश्य समावेश किया जाय —

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।

अर्थात्— हमारा ध्येय समान हो, हमारे हृदय समान हों, हमारे मन समान हो, ताकि हम प्रसन्नता के साथ रह सकें।

अन्त में सम्मेलन के शिक्षा शास्त्रीयों ने सर्व सम्मति से शिक्षा सुधार सम्बन्धी निम्न निवेदन प्रस्तुत किया।

सत्य ही परमेश्वर

परमेश्वर की व्याख्याएँ अनगिनत है, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अनगिनत है। ये विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित करती हैं। क्षण भर के लिए ये मुझे मुग्ध भी करती हैं। किंतु मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वर का ही हूँ। वह एक ही सत्य है, और दूसरा सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं है, लेकिन मैं उसका शोधक हूँ। इस शोध के लिए मैं अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु का त्याग करने को तैयार हूँ।

जब तक मैं इस सत्य का साक्षात्कार न कर लूँ, तब तक मेरी अंतरात्मा जिसे सत्य समझती है उस सत्य को अपना आधार मानकर, उसके सहारे मैं अपना जीवन व्यतीत करता हूँ।

—मो० क० गांधी

मध्यप्रदेश-राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन, भोपाल

निवेदन

सम्मेलन मध्यप्रदेश-शासन से और प्रदेश की समस्त अशासकीय शिक्षा-संस्थाओं से निवेदन करता है कि वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में-शिक्षा-सुधार के लिए नीचे लिखी बातों को प्राथमिकता-पूर्वक कार्यान्वित करने का बीड़ा उठाएँ:

१ हमारी शिक्षा हर स्तर पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो, उत्पादक क्रिया-कलापों द्वारा आर्थिक विकास से सम्बद्ध रहे और गाँवों तथा शहरों के क्षेत्र में समान रूपमें एक साथ लागू की जाए।

२. हमारी शिक्षा-पद्धति विद्यार्थियों में आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास और श्रम-प्रतिष्ठा के मूलभूत गुणों का विकास करनेवाली हो और सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमों में शिक्षकों और छात्रों के सहयोग द्वारा सामाजिक सेवा की भावना को जगानेवाली हो, जिससे छात्रों के व्यक्तित्व का समग्र और परिपूर्ण विकास हो सके।

३. शिक्षा आर्थिक विकास के साथ आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास से भी अभिन्न रूपमें जुड़ी रहे। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय-स्तर तक की सभी शिक्षा-संस्थाओं में विचार-पूर्वक और दृष्टि-पूर्वक सर्वधर्म-समभाव का वातावरण बनाने का प्रयत्न सतत किया जाए। इसके अभाव में भारत की एकता को सुदृढ़ बनाना और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना संभव नहीं होगा।

४. सम्मेलन चाहता है कि शिक्षा के हमारे पाठ्यक्रमों में भारत की समन्वित सांस्कृतिक परम्परा की जानकारी, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, अहिंसा, लोकतन्त्र और समाजवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के मूल सिद्धांतों का समावेश हो।

५. विनोबाजी ने शिक्षा-जगत् की समुन्नति के लिए योग, उद्योग और सहयोग के जो तीन आधारभूत सूत्र सूचित किए हैं सम्मेलन उनका हृदय से स्वागत और समर्थन करता है और चाहता है कि शिक्षा के हर स्तर पर इन सूत्रों को कार्यान्वित करने का जाग्रत प्रयत्न किया जाए।

६ सम्मेलन की यह निश्चित धारणा है कि प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा तक शिक्षा का माध्यम छात्रों की अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा ही होना चाहिए। अंग्रेजी के या अन्य किसी भी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देना वांछनीय नहीं है। सम्मेलन अंग्रेजी को या विदेशी भाषाओं को ऐच्छिक विषय के रूपमें पढ़ाने का विरोधी नहीं है, किन्तु देश में आज भी अँग्रेजी के प्रति बढ़ती हुई आसक्ति और प्रवृत्ति को यह सम्मेलन चिंता की दृष्टि से देखता है और चाहता है कि यह चिन्ताजनक स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो।

७ कोठारी-कमीशन की सिफारिश के अनुसार अब देश के प्रायः सभी राज्यों में शिक्षा का ढाँचा १०+२+३ के क्रमानुसार निश्चित किया जा रहा है। किन्तु यह नितान्त आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा की १० वर्षों की पढ़ाई के बाद दो वर्षों की अगली पढ़ाई में ऐसे अनेक डिप्लोमा-पाठ्यक्रम होने चाहिए, जिनके द्वारा अधिकांश छात्र रोजगार के अवसर पा सकें। इसके साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि दो वर्षों की डिप्लोमावाली पढ़ाई के बाद यदि कोई छात्र भविष्य में उच्च अध्ययन करना चाहे, तो इसके लिए उसका मार्ग पूरी तरह खुला रहे।

८ सम्मेलन की यह निश्चित मान्यता है कि परीक्षाओं के वर्तमान ढग में आमूल परिवर्तन करना नितान्त आवश्यक हो गया है। आज की परीक्षा-पद्धति में मोटे तौर पर छात्रों की बुद्धि की और मुख्यत स्मरण शक्ति की ही जाँच की जाती है। आवश्यक यह है कि शिक्षण-सस्थाओं मे छात्रा के अध्ययन, उत्पादक श्रम, समाज-सेवा, आचरण और सर्जक प्रतिभा आदि का आन्तरिक, निष्पक्ष और वस्तुनिष्ट मूल्याकन हो और उसे मान्यता दी जाए।

९. सम्मेलन की राय में सार्वजनिक या निजी क्षेत्रो की अधिकाश विभागीय नौकरियो के लिए विश्वविद्यालय की उपाधि अनिवार्य न मानी जाए। राज्यो के सेवा नियमो में इसके लिए आवश्यक सुधार किए जाएँ और अधिकतर विभागीय परीक्षार्थी के पाठ्यक्रमो को दो वर्षों के डिप्लोमा-पाठ्यक्रमो के साथ जोड दिया जाए।

१० सम्मेलन निश्चित रूपसे मानता है कि अब देश में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो चुकी है, जब शिक्षा के क्षेत्र मे स्वतन्त्र प्रयोग और अनुसधान की आवश्यक अनुकूलता के लिए शिक्षा-सस्थाओ को स्वायत्त बनाया जाए और उनके सचालन में शासकीय हस्तक्षेप कम-से-कम हो।

११ सम्मेलन मानता है कि शिक्षा-सस्थाओ के वातावरण को शान्त, स्वस्थ और व्यवस्थित रखने के लिए सभी स्तरो की शिक्षा सस्थाओ में शिक्षक, पालक और बालक के आपसी सहयोग को पुष्ट करने की दृष्टि से तीनो की मिली-जुली समितियाँ गठित की जाएँ और उन्हें सक्रिय रखा जाए।

१२ सम्मेलन चाहता है कि प्रदेश मे चल रहे पब्लिक स्कूल, कॉन्वेण्ट स्कूल और ऐसी ही अन्य शिक्षा-सस्थाएँ इस निवेदन म दिए गए निष्कर्षो को सहज ही अपनाएँ और अपना सारा काम इनकी मर्यादा मे रहकर चलाने का निश्चय करें। जो पब्लिक स्कूल आदि सस्थाएँ इन मर्यादाओ को न मानें, उन्हे शासन की ओरसे मान्यता और अनुदान आदि की सुविधाएँ न दी जाए।

१३. सम्मेलन देश में और समाज में बढ रही आर्थिक और सामाजिक विषमता के प्रति अपनी आन्तरिक चिन्ता व्यक्त करता है और चाहता है कि शिक्षा-जगत् म व्याप्त वेतन सम्बन्धी विषमताओ को घटा कर न्यूनतम करने का प्रयत्न सर्वत्र किया जाए।

१४ सम्मेलन मध्यप्रदेश के शिक्षा मन्त्रीजी से अनुरोध करता है कि वे इस निवेदन मे दिए गए शिक्षा सुधार-सम्बन्धी सुझावो को कार्यान्वित करने के लिए सम्मेलन क अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण और सम्मेलन की स्वागत समिति के सयोजक श्री काशिनाथ त्रिवेदी से परामर्श करके शीघ्र ही २१ से २५ तक सदस्यो की एक सक्षम कार्यान्वियन समिति गठित कर दें।

सम्मेलन का विश्वास है कि मध्यप्रदेश शासन के कर्णधार और समाज के कर्ता धर्ता लोग शिक्षा की ज्वलन्त समस्याओ पर प्रकट की गई उसकी इस राय पर पूरी गम्भीरता से विचार करेंगे, और मध्यप्रदेश में शिक्षा की स्थिति और गति-विधि को समय की माँग के अनुसार नया रूप देन के काम में पूरी एकाग्रता और निष्ठा स लगेंगे।

गोविन्दराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा

नयी शिक्षा प्रणाली १०+२+३ के अतर्गत महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक शिक्षण मडल द्वारा वाणिज्य शाखा में उच्च माध्यमिक की ग्यारहवी कक्षा चलने की अनुमति प्रदान की गई है। साथ ही मराठी और हिन्दी माध्यम से नागपुर युनिवर्सिटी की प्री युनिवर्सिटी कॉमर्स, बी कॉम तथा एम कॉम की शिक्षा की व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय एव महाराष्ट्र शासन की विभिन्न प्रकार की शिष्यवृत्ति से महाविद्यालय परिपूर्ण है। सभी कक्षाओ में प्रवेश देना शुरू है।

बलराम वनमाली
प्राचार्य

आराम की ऊँचाइयाँ
बजाज
उत्पादनों द्वारा
बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड

लाइसेंस नं० ५

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा